केनोपनिषद

ओशो द्वारा केनोपनिषद पर माउंट आबू में दिनांक 8 जूलाई से 16 जूलाई 1973 तक अंग्रेजी में दिए गए 17 अमृत प्रवचनों का अनुवादित संकलन।

Translation of The Supreme Doctrine.

अनुक्रम

1. जागरण की और 2
2. यौन के आधारभूत द्वैत का अतिक्रमण 18
3. समर्पण से रूपातरण 31
4. अज्ञेय आत्मा 44
5. यह तुम्हारा स्वरूप है 61
6. परमात्मा आस्तित्व है 74
7. ध्यान और आंतरिक आँख 87
8. अनादि.....अनंत 100
9. मृत्यु : जीवन की पराकाष्ठा 113
10. अस्तित्व का शाश्वत खेल 125
11. सत्य या युक्ति 140
12. ब्रह्म का विराट चक्र 152
13. मनुष्य का अतिक्रमण हो सकता है 168
14. एक के द्वारा सर्व को जानना 181
15. अब तुम जा सकते हो 193
16. तथाता का महान नृत्य 205
17. हरेक क्षण को उत्सव बनाओ 217

पहला प्रवचन

जागरण की ओर

शांति पाठ

ओम सहनाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।

तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषाव है।

ओम शांति: शांति: शांति।

आप्यायंतु ममाङंगानि वाक् प्राणश्चक्षु:श्रोत्रमथो बलिमिंद्रयाणि च सर्वाणि।

सर्वं ब्रह्मौपनिषदं ब्रह्मनिराकुर्यां मा मा ब्रह्मनिराकरोत, अनिराकणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु।

तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि संतु, ते मयि संतु।।

ओम शांति: शांति: शांति:।

आवाहन

ओम, ब्रह्म हम दोनों की रक्षा करे। वह हम

दोनों का पोषण करे। हम दोनों को शक्ति मिले।

इस स्वाध्याय से हम दोनों प्रकाशित हों। हम दोनों

एक—दूसरे से घृणा न करें। ओम, शाति, शाति, शांति।

ओम, मेरे अंग मजबूत हो। मेरी वाणी, प्राण, दृष्टि,

श्रवण और सारी ज्ञानेंद्रिया भी शक्तिशाली हों।

सारा अस्तित्व ही उपनिषदों का ब्रह्म है।

मैं उस ब्रह्म को कभी मना नहीं करूं;

वह ब्रह्म भी मुझे मना नहीं करे।

कभी कोई मना नहीं हो।

कम से कम मेरी ओर से कभी कोई मना नहीं हो।

उपनिषदों में जो भी सदगुण हैं,

वे मुझमें निवास करें; मैं जो कि आत्मा के प्रति भक्तिपूर्ण हूं।

वे सदगुण मुझमें निवास करें। ओम, शाति, शाति, शाति।

मुझे पता नहीं कि कहां से शुरू करूं या कहां खतम करूं, क्योंकि जीवन का न तो कोइ् प्रारंभ है और न कोई अंत है। जैसे कि तुम्हारे चारों ओर पहाड़ियां है, अथवा कि बादल मंडरा रहे है, या कि जैसे आकाश है उसी तरह तुम्हारा भी न कोई प्रारंभ है और न कोई अंत है। न तो कभी कुछ शुरू होता है और न ही कुछ समाप्त होता हे। और जो भी शुरू होता है और समाप्त भी होता है वह अप्राकृतिक ही होगा। प्रकृति जैसी है वैसी है—वह बनी रहती है; वह सदा से है।

इस लिए जब भी उस अत्यंत के बारे में सवांल उठता है। उस सर्वोच्च, उस अंतरतम के आधारभूत स्वरूप के बारे में सवाल उठता है तो यह कहना कठिन हो जाता है कि कहां से शुरू करें और कहां खत्म करें। वह सदा—सदा है। वह सदा—सदा से था और सदा—सदा वैसा ही रहेगा। उसका कभी भी कोई प्रारंभ नहीं

हुआ और न ही उसका कभी अंत होगा। इसलिए मैं मध्य से ही शुरू करूंगा, क्योंकि वही एकमात्र जगह है जहां से कि शुरू किया जा सकता है। और मैं मध्य में ही समाप्त करूंगा क्योंकि कोई और दूसरा रास्ता नहीं है समाप्त करने का।

पहली बात जो मैं तुम्हें कहना चाहूंगा वह यह है कि मैंने यह उषनिषद कोई व्याख्या करने के लिए नहीं चुना है। व्याख्याएं पहले ही बहुत है और उन्होंने कभी किसी को कुछ खास लाभ नहीं पहुंचाया। उनसे बहुतों को नुकसान भले ही पहुंचा हो,बे उनके मार्ग में अवरोध भले हीं बनी हो,किंतु उनसे किसी को कोई मदद नहीं मिली। व्याख्याएं मदद कर भी नहीं सकतीं क्योंकि वे निम्न श्रेणी की होती हैं। मैं इस उपनिषद पर व्याख्या करने नहीं जा रहा है। बल्कि ठीक उसके विपरीत, मैं इसके साथ प्रतिसंवेदन करने जा रहा हूं। मैं सिर्फ प्रतिध्वनि करूंगा, फिर—फिर प्रतिध्वनि करूंगा।

वस्तुत: जो भी मैं कहूंगा वह बुनियादी रूप से मेरा ही होगा। उपनिषद तो सिर्फ एक बहाना है। इसके माध्यम से मैं अपने को ही कहूंगा—इसे स्मरण रखें। जो भी मैंने अनुभव किया है, जो भी मैंने जाना है और जीया है, मैं उसी की बात करना चाहूंगा क्योंकि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वही बात उपनिषदों के ऋषियों के बारे में भी है। उन्होंने भी वही जाना है, वही जीया है, वही अनुभव किया है। उनके कहने का ढंग चाहे अलग हो सकता है, उनकी भाषा भी बहुत पुरानी है; उनकी भाषा को फिर उघाड़ना पड़ेगा ताकि वह तुम तक पहुंच सके, आज के समकालीन हो सके। किंतु उन्होंने जो भी कहा है, वह आधारभूत है 1 जब भी कोई शून्य को उपलब्ध हो जाता है, जब भी कोई मिट जाता है, तो ऐसी घटना घटती है—वही जो कि उपनिषदों के ऋषियों को घटा था। जब भी तुम नहीं हो, तो परमात्मा उपस्थित हो जात है। जब तक तुम हो, परमात्मा अनुपस्थित ही रहता है।

तुम्हारी उपस्थिति ही समस्या है, तुम्हारी अनुपस्थिति ही द्वार है। ये ऋषि पूर्णत: 'कुछ नहीं' हो गये हैं। हम उनका नाम तक नहीं जानते। हमें यह भी पता नहीं कि इन उपनिषदों का लिखने वाला कौन है, किसने इन्हें संप्रेषित किया। उन्होंने इन पर हस्ताक्षर भी नहीं किये। उनकी कोई तस्वीर, कोई चित्र भी नहीं है। उनके जीवन के बारे में भी कुछ पता ठिकाना नहीं है। वे तो सिर्फ अनुपस्थित हो गये हैं। जो भी सत्य है वही उन्होंने एक वाहन की भांति कहा है। वे किसी भी भांति उसकी अभिव्यक्ति में संलग्न नहीं हुए हैं। उन्होंने अपने को बिलकुल ही, पूरी तरह से ही अनुपस्थित कर लिया है, ताकि वह संदेश पूर्णरूप से उपस्थित हो सके।

ये उपनिषद शाश्वत हैं। वे इस देश के नहीं हैं, वे किसी धर्म के भी नहीं हैं। बस वे किसी के भी नहीं हैं। वे किसी के हो भी नहीं सकते। वे उन्हीं के हैं जो कि कुछ—नहीं में, शून्य में छलांग लगाने को तैयार हैं। मैंने उपनिषदों पर बोलने का जो तय किया है उसका कारण है कि वे मेरे लिए उस परम की शुद्धतम अभिव्यक्ति हैं, जो कि हो सकती है। वास्तव में यह कठिन है, एक तरह से असंभव है मन के लिए उसे कहना जो कि मन के पार है। एक अर्थ में यह पूर्णत: असंभव ही है—उसे अभिव्यक्त करना जो कि तब जाना जाता है जब कि तुम गहनतम मौन की स्थिति में होते हो; जब कि तुम्हारे भीतर शब्द नहीं होते; जब कि भीतर बोलना पूरी तरह बंद हो जाता है, जब कि बुद्धि काम करना बंद कर देती है, जब कि मन नहीं बचता कुछ भी स्मरण रखने के लिए, तब यह घटित होता है; तब तुम अनुभूति करते हो।

और जब मन पुन: लौटता है, जब स्मृति पुन: काम करने लगती है, जब बुद्धि फिर से तुम्हें पकड़ लेती है, तब वह अनुभव जा चुका होता है। अब वह अनुभव मौजूद नहीं है; केवल उसकी प्रतिध्वनि, केवल उसके कंपन पीछे छूट जाते हैं। केवल वही पकड़े जा सकते हैं और मन केवल उन्हें ही अभिव्यक्त कर सकता है। इसीलिए यह बात सदा ही असंभव रही है, बहुत ही कठिन, कि जिन्होंने जाना है वे उसे कह सकें! जो कुछ नहीं जानते वे बहुत कुछ कह सकते हैं। किंतु जो जानते हैं उनके लिए थोड़ा भी कहना बहुत—बहुत कठिन हो जाता है, क्योंकि

जो भी वे कहते हैं वह असत्य प्रतीत होता है। वे अनुभव को अभिव्यक्ति से तोल सकते हैं क्योंकि उनके पास जीवंत अनुभव है। इसलिए वे जान सकते हैं कि भाषा क्या कर रही है : भाषा उसे असत्य कर रही है।

जब एक जीवंत अनुभव शब्दों में आता है तो वह मरा हुआ, पीला पड़ गया मालूम होता है। एक जीवंत अनुभव जो कि समग्र होता है, जिसमें कि तुम्हारा सारा स्वरूप नाचता है और उत्सव मना रहा होता है, वह बड़ा प्राणहीन मालूम पड़ता है जब उसे बुद्धि के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है—वह बिलकुल अर्थहीन प्रतीत होता है। जो लोग नहीं जानते, वे बहुत कुछ कह सकते हैं क्योंकि उनके पास कुछ भी नहीं है जिससे तुलना की जा सके। उनके पास कोई अपना मौलिक अनुभव नहीं है, वे जान ही नहीं सकते कि वे क्या कर रहे हैं। एक बार कोई जान लेता है तो उसे पता चलता है कि कितना कठिन है, कैसी समस्या है उसे अभिव्यक्त करना।

बहुत से लोग मौन ही रह गये इसी कारण, और बहुत से लोग अज्ञात ही रह गये इसी कारण। क्योंकि हम उसी के बारे में तो जान सकते हैं जो कि कुछ बोलता है। जैसे ही कोई बोलता है वह समाज में प्रवेश कर जाता है। जब कोई बोलना बंद कर देता है तो वह समाज को छोड़ देता है, वह उसका हिस्सा—नहीं रह जाता। भाषा तो एक माध्यम है जिसमें कि समाज जीता है। वह बिलकुल खून की तरह है। खून तुम्हारे भीतर बहता है इसीलिए तुम जिंदा हो। भाषा भी समाज में घूमती है और उसी से समाज जीता है बिना भाषा के कोई समाज नहीं हो सकता। इसलिए जो लोग मौन रह गये, वे समाज से अलग रह गये हम उन्हें भूल गये। वस्तुत: तो हमने उन्हें कभी जाना ही नहीं।

कहीं पर विवेकानंद ने कहा है और वह बात बहुत सच है कि बुद्धपुरुष, कृष्ण और क्राइस्ट जिन्हें कि हम जानते हैं वे असली प्रतिनिधि नहीं हैं। वे केंद्र नहीं हैं; वे सिर्फ परिधि पर हैं। जो केंद्र की घटना है, वस्तुत: वह तो इतिहास के लिए अज्ञात ही रही। जो लोग इतने मौन हो गये कि वे हमसे कोई बात न कर सके, वे तो अज्ञात ही रहे। उन्हें जाना भी नहीं जा सकता, उन्हें जानने का कोई मार्ग भी नहीं है। एक अर्थ में विवेकानंद सही हैं। किंतु जो लोग इतने मौन हो गये कि उन्होंने अपने अनुभव के बारे में कुछ भी बोला, उन्होंने हमारी कोई सहायता नहीं की। वे हमारे प्रति करुणाजनक भी नहीं रहे। एक अर्थों में वे पूरी तरह स्वार्थी ही रहे।

यह बात सही है कि सत्य के बारे में कुछ भी कहना बहुत कठिन है, लेकिन फिर भी इसका प्रयास करना ही चाहिए। इसका प्रयास अवश्य करना चाहिए क्योंकि हलका सत्य भी उन लोगों के

सहायक हो सकता है जो कि अभी पूरी तरह भ्रमों में जी रहे हैं। उनके लिए वह बात भी जो कि बहुत की, हलकी सी प्रतिध्वनि ही है वह भी उनके रूपातरण में सहायक सिद्ध हो सकती है।

ऐसा नहीं है कि बुद्ध जो भी बोले वे उससे बहुत प्रसन्न हों। जो भी वे बोले, वे जानते हैं कि सत्य नहीं है। उन्होंने भी वैसा ही अनुभव किया जैसा लाओत्सु ने अनुभव किया था। लाओत्सु कहता है, "जो भी कहा जा सकता है वह सत्य नहीं हो सकता। जैसे ही उसे बोलो कि वह असत्य हो जाता है। "लेकिन फिर भी जो लोग गहरे भ्रमों में जी रहे हैं, जो कि गहरी नींद में सोए हैं, उनके लिए झूठी अलार्म भी सहायक सिद्ध हो सकती है। यदि उन्हें उनकी नींद से बाहर निकाला जा सके, यदि उन्हें नई चेतना में लाया जा सके, नये स्वरूप में खींचा जा सके तो झूठी अलार्म भी अच्छी है। अवश्य ही जब वे जाग जायेंगे तब वे खुद ही जान लेंगे कि वह अलार्म झूठी थी—लेकिन उसने भी सहायता तो की।

एक अर्थ में जहां भी हम है और जैसे भी हम हैं, हम इतने ज्यादा झूठे हैं कि वास्तव में पूर्णरूपेण शुद्ध सत्य की जरा भी आवश्यकता नहीं है। वह तुम्हारे भीतर प्रवेश नहीं कर पायेगा, उससे तुम्हारा कोई संबंध निर्मित नहीं हो पाएगा, तुम उसे समझ ही न सकोगे। केवल एक जो कि बिलकुल फीका सत्य है, बदला हुआ

सत्य है, एक अर्थ में झूठा सत्य है वही तुम्हें जंच सकता है, ठीक प्रतीत हो सकता है, क्योंकि तब तुम उसकी भाषा समझ सकते हो। उसे तुम्हारे ही लिए अनुवादित किया गया है।

ये उपनिषद बहुत ही सरल हैं। यह सीधे हृदय से हृदय की बात है। ये दार्शनिक नहीं हैं; बल्कि ये धार्मिक हैं। इनका किन्हीं सिद्धातों, किन्हीं धारणाओं से कुछ लेना—देना नहीं है; इनका सीधा संबंध जीवंत सत्य से है—सत्य क्या है और कैसे उसे जीया जा सकता है। तुम उसके बारे में सोच नहीं सकते, तुम उसके बारे में चिंतन नहीं कर सकते। तुम सिर्फ उसमें उतर सकते हो और उसे अपने भीतर उतरने दे सकते हो। तुम सिर्फ उसमें गर्भित हो सकते हो, तुम सिर्फ उसमें पूरी तरह डूब सकते हो, तुम उसमें पिघल सकते हो।

हम इन उपनिषदों के बारे में चर्चा करेंगे और मैं इसके प्रति एक प्रतिसंवेदन के रूप में अपने अनुभव उतारूंगा। लेकिन वह सिर्फ पहली सीढ़ी ही होगी। जब तक तुम स्वयं उस आयाम में नहीं चलोगे तब तक वह बहुत उपयोगी नहीं होगा। जब तक कि तुम नहीं चलोगे और अज्ञात में छलांग नहीं लगाओगे, उससे तुम्हारी मदद नहीं हो सकेगी। अथवा यह भी हो सकता है कि उससे तुम्हें नुकसान हो जाये, क्योंकि तुम

पहले ही बहुत बोझिल हो, बड़े भारी हो। तुम्हें और बोझिल करने की आवश्यकता नहीं है। मैं यहां तुम्हें उस बोझ से मुक्त करने के लिए हूं।

मैं तुम्हें कोई नया ज्ञान देने के लिए नहीं हूं। मैं सिर्फ तुम्हें एक प्रकार का शुद्ध अज्ञान सिखाने के लिए हूं। मैं जब कहता हूं शुद्ध अज्ञान तो मेरा उससे मतलब है——शुद्ध भोलापन, मेरा मतलब है कि एक ऐसा मन जो कि रिक्त है, खुला है। एक ऐसा मन जो कि जानता है, खुला हुआ नहीं होता, वह तो बंद है। यह भाव कि 'मैं जानता हूं' तुम्हें बंद कर देता है। और जब तुम्हें ऐसा लगता है कि 'मैं नहीं जानता हूं तो तुम खुले होते हो। तब तुम चलने के लिए तैयार हो, सीखने के लिए, यात्रा करने के लिए राजी हो।

मैं तुम्हें 'अज्ञानी' होना, अनसीखा करना सिखाऊंगा, न कि शान। केवल अनसीखा करना ही तुम्हारे काम का हो सकता है। जिस क्षण भी तुम अनसीखा करते हो, जिस क्षण भी तुम पुन: अज्ञानी हो जाते हो, तो तुम बच्चे की भांति हो जाते हो, तुम भोले हो जाते हो। जीसस कहते हैं, "जो छोटे बच्चों की भांति हैं केवल वे ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे। " मैं तुम्हें छोटे बच्चों की तरह बना देने का प्रयास करूंगा।

इसके लिए बहुत साहसिक प्रयास करना पड़ेगा; यह एक बड़ी से बड़ी चुनौती है जो तुम्हें दी जा सकती है। और जब तक तुम इस चुनौती को स्वीकार नहीं कर लेते तब तक तुम न तो उपनिषद को समझ सकते हो और न मुझे। इस चुनौती के लिये कुछ आधारभूत चीजें खयाल में रखनी आवश्यक हैं।

पहली कि तुम अपने सारे ज्ञान को उतार कर एक तरफ रख दो। इन आठ दिनों के लिए कृपा करके अज्ञानी हो जाओ। तुम कोई इससे उस शान को भूल नहीं जाओगे। आठ दिन बाद तुम्हें ऐसा लगे कि उस सबको उठाये फिरना ठीक है तो तुम उसे पुन: उठाये फिरना। लेकिन इन आठ दिनों के लिए कृपा करके अपने मन के सारे बोझों को उतार कर रख दो। जो भी तुम जानते हो यहां उसे बीच में दखल न डालने दो, क्योंकि यदि तुम उसे बीच में ले आये तो मैं तुम्हारे और मेरे बीच एक सेतु, एक संपर्क निर्मित नहीं कर सकूंगा, जिसके लिए मैने तुम्हें बुलाया है।

यह एक बहुत बड़ा प्रयोग होने जा रहा है। यदि तुम अपना शान, अपना जानना एक तरफ रख सको और वह तुम रख सकते हो। केवल जरा निश्चय करने की जरूरत है कि "इन आठ दिनों के लिए मैं अपने शान को नहीं घसीटूगां; मैं ऐसा नहीं कहूंगा कि मैं जानता हूं। मैं तो सिर्फ ऐसा ही अनुभव करूंगा कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। " यदि तुम ऐसा महसूस कर सको तो तुम अज्ञात में प्रवेश करने के लिए तैयार हो, क्योंकि अज्ञात में प्रवेश

तभी हो सकता है जबकि कोई ज्ञान नहीं हो। ज्ञान सिर्फ तुम्हें शांत तक ले जा सकता है; केवल अज्ञान ही अज्ञात की ओर यात्रा करा सकता है। अज्ञान की बात ही और है, यदि तुम उसका अर्थ समझ सको।

जो भी तुम जानते हो उसे उतार कर एक तरफ रख दो। और तुम वस्तुत: जानते भी क्या हो? तुम सिर्फ जानने का दिखावा करते रहते हो। तुम परमात्मा के बारे में, आत्मा के बारे में, स्वर्ग—नर्क के बारे में सिर्फ बात करते रहते हो और तुम्हें कुछ भी पता नहीं। ये झूठे आडंबर बहुत महंगे पड़ते हैं क्योंकि धीरे—धीरे तुम स्वयं ही धोखे में पड़ जाते हो।

इन आठ दिनों के लिए पहली बात जो तुम्हें याद रखनी है, वह यह है कि तुम अज्ञानी हो। किसी से बहस मत करो, वाद—विवाद में मत पड़ो; न कोई प्रश्न पूछो न किसी को कोई उत्तर दो। यदि तुम जानते नहीं हो तो फिर तुम कैसे बहस कर सकते हो? कैसे विवाद कर सकते हो? यदि तुम्हें कुछ भी पता नहीं है तो तुम प्रश्न भी कैसे पूछ सकते हो? सचमुच यदि तुम अज्ञानी हो तो तुम सवाल भी कैसे पूछोगे? क्या पूछोगे? तुम्हारे सवाल भी तुम्हारे तथाकथित शान से उपजते हैं। और फिर जवाब देने के लिए भी क्या है. यदि तुम्हें लगता है कि तुम अज्ञानी हो तो तुम चुप ही रह जाओगे। फिर सोचने के लिए भी क्या बचता है।

तुम्हारा ज्ञान ही तुम्हारे दिमाग में बार—बार वर्तुल में घूमता रहता है। उसे अलग रख दो— हिस्सों में मत रखो क्योंकि कोई भी हिस्सों में उसे नहीं रख सकता। उसे पूरा का पूरा ही अलग दो—समग्र। इन आठ दिनों के लिए निश्चय कर लो कि तुम वैसे ही अज्ञानी बनकर रहोगे जैसे कि जन्म के समय थे—एक बच्चे की भांति, एक नवजात शिशु की भांति, जो कुछ भी नहीं जानता, कुछ? नहीं पूछता, वाद—विवाद नहीं करता, तर्क—वितर्क नहीं करता। यदि तुम एक छोटे बच्चे हो सको तो? कुछ संभव है। वह जो कि असंभव जैसा प्रतीत होता है, वह भी संभव हो सकता है।

यदि तुम अज्ञानी हो तो ही मैं काम कर सकूंगा। केवल तुम्हारे अज्ञान में ही मैं तुम्हें रूपांतरित कर सकता हूं। तुम्हारा ज्ञान ही बाधा है। यदि तुम सोचते हो कि तुम्हारा ज्ञान इतना महत्वपूर्ण है, इतना अधिक काम का है कि तुम उसे अलग नहीं रख सकते तो फिर यहां से चले जाओ। फिर यहां रुको ही मत क्योंकि तब यहां रुकना व्यर्थ है। मैं यहां तुम्हारा ज्ञान बढ़ाने के लिए नहीं हूं। मेरी जरा भी उत्सुकता नहीं है कि तुम क्या जानते हो। मेरी तो उत्सुकता तुम में है—कि तुम क्या हो। और वह जो कि तुम हो, वह केवल? विस्फोटित हो सकता है जब कि तुम्हारे तथाकथित ज्ञान की बाधाएं उठाकर फेंक दी जायें।

अज्ञात के लिए तैयार हो और वह तुम तभी हो सकते हो जब कि तुम अज्ञानी होने के लिए तैयार जाओ। और मैं कहता हूं कि यह एक बड़े दुस्साहस का काम है। अपने को अज्ञानी महसूस करना मनुष्य के लिए एक बड़े से बड़े दुस्साहस का काम है। क्यों? क्योंकि ज्ञान तुम्हें अहंकार देता है, ज्ञान से तुम्हें ऐसी प्रतीति होती है कि तुम भी कुछ हो—कि तुम यह जानते हो, कि तुम वह जानते हो। यदि तुम्हें ऐसा लगे कि तुम कुछ भी नहीं जानते तो तुम्हारे अहंकार को भोजन नहीं मिलता। यदि तुम अज्ञानी हो जाओ अहंकार विसर्जित हो जाता है।

लोग मेरे पास आते हैं और वे मुझसे पूछते है कि हम अहंकार को कैसे गलायें? और मैं उनसे? हूं "इसका प्रयत्न ही मत करो। तुम उसे नहीं गला सकते। बस अपने ज्ञान को एक तरफ रख दो और अहंकार विलीन हो जाता है। "वह ऐसे ही विलीन हो जाएगा जैसे कि ओस की बूंदें विलीन हो जाती जब सबेरे सूरज निकलता है। अहंकार भी ओस की बूंद ही है। जब तुम कुछ भी नहीं जानते हो—यहीं मेरा मतलब है अज्ञान से—जब तुम कुछ भी नहीं जानते हो और कह देते हो कि मैं कुछ भी नहीं जानता; मैं अंधकार में खड़ा हूं तब फिर तुम्हारा अहंकार खड़ा किस पर होगा? कहां जमायेगा वह अपने पांव? ज्ञान के साथ ही अहंकार भी चला जाता है। अत: पहली बात, अज्ञानी रहो।

दूसरी बात, मनुष्य का मन गंभीर आदमियों ने बिलकुल ही विकृत कर दिया है। जिन लोगों ने? यह महान कार्य अपने हाथ में लिया कि आदमियों को गंभीर बना दिया उन्होंने तुम्हारे भीतर जो भी सुंदर है, उसे नष्ट कर दिया। पुराने पुराण—पंथी, नैतिकवादी, धार्मिक गुरु, मंदिर, चर्च इन सबने मिलकर जो भी तुम्हारे भीतर सुंदर है उसे नष्ट कर डाला—क्योंकि सौंदर्य का संबंध तो गैर—गंभीरता से है।

कुरूपता का संबंध गंभीरता से है। और धर्म भी कुरूप हो गया क्योंकि वह बहुत ज्यादा गंभीरता से जुड़ गया। गंभीर मत बनो। इन आठ दिनों के लिए प्रफुल्लित रहो, बच्चों की तरह हंसते—खेलते हुए रहो और आनंद मनाओ। स्वयं का भी आनंद लो और दूसरों का भी आनंद लो। जो सारा संसार तुम्हारे चारों ओर फैला है उसका आनंद लो। ये पहाड़ियां सुंदर हैं, और वर्षा भी होगी और बादल भी आयेंगे। यह रात भी सुंदर है और यह नीरवता भी सुंदर है। किंतु यदि तुम गंभीर रहे तो तुम्हारे द्वार बंद ही रहेंगे। तुम रात की इस नीरवता के प्रति बंद ही रह जाओगे। आदमी के सिवाय अस्तित्व में कुछ भी गंभीर नहीं है।

आनंदित रहो। यह थोड़ा कठिन होगा क्योंकि तुम इस बुरी तरह से ढांचों में कैद हो, कि तुम्हारे चारों ओर एक प्रकार का कवच है, और उसको ढीला करना कठिन है। तुम नाच नहीं सकते, तुम गीत नहीं गुनगुना सकते, तुम कूद नहीं सकते, तुम रो नहीं सकते, हंस नहीं सकते, मुस्कुरा नहीं सकते। हंसने के लिए भी तुम्हें पहले कुछ होना चाहिए जिस पर तुम हंस सकी। तुम अकारण नहीं हंस सकते। कोई कारण होना चाहिए, तभी केवल तुम हंस सकते हो। कोई कारण होना चाहिए केवल तभी तुम रो सकते हो, चिल्ला सकते हो।

तुम गंभीर हो। तुम जीवन को ऐसे देखते हो जैसे वह कोई व्यापार हो अथवा गणित हो। नहीं, जीवन ऐसा नहीं है। जीवन तो काव्य है, अतर्क है। वह कोई काम नहीं है; वह तो खेल की भांति है। इन वृक्षों को देखो, पशुओं को देखो, पक्षियों को देखो; देखो आकाश की तरफ; सारा अस्तित्व प्रफुल्लित है। तुम बहुत ज्यादा गंभीर हो, इसलिए कोई अचरज की बात नहीं है यदि तुम अस्तित्व से पृथक हो गए हो। तुम्हारी जड़ें इससे हट गयी हैं। तुम्हें लगता है जैसे तुम कोई अजनबी हो। तुम उससे अलग हो गये हो। और इसीलिए तुम्हें यह अजनबीपन लगता है। तब तुम्हें ऐसा लगता है कि यह सारा अस्तित्व तुम्हारा घर नहीं है। इसके लिए तुम ही जिम्मेवार हो और तुम्हारी गंभीरता ही जिम्मेवार है, कोई और नहीं।

अपने ज्ञान को एक तरफ रख दो, अपनी गंभीरता को भी उतार कर एक तरफ रख दो; इन आठ दिनों के लिए पूर्णतया प्रफुल्लित होकर रहो। तुम्हारे पास खोने को कुछ भी नहीं है। यदि तुम इससे कुछ पा नहीं सकोगे तो खो भी कुछ नहीं जायेगा। क्या खो सकते हो तुम प्रफुल्लता में? लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि तुम पुन: वही नहीं हो सकोगे। यदि वस्तुत: ही तुम प्रफुल्लित रहे, तो तुम्हें देखने का एक नया ढंग मिलेगा, एक नया मार्ग मिलेगा होने का। और जब तुम यहां से लौटकर जाओगे तो तुम वही व्यक्ति नहीं होगे। और जीवन का पूरा अर्थ ही तुम्हारे लिए बदल जाएगा, क्योंकि अर्थ तुम्हारे ही द्वारा दिया गया है। अभी जीवन एक ऊब जैसा लगता है, जीवन अर्थहीन मालूम पड़ता है। तुमने ही उसे ऐसा बना दिया है अपनी गंभीरता के कारण। जीवन तो खेल से भरा है, सुंदर है, लेकिन वह सुंदर तभी हो सकता है जबकि तुम्हारी आंखें सौंदर्य के प्रति खुली हों।

लोग अकसर पूछते हैं, "कहो है परमात्मा? " तुम उसे नहीं पा सकते क्योंकि वह तो खिलाड़ी है और तुम गंभीर हो। हिंदू सदियों से इस बात को कहते रहे हैं कि यह अस्तित्व परमात्मा की लीला है। और तुम इतने व्यस्त हो, इतने गंभीर हो कि तुम उससे नहीं मिल सकते। सचमुच, वस्तुत: ही तुम्हारे उससे मिलने की कोई संभावना नहीं है। तुम अलग—अलग आयामों में घूमते रहते हो। वह लीला करता रहता है। सारा अस्तित्व सिर्फ एक लीला है। वह कोई कार्य नहीं है, वह गंभीर नहीं है।

अपनी गंभीरता को अलग रख दो और आठ दिनों के लिए परमात्मा की भांति खेलपूर्ण हो जाओ। तुम्हें थोड़ी कठिनाई होगी क्योंकि तुम सोचते हो कि तुम प्रौढ़ हो गये हो। तुम हुए नहीं हो। तुमने अभी तक प्रौढ़ता, परिपक्कता उपलब्ध नहीं की है। यह सच है कि तुमने अपना बचपन खो दिया है, लेकिन बचपन छोड़ देना प्रौढ़ होने अथवा परिपक्क होने का पर्यायवाची नहीं है। बिना प्रौढ़ हुए भी तुम बचपन छोड़ सकते हो। परिपक्कता कोई का होना नहीं है। परिपक्यता का आयु से कोई संबंध नहीं है। परिपक्कता एक तरह का विकास है। और वह विकास बचपन के द्वारा ही होता है, न कि उसके विरोध में जाकर—इसे स्मरण रखो।

तुम्हारी प्रौढ़ता झूठी है क्योंकि वह तुम्हारे बचपन के विरुद्ध है। एक बच्चा पैदा हुआ था; प्रौढ़ता निर्मित की गई है। बच्चा प्राकृतिक था; तुम कृत्रिम हो, संस्कारित हो। तम्हें अपने बचपन की ओर लौटना पड़ेगा, स्रोत की ओर लौटना पड़ेगा जहां से कि विकास संभव है।

इसलिए तुम्हारे खेलपूर्ण होने पर मेरा इतना जोर है। मैं चाहता हूँ कि तुम पुन: उसी बिंदु पर पहुंच जाओ जना से तुमने विकसित होना बंद कर दिया। तुम्हारे बचपन में एक ऐसा बिंदु है जहां पर कि तुमने विकसित होना बंद कर दिया और तुमने झुFा होना प्रारंभ कर दिया। —शायद तुम क्रोधित हुए होगे—एक छोटा बच्चा बिगड़ा होगा, क्रोधित हुआ होगा—और तुम्हारे पिता अथवा तुम्हारी मां ने कहा, "क्रोध मत करो। यह ठीक नहीं है! " तुम स्वभावगत थे किंतु एक विभाजन पैदा हो गया और तुम्हारे लिए एक चुनाव का समय आ गया। यदि तुम प्रकृतिगत रहते तो तुम्हें अपने माता—पिता का प्रेम नहीं मिलता।

और निश्चित ही तुम प्रेम चाहते थे। वही एकमात्र तुम्हारे लिए सुरक्षा थी, तुम उसके बिना जी नहीं सकते थे। अत: तुमने चुनाव किया, तुमने समर्पण कर दिया। तुमने अपने स्वभाव को एक तरफ हटा दिया, और तुमने हंसना और मुस्कुराना शुरू कर दिया; तुम एक अच्छे लड़के या लड़की हो गये। और जिस दिन तुम एक अच्छे लड़के या लड़की हो गये वही दिन तुम्हारे लिए एक दुर्दिन सिद्ध हुआ। उस क्षण से तुम कभी भी प्रकृतिगत नहीं हो सके। उस क्षण से तुम गंभीर हो गए, कभी प्रफुल्लित, खेलपूर्ण न हो सके। उस क्षण से तुम मरते जा रहे हो, जीवंत नहीं हो पाये। उस क्षण से तुम के होते जा रहे हो, न कि परिपक्य हो रहे हो।

इन आठ दिनों में मैं चाहता हूं कि तुम पुन: उस बिंदु पर लौट जाओ जहा से कि तुमने स्वभावगत होने के विपरीत अच्छा' होना शुरू किया था। खेलपूर्ण हो जाओ ताकि तुम्हारा बचपन वापस प्राप्त हो सके। यह कठिन होगा क्योंकि तुम्हें अपने चेहरे, अपने मुखौटे अलग रखने पड़ेंगे। तुम्हें अपना व्यक्तित्व अलग रखना पड़ेगा। किंतु स्मरण रहे कि वह जो कि सार है वह तभी ऊपर उठ सकता है जबकि तुम्हारा व्यक्तित्व नहीं हो। क्योंकि तुम्हारा व्यक्तित्व एक कारागृह बन गया है। उसे अलग रख दो। यह दुखपूर्ण होगा, लेकिन यह करने योग्य है क्योंकि इसी में से गुजरकर तुम पुन: जन्म सकोगे। और बिना दर्द के कोई जन्म संभव नहीं है। यदि तुमने वस्तुत: पुनर्जन्म के लिए निश्चित कर लिया है तो फिर यह खतरा उठाना ही पड़ेगा।

इन आठ दिनों के लिए वापस छोटे बच्चे हो जाओ। किसी की भी आलोचना मत करो। किसी की भी निंदा मत करो। यह सारी मूर्खता तथाकथित प्रौढ़ लोगों की बातें हैं, न कि बच्चों की। बच्चे क्या करते हैं? वे आनंद लेते हैं। जो बात हम तथाकथित प्रौढ़ लोगों के लिए मूर्खता की होती है वे उसका भी आनंद लेते हैं। सारा संसार सौंदर्य, सत्य, प्रेम से भरा है, लेकिन तुम उसका आनंद नहीं ले सकते। जब हम कल सबेरे से ध्यान करें तो आनंद लो।

इसे स्मरण रखो कि अपने बचपन को वापस प्राप्त करना है। प्रत्येक उसके लिए इच्छा करता है लेकिन कोई उसे पुन: प्राप्त करने के लिए करता कुछ भी नहीं। हर एक उसकी कामना करता है। लोग लगातार कहते

रहते हैं कि बचपन स्वर्ग था, और कवि कविता करने में लगे रहते हैं कि बचपन कितना सुंदर था। कौन रोक रहा है तुम्हें पुन: प्राप्त करने में? मैं तुम्हें यह अवसर प्रदान कर रहा हूं कि तुम उसे पुन: प्राप्त कर लो।

कविता करने से कुछ न होगा। और सिर्फ इस स्मरण से कि वह एक स्वर्ग था, कोई लाभ होने वाला नहीं है। क्यों नही पुन: हम वहां ही लौट जायें? क्यों नहीं पुन: हम बच्चे ही हो जायें। मैं तुमसे कहता हूं कि यदि तुम पुन: बच्चे हो जाओ तो तुम एक नए ही ढंग से विकसित होना प्रारंभ करोगे। पहली बार तुम फिर से जीवंत हो जाओगे। और जैसे ही तुम्हारे पास एक बच्चे की आंख होगी, बच्चे की इंद्रियां होंगी—युवा, जीवन से भरपूर—तो सारा जीवन तुम्हारे भीतर हिलोरें लेने लगेगा।

याद रहे कि यह तुम्हारी ही तरंग है जिसे रूपांतरित करने की आवश्यकता है। यह जगत तो पहले ही, सदा ही आनंद से नाच रहा है, केवल तुम्हीं इससे जुड़े हुए नहीं हो, लयबद्ध नहीं हो। जगत के साथ कोई भी समस्या नहीं है, समस्या तो तुम्हारे साथ है। तुम्हारा इसके साथ तालमेल नहीं है। जगत तो नाच रहा है, हर क्षण आनंद मना रहा है। यह तो हमेशा ही महोत्सव मना रहा है। और यह महोत्सव शाश्वतता से शाश्वतता की ओर जा रहा है, केवल तुम्हीं इससे लयबद्ध नहीं हो। तुम इससे अलग टूट गए हो, और तुम बहुत गंभीर हो गए हो, बहुत जानकार, बहुत प्रौढ़ हो गए हो। तुम बंद हो गए हो। इस कारागृह को फेंको और पुन: जीवन की धारा में सम्मिलित हो जाओ।

जब तूफान आयें और वृक्ष नाचे तो तुम भी नाचो। और जब रात्रि आए और सभी कुछ अंधकारपूर्ण हो जाए तो तुम भी अंधकारपूर्ण हो जाओ। और सबेरे जब सूरज निकले तो तुम्हारे भीतर भी सूरज को निकलने दो। बच्चों की भांति हो जाओ और आनंद मनाओ, अतीत की मत सोचो। कोई बच्चा कभी अतीत की नहीं सोचता। वस्तुत: उसके पास सोचने के लिए कोई अतीत नहीं होता। एक बच्चा भविष्य की भी चिता नहीं करता। उसके पास समय की कोई चेतना नहीं होती ' वह सदा पूरी तरह चिंतामुक्त जीता है, वह क्षण में जीता है, वह अतीत के साये में नहीं जीता। यदि वह क्रोध में है तो वह क्रोध में है, और वह अपने क्रोध में अपनी मां से कह देता है, ”मैं तुमसे घृणा करता हूं।” और यह कोई शब्द मात्र नहीं है, यह एक वास्तविकता है। वास्तव में, वह उस क्षण समग्ररूपेण घृणा ही है।

अगले क्षण वह उससे बाहर आ जायेगा और वह हंसने लगेगा और वह अपनी मां को एक चुंबन दे देगा और कहेगा, ”मैं तुम्हें प्रेम करता हूं।” इसमें कोई विरोध नहीं है। ये दो भिन्न क्षण हैं। वह समग्र घृणा था और अब वह समग्र प्रेम है। वह एक सरिता की भांति है जो कि बहती रहती है—टेढ़ी—मेढ़ी। लेकिन जहां भी वह है, जहां भी सरिता है, वहां समग्र है—प्रवाहमान है।

इन आठ दिनों के लिए बच्चों की भांति हो जाओ—समग्र। यदि घृणा करो, तो घृणा ही करो। यदि प्रेम करो, तो प्रेम ही करो। यदि तुम क्रोधित हो तो क्रोधित ही रहो। यदि तुम आनंद में हो, तो आनंद में ही रहो और नाचो। अतीत से कुछ भी मत ढोओ। क्षण के साथ सच्चे रहो, समय से बाहर निकल जाओ। समय के बाहर आ जाओ। इसीलिए मैं कहता हूं कि गंभीर मत रहो, क्योंकि जितने गंभीर तुम रहोगे, उतने ही तुम समय के प्रति सजग होओगे। एक बच्चा शाश्वत में जीता है, उसके लिए कोई समय नहीं होता। उसे उसका पता भी नहीं होता। ये आठ दिन तुम्हारे लिए वास्तव में ही ध्यान के हो जाएंगे यदि तुम समय के बाहर आ जाओ। क्षण को जीओ और उसके प्रति सच्चे रहो।

अपने ज्ञान को अलग रख दो, अपनी गंभीरता को छोड़ो और तीसरी बात, मन और शरीर के विभाजन को भी अलग कर दो। विभाजित होकर तुम परमात्मा को नहीं मिल सकते जो कि एक है। टुकड़े—टुकड़े होकर

तुम अद्वैत सत्य के निकट नहीं आ सकते। यदि तुम दो हो, तो सत्य भी दो होगा। तुम्हें एक होना है, तभी केवल वास्तविकता एक होने लगती है। अंततः तुम ही निश्चित करते हो कि

वास्तविकता क्या है। यदि तुम विक्षिप्त हो तो सारा अस्तित्व विक्षिप्त है। यदि तुम मौन हो तो सारा अस्तित्व मौन है। यदि तुम प्रेम से भरे हो तो तुम्हें लगेगा कि सारा अस्तित्व ही प्रेमपूर्ण है।

यह तुम ही हो जो कि तय करते हो कि यह सारा अस्तित्व जो कि चारों ओर फैला है, कैसा है। और तुम विभाजित हो। तुम सोचते हो कि तुम्हारा मन और तुम्हारा शरीर दो चीजें हैं—दो ही नहीं, बल्कि विपरीत, विरोध में हैं, दुश्मन हैं। नहीं, वे ऐसे नहीं हैं। वे एक ही लय के दो छोर हैं, वे एक ही अस्तित्व के दो ध्रुव हैं। बाहर का हिस्सा शरीर है, भीतर का हिस्सा है आत्मा। और इन बाहर और भीतर के मध्य में तुम हो। तुम न तो बाहर के हो और न भीतर के हो। बाहर भी तुम्हारा ही हिस्सा है और भीतर भी तुम्हारा ही हिस्सा है। तुम दोनों के बीच में हो।

एक अखंडता हो जाओ। कम से कम इन आठ दिनों के लिए अपने को विभाजित मत करो, एक हो जाओ। यदि तुम एक हो सके तो एक बड़ी भारी ऊर्जा का प्रादुर्भाव होगा। और वही ऊर्जा तुम्हें ध्यान में ले जायेगी। दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

चर्च में जाओ, वहां लोग बात ही बात करते चले जाते हैं, वे उपदेश दिये चले जाते हैं। किसी धार्मिक सम्मेलन में चले जाओ—केवल शब्द, शब्द और शब्द—जैसे परमात्मा कोई बौद्धिक प्रश्न हो जिसे कि मस्तिष्क से हल करना हो। नहीं, इससे कुछ भी न होगा। और अकेला मानसिक ऊहापोह मदद नहीं कर सकेगा; शरीर को भी बीच में लाना होगा।

इसीलिए, मेरी ध्यान—विधियों में मैं तुम्हें विभाजित नहीं रहने देता। तुम एक हो। यदि तुम्हारा मन क्रोध से भरा है तो अपने शरीर को क्रोध से भर जाने दो। यदि तुम्हारा मन प्रफुल्लित है तो अपने शरीर को नाचने दो। विभाजन पैदा मत करो। अपने को शरीर तक उतर आने दो, और अपने शरीर को अपने अंतस के आखिरी छोर तक चले जाने दो। एक बहाव हो जाओ। तुम अभी जमे हुए हो।

मैं तुम्हें पिघलाना चाहूंगा और फिर से एक बहाव निर्मित करना चाहूंगा। इसीलिए मैं सक्रिय ध्यान पर इतना जोर देता हूं। सक्रिय से मेरा मतलब है कि शरीर भी उसमें संलग्न हो जाए। यदि तुम बुद्ध के आसन में बैठ जाओ तो तुम सोचते रहोगे और सोचते ही चले जाओगे, तुम्हारा शरीर उसमें संलग्न नहीं होगे। और शरीर ही संसार है। शरीर के द्वारा ही तुम इस अस्तित्व के साथ संबंधित होते हो। शरीर के हारा ही तुम अस्तित्व में हो। तुम्हारा ध्यान किसी भांति गहरे में शरीर से जुड़ा होना चाहिए, अन्यथा वह। सर्फ एक सपना हो जाएगा जो कि मन में कहीं तैरता रहेगा, जैसे कि बादल होते हैं जिनकी जड़ें जमीन में। ही होतीं। मैं तुम्हें पृथ्वी पर पुन: वापस लौटा लाना चाहता हूं।

इन आठ दिनों के लिए किसी प्रकार का विभाजन पैदा मत करो। शरीर और आत्मा दोनों एक साथ हो जाओ। यह भाव, सिर्फ यह भाव कि तुम एक हो, इससे तुम्हारी बहुत—सी पीड़ाएं खो जायेंगी, तुम्हारे बहुत से तनाव जो कि तुमने बहुत—से कृत्रिम विभाजनों से निर्मित कर लिए हैं विलीन हो जायेंगे। सारा समाज, आधुनिक समाज खंड—खंड हो गया है इसी कारण, विखंडित हो गया है, इस विभाजन के कारण तुम अपने ही खिलाफ खंडों में बंट गये हो और स्वयं से लड़ रहे हो। यह मूर्खतापूर्ण है, लेकिन हर यही कर रहा है।

इस शिविर में, अपने शरीर के साथ एक हो जाओ, एक अद्वैत प्रवाह हो जाओ। शरीर में पूरी तरह जींवत हो जाओ और ध्यान में शरीर का जितना संभव हो सके उतना उपयोग करो। केवल तभी तुम्हें ध्यान की असली गहराई प्राप्त होगी। इसलिए विभाजन पैदा मत करो। ये तीन बातें तुम्हें खयाल में रखनी हैं।

अभी, थोड़ा—सी बातें और, और फिर मैं सूत्र को लूंगा। इन आठ दिनों के लिए थोड़ी——सी बातें और। एक, ज्यादा से ज्यादा जोर श्वास को बाहर निकालने पर हो। वस्तुत': श्वास भीतर लो ही मत; केवल बाहर की ओर फेंको। इससे घबड़ाने की जरूरत नहीं है जब. मै कहता हूँ कि श्वास भीतर मत लो। मेरा मतलब है कि शरीर को भीतर श्वास लेने दो, तुम सिर्फ बाहर फेंको, और शरीर को भीतर लेने दो, तुम भीतर मत लो। जब भी तुम्हें याद आ जाए तो शो गहराई से श्वास बहर की ओर रसको और शिथिल हो जाओ, शरीर को अपने आप श्वास भीतर लेने दो।

इससे तुम्हें एक गहरा विश्राम उपलब्ध होगा—क्योंकि श्वास को बाहर —करना मृत्यु है, और भीतर लेना जीवन है। पहली बात जो कि बच्चे को करनी पड़ती है वह है श्वास भीतर लेना और आखिरी बात जो कि एक बूढ़ा आदमी करता है वह है श्वास बाहर फेंकना। श्वास के बाहर जाने से मृत्यु का प्रारंभ—होता है, और भीतर आने से जीवन का। और स्मरण रहे कि मृत्यु पूर्ण विश्राम है। जीवन तनाव है, मृत्यु विश्राम है।

ध्यान मृत्यु के समान ज्यादा है बजाय जीवन के., परंतु मृत्यु जीवन के विरोध में नहीं है। मृत्यु ही सारे जीवन का स्त्रोत है। जीवन मृत्यु से ही निकलता है और पुन: मृत्यु में प्रवेश कर जाता है। मृत्यु सागर की भांति है, जीवन सरिता की भांति, वह आती है और सागर मैं गिर जाती है। और फिर बादल उठते हैं, और फिर बर्षा होती है, और फिर सरिता बनती है और वह फिर सागर की ओर चल देती है।

मृत्यु है सागर को भांति, जोवन है सरिता की, भांति। मृत्यु है पूर्ण विश्राम। इसलिए हम अनजाने ही, श्वास को बाहर छोड़ने से डरते हैं। हम कोल श्वास को भीतर लेते हैं लेकिन हम कभी बाहर नहीं छोडते। केवल हमारा शरीर ही उसे बा हर फेंकता है एक आवश्यकता की भांति। इसे पूरी तरह बदल डालो। इन आठ दिनों के लिए श्वास को बाहर फेंको और शरीर को भीतर लेने दो। इससे तुम्हें क्श्रिाम की उपलब्धि होगी—तुम्हारा शरीर, तुम्हारा मन, तुम्हारा सारा नाड़ी—तंत्र विश्राम को प्राप्त होगा। और जब मैं कहता हूं किए गहराई सै श्वास बाहर फेंका तो मेरा मतलब यह नहीं है कि तुम किसी प्रकार का तनाव पैदा ब?र लो। किसी प्रकार का तनाव मत पैदा करो। सिर्फ गहरी श्वास छोड़ो और उसका आनंद लो, जैसे कि तुम उसमें मर रहे हो। जीवन मृत्यु के सागर में उतर रहा है। शिथिल हो जाओ और समर्पित हो जाओ और गहरी श्वास छोड़ा और इसका आनंद लो।

और तब ठहर जाऔ। मैं यह नहीं कहता कि उसे रोक दो। नहीं, सिर्फ ठहर जाओ। श्वास भीतर लेने के लिए कुछ भी न करो—न तो पक्ष में और न विपक्ष में। शरीर अपने आप भीतर श्वास लेगा। और यदि तुमने गहरी, श्वास छोड़ी है तो गहरी श्वास भीतर आएगी। लेकिन तुम्हारा जोर बाहर छोड़ने पर हो—यह पहली बात है।

दूसरे, हम' यहां में तीन बार मिलेंगे, लेकिन उसके बीच, में अंतराल होगा। तुम उस बीच में क्या करोगे? एक बात याद रखनी है। वह नहीं करना है जो कि तुम सदा से करते रहे हो। वही बात उसी ढंग से मत करो, उसे चालू नहीं रखना है। उसे तरफ रख देना है। नए हो जाओ, मौलिक हो जाओ। वह जो कि —तुम करते रहे हो, नहीं करना है। उसे बदल दो, क्योंकि वह एक आदत का हिस्सा हों गया है। यदि तुम वही ढांचा चलाते रहे तो नई बात पैदा नहीं हो सकती। उसे अलग रख दो। उसे फेंक दो।

इन आठ दिनों के लिए तुम अपनी पुरानी आदतों के ढाँचो में मत चलो। उन बातों को मत करो जिनको तुम सदा—सदा से करते रहते हो। जैसे ही तुम्हें याद आ जाए, रुक जाओ। तुम जानते हो कि यह तुमने कितनी ही बार कहा है। तुम अपनी पत्नी को वही—वही बात सालों से कहते आ रहे हो, और 'तुम्हें यह भी पता है कि वह क्या उत्तर देगी। हर बात एक आदत बन गई है, एक यांत्रिक पुनरुक्ति।

उसे मत कहो। कुछ नई बात कहो। और यदि तुम कोई नई बात नहीं कह सकते, यदि नई बात खोज पाना बहुत कठिन हो तो मौन ही रहो; वह भी नया होगा। या—यह मूर्खतापूर्ण लगेगा, लेकिन मैं चाहता हूं कि तुम आठ दिनों के लिए मूर्ख ही हो जाओ——शब्दों का उपयोग मत करो, हाव— भाव से काम लो। यदि तुम अपने मित्र सै कुछ कहना चाहते हो, अथवा कमरे में अपने साथी से कुछ कहना चाहते हो, अथवा अपनी पत्नी को या किसी और को, तो हाव— भाव का ही उपयोग करो, भाषा का उपयोग मत करो। गुंगे और बहरे हो जाओ इशारों को उपयोग करो, जो भी कहना हो हाव—भाव के द्वारा ही कहो। अथवा यदि तुम हाथ—भाव का उपयोग कर ही न सका, तो फिर ध्वनियों का उपयोग करो लेकिन शब्दों ला उपयोग मत करो। तुम्हें एक गहरे आनंदोल्लास की घटना घटेगी एक—गहरी प्रभु की अनुकंपा का अनूभव होगा।

ध्वनि का अथवा हाव— भाव का उपयोग करो। शब्दों का उपयोग मत करो, क्योंकि शब्द ही मन है। चिडियों जैसी अथवा पशुओं जैसी आवाज का उपयोग करो, या फिर हाव— भाव से। तुम्हारे भीतर एक नयी अनूभूति होगी, तुम्हें अपने भीतर एक—नए स्वरूप की प्रतीति होगी, क्योंकि पुराने ढांचे का व्यक्तित्व काम नहीं कर रहा होगा। तुम यह अकेले भी कर सकते हो और यह अच्छा होगा। किसी भी समय दिन में अकेले बैठ जाओ, किसी वृक्ष के पास चले जाओ, उसके पास अकेले जाकर बैठ जाओ, और आवाजें करना शुरू कर दो। शब्दों का उपयोग मत करो। जैसे कि छोटे बच्चे करते हैं, वे अनाप—शनाप आवाजें करते हैं—उसे बार—बार दुहराते हैं और आनंद लेते हैं। बच्चों की बात—बिना भाषागत अर्थ के। कोई भी प्रकार की ध्वनि करो और उसका आनंद लो।

मेरा अभिप्राय है कि जब तक तुम यहाँ खो तुम अपने पुराने ढांचे के शिकार मत होना। किसी से कोई मतलब भी मत रखो। तुम सदा जुड़े रहते हो। सिर्फ अपने से ही मतलब रखो। पूरी तरह स्वार्थी हो जाओ, सर्फ अपने से ही मतलब रखो। अपने स्वरूप का आनंद लो, चारों ओर के वातावरण को आनंद लो। समूंह में तथा अकेले में ध्यान करो, और पूरी तरह अपने में ही केंद्रित हो जाओ। दूसरे क्या कर रहे हैं, उसके बारे में सोचो भी मत। दूसरों को जो ठीक लगता है करने दो। दूसरों के बीच में मत आओ। यह ख्याल भी कि जो जिसको करना है करे, यह खयाल भी तुम्हें मुक्त करेगा। क्योंकि तुम व्यर्थ में ही दूसरों से बोझिल हो रहे हो। पूरी तरह स्वार्थी हो जाओ।

यह बात धार्मिक प्रतीत नहीं होती जब मैं कहता हूं कि समग्ररूपेण सवार्थी हो जाओ। मेरे लिए। एकमात्र यही बात धार्मिक है क्योंकि जब तुम वास्तव में ही स्वार्थी हो जाते हो, तभी केवल तुम दूससे के लिए कुछ कर सकते हो। जब तक कि तुम्हारे पास कुछ हो ही नहीं; तुम कुछ कर भी कैसे सकते हो? तुम कैसे सहायता कर सकते हो? तुम कैसे प्रेम कर सकते हो? कैसे तुम्हारे भीतर करूणा हो सकती है? भीतर तुम कुछ भी नहीं हो और तुम दूसरों की सेवा किये चेले जाते हो और दूसरों के बारे में सोचे चले जाते हो। वह सिर्फ अपने को भूलने का एक तरीका है। इस ध्यान—शिविर मैं वैसा कुछ मत करो। स्वयं को स्मरण रखो और दूसरी को भूल जाओ।

और आखिरी बात : ध्यान में, ध्यान की प्रक्रियाओं को अधूरी—अधूरी मत करो, उन्हें आधे मन से मत करना। उससे कोई लाभ नहीं होगा। ध्यान कोई गणित नहीं है। ऐसा मत सोचो कि अगर तुम पचास प्रतिशत करोगे तो पचास प्रतिशत फल निकलेगा। नहीं, शून्य फल आएगा। केवल सौ—प्रतिशत प्रयास से ही परिणाम हासिल होगा, उससे कम में काम नहीं चलेगा।

यह ऐसा ही है जैसे पानी को गर्म करना। सौ डिग्री पर पानी भाप बन जाता है। ऐसा मत सोचो कि पचास डिग्री पर पचास प्रतिशत पानी भाप बन जाएगा। वह बिलकुल भी भाप नहीं बनेगा। वह सिर्फ कुनकुना होगा। या तो पूरी तरह गर्म हो जाओ या फिर ठंडे ही रहो। यदि तुम ठंडे हो तो फिर छोड़ो। फिर कोई प्रयत्न

करने की आवश्यकता नहीं है। क्यों अपने को थकाते हो? यदि तुम सौ प्रतिशत गर्म हो, तभी यहां रुको और तुम वाष्पीभूत हो जाओगे। मैं उसके लिए गारंटी लेता हूं वह पूर्णरूप से निश्चित है।

यदि तुम सौ प्रतिशत श्रम करो, यदि तुम अपने को जरा भी पीछे न बचाओ, यदि तुम प्रक्रिया में पूरी तरह गल जाओ और अपने को भूल जाओ, स्वयं को पूरी तरह प्रक्रिया में छोड़ दो, तो तुम जिस बात के लिए कई जीवनों से जिज्ञासा कर रहे हो वह एक क्षण में घट सकती है; केवल समग्ररूपेण छोड़ने की आवश्यकता है।

हम तीन बार समूह में ध्यान करेंगे। वह भी किसी विशेष कारण से, क्योंकि तुम व्यक्ति की भांति सिर्फ ऊपर—ऊपर से हो। भीतर गहरे में तो व्यक्ति नहीं हो। हम सब एक—दूसरे से जुडे हैं; हमारी सबकी जड़ें एक ही चेतना में हैं। इसलिए समूह में ध्यान एक बड़ा भारी अनुभव हो सकता है। वहां तुम अकेले नहीं हो। यदि तुम अपने को छोड़ सको, यदि तुम समर्पण कर सको, यदि तुम पूरी तरह पिघल सको, तो समूह की आत्मा तुम्हें घेर लेती है, तब तुम वहां पर नहीं होते। तब समूह नाचता है और तुम समूह के हिस्से की भांति नाचते हो। और तब समूह आनंदित होता है और तुम उसके एक हिस्से की भांति आनंदित होते हो; तब समूह ही गति करता है, हिलता है, नाचता है और तुम उसके एक हिस्से हो। अपने को पूरी तरह छोड़ देना है, और तब समूह का तुम्हें पूरी तरह सहयोग मिलेगा। वह एक तेज, प्रबल धारा हो जाता है और तुम उसमें बह जाते हो।

ये तीनों समूहगत ध्यान व्यक्तिगत ध्यान नहीं हैं। तुम एक व्यक्ति की भांति इन्हें शुरू करते हो, लेकिन जल्दी ही तुम वहां नहीं होते और समूह की आत्मा वहा काम करने लग जाती है। और जब समूह की आत्मा काम करने लग जाए तो तुम परमात्मा में प्रवेश कर गए। इसलिए व्यक्तिगत होकर मत रहो; वह बात गलत है, अहंकारपूर्ण है। पिघलो और तुम्हें घटनाएं घटने लगेंगी।

बहुत—सी बातें संभव हैं, और मुझे आशा है कि वे तुम्हें घटेंगी। यदि तुम वास्तव में ही तैयार हो, यदि तुम उनका सपना देखते रहे हो, उनकी आशा करते रहे हो। और यदि तुम ऐसे ही अकस्मात रूप से नहीं आ गए हो, बल्कि एक खोजी की तरह आए हो : कुछ दांव पर लगाने, चुनौती को स्वीकार करने और जो मानव चेतना के लिए बड़े से बड़ा दुस्साहस का कार्य हो सकता है उस अभियान पर निकलने, तो तुमको बहुत कुछ घट सकता है।

अब मैं सूत्र को लेता हूं :

ओम, ब्रह्म हम दोनों की रक्षा करे वह हम दोनों का पोषण करे। हम दोनों को शक्ति मिले। इस स्वाध्याय से हम दोनों प्रकाशित हों हम दोनों एक— दूसरे से घृणा न करें। ओम, शांति शांति शांति।

यह वचन बहुत सुंदर है। गुरु और शिष्य दोनों ही परमात्मा से प्रार्थना कर रहे हैं—शिष्य और गुरु दोनों ही प्रार्थना कर रहे हैं।

ओम, ब्रह्म हम दोनों की रक्षा करे।

क्योंकि एक गुरु की भांति अथवा एक शिष्य की भांति तुम दोनों तरह से ही वास्तविक नहीं हो। गुरु भी विभाजन है, शिष्य भी विभाजन है। गुरु भी एक टुकड़ा है, और शिष्य भी एक टुकड़ा ही है। दोनों प्रार्थना कर रहे हैं कि वह परमात्मा, वह जो आत्यंतिक है, उनकी देखभाल करे, उनकी डोर अपने हाथ में ले ले। गुरु, गुरु की भांति अपने को खो देगा और शिष्य, शिष्य की भांति अपने को खो देगा। वे दोनों एक हो जायेंगे; वे दोनों एक गहरी वास्तविकता में खो जायेंगे।

ओम, ब्रह्म हम दोनों की रक्षा करे।

अब उपनिषद को भूलें। हम यहां हैं, और यही तुम्हारी भी प्रार्थना हो : ”ब्रह्म हम दोनों की रक्षा करे। ”मै यहां व्यक्ति की भांति काम नहीं करूंगा, तुम भी यहां व्यक्ति की भांति काम मत करना; वरन हम दोनों एक हो जायें।

मैं तैयार हूं। यदि तुम भी मेरे साथ निकलने को तैयार हो तो कोई भी कठिनाई नहीं है। और तब ऐसा भी नहीं है कि मैं तुम्हें कहीं ले जा रहा हूं और न ही तुम मुझे कहीं ले जा रहे हो बल्कि हम दोनों किसी की ओर बढ़ रहे हैं—दोनों एक साथ। मैं कोई ले जाने वाला नहीं हूं और न ही तुम जाने वाले हो। मैं कोई गुरु नहीं हूं और तुम कोई शिष्य नहीं हो। हम दोनों ही एक गहरी वास्तविकता की ओर साथ—साथ बढ़ रहे हैं। कोई भी शिक्षक नहीं है और कोई भी सीखने वाला नहीं है, यही भाव है इस प्रार्थना का :

ब्रह्म हम दोनों की रक्षा करे। वह हम दोनों का पोषण करे हम दोनों को शक्ति मिले। इस स्वाध्याय से हम दोनों प्रकाशित हों हम दोनों एक— दूसरे से घृणा न करें। ओम, शांति शांति शांति।

बहुत कुछ संभावना है कि शिष्य गुरु को घृणा करने लगे, क्योंकि यदि तुम प्रेम करते हो तो घृणा की संभावना सदा रहती है। यदि तुम गुरु को प्रेम करते हो तो प्रेम का ही दूसरा हिस्सा है घृणा। और जब तुम प्रेम करते हो तो घृणा किसी भी क्षण पैदा सकती है। घृणा उसका हिस्सा है। वस्तुत: घृणा और प्रेम दो चीजें नहीं हैं बल्कि दो पहलू हैं। घृणा प्रेम के विरुद्ध नहीं है, यह उसका ही दूसरा हिस्सा—सिक्के का दूसरा पहलू है।

इसलिए जब शिष्य गुरु को प्रेम करता है, तो हर क्षण यह संभावना बनी रहती है कि वह घृणा करे। और यह संभावना और भी अधिक बढ़ जाती है जब गुरु शिष्य को रूपांतरित करने का प्रयास करता है—क्योंकि तब वह खतरनाक मालूम पड़ता है, तब वह विनाशक दिखाई पड़ता है।

यदि मैं कहता हूं किं अपने ज्ञान को फेंको, तो तुम्हें ऐसा लगेगा कि मैं तुम्हारा शत्रु हूं क्योंकि तुम्हारा ज्ञान ही तो तुम्हारी संपदा है। यदि मैं कहता हूं कि गंभीर मत रहो, बच्चों की भांति रहो, तो तुम्हारे अहंकार को चोट पहुंच सकती है। तुम्हें लग सकता है कि यह आदमी मुझे किसी ऐसी बात की ओर ले जा रहा है जो कि मूढ़तापूर्ण है, बेवकूफी की है। तुम मुझसे किसी भी क्षण घृणा कर सकते हो। यदि मैं वास्तव में तुम्हें रूपातरित करने का तय कर लूं तुम्हें बदलने का प्रयास करूं, तो ज्यादा संभावना हो जाती है कि तुम मुझे किसी भी क्षण घृणा करने लगो।

इसीलिए गुरु कहता है

यह स्वाध्याय हम दोनों को प्रकाशित करे। हम दोनों एक—दूसरे से घृणा न करें।

और यह वचन वस्तुत: ही कुछ विशिष्ट है—असाधारण है

यह स्वाध्याय हम दोनों को प्रकाशित करे।

गुरु तो पहले से ही प्रकाशित है, वरना वह गुरु नहीं हो सकता। शिष्य प्रकाशित नहीं है, वरना शिष्य होने की भी कोई जरूरत नहीं है। लेकिन फिर भी गुरु कहता है, ”यह स्वाध्याय हम दोनों को प्रकाशित करे—हम दोनों को प्रकाशवान करे।"

यह बात बड़ी सूक्ष्म है। गुरु तो जागा हुआ है, लेकिन यह जागरण सिर्फ उसका अपना अनुभव है, न कि शिष्य का। शिष्य तो सिर्फ विश्वास करता है कि गुरु जागा हुआ है, वह उसे जान नहीं सकता। और जब गुरु और शिष्य एक जोड़े की भांति, भिन्न और अलग—अलग नहीं, बल्कि दोनों एक हो जाते हैं तो शिष्य को जब जागरण घटित होता है तो उसको प्रतीति होती है कि दोनों को जागरण हुआ है, दोनों बुद्ध हो गये हैं। यह एक अर्थ है।

इसका एक अर्थ और भी है। तुम अकेले भी प्रकाशित हो बकरे हो, वह एक प्रकार का अनुभव है। लेकिन जब तुम किसी और 'के साथ चलते हो और जब दौनों को प्रकाश उपलब्ध होता है, तो फिर कुछ और ही बात होती है; वह वही नहीं होता।

बुद्ध को ज्ञान हुआ, बोधिवृक्ष के नीचे बुद्धत्व उपलब्ध हुआ। यह एक अकेले का प्रकाश को प्राप्त करना था। वे एक अकेले व्यक्ति की भांति जागरण को उपलब्ध हुए। लेकिन उनके चारों ओर पूरा संसार, सहस्त्रों आत्माएं नींद में डूबी चल रही थीं। बुद्ध इन नींद में डूबे लोगों के साथ चले और उनको जगाने की कोशिश की। जब कभी कोई व्यक्ति जागा तो बुद्ध का प्रकाश भी और बढ़ गया। स्मरण रहे, जैसे कि एक दीया जल रहा था अंधेरे में और एक और दीया —जल उठा। और तीसरा आदमी जागरण को उपलब्ध हो गया, तो अब तीन दीये जल उठे, और फिर चौथा आदमी जाग गया. और इस तरह प्रकाश बढ़ता गया। प्रकाश बढ़ता ही गया और बुद्ध अब अकेले व्यक्ति न रह गये।

इसलिए जब भी और जहां कहीं भी बुद्धत्व फलित होता है, तो वह उनका भी बुद्धत्व है। यह 'बड़ा गहरा तथा सूक्ष्म है, लेकिन याद रखने योग्य बात है, कि बुद्ध का बुद्धत्व भी बढ़ता चला जाता है। जब भी कभी कोई शिष्य जागता है, बुद्ध का प्रकाश भी बढ़ता है।

बुद्ध तो पहले से जागे हुए हैं, उनके लिए कोई समस्या नहीं है। यह ऐसे ही है जैसे कि मैं इस कमरे में एक दीया कला दूं और कमरे में प्रकाश हो जाए; तब कोई अंधेरा नहीं होगा। फिर उसके बाद मैं एक दूसरा दीया ले आऊं और प्रकाश बड़ जाए। फिर मैं एक तीसरा दीया ले आऊं और प्रकाश और ज्यादा बढ़ जाए। सारा जगत और ज्यादा प्रकाश से भरता चला जाता है जब कभी भी एक गुरु इस योग्य होता है कि वह एक शिष्य को बुद्धत्व को प्राप्त कराता है।

यह ऋषि एक अदभुत बात कहता है। किसी ने भी इसके पहले ऐसी बात नहीं कही है —

यह स्वाध्याय हम दोनों को प्रकाशित करे.,

ओम, मेरे अंग मजबूत हों। मेरी वाणी प्राण दृष्टि श्रवण और सारी ज्ञानेंद्रियां भी शक्तिशाली हों।

यही बात तो मैं तुमसे कह रहा हूं। अपने शरीर को पुनजीवित होने दो। उसे अलग मत करो, उसके साथ जुड़े रहो, उसमें गहरे चले जाओ। जब तुम उसके भीतर चले जाते हो तो हर अंग मजबूत, जीवंत तथा नया हो जाता है।

मेरी वाणी प्राण दृष्टि श्रवण और सारी ज्ञानेंद्रियाँ भी शक्तिशाली हों। सारा अस्तित्व ही उपनिषदों का ब्रह्म है; मैं उस ब्रह्म को कभी मना नहीं करूं।

यह बात एक सर्वाधिक क्रांतिकारी वचन है जो कि कभी कहा गया है।

मैं उस ब्रह्म को कभी मना नहीं करूं वह ब्रह्म भी मुझे मना नहीं करे कभी कोई मना नहीं हो। कम से कम मेरी ओर से कभी कोई मना नहीं हो।

मना मत करो, क्योंकि प्रत्येक चीज वह एक ही है, हर चीज वही ब्रह्म है। इसलिएg जब भी तुम मना करते हो तो तुम 'उसी' को मना करते हो। जब भी तुम निंदा करते हों—चाहे किसी की भी निंदा करो, चाहे— कुछ भी निंदा करो—तुम उसी को निंदित करते हो। जब भी तुम किसी चोर की निंदा करते हो, किसी खूनी की निंदा करते हो तो वही निंदित हो जाता है क्योंकि केवल वही तो वहां भी है। इसलिए यह सर्वाधिक क्रांतिकारी वचन है

सारा अस्तित्व ही ब्रह्म है। मैं कभी इस ब्रह्म को मना नहीं करूं—किसी भी प्रकार से जाने या अनजाने, प्रत्यक्ष या परोक्ष— मैं उस ब्रह्म को कभी मना नहीं करूं! कभी कोई मना नहीं हो

निषेधात्मक मन, मना करने वाला मन ही अधार्मिक मन होता है। मन जो कि 'ना' ही कहता चला जाता हो, जिसकी 'हां' कहने की सामर्थ्य तथा साहस ही न हो, ऐसा मन अधार्मिक मन होता है। धार्मिक मन ही कहने वाला मन होता है। यहाँ तक कि कुछ चीजें गलत भी नजर आ रही हैं, तुम्हारा सारा मन उसे निंदित कर रहा है, फिर भी एक धार्मिक मन तो —कहेगा, "मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, परंतु कौन जाने? यह तो सिर्फ मेरा निर्णय है कि यह गलत है, परंतु हो सकता है कि ऐसा न हो—क्योंकि मेरे निर्णय की क्या कीमत है?"

कुछ लोग एक स्त्री को जीसस के पास ले आए और उन्होंने कहा, "इस औरत ने व्यभिचार किया है, इसलिए इसे मार डाला जाना चाहिए। और ऐसा नियम भी रहा है कि इसे पत्थरों से मार डाला जहर। इसे पत्थर मार—मार कर खतम कर दिया जाए।"

जीसस ने कहा, "नियम बिलकुल सही है, लेकिन वे ही लोग इसे पत्थर मारने के अधिकारी हैं, जिन्होंने कभी कोई व्यभिचार नहीं किया हो, मन में भी ऐसी बात नहीं सोची हो। वे ही लोग आगे आ जाएं जिन्होंने कभी कोई व्यभिचार नहीं किया है, वास्तव में तथा कल्पना में भी नहीं किया है।"

भीड़ तो पत्थर लेकर तैयार खड़ी थी उसे मार डालने के लिए। लेकिन अब धीरे—धीरे भीड़ छंटने लगी, लोग पीछे सरकने लगे, क्योंकि ऐसा तो वहां एक भी नहीं था जिसने —मन में भी कभी व्यभिचार न किया था।

अंत' में जीसस और वह स्त्री ही बच गये। भीड़ तितर——बितर हो गई थी। उस स्त्री ने कहा, "मैंने पाप किया है। मैं दोषी हूं मुझे आप सजा दें। "जीसस ने कहा, "मैं कौन होता हूं तुम्हें सजा देने वाला? मैं कौन हूं? जो कि तुम्हें सजा दूं अथवा तुम्हारी निंदा करूं? तू जाने और तेरा परमात्मा जाने।"

यह है एक धार्मिक आदमी का रुख——कोई निंदा नहीं! कौन होते हो तुम निंदा करने वाले? स्वघोषित निर्णायक बनकर तुम व्यर्थ ही अपने लिए और दूसरों के लिए भी समस्या पैदा कर देते हो।

और कभी निषेध मत करो। निषेध गहरे चला जाता है। तुम अपने शरीर को भी मना करते हो तुम अपनी ज्ञानेंद्रियों को भी मना कर देते हो, तुम हर बात का निषेध कर देते हो। तुम एक बड़े भारी निषेधकर्त्ता बन गये हो। और जब तुम घुट जाते हो तो चिल्लाते हो और कहते हो, "क्यों है यह पीड़ा? क्यों है यह दुख? " यह दुख तुम्हीं ने निर्मित किया है। एक आदमी जो कि हर बात को मना करता चला जाता है, वह अधिकाधिक सिकुड़ जाता है, भीतर से कठोर हो जाता है। वह कुछ भी तो नहीं कर सकता, क्योंकि सभी कुछ गलत है। वह यह नहीं खा सकता, वह इस तरीके से प्रेम नहीं कर सकता, वह इस तरीके से चल नहीं सकता, वह यह नहीं कर सकता, वह नही कर सकता। केवल 'नहीं' कर सकना, 'नहीं' कर सकना ही उसके चारों तरफ हो जाता है—निषेध ही निषेध। तब जीवन एक घुटन बन जाता है। तब तुम्हें दुख ही दुख महसूस होता है।

यह एक सर्वाधिक क्रांतिकारी वचन है जो कि कभी भी बोला गया है

कभी कोई मना नहीं हो। कम से कम मेरी ओर से कभी कोई मना नहीं हो

यह बात और भी गहरे चले जाती है। इसकी सुंदरता को देखो। यह भी संभावना है कि यदि मैं तुमसे कहूं कि कभी कोई मना मत करो, और कोई आदमी मना करता हो तो तुम उसको मना करने में लग जाओगे : "तुम मना क्यों कर रहे हो? "यदि मैं कहूं कि निंदा मत करो, और कोई निंदा करता हो तो तुम उसकी निंदा करने में लग जाओगे। मन तरकीबें निकालने में लगा रहता है, नई शक्लों में वह पुरानी बीमारियों को फिर—फिर ले आता है।

मैं एक स्त्री से बात कर रहा था जो कि बड़ी निंदा करने वाली है। वह हर एक की निंदा करती रहती है। वह जब कभी मेरे पास आती है तो वह हर किसी की बुराई निकालती रहती है। तो मैंने उससे कहा, "यह तो

ठीक नहीं है। मैं यह नहीं कहता हूं जो कुछ भी तुम कह रही हो, वह सही नहीं है; सही होगा, असली बात वह नहीं है। तुम्हारा निंदा करना गलत बात है।"

तो उसने कहा, "यदि आप ऐसा कहते हैं तो अब से मैं किसी की निंदा नहीं करूंगी। "

दूसरे दिन वह फिर मेरे पास आई और उसने कहा, "आपका वह जो शिष्य है वह निंदा कर रहा है। वह आदमी अच्छा नहीं है। "अब परिभाषा बदल गई कि क्या ठीक है और क्या गलत है, लेकिन निंदा करना जारी रहा। अब वह ठीक नहीं है।

ऋषि कहता है?

कभी कोई मना नहीं हो कम से कम मेरी ओर से कोई मना नहीं हो। उपनिषदों में जो भी सदगुण हैं वे मुझमें निवास करें; मैं जो कि आत्मा के प्रति भक्तिपूर्ण हूं वे सदगुण मुझमें निवास करें ओम, शांति शांति शांति।

गुरु वास्तव में, सब सदगुणों का घर होता है। जो भी उपनिषदों का उद्देश्य है, जो भी सदगुण हैं, वे सब गुरु के हृदय के मुकाबले में कुछ भी नहीं हैं। बड़े से बड़ा गुण है विनम्रता। अभी भी वह यह प्रार्थना कर रहा है कि जो उपनिषदों ने गुण गाये हैं वे मुझमें विराजमान हों। वे मुझे कभी भी न छोड़े, वे मेरे हृदय में निवास करें।

एक प्रामाणिक विनम्रता प्रार्थना करती ही जाती है। वही असली बात है। वह कभी भी अप्रार्थनापूर्ण नहीं होती। यहां तक कि जब सभी कुछ पा लिया गया हो तब भी प्रार्थना जारी है—क्योंकि प्रार्थना विनम्रता है, क्योंकि प्रार्थना सादगी है, क्योंकि प्रार्थना निर्दोषता है। आत्यंतिक भी उपलब्ध कर लिया गया हो, तब भी प्रार्थना चलती रहती है।

मैंने एक सूफी फकीर बायजीद के बाबत सुना है। वह ज्ञान को उपलब्ध हो गया लेकिन फिर भी वह पहले की ही भांति एक दिन प्रार्थना कर रहा था। अत: उसका एक शिष्य कुछ बेचैन हो गया और उसने कहा, "गुरु जी, अब आपको प्रार्थना करने की जरूरत नहीं है। आप तो बुद्धत्व को प्राप्त कर चुके हैं आप प्रार्थना क्यों कर रहे हैं? "

कहते हैं बायजीद ने कहा, "पहले मैं बुद्धत्व के लिए प्रार्थना कर रहा था। अब भी मैं बुद्धत्व के लिए ही प्रार्थना कर रहा हूं।"

शिष्य तो कुछ न समझ सका और बोला, "आपका मतलब क्या है?"

गुरु ने उत्तर दिया, "पहले मैं इसलिए प्रार्थना करता था ताकि बुद्धत्व घटित हो जाए। अब वह छ हो गया है। अब मैं कृतज्ञता में प्रार्थना करता हूं धन्यवाद में प्रार्थना करता हूं कि वह घट गया।'' किंतु प्रार्थना चलती है—वही प्रार्थना।

प्रार्थना एक भाव है, एक रुख है। गुरु तो सदा सदगुणों की खान है। वस्तुत: उपनिषद रचे ही गुरु के द्वारा गये हैं, न कि किसी और के द्वारा। कोई उपनिषद गुरु पैदा नहीं कर सकता। और एक गुरु प्रयाप्त है सारे उपनिषदों की रचना के लिए। किंतु फिर भी गुरु कहता है :

उपनिषदों में जो भी सदगुण हैं वे मुझमें निवास करें; मैं जो कि आत्मा के प्रति भक्तिपूर्ण हूं सदगुण मुझमें निवास करें ओम, शांति शांति शांति।

दूसरा प्रवचन

यौन के आधारभूत द्वैत का अतिक्रमण

प्रथम खंड

अँ केनेषितं पतति प्रेषितं मन: केन प्राण: प्रथम: प्रैति युक्ति:।

केनेषितां वाचमिमां वदंति चक्षु: श्रोत्रं क उ देवो युनीक्ति।। १।।

श्रोत्रस्य श्रोत्र मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राण:।

चक्षुषश्चक्षुरतिमुव्यधीरा: प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति। 1२।।

केनोपनिषद प्रथम अध्याय

किसकी इच्छा पर और किसके द्वारा उत्प्रेरित होकर मन अपने विषयों पर नीचे उतरता है? किसके द्वारा उत्प्रेरित होकर मुख्य प्राण संचारित होता है? किसके द्वारा उत्प्रेरित होकर मनुष्य यह वाणी बोलते हैं? कौन—सा देव आंखों तथा कानों को निर्दोषित करता है?

वह आत्मा कान का भी कान है मन का भी मन? है वाणी की भी वाणी है, प्राण का भी प्राण है, और आंख की भी आंख है। और ज्ञानीजन अपनी आत्मा को इन ज्ञानेंद्रियों से अलग कर ज्ञानेंद्रियों से ऊपर उठ जाते हैं और अमरता को उपलब्ध होते हैं।

जब तुम पैदा होते हो तब जीवन अपनी पराकाष्ठा पर नहीं होता है। वह अपने न्यूनतम पर होता है। और यदि तुम वहीं पर रूक जाते हो तो वह करीब—करीब मृत्यु के निकट ही होता—करीब, करीब जीवन की सीमा पर होता है। जन्म से सिर्फ एक अवसर मिलता है, केवल प्रवेश प्राप्त हाता है।

जीवन तो उपलब्ध करना होता है। जन्म तो उसकी सिर्फ शुरूआत है, न कि अंत। लेकिन सामान्यतया हम जन्म के बिंदू पर ही रूक जाते है। इसीलिए मृत्यु घटित होती हे। यदि तुम जन्म के बिंदु पर ही ठहर गए तो फिर तुम मरोगे। यदि तुम जन्म के पार जा सके तो ही तुम मृत्यु के भी पार जा सकोगे। इसे बड़ी गहराई से ख्याल में ले लो। मृत्यु जीवन के विरूद्ध नहीं है। मृत्यु तो जन्म के विरोध में है। जीवन तो कुछ और ही है। मृत्यु में केवल जन्म समाप्त होता है। और जन्म में केवल मृत्यु की शुरूआत होती है। जीवन तो एक बिलकुल ही अलग बात है; उसे तो तुम्हें पाना होगा,उपलब्ध करना होगा, वास्तविक बनाना होगा। बह तो तुम्हें एक बीज की भांति,एक प्रसुप्त संभावना की भांति दिया जाता है—कुछ जो कि हो सकता है। किंतु जो अभी है नहीं। तुम उसे खो भी सकते हो। इस बात की पूरी संभावना है। तुम जीवित हो क्योंकि तुम जन्मे हो,लेकिन वह जीवनमय होने का पर्यायवाची नहीं है।

जीवन तो एक प्रयास है उस संभावना को वास्तविक बनाने का, यथार्थ में बदलनें का; इसीलिए धर्म का इतना अर्थ है, अन्यथा धर्म का कुछ अर्थ नहीं। जीवन यदि जन्म के साथ शुरू होता हो और मृत्यु के साथ समाप्त होता हो तो धर्म का कोई मतलब नहीं। तब तो धर्म व्यर्थ है, बकवास है। यदि जन्म के साथ जीवन का प्रारंभ नहीं हो तो धर्म का कुछ अर्थ है। तब वह विज्ञान हो जाता है कि कैसे जन्म से जीवन को विकसित करें! और जितना जीवन में तुम जन्म से दूर चले जाते हो, उतने ही तुम मृत्यु से भी दूर चले जाते हो। क्योंकि जन्म

और मृत्यु समानांतर हैं, एक ही हैं, एक ही समान हैं, एक ही प्रक्रिया के दो छोर हैं। यदि तुम एक से दूर चले जाते हो, तो साथ ही साथ तुम दूसरे से भी दूर चले जाते हो।

धर्म जीवन को उपलब्ध करने का विज्ञान है। जीवन मृत्यु के पार है। केवल जन्म की ही मृत्यु होती है, जीवन की तो कभी कोई मृत्यु नहीं होती।

इस जीवन को पाने के लिए तुम्हें कुछ करना होगा। जन्म तो तुम्हें मिला है। तुम्हारे माता—पिता ने कुछ किया, उन्होंने एक—दूसरे को प्रेम किया, वे एक—दूसरे में पिघले। और उनकी जीवन—ऊर्जा से, उनके एक—दूसरे में पिघलने से, एक नई घटना, एक नया बीज—तुम पैदा हुए। परंतु तुमने इसके लिए कुछ भी नहीं किया; यह तो एक भेंट है। स्मरण रहे कि जन्म एक भेंट है। इसीलिए सारी संस्कृतियां माता—पिता को इतना आदर देती हैं। जन्म एक भेंट है और तुम उसका ऋण चुका नहीं सकते। कर्ज चुकता नहीं किया जा सकता। क्या कर सकते हो तुम उसे चुकाने के लिए? जीवन तुम्हें प्रदान किया गया है, किंतु तुमने उसके लिए कुछ भी—नहीं किया।

धर्म तुम्हें एक नया जन्म दे सकता है—दुबारा जन्म दे सकता है। तुम द्विज हो सकते हो। लेकिन यह जन्म किसी कीमिया के द्वारा तुम्हारे अंदर ही घटित हो सकता है। जैसे कि पहले —दो जीवन शक्तियों के मिलन से हुआ था। किंतु वह मिलन तुम्हारे बाहर हुआ था। उन्होंने एक अवसर पैदा किया ताकि तुम भीतर प्रवेश कर सको। यह एक गहरी कीमिया है। ऐसी ही कीमिया अब तुम्हारे भीतर होनी चाहिए। तुम्हारे माता—पिता मिले, दो ऊर्जाएं, स्त्रैण और पुरुष मिल रही थीं ताकि एक नई चीज को पैदा होने के लिए अवसर निर्मित हो सके। दो विरोधी शक्तियां मिल रही थीं, दो ध्रुवों का मिलन हो रहा था। और जब भी दो ध्रुव मिलते है, कुछ नया जन्मता है, एक नया समन्वय उपलब्ध होता है। ऐसा ही तुम्हारे भीतर भी घटित होना चाहिए।

तुम्हारे भीतर भी ये दोनों श्रुव मौजूद हैं—स्त्रैण और पुरुष। मुझे इसे विस्तार से समझाने दो। चूंकि तुम्हारा शरीर दो ध्रुवों से पैदा हुआ है तुम्हारी मां के कोषों से तथा तुम्हारे पिता कैं कोषों सै। उन दोनों ने तुम्हारे भीतर दोनों प्रकार —के— कोष निर्मित किये हैं—वे कोष जो तुम्हारी मा से आए और वे जो तुम्हारे पिता से आए। तुम्हारे शरीर में दोनों ध्रुव उपस्थित हैं—स्त्रैण तथा पुरुष। तुम दोनों हो। प्रत्येक व्यक्ति दोनों है। चाहे तुम स्त्री हो, चाहे तुम पुरुष हो, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। यदि तुम पुरुष हो तो तुम्हारे भीतर स्त्री मौजूद है; तुम्हारी मां वहां उपस्थित है। यदि दुम स्त्री हो, तो तुम्हारे भीतर पुरुष मौजूद हैं, तुम्हारे पिता वहां मौजूद हैं। वे फिर से तुम्हारे भीतर मिल सकते हैं। और सारा योग, सारा तंत्र, सारी कीमिया, सारे धर्म की प्रक्रिया ही इसलिए है कि किस तरह वह परम संभोग, वह गहनतम संभोग उन ध्रुवों में पैदा हो जो कि तुम्हारे भीतर मौजूद हैं। और जब वे तुम्हारे भीतर मिलते हैं तो एक नये ही प्रकार के स्वरूप का जन्म होता है, एक नये ही जीवन का प्रादुर्भाव होता है।

यदि तुम पुरुष हो तो तुम्हारा चेतन मन पुरुष का है और तुम्हारा अचेतन मन स्त्री का है। यदि तुम एक स्त्री हो तो तुम्हारा चेतन मन स्त्री का है और अचेतन पुरुष का। तुम्हारे चेतन तथा अचेतन मिलने चाहिए ताकि एक नया जन्म संभव हो सके। उसके मिलने के लिए क्या करें? उन्हें निकट लाओ। तुमने एक दूरी निर्मित कर दी है। तुमने सब प्रकार की बाहगएं पैदा कर दी हैं। तुम उन्हें मिलने नहीं देते। तुम चेतन के साथ ही तालमेल बिठाना चाहते हो और तुम अचेतन को दबाते चले जाते हो। तुम उसे आगे आने ही नहीं देते।

यदि एक आदमी रोना और चिल्लाना. शुरू कर दे, तो कोई तुरंत उससे कहेगा, " अरे, यह तुम क्या कर रहे हो? स्त्रियों की तरह व्यवहार कर रहे हो? " आदमी फौरन रुक जाता है। पुरुष से यह आशा नहीं की जाती

कि वह रोए और चिल्लाए। किंतु तुम्हारे भीतर संभावना है, अचेतन वहां मौजूद है। तुम्हारे स्त्री होने के भी क्षण होते हैं, तुम्हारे पुरुष होने के भी क्षण होते हैं। हर एक के होते हैं।

एक स्त्री है, वह विकराल हो सकती है—किसी वक्त पुरुष हो सकती है किसी मनस्थिति में। लेकिन तब वह दबायेगी। वह कहेगी, "यह तो स्त्री की भांति होना नहीं है। " हम दबाते चले जाते हैं, एक दूरी निर्मित करते चले जाते हैं। उस दूरी को हटा देना है; तुम्हारे चेतन और अचेतन को निकट आ जाना है। तभी केवल वे मिल सकते हैं, तभी उनमें गहरा आंतरिक संभोग घटित हो सकता है। एक महासंभोग, परमसंभोग तुम्हारे भीतर घट सकता है। इस महासंभोग को ही आध्यात्मिक आनंद कहा जाता है।

एक प्रकार का आनंद एक तो तब संभव होता है जब तुम्हारे शरीर का तुम्हारे विपरीत ध्रुवीय शरीर से मिलन होता है। लेकिन वह क्षण भर के लिए ही हो सकता है क्योंकि तुम परिधि पर ही मिलते हो। केवल परिधियां ही मिलती हैं, और फिर अलग हो जाती हैं। एक दूसरे प्रकार के संभोग का आनंद, परम—आनंद तुम्हारे भीतर घटित हो सकता है, किंतु तब तुम केंद्र पर मिलते हो, और फिर अलग होने की आवश्यकता नहीं होती। काम का आनंद केवल क्षण भर को ही हो सकता है; आध्यात्मिक आनंद ही शाश्वत हो सकता है। एक बार उपलब्ध हो जाए, तो फिर तुम्हें उसे खोने की जरूरत नहीं। वस्तुत: एक बार उपलब्ध हो जाने पर उसका खोना कठिन है, असंभव है फिर उसका खोना। वह एक ऐसी एकात्मता है कि उसमें अंश पूर्णत: खो जाते हैं।

इसीलिए जब बुद्ध से किसी ने पूछा कि आप कौन हैं? क्या कोई देवता हैं? कोई देवलोक के वासी हैं? तो उन्होंने कहा कि नहीं। और तब प्रश्नकर्त्ता पूछता ही चला गया। फिर वह प्रश्नकर्त्ता हताश हो गया क्योंकि जब भी उसने बुद्ध से पूछा कि आप यह हैं कि आप वह हैं, बुद्ध कहते चले गए, नहीं!

तब अंत में उसने पूछा, "कम से कम आपको यह कहना ही पड़ेगा कि आप एक पुरुष हैं। इसके लिए तो आपको हां कहना ही पड़ेगा। "

बुद्ध ने कहा, "नहीं! "

"तब क्या आप स्त्री हैं? " उस व्यक्ति ने बड़ी निराशा से पूछा! बुद्ध ने फिर भी कहा, "नहीं। "क्योंकि एक नया एकात्म अस्तित्व में आ गया था जो न तो पुरुष था और न स्त्री।

जब तुम्हारे भीतर पुरुष तथा स्त्री मिलते हैं तो तुम दोनों ही नहीं रहते; तब तुम यौन का अतिक्रमण कर जाते हो। यही अर्थ है पुरानी से पुरानी भारतीय शिव की प्रतिमा का : अर्धनारीश्वर—आधा पुरुष, आधी नारी। यह आंतरिक मिलन का चिह्न है। शिव अब दोनों ही नहीं हैं। वे आधे पुरुष हैं और आधे नारी है—दोनों हैं या फिर दोनों नहीं हैं। वे यौन का अतिक्रमण कर जाते हैं।

इसे याद रखो कि जब तक तुम यौन के पार नहीं चले जाते, तुम द्वैत का अतिक्रमण नहीं कर सकते। मल एक गहनतम मनोवैज्ञानिक समस्या है—केवल मनोवैज्ञानिक ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक भी। यदि तुम पुरुष अथवा स्त्री बने रहोगे तो फिर तुम अस्तित्व के एक होने की कल्पना कैसे कर सकते हो? तुम नहीं कर सकते! पुरुष होकर तुम कल्पना भी नहीं कर सकते कि तुम स्त्री के साथ एक हो। स्त्री रहकर, तुम अपने लिए कल्पना कैसे कर सकते हो कि तुम पुरुष के साथ एक हो? एक द्वैत चलता चला जाता है।

यौन एक बुनियादी द्वैत है, और हम शताब्दियों से तर्क करते रहते हैं और विवाद करते रहते हैं कि तैसे उस अद्वैत को उपलब्ध हो जाएं। किंतु हम उसके बारे में तर्क करते रहते हैं जैसे कि वह कोई बौद्धिक मामला हो "कैसे उस अद्वैत को प्राप्त करें? " यह कोई बौद्धिक मामला नहीं है। यह एक आध्यात्मिक, आस्तित्वगत मामला है। तुम अद्वैत को तभी उपलब्ध कर सकते हो जब कि तुम्हारे भीतर से द्वैत मिट जाए। यह कोई अद्वैत पर

सोचने—विचारने का सवाल नहीं है या ध्यान करने का प्रश्न नहीं है कि "मैं ही ब्रह्म हूं। " इससे कुछ भी नहीं होगा, तुम सिर्फ अपने को ही धोखा दे रहे हो।

अद्वैत को तुम तब तक नहीं पा सकते जब तक कि तुम्हारे भीतर से वह जो बुनियादी काम का द्वैत है। वह विलीन नहीं हो जाता, जब तक कि तुम उस जगह नहीं आ जाते जहां कि तुम यह नहीं कह सकते कि तुम कौन हो—स्त्री या पुरुष। और यह तभी होता है जबकि तुम्हारे भीतर के स्त्री और पुरुष एक दूसरे में पिघल कर एक दूसरे में मिल जाते हैं और सारी सीमाएं खो जाती हैं, सारे भेद मिट जाते है और वे दोनों एक हो जाते हैं। जब एक आंतरिक महासंभोग, एक आध्यात्मिक आनंद घटित होता है तब तुम दोनों नहीं रहते। और जब तुम दोनों नहीं रहते तभी जीवन का आविर्भाव होता है।

तुम्हारे माता—पिता के एक क्षण के मिलन से तुम पैदा हुए—एक क्षण के मिलन से! स्मरण रहे जीवन सदा मिलन से जन्मता है, न कि दमन से। जीवन आता है केवल एक गहरे मिलन से, गहरे एक हो जाने से। एक क्षण के लिए तुम्हारे पिता और तुम्हारी माता एक हुए थे, वे दो नहीं थे। वे एक अस्तित्व की तरह काम कर रहे थे। उस एकता में तुम जन्मे थे।

जीवन सदा एकता से आता है। और जिस जीवन की मैं बात कर रहा हूं या जीसस बात करते हैं अथवा बुद्ध बात करते हैं, वह वह जीवन है जो कि तुम्हारे भीतर घटित होता है—तुम्हारे अंतर में। फिर से एक एकता, एक पिघलना घटित होता है और तुम्हारे भीतर जो दो काम—ऊर्जाएं हैं, घुलमिल जाती हैं।

याद रहे, मै बार—बार कहता हूं कि यौन, काम ही आधारभूत द्वैत है, और जब तक तुम काम का अतिक्रमण नहीं करते, ब्रह्म को नहीं पाया जा सकता। और बाकी जितने भी द्वैत हैं, वे सब उसी आधारभूत द्वैत की परछाइयां हैं। जन्म और मृत्यु भी एक द्वैत ही है। वे विलीन हो जायेंगे यदि तुम स्त्री या पुरुष नहीं हो। यदि तुम्हारे पास ऐसी चेतना है जो दोनों के पार चली जाती है तो जन्म और मृत्यु विलीन हो जाते हैं, पदार्थ और मन विलीन हो जाते हैं, यह जगत और वह जगत मिट जाता है, स्वर्ग और नर्क खो जाते हैं। सारे द्वैत खो जाते हैं जब तुम्हारे भीतर से बुनियादी द्वैत मिट जाता है, क्योंकि सारे द्वैत सिर्फ उसी बुनियादी भीतरी विभाजन की प्रतिध्वनियां हैं, जो कि बार—बार गूंजती रहती हैं।

इसीलिए पुराने, प्राचीन भारत के मनीषियों ने ब्रह्म को तीसरी श्रेणी में रखा हैं। वह न तो स्त्री है और न पुरुष है। वे उसे नपुंसक कहते हैं। वे उसे तृतीय लिंग कहते हैं—यौन की अंतिम वास्तविकता। ब्रह्म शब्द नपुंसक लिंग का है; वह दोनों नहीं है या फिर दोनों है। लेकिन यह सुनिश्चित है कि वह द्वैत का अतिक्रमण कर जाता है। इसलिए परमात्मा की दूसरी सब धारणाएं बड़ी बचकानी लगती हैं। ईसाई उसे पिता कहकर पुकारते हैं। यह बचकानी बात है क्योंकि तब मां कहा है? और यह बेटा जीसस तब कहां से पैदा हुआ? और वे कहते हैं कि जीसस इकलौता बेटा है, लेकिन मां कहां है? क्या पिता अकेले ही पैदा कर रहे हैं? यदि पिता अकेले ही जन्म दे रहे हैं तो फिर वे दोनों हैं—मां और बाप। तब उसे सिर्फ पिता न कहो, अन्यथा द्वैत आ जाता है।

या फिर, कुछ धर्मों ने उस आत्यंतिक सत्ता को मा कहा है। तब फिर पिता कहां है? ये सब की सब मानव केंद्रित भावनाएं हैं। मनुष्य —परमात्मा की कल्पना सिवाय मानव स्वरूप के नहीं कर सकता, इसलिए वह उसे माता या पिता कहकर पुकारता है। परंतु जिन्होंने भी जाना है, और जो भी इस मानव केंद्रित अवस्था के पार गए हैं—मनुष्य के भाव के पार गए हैं—वे कहते हैं कि वह दोनों नहीं है। वह दोनों के पार है, वह दोनों का मिलन है।

उस आत्यंतिक में मां और पिता दोनों ही समाविष्ट हो जाते हैं। अथवा, यदि तुम मुझे यह कहने दो तो मैं कहना चाहूंगा कि ब्रह्म, मां तथा पिता का गहरे संभोग में डूबे होना है; मिलन के शाश्वत आनंद में एकाकार हो

जाना है। और उस महामिलन से ही सारी सृष्टि का जन्म होता है, उसी मिलन से सारा खेल पैदा होता है, उसी महामिलन से जो भी है, वह सब जन्मता है।

यहां इस ध्यान शिविर में हम प्रयास करेंगे कि तुम्हारे चेतन और अचेतन निकट आ जायें। तुम्हारे स्त्री—पुरुष तत्व निकट आ जायें। तुम्हें मेरी सहायता करनी पड़ेगी और मेरे साथ सहयोग करना पड़ेगा। ध्यान में तुम्हें अपने चेतन मन और अचेतन मन के बीच जितने भी अवरोध हैं उन्हें नष्ट कर देना होगा। और जितने अधिक तुम मुक्त हो सको, खुल सकी, उतना तुम्हें खुलना होगा क्योंकि दमन के कारण ही ये अवरोध पैदा हो गए हैं।

अत: दमन न करो। यदि तुम्हारा चिल्लाने का मन हो तो चिल्लाओ। तुम्हारा चिल्लाना तुम्हारे चेतन। तथा अचेतन को निकट ले आयेगा। यदि तुम्हारा नाचने का मन हो तो नाचो। वह नृत्य तुम्हारे चेतन तथा अचेतन को निकट ले आएगा। वस्तुत: नृत्य बहुत सहयोगी हो सकता है क्योंकि नृत्य में तुम्हारा शरीर और तुम्हारा मन एक गहरे मिलन में होते हैं। केवल शरीर ही नहीं नाच रहा होता है, शरीर के भीतर तुम्हारी चेतना भी नाच रही होती है। वास्तव में, नृत्य तभी नृत्य होता है जब तुम्हारा शरीर तुम्हारे चैतन्य की आभा से भर जाता है, जब तुम्हारी चेतना तुम्हारे शरीर से बाहर बह रही होती है, जब तुम्हारी चेतना तुम्हारे शरीर के साथ लयबद्ध हो जाती है।

सारे पुराने धर्म नाचते हुए धर्म थे। वे ज्यादा प्रामाणिक थे। हमारे धर्म के सारे नए रूप झूठे हैं। तुम मंदिर जाते हो या चर्च जाते हो या गुरुद्वारे जाते हो, वहां तुम सिर्फ बातचीत करते हो। कोई उपदेश देता है और तुम सुनते हो। वह सिर्फ मानसिक हो गया है। अथवा तुम प्रार्थना करते हो और परमात्मा से बात करते हो। परमात्मा के साथ भी तुम भाषा का उपयोग करते हो। तुम उसके साथ भी मौन नहीं हो सकते। तुम विश्वास ही नहीं कर सकते कि वह तुम्हें तुम्हारी भाषा के बिना भी समझ सकता है। तुम्हें कोई भरोसा नहीं है। तुम्हारी उस पर कोई श्रद्धा नहीं है। तुम उसको सब कुछ समझाना चाहते हो।

मैंने सुना है :

एक मां ने अपने बच्चे को रात में परमात्मा से प्रार्थना करते हुए सुना। वह कह रहा था, "प्यारे। परमात्मा, प्यारे प्रभु! टामी को मुझ पर चीजें फेंकने से रोको। और यह बात मैंने तुम्हें पहले भी कही है।"

लेकिन यही तो हम भी कर रहे हैं, "टामी को मुझ पर चीजें फेंकने से रोको। "यदि तुम वेदों के ऋषियों के पास जाओ तो वे भी यही कर रहे हैं। "यह करो, वह मत करो। " तुम उसे उसकी मर्जी के अनुसार करने के लिए छोड़ ही नहीं सकते। तुम उसे अपना कार्यक्रम बतला देते हो, और यदि वह तुम्हारे अनुसार चले तो तुम उसमें विश्वास कर सकते हो, और यदि वह तुम्हारे अनुसार न चले तो तुम कह देते हो कि वह है ही नहीं। तुम्हारा अनुयायी होकर ही वह हो सकता है।

अस्तित्व तुम्हारा अनुयायी नहीं हो सकता। अस्तित्व तुमसे बड़ा है। अस्तित्व सर्व है, तुम उसमें एक छोटे से टुकड़े हो और एक टुकड़े का अनुकरण नहीं हो सकता—टुकड़े को सर्व का अनुकरण करना पड़ता है। ऐसा ही मन वास्तव में एक धार्मिक मन होता है—टुकड़ा सर्व का अनुकरण करता हुआ, टुकड़ा सर्व को समर्पण करता हुआ, टुकड़ा संघर्ष—रत नहीं बल्कि टुकड़ा समर्पित, अपने को छोड़े हुए होते है।

धर्म भी बातचीत की, भाषा की बात हो गया है। यहां हम प्रामाणिक धर्म के निकट आने का प्रयत्न करेंगे सर्वाधिक रहस्य की बात यह है कि तुम उसमें पूर्णरूप से संलग्न हो जाओ—अपने मन, अपने शरीर अपना भाव, अपना सब कुछ लगा दो, कुछ भी दबाना नहीं है। तुम रोओ और चिल्लाओ, तुम हंसो और नाचो और तुम मौन होकर बैठ जाओ। तुम वह सब कुछ करो जो कि तुम्हारे अंतर का स्वरूप तुम्हें करने के लिए कहे। तुम उसे कुछ भी करने के लिए जबरदस्ती मत करो। तुम मत कहो कि यह अच्छी बात नहीं है, मुझे यह नहीं करना चाहिए।

तुम एक स्वत: स्फूर्त बहाव को बहने दो। तभी अचेतन धीरे— धीरे चेतन के निकट, और अधिक निकट आता जाएगा।

हमने दमन करके अंतराल पैदा कर लिए हैं : "यह मत करो, वह मत करो," और हम दमन करते चले जाते हैं। तब फिर अचेतन दमित कर लिया जाता है। वह अंधकारपूर्ण हो जाता है। वह हमारे घर का एक ऐसा हिस्सा हो जाता है जिसमें हम कभी प्रवेश नहीं करते। तब फिर हम विभाजित हो जाते हैं। और याद रहे, तब फिर विकृतियां पैदा होती हैं।

यदि तुम अपने अचेतन को, चेतन के और——और निकट आने दो तो काम के साथ जो अत्यधिक ग्रसित मन है वह विलीन हो जाता है। यदि तुम पुरुष हो और अपने अचेतन को मना कर देते हो तो तुम अपने भीतर की स्त्री को मना कर देते हो, तब फिर तुम बाहर की स्त्री की ओर ज्यादा आकर्षित होंगे। वह एक प्रकार की कुंठा हो जाएगी क्योंकि तब वह उसकी परिपूरक है। अंतर की स्त्रैणता को मना कर दिया गया है, इसलिए अब बाहर की स्त्री तुम्हारे मन को ग्रसने लगी है। तुम उसी उसी के बारे में सोचते रहोगे; अब तुम्हारा सारा मन कामुकता से भर जाएगा।

यदि तुम एक स्त्री हो और तुमने पुरुष को मना कर दिया है तो पुरुष तुम्हारे पर अधिकार कर लेगा। तब फिर जो भा तुम करोगे उसमें आधारभूत रंग कामुकता का होगा।

काम के प्रति इतनी कल्पना इसलिए है कि तुमने अपने भीतर के दूसरे हिस्से को मना कर दिया है। इसलिए यह एक तरह से उसकी पुर्ति है। अब तुम उसकी पूर्ति कर रहे हो जो कि तुमने अपने ही भीतर मना कर दिया है। और इस व्यर्थता को देखो—कि जितना तुम काम से ग्रसित होते हो, उतना ही तुम उससे डरने लग जाते हो। जितना अधिक तुम भीतर के स्त्री—पुरुष को मना करते हो, उतना ही तुम उसे दबाते हो; जितना अधिक तुम उसे दबाते हो उतना ही तुम उससे ग्रसित होने लगते हो।

तुम्हारे तथाकथित ब्रह्मचारी काम से पूर्णत: ग्रसित होते हैं, चौबीस घंटे काम से ही ग्रसित रहते हैं; वे होंगे ही। यह प्राकृतिक है। प्रकृति बदला लेती है। मेरे लिए ब्रह्मचर्य का अर्थ है कि तुम अपने भीतर के स्त्री या पुरुष के इतने निकट आ गए हो कि अब उसके लिए परिपूरक की आवश्यकता नहीं है। तुम अब उससे ग्रसित नहीं हो। तुम उसके बारे में चिंतन नहीं करते। वह विलीन हो गया है।

जब तुम्हारा अचेतन तुम्हारे निकट होता है तो तुम्हें उसे किसी और से परिपूर्ण करने की आवश्यकता नहीं है। और तब एक चमत्कार घटित होता है। यदि तुम्हारा अचेतन इतना निकट है तो फिर तुम जिसे भी बाहर—चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष—प्रेम करते हो तो वह प्रेम रुग्ण नहीं होता। यदि तुम्हारा अचेतन बहुत निकट है तो तुम्हारा प्रेम रुग्ण नहीं होता। वह मालकियत नहीं करता, वह विक्षिप्त नहीं होता। वह बहुत शांत, मौन और ठंडा होता है। तब फिर दूसरा परिपूरक नहीं होता है और तुम दूसरे पर निर्भर नहीं होते हो, वरन दूसरा सिर्फ एक दर्पण हो जाता है।

इस भेद को स्मरण रखो : कि दूसरा परिपूरक नहीं है; वह ऐसा नहीं है जिसे कि तुमने मना किया हो। दूसरा एक दर्पण बन जाता है तुम्हारे भीतरी हिस्से का, तुम्हारे अचेतन का। तुम्हारी पत्नी, तुम्हारी प्रेमिका सिर्फ दर्पण हो जाती है। उस दर्पण में तुम अपने अचेतन को देखते हो। तुम्हारा प्रेमी, तुम्हारा पति, तुम्हारा मित्र सिर्फ एक दर्पण बन जाता है, और उस दर्पण में तुम अपने अचेतन को स्पष्ट प्रतिबिंबित होते देख सकते हो, प्रक्षेपित होते देख सकते हो। तब पति और पत्नी एक—दूसरे के अचेतन को और—और अधिक निकट लाने में एक—दूसरे की सहायता कर सकते हैं।

और एक क्षण आता है, और वह आना ही चाहिए यदि जीवन एक सफल प्रयास है, जब पत्नी और पति ज्यादा समय तक पति—पत्नी नहीं रह जाते, वे इस शाश्वत यात्रा में एक—दूसरे के साथी हो जाते हैं। वे एक दूसरे की सहायता करते हैं, वे एक—दूसरे के लिए दर्पण हो जाते हैं। दोनों एक—दूसरे के अचेतन को प्रकट करते हैं और दोनों एक—दूसरे की सहायता करते हैं कि वे स्वयं को जान सकें। अब कोई रुग्णता नहीं है, कोई निर्भरता नहीं है।

एक बात और याद रहे : यदि तुम अपने अचेतन को मना करते हो, यदि तुम अपने अचेतन से घृणा करते हो, यदि तुम अपने भीतर की स्त्री या पुरुष को मना करते हो, तो तुम कहे चले जाओगे कि तुम बाहरी स्त्री को प्रेम करते हो लेकिन भीतर गहरे में तुम उससे भी घृणा करोगे। यदि तुम अपने ही भीतर की स्त्री मना करोगे तो तुम जिस स्त्री से प्रेम करोगे उसे घृणा भी करोगे। यदि तुम अपने ही भीतर के पुरुष को मना करते हो तो तुम जिस पुरुष को प्रेम करोगे उससे घृणा भी करोगे। तुम्हारा प्रेम बाहर सतह पर होगा। भीतर गहरे में घृणा होगी। ऐसा होगा ही, ऐसा होना ही पड़ेगा, क्योंकि तुम दूसरे को अपने अचेतन का दर्पण नहीं बनने दोगे। और तुम डरोगे भी। पुरुष स्त्री से डरा हुआ है। जाओ और पूछो तुम्हारे तथाकथित साधुओं से। वे स्त्री से इतने डरे हुए हैं। क्यों 7 वे अपने अचेतन से डरे हुए हैं, और स्त्री दर्पण बन जाती है। जो भी उन्होंने छुपा रखा है, वह उसे प्रगट कर देगी।

यदि तुमने कुछ दबा रखा है तो वह जो विरोधी ध्रुव है वह उसे तुरंत प्रगट कर देगा। यदि तुम काम को दबाते रहे हो तो तुम ध्यान के लिए किसी एकांत स्थान में गए और वहां से एक सुंदर स्त्री निकलती है और तुम्हारा अचेतन फौरन मालिक हो जाएगा। जो छुपा हुआ है वह प्रगट हो जाएगा उस स्त्री के उधर से गुजरने से, और तुम उस स्त्री के विरुद्ध हो जाओगे। तुम मूर्ख हो क्योंकि वह स्त्री तो कुछ भी नहीं कर रही वह सिर्फ वहा से गुजर रही है, उसे हो सकता है कि पता भी नहीं हो कि तुम भी वहां हो। वह कुछ भी नहीं कर रही है। वह सिर्फ एक दर्पण है। दर्पण गुजर रहा है और उस दर्पण में तुम्हारा अचेतन प्रगट होने लगा है।

सारी की सारी तथाकथित आध्यात्मिकता भय पर खड़ी है। क्या है भय? भय यह है कि दूसरा तुम्हारे अचेतन को प्रगट कर सकता है और तुम नहीं चाहते कि उसको जानो। लेकिन नहीं जानना कुछ काम न आएगा। दमन से कुछ भी न होगा। वह वहीं रहेगा, वह एक कैंसर हो जाएगा। और ऐसा होगा कि वह और—और अधिक अपने को आरोपित करेगा, और अंततः तुम अनुभव करोगे कि तुम असफल ही हुए हो। और जो भी तुमने दबाया है वह जीत गया है और तुम हार गये हो।

मेरा पूरा प्रयास यह है कि तुम्हारे अचेतन को तुम्हारे चेतन के निकट ले आया जाए, ताकि तुम उससे परिचित हो सको—ताकि वह तुमसे अज्ञात न रहे। जब तुम उससे मित्रता कर लोगे तो उसका भय विलीन हो जाता है—विपरीत ध्रुव का भय चला जाता है। और तब घृणा भी विलीन हो जाती है क्योंकि तब दूसरा सिर्फ एक दर्पण है, सहायक है। तुम कृतज्ञता का अनुभव करते हो। प्रेमी एक—दूसरे के प्रति कृतज्ञता का अनुभव करते हैं यदि उनका अचेतन दमित नहीं किया गया हो। और वे एक—दूसरे के प्रति घृणा का अनुभव करेंगे यदि अचेतन को दबाया गया हो।

अपने पूरे स्वरूप को काम करने दो। तुम्हारे भाव, तुम्हारी वृत्तियां कैद हैं, कैपसूल में बंद हैं। तुम्हारे शरीर की गतिविधियां भी कारागृह में बंद हैं। तुम्हारा शरीर, तुम्हारा हृदय कुछ ऐसे हो गए हैं जैसे वे तुम्हारे हिस्से नहीं हैं। तुम उन्हें एक बोझ की तरह से ढोते रहते हो। अपने भावों को पूरी तरह से खेलने दो। हम जो ध्यान करने वाले हैं उनमें अपने भावों को पूरी तरह से खेलने दो और खेल का आनंद लो। तब बहुत—सी बातें तुम्हें प्रकट होंगी।

तुम कभी चिल्लाये नहीं हो। तुम चिल्लाये नहीं हो, तुम्हें याद नहीं है कि तुम आखिरी बार कब चिल्लाये थे। जब चिल्लाना आएगा और तुम्हारे ऊपर अपना अधिकार कर लेगा तो तुम डर जाओगे कि यह क्या हो रहा है क्योंकि तुम्हारा नियंत्रण खो रहा है। लेकिन नियंत्रण को खोने दो; तुम्हारा नियंत्रण ही जहर है। अपना नियंत्रण पूरी तरह खो जाने दो। अपने भावों को ज्वालामुखी की भांति विस्फोटित होने दो। तुम चकित हो जाओगे कि भीतर क्या छुपा पड़ा है। तुम पहचान भी नहीं सकोगे कि यह तुम्हारा ही चेहरा है।

अपने शरीर को भी पूरी तरह खुलकर खेलने दो ताकि उसका कण—कण जीवंत हो जाये। जैसे कि कोई चिड़िया किसी शाखा पर बैठे और शाखा कंपने लगे—जीवंत हो जाए उसी तरह तुम्हारे स्वरूप को तुम्हारे शरीर पर बैठने दो और तुम्हारा शरीर पूरी तरह जीवंत हो उठे—भीतर की शक्ति से जीवंत हो जाए। और अचानक तुम एक नये आयाम में प्रवेश करोगे जो कि अब तक अनजाना ही था, और वही आयाम तुम्हें उस आत्यंतिक की ओर, उस दिव्य की ओर ले जाएगा।

अब हम सूत्र को लें :

किसकी इच्छा पर और किसके द्वारा उत्प्रेरित होकर मन अपने विषयों पर नीचे उतरता है? किसके द्वारा उत्प्रेरित होकर मुख्य प्राण संचारित होता है? किसके द्वारा उत्प्रेरित होकर मनुष्य यह वाणी बोलते हैं? कौन—सा देव आंखों व कानों को निर्दोषित करता है?

गुरु पूछ रहा है : तुम्हारे भीतर वह बुनियादी स्रोत कौन—सा है? कौन—सा है तुम्हारे सारे जीवन का स्रोत, तुम्हारी सारी गतिविधियों का, तुम्हारे सारे हाव— भावों का? कौन—सी शक्ति तुम्हारी इच्छाओं को पैदा करती है। कौन—सी शक्ति तुम्हें जिंदा रहने के लिए उत्प्रेरित करती है? कौन—सी शक्ति तुम्हें जीवेषणा प्रदान करती है; जरूर कोई छिपी हुई शक्ति होनी चाहिए, और फिर वह कभी समाप्त न होने वाली भी होनी चाहिए क्योंकि वह चलती ही चली जाती है, वह कभी भी थकती ही नहीं।

किसकी इच्छा पर और किसके द्वारा उत्प्रेरित होकर मन अपने विषयों पर नीचे उतरता है?

जब तुम किसी सुंदर स्त्री की ओर देखते हो, अथवा किसी सुंदर फूल को, अथवा सुंदर सूर्यास्त को देखते हो तो कौन तुम्हें उत्प्रेरित करता है? कौन तुम्हें बाहर की ओर ले जाता है? कौन—सा वह भीतरी स्रोत है जो कि तुम्हारी सब क्रियाओं का मूल कर्त्ता है?

उपनिषद कहते हैं कि चाहे तुम कुछ भी करो, कर्त्ता सदैव ही ब्रह्म है—तुम चाहे कुछ भी करो, तुम करने वाले नहीं हो। करने वाला सदा ब्रह्म है। यदि तुम किसी स्त्री की ओर काम—लोलुप होकर भागते हो तो भी उपनिषद कहते हैं वह ब्रह्म ही है। इसी कारण ईसाई मिशनरी कभी नहीं समझ सके कि यह हिंदू धर्म किस तरह का धर्म है। यहां काम—लोलुपता भी आध्यात्मिक है, क्योंकि मूल स्रोत तो ब्रह्म ही है। तुम अपनी ऊर्जा से जो भी कर रहे हो, उसमें भी करने वाला वह है।

एक कहानी है

ब्रह्मा ने सृष्टि बनायी तो वह उसके प्रेम में पड़ गया। ईसाई धर्मशास्त्री इस बात को नहीं समझ सकते। स्वभावत: यह जरा मुश्किल है समझना। ब्रह्मा दूसरे स्वरूपों को बनाता गया और फिर वह उन्हीं के प्रेम में पड़ता गया। उसने गाय को बनाया और वह उसी के प्रेम में पड़ गया और सांड हो गया। और इस तरह होता ही चला गया जब तक कि सारी सृष्टि का निर्माण नहीं हो गया। वह गाय को बनाता है और वह सांड हो जाता है। वह अपने को विपरीत शक्तियों में विभाजित करता चला जाता है।

यह कहानी बड़ी सुंदर है यदि तुम इसको समझ सको। वह अपने को दो विपरीत ध्रुवों में बांटता चला जाता है। और याद रहे, इसकी उल्टी प्रक्रिया ही उस तक वापस पहुंचने का मार्ग है। तुम अविभाजित होना।

शुरू कर दो, अपने विपरीत से मिलते चले जाओ। वह विपरीत ध्रुवों से संसार बनाता है। वह गाय को बनाता हे लेकिन वह स्वयं भी गाय है क्योंकि वह गाय अपने से ही बनाता है। तब फिर वह सांड हो जाता है, लेकिन वह खुद ही सांड है। वह दोनों है, स्त्रीलिंग और पुल्लिंग।

फिर वह गाय के पीछे भागता है और गाय उससे बचकर भागती है। गाय छुप जाती है और अपने छिपने से सांड को निमंत्रण देती है। यह एक आंख—मिचौनी का खेल हो गया। इसीलिए हिंदू कहते हैं कि सारा सर्जन सिर्फ एक खेल है, लीला है—एक खेल है उसी एक ऊर्जा का जो कि विपरीत ध्रुवों में बंट गई है और आंख—मिचौनी खेल रही है।

तुम ब्रह्म हो। तुम्हारा पति भी ब्रह्म है, तुम्हारी पत्नी भी ब्रह्म है, और ब्रह्म आंख—मिचौनी खेल रहा है। यह धारणा ही कितनी सुंदर है!

इसकी उल्टी प्रक्रिया ही मार्ग है उस तक वापस पहुंचने का। आंख—मिचौनी मत खेलो। जो भाग बंट गए हैं एक—दूसरे के साथ मिलने दो। उन्हें एक—दूसरे में मिल जाने दो और ब्रह्म फिर प्रगट हो जाएगा—जो कि एक है।

यह गुरु पूछता है :

किसकी इच्छा पर और किसके द्वारा उत्प्रेरित होकर मन अपने विषयों पर नीचे उतरता है? किसके द्वारा प्रेरित होकर मुख्य प्राण संचारित होता है? कौन है जो तुम में श्वास लेता है? किसके द्वारा उत्प्रेरित होकर मनुष्य यह वाणी बोलते हैं? कौन है जो तुममें बोलता है? कौन—सा देवता आंखों और कानों को निर्दोषित करता है? कौन तुम्हारी ज्ञानेंद्रियों को निर्देशन दे रहा है?

उपनिषद इंद्रियों के विरोध में नहीं है। वे आध्यात्मिक रूप से ऐंद्रिक—संवेदी हैं, वे उन्हें मना नहीं करते। निषद उनका नारा नहीं है, नकार उनका रुख नहीं है। वे स्वीकार करते हैं और वे कहते हैं कि इंद्रियों में भी दिव्य ही गतिमान हो रहा है क्योंकि उसके सिवाय तो कुछ है नहीं गतिमान होने को। वे हर चीज को पवित्र बना देते हैं, हर बात को पवित्र बना देते हैं। वे निंदा नहीं करते, वे यह नहीं कहते कि यह पाप है। उपनिषद पाप नहीं जानते हैं—बिलकुल नहीं जानते हैं। वे कहते हैं कि पाप जैसा कुछ है ही नहीं—सब कुछ सिर्फ खेल है। पाप में भी, यहां तक कि पापी में भी वही ऊर्जा गतिमान हो रही है।

प्रत्येक चीज पवित्र हो जाती है। और यदि तुम अपने पूरे हृदय से प्रत्येक चीज को कह दो कि पवित्र है, पवित्र है, तो तुम उसी वक्त पवित्र हो जाते हो। क्योंकि यह भाव ही कि सभी कुछ पवित्र है, सब पाप को विलीन कर देता है। पाप पैदा ही निंदा से होता है। और जितना अधिक तुम निंदित करते हो, उतने ही अधिक तुम पापी पैदा करते चले जाते हो।

सारा संसार पापियों की भीड़ से भर गया है, क्योंकि हर बात निंदित की जा चुकी है—हर चीज। ऐसी एक भी बात नहीं है जो कि तुम कह सको जिसे किसी न किसी ने निंदित न किया हो। जब सभी कुछ निंदित हो चुका हो तो तुम भी पापी हो जाते हो। तब अपराध का भाव पैदा होता है, और तब उस अपराध के भाव के कारण तुम प्रार्थना करते हो। किंतु तब वह प्रार्थना भी विषाक्त हो जाती है—क्योंकि वह तुम्हारे अपराध के भाव से निकलती है। जब तुम अपराधी महसूस करते हो तो तुम प्रार्थना करते हो, लेकिन तब वह प्रार्थना भय पर आधारित है। वह प्रार्थना प्रेम नहीं है, वह हो भी नहीं सकती। अपराध भाव के साथ प्रेम संभव हो ही नहीं सकता। अपने आपको पापी समझते हुए तुम प्रेम कैसे कर सकते हो?

उपनिषद कहते हैं कि हर चीज पवित्र है, क्योंकि वह हर चीज का स्रोत है। चाहे तुम्हें सरिता गंदी ही क्यों न दिखाई पड़ती हो, उससे कुछ लेना देना नहीं है। लेकिन स्रोत तो वही है—गंदी नदी और पवित्र गंगा

दोनों का। दोनों को ही ऊर्जा तो वही देता है। पापी को भी और साधु को भी ऊर्जा तो वही देता है। वस्तुत: ऐसी कोई कहानी नहीं है, लेकिन मैं चाहूंगा कि ऐसी भी कहानी हो कि पहले उसने एक पापी को बनाया, और फिर वह स्वयं साधु बन गया। जैसे कि गाय और सांड की बात है, और आंख—मिचौनी का खेल। वैसे ही उसने एक साधु को बनाया, और फिर वह स्वयं पापी बन गया और फिर वही आंख—मिचौनी का खेल।

जो भी है, उसको पूर्णरूप से स्वीकार करो। अस्तित्व में होने के कारण ही वह पवित्र है।

वह—आत्मा या ब्रह्म— कान का भी कान है मन का भी मन है वाणी की भी वाणी है प्राण का भी प्राण है और आंख की भी आंख है ज्ञानीजन अपनी आत्मा को इन ज्ञानेंद्रियों से अलग कर ज्ञानेंद्रियों से ऊपर उठ जाते हैं और अमरता को उपलब्ध होते हैं

जो भी तुम करते हो वह सब उसी का कृत्य है, सर्व का करना है। सर्व ही तुम्हारे भीतर काम करता है। जब तुम श्वास लेते हो तो तुम क्या करते हो? तुम कुछ भी नहीं करते। श्वास भीतर आती है और बाहर जाती है। वस्तुत: वही तुममें श्वास लेता है, तुम कुछ भी नहीं कर सकते। यदि श्वास तुम्हारा परित्याग कर दे तो तुम क्या कर सकते हो? यदि वह वापस लौटकर नहीं आए तो तुम क्या कर सकते हो g यदि वह छोड़ कर चली गई तो चली गयी और यदि वह फिर वापस नहीं आती तो तुम कुछ भी नहीं कर सकते। वास्तव में, यदि वह नहीं आती तो तुम नहीं बचते। कौन है फिर कुछ भी करने वाला? वही श्वास लेता है, न कि तुम। जोर सर्व पर है, न कि व्यक्ति पर।

इसे सतत याद रखना पड़ेगा क्योंकि हम इस बात को बार—बार भूल जाते हैं। हमारा जोर व्यक्ति पर है, मैं पर है : "मैं श्वास ले रहा हूं मैं जीवित हूं। मैं देख रहा हूं तुम्हें।" नहीं! गुरु कहता है वही आंखों के भीतर से देख रहा है। वही आंख की आंख है। जब मैं बोलता हूं तो मैं नहीं बोल रहा हूं। वही बोल रहा है। और जब तुम सुन रहे हो तो तुम नहीं सुन रहे हो, वही सुन रहा है। वही गाय हो जाता है, वही सांड हो जाता है। वही बोलने वाला हो जाता है, वही सुनने वाला हो जाता है। यह एक बडा रहस्यमय खेल चल रहा है आंख—मिचौनी का—एक महान लीला चल रही है, एक नाटक खेला जा रहा है। और बड़ा सुंदर है यह अगर तुम इसे समझ सको। वही है सब जगह, सुनने वाले में भी, बोलने वाले में भी। वही है सब जगह। और जब तुम मौन हो जाते हो तो वही मौन हो जाता है तुम्हारे भीतर, जब तुम बोलते हो तो वही बोल रहा होता है तुम्हारे भीतर।

यह कोई दर्शनशास्त्र की बात नहीं है, न यह कोई सिद्धात है—सिद्धात की भांति भी यह श्रेष्ठ है—लेकिन यह तुम्हें एक नई अनुभूति की ओर ले जाने के लिए है। बोलते समय यदि तुम्हें यह प्रतीति हो सके कि वही बोल रहा है तो बोलने में जो ज्वर है वह विलीन हो जाएगा। लड़ते समय यदि तुम यह स्मरण रख सको कि वही लड़ रहा है तो लड़ना एक नाटक हो जायेगा। मौन होते समय महसूस करो कि वही मौन हो रहा है तुम्हारे भीतर... और यदि मौन भंग हो जाए और विचार आने लगें, तो तुम जानो कि वही आंदोलित हुआ है न कि तुम। और वही विचार हो गया है और अब तुम्हारे अंतर के आकाश में बादल बनकर वही विचर रहा है। वह दोनों है, फिर कैसी चिंता? वह दोनों है।

जब तुम स्वस्थ होते हो तो वही तुम्हारे भीतर स्वस्थ होता है : और जब तुम रुग्ण होते हो तो तुम्हारे भीतर वही रुग्ण होता है। तुम बिलकुल निश्चित रहो। तुम्हें बीच में आने की जरूरत ही नहीं है। तुम्हारा सारा बोझ उस पर पड़ गया है। इसी कारण मैं कहता हूं कि यह कोरी दर्शनशास्त्र की बात नहीं है, यह एक गहनतम विधि है तुम्हें रूपांतरित करने की, तुम्हारे समूचे स्वरूप को बदलने की विधि है।

यदि वही सब कुछ कर रहा है तो फिर तुम व्यर्थ में क्यों अपने को लादे चले जा रहे हो? वही श्वास लेता है, वही जन्मता है और वही मरता है। जब तुम मरोगे तो वही मरता है न कि तुम। फिर मृत्यु से भय कैसा? तुम

बिलकुल अलग हो जाते हो। वह अलग छूट जाना तुम्हें सारे बोझ से मुक्त कर देता है। और वही वास्तविकता है। यह कोई मान लेने की बात नहीं है। यही सत्य है. जो भी हो रहा है, सर्व के साथ हो रहा है, व्यक्ति तो मात्र एक भ्रम है।

न मैं कभी अहंकार की भांति रहा हूं और न मैं अहंकार की तरह से हूं और न मैं हो सकता हूं, केवल वही है। और जब मैं कहता हूं 'वह' तो मेरा मतलब 'सर्व' से है। उसे कभी भी किसी व्यक्ति की भांति समझने की चेष्टा मत करो। वह कोई व्यक्ति नहीं है, वह तो 'सर्व' है, समष्टि है। वह जो तुम्हारे भीतर श्वास लेता है, वही वृक्षों में श्वास लेता है, और वह जो तुम्हारे भीतर गीत गाता है, वही पक्षियों में भी गीत गाता है, और वह जो तुम्हारे भीतर नाचता है, वही सरिताओं में, नहरों में, झरनों में नृत्य करता है, ओर वह जो तुम्हारे भीतर बोलता है, वही वृक्षों की सरसराती हवाओं में बोलता है। वही समग्र है, सर्व है।

केवल देखने का ढंग बदलो, केवल ढांचे को परिवर्तित करो। व्यक्ति पर जोर मत दो, सर्व की और चलो। तब फिर क्या समस्या है? फिर तो कोई भी समस्या नहीं है। तुम्हारे रहते सारी समस्याएं प्रवेश कर जाती हैं। तुम्हारे रहते, सारे दुखों और सारी चिंताओं का आगमन हो जाता है। तुम पर कोई बोझ न हो तो तुम मुक्त हो सकते हो। तुम चाहो तो इसी क्षण मुक्त हो सकते हो, इसी क्षण सिद्ध हो सकते हो। केवल इतनी सी बात जानकर, महसूस करके कि "मैं नहीं हूं वही है, " अतीत खो जाता है, और भविष्य मिट जाता हे। क्योंकि भविष्य का जन्म ही तुम्हारी चिंताओं, तुम्हारी कल्पनाओं, तुम्हारे प्रक्षेपणों के कारण होता है। फिर तो वही जाने, वही चिंता ले। फिर जो भी होता है हुआ करे। और फिर जो भी होता है सब शुभ है, क्योंकि वह उसी से आया है।

यही अर्थ है श्रद्धा का। श्रद्धा परमात्मा में विश्वास नहीं है कि वह कहीं स्वर्ग में ऊंचे सिंहासन पर विराजमान है और प्रत्येक को वहा से निर्देश दे रहा है, कि वह कोई बड़ा नियंता है कि कोई इंजीनियर है, या ऐसा कोई है—नहीं। वह कोई मैनेजिंग डायरेक्टर नहीं है। वह ऐसा कुछ नहीं है! न तो कहीं कोई सिंहासन ही है, और न ही कोई उस पर विराजमान है। और श्रद्धा का यह अर्थ भी नहीं है कि तुम किसी फिलासफी अथवा किसी धारणा पर विश्वास करो। श्रद्धा का इतना ही अर्थ है कि तुम उस सर्व पर भरोसा करो। फिर सभी कुछ आनंदपूर्ण है। फिर कुछ और हो भी कैसे सकता है? फिर सिवाय आनंद के और रह भी क्या जाता है. तुम ही दुख पैदा करते हो क्योंकि तुम बीच में आ जाते हो। बीच से हट जाओ—ऐसे ही जैसे कि दीये को बुझा दिया गया हो। हटो एक तरफ... और तब वही है।

वह कान का भी कान है मन का भी मन है वाणी की भी वाणी है प्राण का भी प्राण है आंख की भी आंख है

जो भी सतह पर दिखाई पड़ता है उससे कुछ अंतर नहीं पड़ता, सदैव भीतर छिपा हुआ वही है। मेरी तरफ इसके पूरे स्मरण से भरकर देखो कि वही तुम्हारे भीतर से देख रहा है और तुरंत चेतना का गुण बदल जाता है। अभी, देखो मेरी ओर! जैसे कि वही देख रहा है, वही आंख की आंख है, और तत्क्षण तुम पाओगे कि तुम वहां नहीं हो और एक प्रगाढ़ शांति की घटना घटेगी। तुम्हारे होने का सारा गुणधर्म ही भिन्न हो जाएगा जब तुम मुझे ऐसे देखोगे जैसे वही देख रहा है।

तुम मुझे सुन रहे हो, भूल जाओ कि मैं यहां हूं। वही यहां पर है, सर्व ही है। सर्व ने ही मुझ पर अधिकार कर लिया है, सर्व ही मुझमें जीवंत हो गया है, सर्व ने ही मुझे अपना एक साधन बना लिया है। मेरी तरफ ऐसे देखो जैसे कि वही बोल रहा है, मुझे ऐसे सुनो जैसे कि वही बोल रहा है। और तब सब कुछ बदल जाता है, तब तुम नहीं रह जाते। अचानक एक बिजली सी कौंधती है. और सब कुछ बदल जाता है।

यह कोई समय का सवाल नहीं है। इसका तुम्हें अभ्यास नहीं करना है, इसे तुम इसी क्षण देख सकते हो। देखो मेरी ओर! तुम वहां नहीं हो; सर्व, समग्र ही आंखें बन गया है। सर्व ही तुम्हारे भीतर आंखें हो गया है। तुम सिर्फ उस समग्र की मरजी की मात्र अभिव्यक्ति रह गए हो। महसूस करो कि समग्र ही मेरे भीतर शब्द बन गया है, वही मुझे चला रहा है, वही मुझे बुला रहा है, वही मेरा उपयोग कर रहा है। और तब इस कमरे में वही रह गया है, सिर्फ वही है।

और तब समग्रता अखंड हो जाती है। तब टुकड़े खो जाते हैं और खंड कहीं भी नहीं बचते। और तब बोलने वाले और सुनने वाले के बीच एक महासंभोग घटित होता है। तभी तुम्हें उसकी उपस्थिति की प्रतीति होगी, लेकिन वह उपस्थिति तुम्हें तभी अनुभव होगी जब तुम अपने को भूल जाओ। परमात्मा का स्मरण कोई उसका नाम लेने से नहीं होता कि तुम उसका नाम जपते रहो— "राम—राम, कृष्ण—कृष्ण। " वह सब बेकार है, अर्थहीन है। उसके स्मरण का अर्थ है अपने को भूल जाना। यदि तुम नहीं हो, यदि तुम स्वयं को भूल गए हो, पूरी तरह मिट गए हो, तो फिर वही है। जब तुम नहीं होते हो तो अचानक वही होता हे। और यह बात एक क्षण में घट सकती है।

मुझे दूसरे विश्वयुद्ध की एक घटना याद आती है :

इंग्लैंड के एक छोटे—से गांव में एक चौराहे पर जीसस की मूर्ति लगी हुई थी। मूर्ति सुंदर थी : ऊपर हाथ उठाए हुए। और उस मूर्ति पर एक प्लेट लगी हुई थी जिस पर लिखा हुआ था, "कम अनटू मी"——मेरे पास चले आओ। दूसरे विश्वयुद्ध में वह मूर्ति नष्ट हो गई थी, उस पर एक बम गिर गया था। और युद्ध के बाद जब वापस निर्माण कार्य चल रहा था और गांव में वापस जीवन लौट रहा था, तो लोगों। ने उस मूर्ति की याद आई, अत: उन्होंने उसके टुकड़े खोजने शुरू किए। इधर—उधर खंडहरों में उसके टुकड़े मिल गए और उस मूर्ति को वापस स्थापित कर दिया गया। परंतु वे हाथ कहीं भी नहीं मिले। वे खो गए थे।

गाव की सभा ने फैसला किया कि किसी मूर्तिकार को नए हाथ बनाने के लिए कहा जाए। परंतु एक वृद्ध आदमी ने जो कि सदा उस मूर्ति के पास बैठा रहता था—जब वह मूर्ति वहां लगी हुई थी तब भी, ओर जब वह नहीं थी तब भी—उसने कहा, "नहीं, जीसस को बिना हाथों के ही रहने दो।"

सभा ने कहा, "हम उस प्लेट के लिए क्या करें? उस पर लिखा हुआ था कि 'कम अनटू मी'—मेरे पास दूसरे चले आओ; और उसके हाथ ऊपर उठे हुए थे।"

उस वृद्ध आदमी ने कहा, "प्लेट भी बदल डालो और उस पर लिख दो : मेरे पास चले आओ। मेरे पास दूसरे कोई हाथ नहीं हैं सिवाए तुम्हारे हाथों के।"

और अब वहां बिना हाथों की मूर्ति खड़ी है, और उसके नीचे लिखा हुआ है, "मेरे पास चले आओ। मेरे पास दूसरे कोई हाथ नहीं हैं, सिवाय तुम्हारे हाथों के।"

तुम्हारे हाथों में वही चल रहा है, तुम्हारी आंखों में वही घूम रहा है, और तुम्हारे हृदय में वही धड़क रहा है—वही समग्र। और याद रहे, उसके कोई दूसरे हाथ नहीं हैं। उसके पास दूसरी कोई आंखें नहीं हैं, उसके से पास दूसरा कोई हृदय नहीं है। वही धड़क रहा है; वही सब जगह जीवंत है। यही संदेश है।

वह कान का भी कान है मन का भी मन है वाणी की भी वाणी है प्राण का भी प्राण है आंख की भी आंख है ज्ञानीजन अपनी आत्मा को इन ज्ञानेंद्रियों से अलग कर ज्ञानेंद्रियों से ऊपर उठ जाते हैं और अमरता को उपलब्ध होते हैं।

ये सारी ज्ञानेंद्रियाँ तो सिर्फ साधन हैं, भीतर तो वही है काम करने वाला। यह बात जानकर तुम जानेंद्रियों के विरुद्ध नहीं होते। इस बात को जानकर सारा जोर बदल जाता है। तब तुम इन इंद्रियों से ग्रसित

नहीं होते। तुम सदा फिर भीतर के केंद्र को देखने में लगे रहते हो। और ऋषि कहता है कि इस अतिक्रमण को जानकर ही उन्होंने अमरत्व को पा लिया है। याद रहे कि केवल तुम्हीं मरते हो; जीवन कभी मरता नहीं। चूंकि तुम पैदा होते हो, तुम मरते भी हो। यह स्वाभाविक अंत है प्रत्येक जन्म का। जीवन तो शाश्‍वत चलता जाता है, जीवन कभी नहीं मरता। लहरें उसमें उत्पन्न होती हैं और विलीन हो जाती हैं। सरित की भांति जीवन तो चलता ही चला जाता है, चलता ही चला जाता है।

एक बार तुम अपनी तरंगों के भीतर इस सरिता को महसूस कर लो तो फिर तुम अमर हो गए। यदि तुम उसे अनुभव कर सको कि वही तुम्हारे भीतर से देख रहा है, वही श्वास ले रहा है, तो फिर तुम अमर हो। केवल यह खोल, यह शरीर का वाहन ही मिटेगा। तुम कभी भी नहीं मिटोगे। तुम तो सदा—सदा से हो।

कभी तुम वृक्ष थे क्योंकि तब वृक्ष वाहन था, क्योंकि उसने ही तुम्हारे द्वारा वृक्ष होना चाहा था। कभी तुम गाय थे, क्योंकि उसने ही तुम्हारे द्वारा गाय होना चाहा था। कभी तुम तितली थे, कभी फूल थे, कभी चट्टान थे....लेकिन तुम सदा—सदा से यहां हो। तुम सदा से यहां हो। तुम कोई नए मेहमान नहीं हो। कोई यहां नया मेहमान नहीं है, कोई यहां अजनबी नहीं है। तुम सदा से ही यहां हो, लेकिन भिन्न—भिन्न वाहनों

के रूप में। कभी चट्टान वाहन थी, अभी तुम स्त्री या पुरुष हो; अभी यह एक वाहन है।

यदि तुम इसे समझ सको और जान सको कि वाहन सिर्फ वाहन ही है, और वाहन बदला जा सकता है उसे बदलना ही पड़ेगा। लेकिन वह आतंरिक स्वरूप जो कि चेहरे बदलता रहता है, वह तो वैसा का वैसा ही रहता है। वह अमर है। जीवन अमर है। तुम मरणधर्मा हो, और तुम क्यों मरणधर्मा हो? क्योंकि तुमने अपना तादात्म्य वाहन से जोड़ लिया है। बैलगाड़ी पर चलते हुए तुम बैलगाड़ी ही हो जाते हो। रेलगाड़ी में यात्रा करते हुए तुम रेलगाड़ी ही हो जाते हो। हवाई—जहाज में उड़ते हुए तुम हवाई—जहाज ही हो जाते हो। तुम भूल ही जाते हो कि बैलगाड़ी, रेलगाड़ी, हवाई—जहाज आदि सब वाहन हैं।

तुम वाहन नहीं हो। तुम समग्र हो, तुम एक समग्रता हो जो कि वाहन बदलती जाती है। तब तुम अमर हो जाते हो। स्मरण रहे, तुम कभी अमर नहीं हो सकते यदि तुम शरीर से अपना तादात्‍म्‍य कर लो। तुम अमर हो यदि तुम शरीर के पार चले जाऔ। चेतना अमर है, जीवंतता अमर है।

सूत्र कहता है :

ज्ञानीजन ज्ञानेंद्रियों का अतिक्रमण कर इनसे ऊपर उठ जाते हैं और अमरता को उपलब्ध होते हैं। और जितना अधिक तुम उस आतंरिक, उस सारभूत, उस शाश्वत, उस अमरत्व को महसूस करते हो, उतना ही कम तुम इंद्रियों के जीवन से ग्रसित होते हो। तुम उनके साथ खेल कर सकते हो, लेकिन तब तुम उनसे ग्रसित नहीं होते।

कृष्ण अपनी बांसुरी बजाते हुए बांसुरी से ग्रसित नहीं हैं, कृष्ण गोपियों के साथ नाचते हुए उनसे ग्रसित नहीं होते। वह सिर्फ एक खेल है, लीला। यदि तुम अमरत्व को जानते हो तो जीवन एक खेल हो जाता है, न कि ग्रसितता।

तीसरा प्रवचन

समर्पण से रूपातरण

पहला प्रश्न:

आपने कहा कि जब गुरु की उपस्थिति उसकी अनुपस्थिति जैसी होती है और जब शिष्य भी अनुपस्थिति की अवस्था में आ जाता है। तभी परमात्मा का काम शुरू होता हे। यदि दोनों ही अनुपस्थिति की अवस्था में होते है, तो कृपया समझाएं की आध्यात्मिक साधना में गुरु की भूमिका होती है?

वास्तव में ऐसी कोई भूमिका नहीं होती। गुरु की तो भूमिका तभी हो सकती है जबकि गुरु व्यक्ति की भांति जीता है। यदि वह किसी व्यक्ति की भांति जीता हो तो ही कोई भूमिका हो सकती है। ये सारे शब्द—करना, भूमिका, प्रयास, सहायता—ये सब के सब अहंकार—केंद्रित हैं। उनका अर्थ है कि गुरु कुछ कर रहा है। नहीं, गुरु कुछ भी नहीं कर सकता है, वह है ही नहीं। लेकिन फिर भी उसके इर्द—गिर्द चीजें घटती हैं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि शिष्य रूपातरित नहीं होता है;

वह रूपांतरित होगा। और वह ऐसे ही गुरु के द्वारा रूपातरित हो सकता है जो कि कुछ भी नहीं कर रहा है। यदि गुरु कुछ कर रहा है तो शिष्य रूपातरित नहीं हो सकता। गुरु की तरफ से किया हुआ प्रयास यही बतलाता है कि गुरु अभी गुरु नहीं है। प्रयास का तो प्रश्न ही नहीं है।

गुरु तो होता है एक अनुपस्थिति की भांति, एक 'ना—कुछ' की हालत में। और यह तथ्य ही एक विराट शक्ति का कारण हो जाता है। यह तथ्य ही, यह शून्य की सत्ता ही उसके चारों ओर रहस्यात्मक घटनाओं का कारण हो जाती है। परंतु गुरु उन्हें कर नहीं रहा है। याद रहे, सरिता तो सागर की ओर बह रही है, किंतु सरिता नहीं बह रही है, बहने के लिए कुछ कर नहीं रही है। बहाव तो प्राकृतिक है। यह सरिता के लिए प्राकृतिक है कि बहे। इसमें सरिता कुछ प्रयास नहीं कर रही है। वृक्ष बढ़ रहा है, वृक्ष उसके लिए कुछ कर नहीं रहा है। कोई प्रयास नहीं है, कोई केंद्र भी नहीं है, कोई अहंकार भी नहीं है करने के लिए। यह बस हो रहा है।

जीवन एक घटना है, एक घटना का होना है। और एक व्यक्ति तभी गुरु होता है जब कि वह इस बोध पर आ गया हो। समग्र ही कर रहा है, और हम व्यर्थ ही परेशान हो रहे हैं, और हम व्यर्थ ही हस्तक्षेप कर रहे हैं, और हम व्यर्थ ही अपने भ्रांत केंद्रों को बीच में लाते रहते हैं। भ्रात, क्योंकि किसी भी व्यक्ति के पास केंद्र नहीं हो सकता।

महान ईसाई संत मिस्टर इकहार्ट ने कहा है कि सिर्फ परमात्मा ही 'मैं' कह सकता है। कोई व्यक्ति वस्तुत: नहीं कह सकता है 'मैं'। क्योंकि 'मैं' का संबंध समग्र से है। मेरा हाथ नहीं कह सकता है 'मैं' क्योंकि हाथ तो मेरा है। मेरा पांव नहीं कह सकता 'मैं' क्योंकि पांव तो मेरा है। मेरा पांव, मेरा हाथ, मेरी आंखें, वे नहीं कह सकते 'मैं' क्योंकि वे सब हिस्से हैं, एक वृहत इकाई के अंग हैं। तुम भी अपने आप में एक इकाई नहीं हो। तुम एक विराट समग्रता के हिस्से हो। तुम सिर्फ एक अंश हो, एक आणविक कोष हो समग्र के। तुम नहीं कह सकते 'मैं'।

इसीलिए सारे धर्म कहते हैं कि 'मैं' ही एकमात्र बाधा है, क्योंकि 'मैं' एक सर्वाधिक असत्य चीज है संभवतया। वह तुम्हारा नहीं है। तुम्हें तो यह भी पता नहीं कि तुम क्यों पैदा हुए, तुम्हें पता नहीं है कि तुम्हें

जीवन में कौन ले आया है। किसी ने तुमसे नहीं पूछा, किसी ने तुम्हारी राय नहीं ली। तुमने अचानक पाया कि तुम जिंदा हो। फिर कौन है जो तुम्हारे भीतर श्वास लेता चला जाता है? तुम्हें कुछ भी पता नहीं है।

और फिर अचानक एक दिन तुम नहीं हो जाओगे। कोई तुमसे पूछेगा भी नहीं। यह तुम्हारा निर्णय नहीं है कि तुम पैदा हो अथवा तुम मरो। लेकिन कुछ होता है, और होता चला जाता है। कुछ घटना घटित होती है और तुम पैदा हो जाते हो, और कोई घटना घटती है और तुम 'न' हो जाते हो; तुम पुन: खो जाते हो। कैसे कह सकते हो तुम 'मैं'? तुम्हारा कोई भी तो निर्णय नहीं होता। कोई निर्णय तुम्हारा नहीं होता। 'मैं' तो सिर्फ परमात्मा का ही हो सकता है।

फिर एक और भी समस्या है, और वह समस्या यह है कि यदि गुरु मदद नहीं कर सकता, यदि गुरु कुछ नहीं कर सकता, तो फिर गुरु यह वादा कैसे कर सकता है। अभी मुझे किसी ने एक भित्ति—चित्र दिखाया जिसमें कहा गया है. "मैं कुछ सिखाने नहीं आया हूं बल्कि जगाने आया हूं। समर्पण करो और मैं तुम्हें रूपांतरित कर दूंगा। यह मेरा वादा है। "फिर मैं कैसे तुम्हें वादा कर सकता हूं? फिर कैसे मैं यह कह सकता हूं कि मैं तुम्हें रूपांतरित कर दूंगा? वास्तव में यह एक तरकीब है। मैं तुम्हें रूपांतरित करने वाला नहीं हूं—मैं तो हूं ही नहीं—लेकिन यदि तुम समर्पण करो तो तुम रूपांतरित हो जाओगे। यदि तुम समर्पण करो तो तुम्हारा रूपांतरण हो जाएगा _ नहीं कि मैं तुम्हें रूपांतरित करूंगा। तुम्हारा समर्पण ही तुम्हें उस बिंदु पर ले आता है जहां कि रूपांतरण घटित होता है। और जब वह हो जाएगा तब तुम्हें पता चलेगा, और तुम हंसोगे कि यह भी खूब मजाक रही...!

मैं कुछ भी नहीं कर सकता। करने की सारी धारणा ही असंगत है। मैं तो यहां हूं ही नहीं। लेकिन तुम्हें वह भाषा समझ में नहीं आएगी। तुम्हें मैं की भाषा ही समझ में आएगी। इसीलिए मैंने कहा है... और यह बात सही भी है कि तुम रूपांतरित हो जाओगे। यह बात बिलकुल सत्य है कि एक बार तुम समर्पित हो जाओ तो फिर तुम्हारे रूपांतरण में कोई बाधा नहीं है; तुम फिर से जन्म जाओगे। और मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं और मैं कुछ कर भी नहीं सकता हूं। तुम्हें रूपांतरित करने के लिए कुछ भी नहीं चाहिए। तुम स्वयं काफी हो।

लेकिन तुम्हारा आत्मविश्वास खो गया है, और यह तरकीब सिर्फ तुम्हें तुम्हारा आत्मविश्वास वापस लौटाने के लिए है। तुम अपनी संभावना भूल गए हो। तुम भूल गए हो कि तुम्हारे भीतर कौन जीवंत है, कौन—सी महान शक्ति तुम्हारे भीतर छिपी पड़ी है। तुम भूल गए हो, और किसी की आवश्यकता है कि वह तुम्हें इस बात की याद दिला दे। तुम्हारे पास खजाना है और तुम उसे भूल गए हो। मैं तुम्हें खजाना नहीं दे सकता, तुम स्वयं ही वह खजाना हो। मैं सिर्फ तुम्हें दिखा सकता हूं सिर्फ तुम्हें एक संकेत कर सकता हूं।

जब जीसस कहते हैं, "मैं तुम्हारा उद्धार करूंगा, "जब जीसस कहते हैं, "मैं तुम्हें मुक्त करूंगा, "या बुद्ध कहते हैं, "मैं हूं तुम्हारा मार्ग, तुम्हारा द्वार, "और जब कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "तुम मुझे समर्पण करो, और मैं तुम्हारे लिए सब कुछ करूंगा, "तो ये सारी तरकीबें हैं उनके लिए जो कि स्वयं को भूल गए हैं। परंतु वादा सही है क्योंकि घटना घटती है। नहीं कि कोई तुम्हारी सहायता करता है, तुम्हारी स्वयं की ऊर्जा ही स्वरूप में आ जाती है, तुम्हारी ऊर्जा ही जीवंत हो जाती है, तुम्हारे अपने स्रोत ही जुड़ जाते हैं और तुम्हारा अपना स्वरूप ही सक्रिय हो जाता है।

लेकिन तुम 'मैं—विहीन' भाषा नहीं समझ सकते हो, इसलिए मैंने 'मैं' की भाषा बोली है कि मैं कोई शिक्षा देने नहीं आया हूं बस जगाने आया हूं। कोई भी नहीं आया है, कोई आ भी नहीं सकता। हम सदा से यहां हैं—तुम और मैं। न मैं आ सकता हूं न मैं जा सकता हूं। कोई जगह भी नहीं है जाने के लिए, और न कोई जगह है आने के लिए। हम सदा से अस्तित्व में मौजूद हैं। हम सदा—सदा से अस्तित्व में हैं। और मैं कौन होता हूं तुम्हें

शिक्षा देने वाला, अथवा जगाने वाला? लेकिन तुम स्वयं ही अपनी संभावना को भूल गए हो, अपनी प्रसुप्त संभावना को भूल गए हो, और किसी तरकीब की जरूरत है जो कि तुम्हें पुन: तुम्हारे पर लौटा लाए।

और यह भी स्मरण रहे कि यह कोई इसलिए नहीं कर रहा हूं कि मुझे तुम्हारे प्रति बहुत करुणा है। नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं है। मुझे तुम्हारे प्रति कोई करुणा नहीं है। तुम्हें किसी करुणा की जरूरत भी नहीं है। तुम कोई गुलाम नहीं हो, तुम कोई दरिद्र नहीं हो, तुम कोई भिखारी नहीं हो। तुम स्वयं दिव्य हो। तुम उतने ही दिव्य हो जितने कि कोई कृष्ण अथवा कोई बुद्ध हो सकते हैं। किसी भी चीज की कमी नहीं है।

सभी कुछ मौजूद है, और तुम गहरी नींद में सोए हो। और जब मैं बोलता हूं अथवा प्रवचन आदि देता हूं अथवा कुछ करता हुआ दिखाई पड़ता हूं तो ऐसा नहीं है कि मुझे तुम्हारे प्रति कोई करुणा है—नहीं! ऐसा मेरे भीतर घट रहा है, और ऐसा मैं खेल करता रहता हूं।

यह भी एक खेल है। मुझे इसे करने में आनंद आता है। इसके लिए तुम्हें मेरे प्रति अनुगृहीत होने की आवश्यकता नहीं! मैं इसका आनंद लेता हूं। तुम्हें मेरे प्रति जरा भी ऋणी होने की जरूरत नहीं है। यह मेरा आनंद है, मेरा प्रेम है। यह ऐसा ही है जैसे कि कोई फूल खिला हो और तुम उसके पास से निकलो और वह तुम्हें अपनी सुगंध भेंटस्वरूप दे दे। उसी तरह... मेरे भीतर भी कुछ खिल गया है, और तुम मेरे पास से गुजरते हो और मैं तुम्हें यह उपहार स्वरूप दे देता हूं। यदि तुम उसे ले लेते हो तो मैं तुम्हारे प्रति कृतज्ञ हूं और यदि तुम नहीं लेते हो तो तुम अपने मालिक हो।

वस्तुत: यदि यह बात तुम्हारे भीतर गहरी चली जाए तब फिर न कोई गुरु है, और न कोई शिष्य है। तब संबंध खो जाता है। और खो ही जाना चाहिए। केवल तभी जब कि गुरु भी नहीं है, और शिष्य भी नहीं है, और सारा संबंध खो गया है तभी परमात्मा काम करना प्रारंभ करता है।

जब मैं गुरु हूं और तुम शिष्य हो तब द्वैत बना रहता है। और ऐसे बहुत से गुरु हैं जो कि यह बात तुम्हारे ऊपर थोपते रहते हैं कि तुम शिष्य हो और वे गुरु हैं, कि वस्तुत: वे ऊंचे हैं और तुम नीचे हो। और इस तरह वे एक पदानुक्रम पैदा कर देते हैं। वस्तुत: वे अपने चारों ओर एक प्रकार की राजनीति पैदा कर देते हैं। इस तरह के गुरु अधिक मददगार नहीं होते। वे नुकसान करने वाले हो सकते हैं, क्योंकि वे तुमको वह नहीं दे रहे जो कि तुम्हारे पास पहले से ही मौजूद है। वे फिर एक प्रकार का भ्रम पैदा कर रहे हैं।

मैं जो भी यहां कर रहा हूं वह वस्तुत: कोई संबंध निर्मित नहीं कर रहा हूं बल्कि इसके विपरीत सारे संबंधों को नष्ट कर रहा हूं। यदि हम यहां पर बिना सोचे हो सकें कि कोई गुरु है और कोई शिष्य है, यदि सिर्फ हम यहां हो सकें—उपस्थित, जाग्रत, जीवत—तो घटनायें अपने से घटने लगती हैं।

पति और पत्नी—यह एक संबंध है। पिता और पुत्र—यह एक संबंध है। गुरु और शिष्य—यह कोई संबंध नहीं है, सिर्फ यह दिखाई पड़ता है, लेकिन यह कोई संबंध नहीं है, क्योंकि सारा प्रयास द्वैत को मिटाने का है, और संबंध सिर्फ द्वैत में हो सकता है।

अत: एक गुरु वास्तव में प्रयास कर रहा है कि गुरु न हो, और गुरु यह भी प्रयत्न कर रहा है कि तुम शिष्य न हो। सारा प्रयास तुम्हें उस बिंदु पर लाने के लिए है जहां कि संबंध विलीन हो जाते हैं, जहां कि दो नहीं बचते बल्कि सिर्फ एक की उपस्थिति ही होती है। और जब कोई संबंध नहीं बचता, लेकिन तुम भी सजग होते हो, और मैं भी सजग होता हूं स्मरण रहे यदि तुम सजग हो और मैं भी सजग हूं तब मैं भी नहीं हूं और तुम भी नहीं हो, इस सजगता में ही 'मैं' विलीन हो जाता है और दो दीये की लौ एक हो जाती हैं। केवल उसी अखंडता में परमात्मा काम करना शुरू करता है।

परमात्मा केवल अद्वैत में ही काम करता है, यही उसका काम करने का ढंग है। जितने अधिक तुम बंटे हुए हो उतना ही कम वह काम कर सकता है। जितने अधिक तुम बंटे हुए हो, उतने ही तुम परमात्मा से दूर चले जाते हो। यही मेरा मतलब है।

इसलिए इस प्रश्न के बारे में दो बातें : पहली, कि गुरु कुछ भी नहीं कर रहा है, कोई रोल अदा नहीं कर रहा है। वह कोई प्रयास भी नहीं कर रहा है। यह उसकी ओर से कोई प्रयत्न या प्रयास नहीं है। वह सजग हो गया है, जाग गया है, इसलिए कुछ उसके भीतर से बह रहा है। यह वैसे ही है जैसे नदी का बहना। जहां कहीं भी उसकी सरिता बहेगी, वह लोगों को और अधिक जागरूक करेगी। ऐसा नहीं है? इसके लिए उसे कुछ प्रयास करने की जरूरत है, नहीं, यह तो उसका स्वभाव है। इसलिए गुरु स्वभाव से ही गुरु है, बिना किसी प्रयास के। वह जहां भी जाएगा, वहीं वह गुरु है।

मुझे एक इजिप्तियन फकीर झुन—नुन के बारे में एक कहानी याद आती है :

झुन—नुन सदा भिखारी के वेश में घूमता रहता था, और राजे—महाराजे भी उसके शिष्य थे। एक बहुत अमीर शिष्य ने उससे पूछा, "आप यह भिखारी की तरह क्यों घूमते रहते हो? आप क्यों जनसाधारण से मिलते—जुलते हो? यह बात कुछ ठीक नहीं है, क्योंकि आप एक महान गुरु हैं। "कहते हैं कि झुन—नुन ने कहा, "एक गुरु अपने स्वभाव से ही गुरु होता है, इसलिए वह जहां भी जाता है, वह वहीं पर गुरु है, जहां कहीं भी हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। यदि वह भीड़ में भी खड़ा है तो भी वह गुरु है और वहां? वह काम करता होता है। और भीड़ सिर्फ उसकी उपस्थिति से ही रूपांतरित होती रहती है—मात्र उसकी उपस्थिति से ही। "

ऐसा कहते हैं कि कुरान में मुहम्मद ने कहा है कि किसी भी गुरु को किसी भी अमीर आदमी के घर नहीं जाना चाहिए। यदि कोई अमीर आदमी उससे मिलना चाहता है तो उसे गुरु के पास आना चाहिए। एक सूफी फकीर बायजीद से पूछा गया, जो कि अक्सर अमीर लोगों के घर जाया करता था और बादशाह के महल में भी जाता था, उससे पूछा गया, "तुम पैगंबर के उपदेश के विरुद्ध क्यों जाते हो? मुहम्मद ने कहा है कि किसी भी गुरु को अमीर आदमी के घर नहीं जाना चाहिए, उसकी कोई जरूरत नहीं है। यदि अमीर आदमी की जरूरत हो तो उसे ही गुरु के चरणों में आना चाहिए। लेकिन आप तो महल में भी चले जाते हैं, अत: क्या बात है? क्या आप पैगंबर के खिलाफ हैं, या कि आपका इस बात में विश्वास नहीं है?"

बायजीद ने कहा, "तुम्हें सही बात का पता नहीं है। मुहम्मद सही हैं और मैं उनका उपदेश मानता हूं, और उसी के अनुसार कर रहा हूं। लेकिन चाहे गुरु बादशाह के महल में जाए, और चाहे बादशाह गुरु के घर आए, सदा गुरु ही दूसरे को बदलता है। इससे कुछ भी फर्क नहीं पड़ता। " बुनियादी रूप से तो तुम ही गुरु के पास आते हो। चाहे गुरु महल में जाए और चाहे बादशाह गुरु के झोपड़े में आए, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। सदा बादशाह ही गुरु के पास आता है क्योंकि वही रूपांतरित होता है। वही रूपांतरित होगा।

बायजीद कहता है कि यह गुरु की प्रकृति है कि वह दूसरों को बदलता है, इसमें कोई प्रयास नहीं है। गुरु के द्वारा कुछ भी नहीं किया जाता है, केवल उसकी उपस्थिति... और यदि वह कुछ करता भी नजर आता है तो वह भी एक तरकीब है, क्योंकि तुम अभी न—करने की भाषा नहीं समझते। तुम केवल प्रयास की भाषा ही समझ सकते हो। इसलिए वह तुम्हारे लिए एक भाषा ढूंढता है। यदि तुम उसकी भाषा नहीं समझते तो क्या हुआ, वह तो तुम्हारी भाषा भलीभांति समझ सकता है। यदि तुम उसे नहीं भी समझ सको तो क्या हुआ, वह तो तुम्हें अच्छी तरह समझ सकता है।

इसीलिए गुरु तुम्हें वही देता है जो तुम समझ सकते हो। और धीरे— धीरे तुम्हारी समझ बढती जाती है और एक दिन जब तुम उस बिंदु पर आ जाओगे जबकि उसकी भाषा समझ सकोगे तो तुम हंसोगे, क्योंकि उसने

कुछ भी नहीं किया है। लेकिन उस क्षण तुम उसके प्रति कृतज्ञता के भाव से भरे होगे, क्योंकि बिना कुछ किये भी उसने तुम्हें रूपांतरित कर दिया।

वास्तव में, यदि कुछ भी किया जाए तो वह एक प्रकार की हिंसा होगी। यदि तुम्हें रूपांतरित करने के लिए, बदलने के लिए मैं कुछ भी करूं तो वह आक्रामक होगा, वह एक प्रकार से हिंसा होगी। कोई भी प्रयास हिंसा है। लेकिन मात्र मेरी उपस्थिति, मात्र मेरे निकट... और तुम्हारे भीतर कुछ होने लगता है, और मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं केवल तभी वह प्रेम है, केवल तभी वह हिंसा नहीं है।

और एक बहुत अजीब घटना घटती है—यदि कोई तुम्हें बदलने की कोशिश करता है तो तुम उसका प्रतिरोध करते हो, क्योंकि सहज प्रवृत्ति से ही तुम यह जान जाते हो कि यह हिंसा है, और उसी प्रवृत्ति से तुम अपनी रक्षा शुरू कर देते हो।

यदि कोई तुम्हें बदलने की चेष्टा करता है और तुम्हें अच्छा, नैतिक, धार्मिक बनाने की कोशिश करता है तो तुम उसका प्रतिरोध करोगे। तुम्हारे अहंकार को चोट लगेगी, और तुम उसके विरुद्ध जाने लगोगे। तुम ऐसी बातें भी करने लगोगे जो कि तुमने कभी नहीं करनी चाहीं—सिर्फ निषेध के लिए।

अच्छे पिता बुरी संतति को जन्म देने का कारण बन जाते हैं। तथाकथित साधु और संत सामाजिक पतन तथा अनैतिकता जो कि चारों ओर संसार में फैली है, उसके कारण हैं—क्योंकि वे जबरदस्ती थोपते चले जाते हैं।

और जब भी कोई जबरदस्ती कुछ आरोपित करता है, चाहे वह स्वर्ग के लिए ही जबरदस्ती करता हो लेकिन फिर भी तुम मना कर दोगे। और अच्छा है मना कर देना क्योंकि वह तुम्हें मारे डाल रहा है, तुम्हारी आत्मा की हत्या कर रहा है। यदि तुम्हें स्वर्ग में भी जबरदस्ती पहुंचा दिया जाए तो तुम वहां भी मरे हुए रहोगे। इससे तो अपनी मर्जी से नर्क में चले जाना अच्छा है, कम से कम तुम स्वतंत्र तो रहोगे। कम से कम तुम आत्मा तो होगे।

एक सच्चा गुरु तुम पर कुछ भी थोपता नहीं है—जरा भी नहीं, परोक्ष तरीके से भी नहीं। क्योंकि यदि गुरु भी मन कैसे काम करता है इस बात को नहीं जानता है तो फिर कौन जानेगा? यदि वह इस मानव मन तथा चेतना के काम करने के ढंग को नहीं जानता है—कि यदि इस पर कुछ भी थोपा या जबरदस्ती की तो यह विद्रोही हो जाएगा, अवरोध पैदा करेगा—तो फिर कौन जानेगा? गुरु इस बात को अच्छी तरह जानता है, इसीलिए वह कुछ भी नहीं करता है। वह सिर्फ तुम्हें अपने निकट रहने देता है। वह तरकीबें ईजाद कर सकता है जिससे कि तुम निकट रह सको। उदाहरण के लिए, मैं तुमसे कहता हूं कि ध्यान करो। तुम ध्यान करते हो, लेकिन असली बात यह है कि तुम मेरे निकट हो। और जब तुम ध्यान करते हो, मेरे बिना कुछ किए, तुम्हें कुछ घटता है।

मैं जो तुमसे बात कर रहा हूं यह भी एक तरकीब है। बात करने की कोई भी जरूरत नहीं है। यदि तुम समझ सको तो तुम सिर्फ मेरे निकट यहां बैठ सकते हो। कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन तब तुम ऊब जाओगे। तुम कहोगे, "मैं यहां बैठा—बैठा क्या कर रहा हूं? "

तुम्हारे मन को जरूरत है कुछ खिलौनों की जिनसे कि वह बैठा खेलता रहे, इसलिए मैं तुम्हें कुछ खिलौने दे देता हूं और तुम्हारा मन उन खिलौनों से खेलता रहता है। और सारे वक्त इस दौरान कुछ तुम्हें होता रहता है जो कि आधारभूत बात है।

तुम्हें उसका पता नहीं है, लेकिन एक दिन तुम्हें उसका पता लगेगा। तब तुम जानोगे कि क्या तरकीब थी, क्या विधि थी। विधि यही है कि तुम्हारे मन को कहीं उलझाए रखना है ताकि तुम मुझे उपलब्ध हो सकी और मेरी उपस्थिति को उपलब्ध हो सकी ' तब मैं तुमसे मिल सकता हूं बिना तुम्हारे मन के बीच में बाधा डाले।

दूसरा प्रश्न :

आज सबेरे आपने आंतरिक संभोग तथा उसके आरगाज्य यानी महा—संभोग की बात की जो कि बाह्य पुरुष—शरीर तथा आंतरिक स्त्रैण—अचेतन के बीच घटता है तथा इसका उल्टा भी होता है। कृपया बतायें कि जो सक्रिय ध्यान हम यहां पर कर रहे हैं उनमें यह कैसे घटित होता है?

जो सक्रिय ध्यान तुम यहां पर कर रहे हो उनमें ऐसा घटता है, क्योंकि जो भी भीतर छिपा पड़ा है और दबा दिया गया है वह उनसे बाहर निकल आता है। यह एक रेचन है, एक अभिव्यक्ति है। यह दमन की उल्टी प्रक्रिया है। अत: तुम्हें दमन की प्रक्रिया को समझना पड़ेगा।

कोई मर गया है, यह बड़े दुख की बात है, लेकिन तुम अपने मन में सोचते हो कि यह तो पुरुष के लिए ठीक नहीं है कि वह रोए और चिल्लाए। यह तो एक कमजोरी की निशानी है और तुम तो सदा अपनी एक बहुत मजबूत होने की प्रतिमा लिए चल रहे हो। हर कोई जानता है कि तुम एक बड़े दृढ़—संकल्प वाले आदमी हो, अत: तुम कैसे रो सकते हो? यह तो स्त्रियों की बात है, अत: तुम आंसूओ को दबा लेते हो। वे आना चाहते हैं, बह जाना चाहते हैं और मुक्त हो जाना चाहते हैं, लेकिन तुम उन्हें दबा लेते हो।

वे आंसू जहर बन जायेंगे, क्योंकि शरीर का विधान चाहता था कि उन्हें बाहर निकाल दे, और तुमने उन्हें दबा दिया। तुम मुस्कुराये चले जाते हो। तुम्हारा हृदय तो रो रहा है और चीख रहा है, लेकिन तुम मुस्कुराये चले जाते हो।

तुम एक प्रतिमा को संभालने की कोशिश कर रहे हो। तुम स्वभावगत नहीं हो सकते। तुम अपने दिल, दिमाग, शरीर को प्राकृतिक ढंग से काम नहीं करने दे सकते। तुम उन्हें कुछ का कुछ रूप दिए जा रहे हो। तुम चुनाव करते हो कि कुछ है जो कि दबा लेना है, और कुछ है जिसे कि अभिव्यक्त कर देना है। वह जो दमित हिस्सा है वही अचेतन बन जाता है।

वस्तुत: तो अचेतन जैसा कुछ भी नहीं होता। तुम कुछ दबाते हो और तुम उसको इस बुरी तरह से दबाते हो कि तुम स्वयं भी उसको जानना नहीं चाहते। तुम स्वयं भी उसके प्रति सचेतन नहीं होना चाहते। क्योंकि वह तुम्हारे मन पर भारी बोझ की तरह हो जाएगा, इसलिए तुम उसको भूलना चाहते हो। तुम इस बात को लगातार भूलते रहना चाहते हो कि वह वहा है भी। तुम उसके अस्तित्व को भी भूल जाना चाहते हो, और इस भांति तुम स्वयं ही भीतर एक अचेतनता निर्मित कर देते हो।

यही मार्ग है जिससे तुम विभाजित हो जाते हो; तुम दो में बंट जाते हो। जो हिस्सा मना कर दिया जाता है वह अचेतन हो जाता है और जो हिस्सा स्वीकृत हो जाता है वह चेतन हो जाता है। यदि तुम पुरुष हो तो तुम स्त्री को मना कर देते हो क्योंकि अभी तक कोई संस्कृति इस पृथ्वी पर ऐसी पैदा नहीं हुई जो कि बाईसेक्यूआलिटी, दोनों लिंगों को स्वीकार कर सके। जितनी भी संस्कृतियां अभी तक पैदा हुई हैं, इस बात से अवगत नहीं हो सकीं कि पुरुष होना अथवा स्त्री होना पूर्ण होना नहीं है। यह सिर्फ सापेक्ष है, यह सिर्फ मात्रा का अंतर है।

यदि तुम पुरुष हो तो इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम सौ प्रतिशत ही पुरुष हो। कोई भी नहीं हो सकता। सौ प्रतिशत पुरुष होने के लिए तुम्हें सिर्फ अपने पिता से ही पैदा होना पड़ेगा जिसमें कि मां का कोई भी योगदान नहीं हो। यह बात असंभव है। अपने सौ प्रतिशत स्त्री होने के लिए पिता का उसमें कोई लेना—देना

नहीं होना चाहिए। केवल मां अकेली का ही योगदान होना चाहिए। क्योंकि यदि पिता कुछ भी योगदान देता है तो पुरुष तत्व भीतर प्रवेश कर गया; यदि मां कुछ भी योगदान देती है तो स्त्री तत्व प्रवेश कर गया। यह एक नयी खोज है जो गहन मनोविज्ञान के द्वारा खोजी गयी है। यह एक नयी खोज है पश्चिम के लिए, किंतु पूर्व में तंत्र इस बात को सदा से जानता रहा है।

पुरुष सिर्फ सापेक्ष रूप से ही पुरुष है। वह साठ प्रतिशत पुरुष हो सकता है और चालीस प्रतिशत स्त्री हो सकता है। अथवा एक स्त्री साठ प्रतिशत स्त्री हो सकती है और चालीस प्रतिशत पुरुष हो सकती है। इसीलिए बहुत—सी असाधारण बातें हो जाती हैं। कभी—कभी मात्राएं इतनी निकट होती हैं कि कोई व्यक्ति इक्यावन प्रतिशत पुरुष हो और उनचास प्रतिशत स्त्री हो; तब तुम यह पता नहीं लगा सकते कि वह पुरुष है या स्त्री है। वह बात करेगा, चलेगा—फिरेगा स्त्री की तरह से, यह उनचास प्रतिशत का मामला है। और यह अंतर सिर्फ हारमोन्स का ही है। नए हारमोन्स दिए जा सकते हैं। यह बिलकुल सीमा पर का ही मामला है कि उनचास प्रतिशत स्त्री और इक्यावन प्रतिशत पुरुष। तुम थोड़े—से स्त्री के हारमोन्स और दे दो और संतुलन बदल जाएगा और वह पुरुष स्त्री में बदल जाएगा।

ऐसी बहुत सी घटनाएं होती हैं कि अचानक कोई लड़का लड़की हो गया या कोई लड़की लड़का हो गई। तब जाकर वैज्ञानिकों को इस घटना की जानकारी हुई। तब उन्हें पता चला कि ये सीमा पर खड़े लोगों के मामले हैं। अब हारमोन्स उपलब्ध हैं, और मैं सोचता हूं कि वह वक्त दूर नहीं है, और यह जल्दी ही होगा, इस सदी के पूरे होते—होते प्रत्येक को ये विकल्प उपलब्ध होंगे कि तुम अपने सेक्स को, यौन को बदल सकोगे।

यह विचार अच्छा है क्योंकि यदि कोई आदमी तीस वर्ष तक पुरुष की तरह रहा तो यह एक परिवर्तन रहेगा। वास्तव में, एक स्त्री होना एक दूसरे ही जगत में प्रवेश करना है और यह जो परिवर्तन होगा वह चांद पर जाने से भी ज्यादा बड़ा परिवर्तन होगा। चांद पर कुछ भी तो नहीं है, वह पृथ्वी की तरह ही है। किंतु एक पुरुष का स्त्री होना अथवा एक स्त्री का पुरुष होना पूरी तरह एक विपरीत ध्रुव पर चले जाना है।

सचमुच जब यह विकल्प संभव हो जाए तो सिर्फ जो मूर्ख होंगे, वे ही इसका लाभ नहीं लेंगे। जो बुद्धिमान हैं, वे इसका लाभ लेंगे, क्योंकि तब तुम जान सकते हो और दो बिलकुल ही भिन्न जगतों में जी सकते हो। इससे आदमी के मन को एक नया प्रकाश मिलेगा क्योंकि पुरुष कभी नहीं समझ सका कि वास्तव में स्त्री होती क्या है, और न स्त्री ही समझ सकी है कि पुरुष क्या होता है। उनके मनोविज्ञान एक दूसरे से इतने भिन्न हैं कि वे एक दूसरे के ठीक विपरीत ध्रुवों पर हैं।

फ्रायड ने कहा है, "मैं मनुष्य के मनोविज्ञान पर चालीस साल से काम कर रहा हूं लेकिन अब भी मैं यह नहीं बता सकता कि स्त्री चाहती क्या है, कि उसकी इच्छा क्या है, कि उसका मन किस भांति काम करता है। "

यह कठिन है क्योंकि एक पुरुष एक स्त्री को नहीं समझ सकता। जो भी वह समझ सकता है वह सिर्फ एक दृष्टिकोण ही होगा, क्योंकि वह दूसरे ही ध्रुव पर खड़ा है। वह स्त्री की तरफ पुरुष की भांति देखेगा, और वहीं सारी बात बदल जाती है। एक स्त्री, पुरुष को कभी नहीं जान सकती क्योंकि वह स्त्री के बिंदु से उसे देखेगी। और वे दोनों अपनी जगह भी तो नहीं बदल सकते। यदि जैविक—विज्ञान हमारी मदद करे तो पुरुष और स्त्री के बीच का पुराना विवाद मिट सकता है।

मैं कह रहा हूं कि तुम स्त्री या पुरुष हो केवल सापेक्ष रूप से। और यदि तुम पुरुष हो तो तुम्हारा जो दूसरा हिस्सा है जो कि स्त्री है, जो कि तुम्हारी मां का योगदान है, उसे तुम दबाते हो। क्यों? क्या जरूरत है उसके दमन की? हम इसलिए उसे दबाते हैं क्योंकि हम तर्क के आधार पर जीते हैं। यह एक बड़ी से बड़ी गलती है जो कि आदमी ने की है। तुम तर्क के आधार पर जीते रहे हो और जीवन बिलकुल अतार्किक है।

जीवन दोनों है, पुरुष और स्त्री साथ—साथ। और तर्क हमेशा या तो पुरुष का है या फिर स्त्री का है। तुम्हारा तर्क कहता है कि तुम पुरुष हो इसलिए तुम्हें उन सब गुणों को काट डालना चाहिए जो कि स्त्री के हैं। और वही दमित किया हुआ हिस्सा अचेतन बन जाता है। तुम एक स्त्री हो, तो सब लोग कहते हैं कि तुम्हें दयालु, प्रेमपूर्ण होना चाहिए, सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए। तुम्हें निर्दयी नहीं होना चाहिए, तुम्हें घृणा नहीं करनी चाहिए, तुम्हें आक्रामक नहीं होना चाहिए, क्योंकि यह कोई ढंग नहीं है स्त्री होने का।

यह मूढ़ता की बात है। वास्तव में, यदि कोई स्त्री आक्रामक हो जाए तो उसकी तुलना नहीं की जा सकती। कोई भी पुरुष उससे प्रतियोगिता नहीं कर सकता।

हर पुरुष की आक्रामकता थक जाती है क्योंकि उसने उसका बहुत उपयोग किया है। परंतु स्त्री ने अपने पुरुष का उपयोग नहीं किया है, इसलिए उसका पुरुष अभी ताजा है और युवा है। यदि वह आक्रामक हो जाए तो फिर कोई पुरुष ऐसा नहीं है जो उससे प्रतियोगिता कर सके। यदि वह क्रोध में आ जाए और हिंसक हो जाए तो पुरुष उसके समक्ष फीका पड़ जाएगा।

और वही बात पुरुष के साथ है। वे कहते हैं कि पुरुष को आक्रामक, हिंसक, शक्तिशाली होना चाहिए। उसके पास संकल्पशक्ति होनी चाहिए। उसे कमजोर नहीं होना चाहिए। उसे प्यार अथवा सहानुभूतिपूर्ण नहीं होना चाहिए; ये सब बातें स्त्रैण हैं। अगर एक पुरुष प्रेम करता है तो कोई स्त्री उससे प्रतियोगिता नहीं कर सकती। कोई स्त्री नहीं कर सकती क्योंकि उसकी स्त्री सदा कुंवारी, सदा ताजा, युवा तथा अछूती रहती है।

मैं जो कह रहा हूं वह यह कि तुम्हारा दूसरा हिस्सा अतर्क्य है, इसलिए तुम उसे इंकार कर देते हो ताकि तुम्हारी प्रतिमा स्पष्ट हो, तर्कसंगत हो।

मैंने सुना है :

एक बार ऐसा हुआ कि एक बहुत बड़े झेन रहस्यवादी गुरु की मृत्यु हो गयी। उसका एक शिष्य लिंची अपने गुरु से भी ज्यादा प्रसिद्ध हो चुका था—वास्तव में उसका गुरु उसके कारण ही सारे जापान में प्रसिद्ध हुआ था, क्योंकि लिंची एक महान व्यक्ति था। जब गुरु की मृत्यु हो गयी तो हजारों शिष्य अपनी श्रद्धांजलि देने इकट्ठे हुए।

उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि लिंची रो रहा था और चिल्ला रहा था। आंसू उसके गालों पर लगातार बह रहे थे। बहुत से मित्रों ने उससे कहा कि यह तुम क्या कर रहे हो? लोग जो यहां इकट्ठे हुए हैं वे बातें कर रहे हैं, और कह रहे हैं, "हम तो सोच भी नहीं सकते कि लिंची रो रहा होगा। हम तो सोचते थे कि वह एक ऐसा व्यक्ति है जो कि पूरी तरह अनासक्त है, जिसने सभी कुछ त्याग दिया है, और अब यह रो रहा है। और यही आदमी, लिंची हमको उपदेश देता रहा है कि आत्मा अमर होती है, कि सिर्फ शरीर ही मरता है, और शरीर कुछ ज्यादा नहीं है, धूल का फिर धूल में मिल जाना है। तो फिर वह क्यों रो रहा है? "

उन्होंने इस बात का उत्तर मामा। वे बिलकुल तर्कसंगत थे। जो आदमी यह कहता हो कि आत्मा अमर है, उसके लिए मृत्यु का कोई अर्थ नहीं होना चाहिए। "फिर तुम क्यों रो रहे हो? " उन्होंने कहा।

"तुम ही तो कहते हो कि अनासक्ति ही कुंजी है, फिर तुम क्यों तुम्हारे गुरु के प्रति आसक्त हो? केवल शरीर ही मरा है। और तुम सदा से उपदेश देते रहे हो कि शरीर तो एक मृत चीज है। फिर तुम क्यों उसके लिए चिंतित हो? सिर्फ एक मृत चीज ही मृत हो गयी है। "

चूंकि वे तर्कसंगत थे, उन्होंने उससे उत्तर की अपेक्षा की, लेकिन लिंची ने क्या कहा? लिंची ने कहा, "तुम्हारा प्रश्न तर्कसंगत है, लेकिन मैं क्या कर सकता हूं? आंसू बह रहे हैं और मैं अपने को रोते हुए पाता हूं। तुम्हीं आश्चर्यचकित नहीं हो, मैं भी आश्चर्यचकित हूं। किंतु मैं क्या कर सकता हूं? इसी तरह जीवन मुझसे

प्रवाहित हो रहा है, और जीवन अतर्कपूर्ण है। " लिंची ने कहा, " अच्छा हुआ कि मेरे गुरु मर गये हैं, और उन्होंने मुझे समग्र जीवन के प्रति जगा दिया है—क्योंकि मैं भी सोचता था कि मैं अनासक्त हूं। यदि मेरे गुरु नहीं मरते तो मैं इस तथ्य को कभी नहीं जान पाता कि मेरे पास हृदय भी है, कि मेरे पास आंसू भी हैं और मैं रो भी सकता हूं। "

"इसलिए तुम अकेले ही नहीं हो जो कि आश्चर्यचकित हो, लिंची भी आश्चर्यचकित है। लेकिन मैं जीवन को दबाऊंगा नहीं। मैं जीवन को उसकी समग्रता में स्वीकार करता रहा हूं और अभी भी मैं कहता हूं कि आत्मा अमर है और सिर्फ शरीर की ही मृत्यु हुई है—लेकिन वह शरीर भी कितना सुंदर था। मैं शरीर के लिए रो रहा हूं। धूल—धूल में मिल जाती है। सचमुच मैं अभी भी कहता हूं कि धूल—धूल में मिल गयी है, परंतु उस धूल ने भी इतनी सुंदर आकृति ली थी कि मैं उसी के लिए रो रहा हूं। "

झेन ग्रंथों में लिखा गया है कि लिंची जीवन के प्रति सच्चा सिद्ध हुआ, न कि तर्क के प्रति।

जीवन के प्रति सच्चे रहो, न कि तर्क के प्रति। और जो भी तुमने दबा रखा है वह बाहर निकल आएगा, फूट पड़ेगा। यही सक्रिय ध्यान कर रहा है, दबाये गये को अभिव्यक्त कर रहा है। तुम्हारे आंसूओ को फिर जीवन में ला रहा है। तुम्हारे क्रोध, तुम्हारी हंसी, तुम्हारी उदासी को 'फिर से जीवन में प्रगट कर रहा है। तुम्हारे भीतर जो भी भरा है उसको बाहर फेंक रहा है ताकि तुम्हारा सिस्टम, तुम्हारी संरचना साफ हो सके, ताकि संरचना पुन: निर्दोष हो सके। उसी निर्दोष संरचना से तुम दिव्य के साथ संबंध स्थापित कर सकते हो। एक विषाक्त संरचना का दिव्य के साथ कोई संबंध नहीं हो सकता।

सक्रिय ध्यान एक रेचन क्रिया है। यह तुम्हें शुद्ध करने के लिए है। और जब तुम शुद्ध हो जाते हो, और तुम्हारा अचेतन प्रगट कर दिया जाता है तो अचेतन और चेतन के बीच जो बाधा है वह गिर जाती है क्योंकि वह बाधा दमन के कारण निर्मित हुई है। जब तुम दमन नहीं करते तो बाधा विलीन हो जाती है और फिर अचेतन तथा चेतन के बीच कोई सीमा नहीं होती।

तब तुम दोनों हो : तुम द्विलिंगी हो—पुरुष और स्त्री दोनों। और जब तुम दोनों हो तो तुम्हारे भीतर एक नया भाव पैदा होगा, भीतर एक नयी प्रकार की अखंडता होगी। तुम टूटे—टूटे, विभाजित अनुभव नहीं करोगे। तुम एक जैविक इकाई हो जाओगे। यह अखंडता ही तुम्हें उस आत्यंतिक एकात्म की ओर ले जाएगी। यह अखंडता पहला कदम है।

तीसरा और अंतिम प्रश्न :

आपने कहा कि समग्ररूप से ही कहने वाले हो जाओ समग्ररूप से शरीर के साथ एक हो जाओ समर्पण से रूपांतरण लेकिन यह हमारा अनुभव है कि तब इसकी पूरी संभावना है कि इंद्रियां भोग में लग जायेगी और हो जायेगी। कृपया इस कथन के पीछे जो ज्ञान छिपा है उसे स्पष्ट करें!

तो उन्हें भोग में लग जाने दो और लिप्त हो जाने दो। उसमें डर क्या है? उसमें गलत क्या है? यह भय हमारे दमन की लंबी परंपरा से आता है। तुम अपनी इंद्रियों के भोग में लग जाने से इतने डरे हुए क्यों हो? उन्हें भोग में लग क्यों नहीं जाने देते? कौन होते हो तुम उन्हें मना करने वाले? क्या हो गया है तुम्हें क्या तुम समझते हो कि तुमने अपनी इंद्रियों को वश में कर लिया है? ठीक इसके विपरीत मामला है —तुम्हारी इंद्रियों ने तुम्हें वश में कर रखा है, और तुम मुक्त नहीं हो सकते जब तक कि तुम्हारी इंद्रियां मुक्त नहीं होंगी। यह आदमी के मन की एक गहरी समस्या है। इसे तुम्हें ठीक से समझना पड़ेगा।

पहले तुम कहते हो कि कुछ गलत है, फिर तुम उससे डरने लगते हो। फिर तुम उसे न करने का, दबाने का प्रयत्न करते हो। और जितना तुम उसे दबाते हो उतना ही तुम्हारा मन उससे आच्छादित हो जाता है। उदाहरण

के लिए यदि तुमने काम को दबाया तो तुम्हारा मन कामुक हो जायेगा। वास्तव में कोई भी पशु कामुक नहीं है सिवाय मनुष्य के। यौन पशुओं के लिए भी है, लेकिन वे कामुक नहीं हैं। पशुओं लिए भी यौन है, लेकिन वे यौन से ग्रसित नहीं हैं क्योंकि वे उसका चिंतन नहीं करते। वे उसके बारे सोचते नहीं चले जाते, वे नंगी फिल्में नहीं बनाते, वे नंगी पत्रिकाएं प्रकाशित नहीं करते। वे यौन के संबंध में कुछ भी नहीं करते। जब कभी वृत्ति उठती है, वे उसमें चले जाते हैं, और जब वृत्ति नहीं उठती तो उन्हें बाध्य नहीं कर सकते। वे सिर्फ अपनी प्रकृति का अनुसरण करते हैं।

लेकिन आदमी, वह एक कामुक मन पैदा कर लेता है यौन को दबाकर। और जितना अधिक वह उसे दबाता है, उतना वह कामुक हो जाता है। क्योंकि जो भी तुम दबाते हो वह तुम्हारे खून में, तुम्हारी हड्डीयों में प्रवेश कर जाता है। वह तुम्हारे अस्तित्व का एक हिस्सा हो जाता है। जब मैं तुम्हें कहता हूं कि हां कहने वाले हो जाओ तो तुम्हें डर लगता है। क्यों? ऐसा इसलिए नहीं होता क्योंकि जो मैं कह रहा हूं वह खतरनाक है, बल्कि ऐसा इसलिए होता है कि जैसे ही तुम ही कहने की बात सोचते हो, तो तुरंत जो भी विष तुमने भीतर दबा रखे हैं और यदि तुम उन्हें ही कह दो, तो वे सब के सब छूट जायेंगे।

तुम सोचते हो कि यदि तुम यौन को ही कह दोगे तो तुम उसके पीछे पागल हो जाओगे—कि तुम पर—पुरुष, पर—स्त्री गमन करने लगोगे, कि तुम यौन—विक्षिप्त हो जाओगे। स्थिति कुछ ऐसी है—जैसे की कोई आदमी तीस दिन उपवास करे, तब भोजन का जरा—सा भी संकेत उसे पागल कर देगा। नहीं कि भोजन का जरा सा भी संकेत किसी को पागल कर सकता है। भोजन कारण नहीं है। कारण उसका ही दमन है। वह अपनी भूख दबाता रहा है, वह अपनी खाने की इच्छा का दमन करता रहा है। जरा—सा भी संकेत चाहे परोक्ष रूप से ही, और वह पागल हो जाएगा। वह कहेगा, "ऐसी चीजों के बारे में बात मत करो।"

एक शब्द भी बहुत है उसके सारे दमन को तोड़ने के लिए और उसके सारे स्वरूप को विस्फोटित करने के लिए। वह डरने लगेगा, वह भोजन की तरफ देखेगा भी नहीं। वह बाजार से गुजर जाएगा और वह होटलों के साइनबोर्ड की तरफ झांकेगा भी नहीं। वह बस सीधे नीचे देखता हुआ ही चलेगा। लेकिन वह चाहे जो भी करे, चाहे वह सड़क पर नीचे की ओर देखता हुआ ही चले, वह भोजन ही देखेगा।

अंततः हर चीज बस भोजन के लिए ही निमंत्रण हो जाएगी। यदि वह चांद की ओर भी देखे तो भी उसे रोटी का ही खयाल आएगा—सफेद रोटी आकाश में तैरती हुई। तब वह अपनी प्रेयसी का चेहरा उस चांद में नहीं देख सकता—असंभव है बात। उसे रोटी ही दिखाई पड़ेगी।

जिस चीज के भी तुम भूखे हो वही तुम प्रक्षेपित करोगे। वस्तुत: यदि तुम्हारी प्रेयसी तुम्हारे साथ नहीं हो, तभी तुम उसका चेहरा चांद में देख सकते हो। यदि तुम्हारी प्रेयसी साथ हो तो फिर तुम कैसे देख सकते हो? तब तुम सिर्फ चांद ही देखोगे। और जब तुम चांद को सिर्फ चांद ही देखते हो तभी तुम स्वस्थ हो। जब तुम अपनी प्रेयसी का चेहरा उसमें देखते हो तो तुम रुग्ण हो। अथवा, जब तुम उसमें लटकती हुई रोटी देखते हो तो तुम अस्वस्थ हो, तुम कुंठित हो।

चांद सिर्फ चांद है, उसमें और कुछ भी दिखाई नहीं देना चाहिए, और जो भी तुम उसमें देखते हो वह एक प्रक्षेपण है। जो कुछ तुमने दबा रखा है वह निकल आता है और एक भ्रम पैदा हो जाता है। वह एक भ्रमजाल है। जो भी तुम दमित करते हो वही भ्रमजाल हो जाता है। तब फिर तुम उसमें रहने लगते हो, और सचमुच तुम उसमें अधिकाधिक भय खाने लगते हो और डरे रहते हो। और जितना अधिक भय खाते हो उतना ही तुम उसे दबाते हो।

तुम एक आत्मघाती प्रयास में लगे हो, इसीलिए ऐसे प्रश्न खड़े होते हैं। "यदि मैं किसी चीज के लिए ही कहता हूं तो सबसे पहली चीज जो मेरे दिमाग में आती है वह यह होती है जिसे मैंने नहीं किया है, वही चीज तुरंत अपने आप जोर मारेगी। " यदि तुमने अपने शरीर को उपवास पर रखा है, डायटिंग यानी सीमित भोजन पर रखा है तो पहली बात तुम्हारे मन में मेरे ही करने पर यह आएगी कि चलो, चलकर भोजन करो। और तब तुम डरने लग जाते हो कि तुम तो इतने दिनों से डायटिंग पर थे और सारी बात ही व्यर्थ हुई जा रही है, यदि तुम ही कहते हो।

यदि एक आदमी जो कि सदा यौन को दबाता आ रहा था, ही कहने की सोचता है कि जो भी जीवन में है उसे ही कहो तो वह यौन से डर जाएगा। जिस—जिस चीज को भी तुमने दबाया है, जिस—जिस चीज को तुमने ना कहा है वह अपनी मांग करेगा। वह पहली बात होगी जो कि तुम्हारे मन में आएगी जबकि तुम ही कहोगे। और इससे भय के कंपन पैदा हो जायेंगे। परंतु ये कंपन तुम्हारे ही कहने से नहीं पैदा हो रहे हैं। ये इसलिए पैदा हो रहे हैं क्योंकि तुमने ना कहा है। यह बात समझने की है। ये कंपन इसलिए पैदा हो रहे हैं क्योंकि तुमने ना कहा है। प्रश्न पैदा होता है कि "क्या होगा जब कि समाज ही कहने वाला हो जाएगा? क्या होगा यदि सभी लोग भोग में पड़ जायेंगे? " ऐसा इसलिए होता है क्योंकि समाज दमन करता रहा है। ऐसा इसलिये है क्योंकि हर एक ने जीवन की ऊर्जाओं को ना कहा है।

हां कहने का प्रयास करो। प्रारंभ में ऐसा हो सकता है कि तुम भोग में पड़ जाओ। प्रारंभ में हो सकता है कि तुम भोग में लिप्त हो जाओ, क्योंकि जब भी किसी दमित शक्ति को छोड़ा जाता है तो वह दूसरे छोर पर बलपूर्वक चली जाती है। लेकिन रुको, प्रतीक्षा करो और साक्षी रहो। किसी भी समय वह जो दमित शक्ति है, उसका बल खो जाएगा, और पहली बार जीवन में तुम स्वस्थ अनुभव करोगे। और उसके बाद पेंडुलम आएगा और बीच में ठहर जाएगा।

जब पेंडुलम बीच में आ जाए और ठहर जाए तब तुम स्वस्थ हुए। लेकिन तुम उसे बायें खींचे रहे और पकड़े रहे। अब तुम डरे हुए हो कि यदि तुमने उसे छोड़ा तो वह दाएं चला जाएगा। सचमुच वह दाएं जाएगा, लेकिन वह दाएं इसलिए नहीं जा रहा है क्योंकि तुमने उसे छोड़ दिया है। वह दाएं इसलिए जा रहा है क्योंकि तुम उसको पकड़े थे और बाएं जोर से खींचे थे। छोड़ दो उसे और जितनी जल्दी छोड़ दो उतना ही अच्छा है। वह दाएं जाएगा, जाने दो और उसे बाएं मत खींचो। उसे जाने दो। धीरे—धीरे वह दाएं से बाएं जाएगा, बाएं से फिर दाएं जाएगा। जो गति तुमने उसे दबाकर दे दी है उसे छोड़ देना है, ताकि वह निकल जाए। लेकिन उसे नयी गति नहीं देनी है सिर्फ साक्षी रहना है।

धीरे—धीरे पेंडुलम बीच में स्थिर हो जाएगा। जब पेंडुलम बीच में आ जाए तुम्हारे मन के, और तुम भोग में रत होने अथवा उसके लिए ही कहने से भयभीत न हो तब तुम मुक्त हुए। अब तुम स्वस्थ और स्वाभाविक हुए।

मेरा सारा जोर स्वाभाविक होने पर है। जितने ज्यादा तुम स्वाभाविक हो उतने ही तुम परमात्मा के अधिक निकट होगे। स्वभाव, प्रकृति, परमात्मा के विरुद्ध नहीं है। प्रकृति परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है, उसी का प्रगट रूप है। परंतु तुम्हें बार—बार यह सिखाया गया है कि प्रकृति परमात्मा के विरुद्ध है। अत: प्रकृति को दबाओं ताकि तुम परमात्मा के निकट हो सकी।

इस तरह तुम कभी न पहुंच सकोगे क्योंकि प्रकृति परमात्मा के विरुद्ध नहीं है। यदि वह विरुद्ध हो तो वह कभी हो ही न सकेगी। फिर वह कैसे हो सकेगी? कोई भी चीज अस्तित्व में ही कैसे होगी परमात्मा के विरुद्ध

होकर? वह तो समग्र का अंग है, खेल का हिस्सा है। उसके खिलाफ मत हो। और तुम हो भी कैसे सकते हो? तुम भी प्रकृति के ही हिस्से हो। सिर्फ तुम अपने को धोखा देते रह सकते हो। बस इतना ही तुम कर सकते हो।

उसे प्राकृतिक ढंग से बहने दो। उसे प्राकृतिक लयबद्धता प्राप्त करने दो, और धीरे— धीरे वह स्थिर हो जाएगी। और जब वह स्थिर हो जाएगी तो अचानक तुम पाओगे कि तुम परमात्मा में ही खड़े हो। जब तुम प्रकृति से संघर्षरत नहीं होगे, सिर्फ स्वीकार होगा, तो तुम प्रकृति के पार चले गए। लेकिन यह प्रकृति के पार चले जाना प्रकृति के विरुद्ध चले जाना नहीं है। यह वस्तुत: उसी में से होकर विकास को प्राप्त होना है। तुम ब्रह्मचर्य पर पहुंचोगे। एक सुंदर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होगे परंतु यौन से लड़कर नहीं। कोई भी कभी लड़कर नहीं पहुंचा। कोई कभी पहुंच भी नहीं सकता।

जब तुम यौन के द्वारा विकसित हो रहे होंगे, यौन से गुजर कर और अधिक सजग हो रहे होगे, तभी यौन का रूपांतरण होगा। यही मार्ग है। यदि तुम यौन को दबाते हो तो वह कामुकता हो जाती है और यदि तुम उसे प्रगट करते हो तो वह प्रेम हो जाता है। और कामुकता के द्वारा तुम कभी भी परमात्मा तक नहीं पहुंच सकते। यह विकृति है किंतु प्रेम के द्वारा तुम पहुंच सकते हो, यह एक प्राकृतिक विकास है।

जितना अधिक तुम प्राकृतिक वृत्तियों को समग्रता से स्वीकार करते हो, बिना किसी निंदा के, उतनी ही ज्यादा धीरे—धीरे वे कम होती जाती हैं और उनका ज्वर खो जाता है। और जब वे बिलकुल कम हो जाती हैं तो तुम्हारे पास एक विराट ऊर्जा पीछे बचती है। वही ऊर्जा परमात्मा की ओर तीर बन जाती है। वह बन ही जाती है। एक ब्रह्मचर्य है जो कि विकास से आता है और एक ब्रह्मचर्य है जो कि निषेध से, इंकार से आता है। जो ब्रह्मचर्य निषेध से आता है वह विकृति है, तुम्हारा मन कामुकता से भरा होगा। जो ब्रह्मचर्य सुंदरता से घटता है, सजगता के द्वारा, स्वीकार के द्वारा आता है वह एक सौंदर्य हो जाता है। उसकी अपनी ही एक सुंदरता होती है। और धीरे—धीरे वह अपने आप ही स्वयं के पार चला जाता है।

तब वह प्रेम होता है। तब वह प्रार्थना होती है। और जो प्रेम विपरीत लिंग की ओर बह रहा था वही प्रेम परमात्मा की ओर बहने लगता है—वही प्रेम, वही ऊर्जा।

इसलिए इस बात का स्मरण रखो कि मैं किसी भी बात के विरोध में नहीं हूं। मैं तो अतिक्रमण के पक्ष में हूं लेकिन किसी भी चीज के खिलाफ नहीं हूं। परमात्मा संसार के विरुद्ध नहीं है; वह तो अतिक्रमण है। उसे संसार से गुजर कर ही पाना है; इसीलिए तुम्हें संसार में भेजा गया है। लेकिन तुम समझते हो, तुम सोचते रहते हो कि तुम परमात्मा से अधिक समझदार हो। उसने तुम्हें संसार में भेजा है ताकि तुम विकसित हो सको, अनुभव कर सकी, दुख पाकर पक सको। और तुम समझते हो कि तुम बहुत समझदार हो! थोड़े कम समझदार ही रह लो, इतने समझदार मत बनो। परमात्मा को थोड़ा सा मौका तो दो कि वह तुम्हारे भीतर से अपना रास्ता बना सके। जीवन का अनुभव करो, एक ही कहने वाले मन से। और जब तुम ही कहते हो तो वही जीवन परमात्मामय हो जाता है।

अब ध्यान के लिए तैयार हो जायें। इसके पहले कि तुम उसमें प्रवेश करो थोड़ी—सी बातें : पहले पंद्रह मिनट तुम्हें खड़े होकर मेरी ओर देखना है और हाथों को ऊपर आकाश की ओर उठाए रखना है जैसे कि कोई दिव्य शक्ति तुम्हारे ऊपर उतरने वाली हो और तुम्हें उसका स्वागत करना है और ग्रहण करना है। खड़े हुए तुम्हें मेरी ओर एकटक देखना है, बिना पलक झपकाए। यदि आंखों से आंसू बहने लगें तो उन्हें बहने देना है, उनकी चिंता नहीं करनी है। और तुम्हें कूदना है, कूदते जाना है; ताकि तुम्हारी ऊर्जा सक्रिय हो सके, रुके नहीं।

मैं तुम्हें अपने हाथों से कुछ परोक्ष संकेत करूंगा। मैं धीरे— धीरे अपने हाथ ऊपर की ओर उठाऊंगा, और जब मैं अपने हाथ ऊपर उठाऊं तो तुम्हें अपनी सारी ऊर्जा को जगा लेना है, कूदना है, नाचना है। जब मैं अपने

हाथ ऊपर उठाऊं तो तुम्हें पूरी तरह क्रियाशील हो जाना है। जब मुझे लगेगा कि अब तुम एक तूफान की भाति हो गए हो, कि अब समग्र की चेतना ने स्थान ले लिया है और व्यक्ति मिट गया है, कि व्यक्ति सब पिघल गए हैं और उनकी जगह केवल समूह की आत्मा बची है, जब भी मुझे ऐसा लगेगा तो मैं अपने हाथों को नीचे की ओर लाऊंगा। उसका मतलब होगा कि अब परमात्मा तुम पर उतर सकता है। उस क्षण पूरी तरह पागल हो जाना है ताकि तुम पूरी तरह खुल सको और तुम्हें कुछ घट सके।

पहले पंद्रह मिनट यह पहला चरण। फिर दूसरे पंद्रह मिनट में पूर्ण शांति होगी। तुम्हें अपनी आंखें बंद कर लेनी हैं। प्रकाश बुझा दिया जाएगा और पूरी तरह अंधेरा तथा शांति होगी पंद्रह मिनट के लिए। और अंत में दस मिनट तुम उत्सव मना सकते हो; तुम नाच सकते हो और गा सकते हो और परमात्मा के प्रति कृतज्ञ हो सकते हो।

चौथा प्रवचन

अज्ञेय आत्मा

सूत्र:

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नौ मनो न विझो न

विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि।

इति शुश्रुम पूवेंषां ये नस्तद्वयाचचक्षिरे।।३।।

यद्वाचानष्णुदितं येन वागष्णुद्यते

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।४।।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।५।।

केनोपनिषद प्रथम अध्याय

3

प्रथम अध्याय आंखें उस तक नहीं पहुंच सकतीं, न ही वाणी और न ही मन।

इसीलिए हम उसे नहीं जानते और न ही हम यह जानते हैं कि उसे कैसे सिखाये वह उससे भिन्न है जो कि ज्ञात है और वह उससे भी भिन्न है जो कि अज्ञात है। ऐसा हमने अपने पूर्वजों से सुना है जिन्होंने उसके बारे में हमें बताया है।

4

जिसे वाणी प्रगट नहीं कर सकती परंतु जो वाणी को प्रगट करता है— तू जान कि वही एकमात्र ब्रह्म है और न कि वह जो कि वस्तुगत है, जिसे लोग यहां पूजते हैं।

5

जिसे मन नहीं समझ सकता परंतु जो मन को समझता है—

तू जान कि वही एकमात्र ब्रह्म है और न कि वह जिसे लोग यहां पूजते हैं।

अस्तित्व का गहनतम रहस्य है ज्ञान की घटना। तुम सभी कुछ जान सकते हो सिवाय तुम्हारी अपनी आत्मा के। जानने वाले को नहीं जाना जा सकता क्योंकि उसके लिए उसे एक वस्तु में बदलना होगा। ज्ञान को प्रक्रिया ही द्वैत पर निर्भर करती है।

मैं तुम्हें जान सकता हूं क्योंकि मैं यहां हूं, भीतर, और तुम यहां हो बाहर। तुम एक वस्तु हो जाते हो। परंतु मैं स्वयं को ही नहीं जान सकता क्योंकि मैं अपने को एक वस्तु नहीं बना सकता। मैं स्वयं को अपने आत्मा को एक वस्तु की भांति सामने नहीं रख सकता। और यदि मैं स्वयं को सामने रख भी लूं तो जिसे मैं सामने रखूंगा वह मैं स्वयं नहीं होऊंगा। जिसे मैं सामने रखने में समर्थ हो जाऊंगा वह मैं स्वयं कैसे होऊंगा? वस्तुत: वह जो भीतर देख रहा होगा वही मैं होऊंगा।

आत्मा आत्मगत है। और वह आत्मगतता वस्तुगतता नहीं हो सकती। इसीलिए यह विरोधाभास है कि जो सभी कुछ जानना है वह स्वयं को ही नहीं जान सकता। वह जो कि सभी चीजों को जानने का स्त्रोत है वह स्वयं अज्ञात ही बना रहता है। यदि तुम इस बात को समझ सको तो यह सूत्र बहुत कुछ प्रगट कर सकता है। यह

गहनतम सूत्रों में से एक सूत्र है। जो कुछ भी रहस्यदर्शियों ने कि है यह उस सबसे भी गहरा चला जाता है। यह सूत्र कहता है कि आत्म—ज्ञान असंभव है, और तुमने सुना है, उसके बारे में उपदेश दिए जाते है। उसकी सब जगह चर्चा की गई है। ''स्वयं को जानो—नौ दाई सेल्फ।'' किंतु तुम स्वयं को कैसे जान सकते हो। तुम अपने सिवाय सब कुछ जान सकते हो। एक बिंदु सदा अज्ञात ही रहेगा, अज्ञेय ही रहेगा, और वह बिंदु हो तुम।

यह शब्द 'आत्म—ज्ञान' ठीक नहीं है। स्वयं का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान संभव नहीं है। लेकिन यह? तुम्हारे भीतर गहरी निराशा पैदा कर सकती है। यदि आत्मा का ज्ञान संभव नहीं है तो फिर सारा धर्म निरर्थक हो जाता है, क्योंकि यही तो बात है जो कि धर्म करता है—कि तुम्हें आत्म—ज्ञान प्रदान करता है तब फिर 'आत्म—ज्ञान' शब्द का अर्थ कुछ दूसरा ही होना चाहिए। तब फिर कोई दूसरा ही कोई आयाम होना चाहिए जिसके द्वारा तुम अपनी आत्मा को जान भी सको और फिर भी उसे वस्तु न बनाओ किन्हीं दूसरे ही अर्थों में ज्ञान संभव होना चाहिए।

इस संसार में जो भी हम जानते हैं वह वस्तुगत है और विषयी अज्ञेय ही रहता है। जानने वाला ही बना रहता है। किंतु क्या इस जानने वाले को, ज्ञाता को जाना जा सकता है? यही बुनियादी प्रश्न है आधारभूत समस्या है। यदि जानने का एक ही मार्ग है : वस्तुगत ज्ञान के द्वारा, तो फिर उसे नहीं जाना सकता। इसलिए सारे वैज्ञानिक, चिंतनशास्त्री मना कर देंगे कि आत्मा होती भी है। उनका मना करना अर्थपूर्ण है। जो लोग भी वस्तु की तरह, वस्तुगतता की भांति सोचने के लिए प्रशिक्षित किए गए हैं, वे सब यही कहेंगे कि आत्मा नहीं होती।

और उनके ऐसा कहने का अर्थ है कि वे दूसरे किसी प्रकार के जानने के बारे में नहीं सोच सकते। वे सोचते हैं कि जानना सिर्फ एक प्रकार का होता है और वह वस्तुगत होता है, और आत्मा को वस्तुगत, आब्जेक्टिव नहीं बनाया जा सकता; इसलिए उसे नहीं जाना जा सकता। और जिसे जाना ही नहीं जा सकता है उसके लिए नहीं कहा जा सकता कि वह होती है। कैसे तुम यह कह सकते हो कि वह होती है? जैसे ही तुम कहते हो कि वह होती है, तो इसका अर्थ हुआ कि तुमने कहा कि तुमने उसे जान लिया। तुम उसके होने का दावा ही नहीं कर सकते। यदि वह अज्ञात है, और यदि वह सिर्फ अज्ञात ही नहीं है बल्कि अज्ञेय भी है, तो फिर तुम कैसे कह सकते हो कि वह होती है p

वैज्ञानिक कहे चले जाते हैं कि कोई आत्मा नहीं होती, कि आदमी सिर्फ एक यांत्रिकता है, और जो चेतना प्रगट होती है वह सिर्फ एक सह—घटना है—सिर्फ एक सह—उत्पत्ति है। वे कहते हैं कि आत्मा जैसी कोई चीज नहीं होती, कोई केंद्र नहीं होता—कि चेतना सिर्फ कुछ रासायनिक घटनाओं के कारण पैदा होती है और जब शरीर नष्ट हो जाता है तो चेतना भी विलीन हो जाती है।

अत: विज्ञान के लिए मृत्यु का अर्थ है समग्र मृत्यु, उसके बाद कुछ नहीं बचता। चेतना वास्तविक नहीं है, वह सिर्फ एक सह—उत्पत्ति है। वह बिना शरीर के नहीं हो सकती। वह शरीर का ही एक हिस्सा है, बहुत—से पदार्थों का संयोग मात्र है। इसी कारण वह अस्तित्व में आती है। वह कोई तत्व नहीं है। वह मिश्रण है, मिलावट है, संश्लेषण है, कुछ ऐसी है जो कि दूसरी वस्तुओं पर निर्भर है। कोई 'सेल्फ', कोई आत्मा नहीं होती। विज्ञान कहता है कि कोई आत्मा नहीं होती, क्योंकि आत्मा को नहीं जाना जा सकता है।

'विज्ञान' शब्द का अर्थ ही होता है—जानना। और यदि कुछ अज्ञेय है तो विज्ञान उसके लिए सहमति नहीं देगा, विज्ञान उससे राजी नहीं होगा। विज्ञान का अर्थ होता है वह, जिसे जाना जा सकता है। इसलिए विज्ञान रहस्यपूर्ण नहीं है। वह निरर्थक बातों में नहीं पड़ता। विज्ञान के लिए 'आत्म—ज्ञान' शब्द ही निरर्थक है। परंतु फिर भी धर्म अर्थपूर्ण है, क्योंकि जानने का एक दूसरा आयाम भी है।

ज्ञान के उस आयाम को समझने का प्रयत्न करो जहां कि ज्ञात को एक वस्तु में नहीं बदला जाता हो। उदाहरण के लिए यदि एक कमरे में एक दीपक जल रहा हो तो कमरे की प्रत्येक वस्तु प्रदीप्त हो जाती है और उस दीपक की रोशनी में जानी जाती है। परंतु दीपक अपने ही प्रकाश के कारण जाना जाता है। सब चीजें—कुर्सियां, फर्नीचर, दीवारें, दीवारों पर टंगी तस्वीरें—वे सब उस प्रकाश के द्वारा जानी जाती हैं। लेकिन वह प्रकाश किसके द्वारा जाना जाता है?

प्रकाश तो 'स्वयं—प्रदीप्तमान' है। उसकी मौजूदगी से दूसरी वस्तुएं प्रगट होती हैं, और वह स्वयं अपने को भी प्रगट करता है। लेकिन ये दो प्रगटताएं भिन्न हैं। जब एक कुर्सी प्रकाश के माध्यम से जानी जाती है तो कुर्सी एक वस्तु है। प्रकाश कुर्सी पर पड़ता है और यदि प्रकाश विलीन हो जाए तो कुर्सी को नहीं जाना जा सकता है।

कुर्सी को जानना प्रकाश पर निर्भर है, लेकिन प्रकाश को जानने के लिए वह कुर्सी पर निर्भर नहीं है। यदि तुम कमरे में से सब वस्तुओं को हटा लो तो भी प्रकाश प्रकाश ही रहेगा। कुछ भी प्रगट करने को नहीं होगा लेकिन वह स्वयं को प्रगट करता रहेगा। यह प्रकाश का प्रगट करना स्व—प्रगटीकरण है।

यही बात भीतर की घटना के बारे में है, अंतर की आत्मा के बारे में है। हर चीज उसके द्वारा जानी जाती है, लेकिन वह स्वयं किसी के द्वारा नहीं जानी जाती। वह स्वयं को प्रगट करने की घटना है। वह स्वयं ही स्वयं को प्रगट करती है। आत्मज्ञान का अर्थ यह नहीं होता कि आत्मा को किसी और चीज के द्वारा जाना जाता है, क्योंकि तब कोई दूसरा 'आत्मा' हो जाएगा। इसलिए जिसे भी वस्तु की भांति जाना जा सके वह आत्मा नहीं हो सकती। हमेशा जो जानने वाला है वह आत्मा होगी। लेकिन इस आत्मा को कैसे जाना जाए? यह जो आत्मा है वह स्वयं—प्रकाशमान है, स्वयं को प्रगट करने की घटना है, स्वयं—सिद्ध है : इसे जानने के लिए किसी और चीज की जरूरत नहीं है। इसे तुम्हें वस्तु में बदलने की जरूरत नहीं है।

वास्तव में, जब मन से सारी वस्तुएं हटा दी जाती हैं, जब मन से सारा फर्नीचर हटा दिया जाता है, तो अचानक आत्मा स्वयं को प्रगट करती है। वह स्वयं को प्रगट करने वाली है। वस्तुत: यही भेद है पदार्थ में तथा चैतन्य में। पदार्थ स्वयं को प्रगट नहीं कर सकता, जबकि चेतना स्वयं को प्रगट करने वाली होती है। पदार्थ किसी और के द्वारा जाना जाता है और चेतना स्वयं को जानती है। यही बुनियादी भेद है पदार्थ में और चैतन्य में। वृक्ष हैं, किंतु अगर कोई चैतन्य प्राणी नहीं हो तो वे अपने को प्रगट नहीं कर सकते। उन्हें किसी चेतना की आवश्यकता है कि वह उन्हें प्रगट कर सके।

चट्टानें हैं और सुंदर चट्टानें हैं। परंतु यदि कोई चेतना नहीं हो तो वे सुंदर नहीं होंगी क्योंकि कोई भी नहीं जानेगा कि वे भी हैं। उनका होना मौन होगा। उन चट्टानों को भी पता नहीं होगा कि वे हैं। अस्तित्व तो होगा लेकिन उसको प्रगट करने वाला नहीं होगा।

एक छोटा बच्चा खेलता हुआ जाता है चट्टान के पास, अचानक चट्टान प्रगट हो जाती है। अब यह कोई मौन अस्तित्व की बात नहीं है। बच्चे के द्वारा चट्टान अपने को बतला सकती है। अब वृक्ष भी प्रगट हो सकेगा। अब उस बच्चे के चारों तरफ जो भी है वह एक नए ही अर्थों में सजीव हो गया। वह बच्चा उनके प्रगट होने के लिए माध्यम बन गया है। उसके चारों तरफ हर चीज जीवंत हो उठी है। इसीलिए जितनी गहरी तुम्हारी चेतना होती है, उतनी गहराई से तुम अस्तित्व को प्रगट कर सकते हो।

जब कोई बुद्ध होता है तो सारा अस्तित्व आनंद से झूम उठता है, क्योंकि उनके पास एक बहुत ही गहरी चेतना है। जो भी पदार्थ में छिपा है वह प्रगट हो जाता है। उसके पहले उसका कुछ भी पता नहीं था। एक बुद्धपुरुष की उपस्थिति से सारा अस्तित्व प्रकाशमान हो जाता है। हर चीज जीवंत हो उठती है, उसके द्वारा

अनुभव करने लगती है। चेतना अन्य को तो प्रगट करती है, किंतु उसे स्वयं को प्रगट करने के लिए किसी अन्य चेतना की आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं प्रकाशमान है।

इसे दूसरे कोण से भी देख सकते हैं। प्रत्येक चीज को प्रमाण चाहिए क्योंकि हर चीज पर संदेह किया जा सकता है। परंतु तुम 'आत्मा' पर, स्वयं पर संदेह नहीं कर सकते, इसलिए स्वयं के होने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। क्या तुम स्वयं पर संदेह कर सकते हो?

पश्चिमी चिंतकों में एक महान चिंतनशील व्यक्ति हुआ—डेकार्ट, उसने संदेह को, जानने की विधि के रूप में काम में लिया। उसने अपने ज्ञान की यात्रा संदेह से शुरू की—बहुत ही गहरे संदेह से। उसने निश्चय किया कि वह हर चीज पर संदेह करता चला जाएगा जब तक कि वह किसी ऐसी चीज पर नहीं पहुंच जाता जिस पर कि संदेह नहीं किया जा सकता। और जब तक तुम किसी आधारभूत तथ्य पर नहीं पहुंच जाओ जिस पर कि संदेह नहीं किया जा सकता, तब तक ज्ञान का महल नहीं उठाया जा सकता, क्योंकि कोई तो उसके लिए आधारशिला चाहिए। यदि हर चीज पर संदेह किया जा सके और साबित करना पड़े तो फिर सारा भवन ही तार्किक हो गया। कहीं कुछ गहरे में ऐसा होना चाहिए जो कि असंदिग्ध हो, जिसके लिए किसी प्रमाण की जरूरत नहीं हो।

परमात्मा असंदिग्ध नहीं है। यह स्मरण रहे कि परमात्मा असंदिग्ध नहीं है। उस पर संदेह किया जा सकता है—केवल संदेह ही नहीं बल्कि सिद्ध भी किया जा सकता है कि वह नहीं है। और सचमुच अगर कोई परमात्मा पर संदेह करता है तो तुम यह सिद्ध नहीं कर सकते कि परमात्मा है। तुम केवल उन्हीं को समझा सकते हो जो कि समझे ही हुए हैं, लेकिन तुम किसी नए व्यक्ति को बदल नहीं सकते। यह असंभव है। एक भी नास्तिक को परिवर्तित नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह प्रमाण मांगेगा और तुम कोई भी प्रमाण नहीं दे सकते।

परमात्मा असंदिग्ध नहीं है, उस पर संदेह किया जा सकता है, उसे नकारा जा सकता है। सारी परिकल्पना को कहा जा सकता है कि झूठ है। कोई सबूत नहीं है जो कि मदद कर सके। अत: डेकार्ट बहस करता चला जाता है, खोजता चला जाता है और वह कहता है कि जब तक वह अस्तित्व में किसी ऐसी चीज पर नहीं पहुंच जाएगा जो कि असंदिग्ध हो, वह संदेह करता ही चला जाएगा। नहीं कि उसे सिद्ध किया जा सके—नहीं, बल्कि उस पर संदेह ही नहीं किया जा सके। और अंततः वह स्वयं पर पहुंचता है और कहता है कि 'स्वयं' परमात्मा से भी बड़ी वास्तविकता है। वह है भी; क्योंकि स्वयं पर संदेह नहीं किया जा सकता। क्या तुम स्वयं पर संदेह कर सकते हो? स्वयं पर संदेह करने के लिए भी तुम्हें होना पड़ेगा।

उदाहरण के लिए, यदि तुम इस घर में हो और कोई आए और पूछे कि क्या तुम घर में हो और तुम यह कहो कि "मैं नहीं हूं" तो यह कहने के लिए भी कि "मैं नहीं हूं" तुम्हें होना ही पड़ेगा। तुम्हारा यह कहना ही सिद्ध कर देगा कि तुम हो। मना करना भी प्रमाण बन जाता है। इस तथ्य को सिद्ध करने की भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि यहां मना करना भी प्रमाण हो जाता है। जब निषेध भी प्रमाण हो जाता हो तो वैसा तथ्य असंदिग्ध है। कैसे तुम उस पर संदेह करोगे?

तुम नहीं कह सकते कि मैं नहीं जानता कि मैं हूं या नहीं हूं। या कि तुम कह सकते हो? क्योंकि इस उलझन में पड़ने के लिए भी तो तुम्हें होना ही पड़ेगा। तुम्हारे बिना यह उलझन भी कैसे होगी? तुम नहीं कह सकते कि "मैं विश्वास नहीं करता कि मैं हूं" क्योंकि अविश्वास करने के लिए भी किसी की आवश्यकता है। इसे मना करने का कोई रास्ता नहीं है कि तुम हो, कि इस मैं का अस्तित्व है।

सिर्फ आत्मा ही, स्वयं का होना ही एकमात्र तथ्य है जो कि असंदिग्ध है, बाकी प्रत्येक चीज पर संदेह किया गया है। ऐसे संदेहवादी हुए हैं जिन्होंने हरेक चीज पर संदेह किया है। यहां तक कि ऐसी चीजों पर संदेह किया है जिनके बारे में तुम सोच भी नहीं सकते कि वे भी संदेह की सीमा में आ सकती हैं।

तुम यहां पर उपस्थित हो, किंतु एक अंग्रेज दार्शनिक बर्कले कहता है, "मैं विश्वास नहीं कर सकता कि तुम यहां पर मौजूद हो। हो सकता है कि तुम सिर्फ एक सपना हो। और ऐसा कोई भी रास्ता नहीं है कि प्रमाणित किया जा सके कि तुम सपना नहीं हो, क्योंकि जब मैं सपना देखता हूं तो मैं ऐसे ही आदमियों का सपना देखता हूं जैसे कि तुम हो। " और यह सपने का विशेष गुण है कि सपने में सपना बिलकुल वास्तविक दिखलाई पड़ता है।

इसलिए यदि तुम वास्तविक दिखलाई पड़ रहे हो तो बर्कले कहता है कि इससे कुछ भी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि प्रत्येक सपने में सपने की घटना बिलकुल वास्तविक दिखलाई पड़ती है। क्या तुम संदेह कर सकते हो जबकि तुम कोई सपना देख रहे हो? तुम नहीं कर सकते, सपना सच दिखलाई पड़ता है। बिलकुल बेतुका सपना भी वास्तविक लगता है। जब सपना होता है तो चाहे वह कितना ही अतार्किक, असंगत हो, फिर भी वह वास्तविक ही लगता है। इसलिए बर्कले कहता है कि कोई भी उपाय नहीं सिद्ध करने का कि तुम यहां हो या नहीं हो। तुम पर संदेह किया जा सकता है। प्रत्येक चीज पर संदेह किया जा सकता है।

भारतीय रहस्यदर्शियों में से एक महानतम रहस्यदर्शी नागार्जुन ने प्रत्येक वस्तु पर संदेह किया है। प्रत्येक वस्तु पर! वह कहता है, "कुछ भी वास्तविक नहीं है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु पर संदेह किया जा सकता है। "लेकिन एक बिंदु पर वह बात नहीं करता है, उसे वह टालता चला जाता है, वह है 'स्वयं' क्योंकि तब उसकी पूरी आधारशिला ही गिर जाती है, उसका सारा दर्शन ही धराशायी हो जाता है। क्योंकि उस पर संदेह नहीं किया जा सकता। नागार्जुन से पूछा जा सकता है, "अच्छा बाकी सब ठीक है कि सारा संसार माया है, कि हर वस्तु पर संदेह किया जा सकता है, लेकिन यह संदेह करने वाला कौन है? क्या तुम इस संदेह करने वाले पर भी संदेह करते हो जो कि सारे संसार को इंकार करता है?"

स्वयं, यानी आत्मा असंदिग्ध है क्योंकि वह स्वयं—सिद्ध है। किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं वह स्वयं—सिद्ध है।

महावीर ने परमात्मा को इंकार कर दिया। उन्होंने कहा कि कोई परमात्मा नहीं है। लेकिन वे यह नहीं कह सके कि आत्मा नहीं है। तब आत्मा ही उनके लिए परमात्मा हो गई। उन्होंने कहा, "केवल आत्मा ही परमात्मा है। " और यह बात सच है। तुम्हारे भीतर, तुम्हारी आत्मा ही परमात्मा के निकटतम है। इसलिए उस पर संदेह नहीं किया जा सकता। वह स्वयं सिद्ध, स्वयं प्रगट, स्वयं प्रकाशमान है।

यह जानने का दूसरा रास्ता है। वैज्ञानिक मार्ग है किसी भी वस्तु को एक वस्तु की तरह जानना। धार्मिक मार्ग, किसी भी विषय को विषयी की तरह जानना है। वैज्ञानिक ढंग से ज्ञान के तीन अंग है: ज्ञाता, ज्ञेय तथा शान। ज्ञान सिर्फ ज्ञाता तथा ज्ञेय के बीच का सेतु है। परंतु धार्मिक ज्ञान में तीन हिस्से नहीं हैं। उसमें ज्ञाता ही ज्ञेय भी है, और ज्ञाता ही ज्ञान भी है। ज्ञान तीन हिस्सों में बंटा हुआ नहीं है। वह एक ही है, वह अविभाजित है।

अब हम सूत्र में प्रवेश करेंगे :

आंखें उस तक नहीं पहुंच सकती; न ही वाणी और न ही मन इसीलिए हम उसे नहीं जानते और न ही हम यह जानते हैं कि उसे कैसे सिखायें। वह उससे भिन्न है जो कि ज्ञात है; और वह उससे भी भिन्न है जो कि अज्ञात है। ऐसा हमने अपने पूर्वजों से सुना है जिन्होंने उसके बारे में हमें बताया है।

आंखें उस तक नहीं पहुंच सकती; न ही वाणी और न ही मन।

आंखें प्रत्येक चीज तक पहुंच सकती हैं क्योंकि हर चीज आंखों के सामने है, परंतु आत्मा आंखों क सामने नहीं है। आत्मा आंखों के पीछे है। केवल आत्मा ही आंखों के पीछे है, बाकी सब उसके सामने है। तुम आंखों से सभी कुछ का सामना कर सकते हो, लेकिन तुम आत्मा का सामना नहीं कर सकते क्योंकि वह सामने नहीं है, यह एक बात है। इसलिए उसे देखने के लिए आंखों का उपयोग नहीं किया जा सकता। वस्तुत: उसे देखने के लिए तुम्हें अंधा होना पड़ेगा। सचमुच में नहीं, किंतु आंखों को खाली हो जाना पड़ेगा; दृष्टि—विहीन, बंद कि कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता हो। केवल तभी तुम उसे जान सकोगे। आंखें उस तक नहीं पहुंच सकतीं। तुम्हें ही उसके निकट बिना आंखों के आना पड़ेगा। तुम्हें किसी अंधे व्यक्ति की तरह इस तक आना पड़ेगा।

इसीलिए, वस्तुत: एक आंखवाला आदमी और एक अंधा, इन दोनों में जहां तक आत्मा का सवाल है कोई भेद नहीं है; जहां तक संसार का प्रश्न है अंधा बड़े नुकसान में है, वह कुछ भी नहीं जान सकता। परंतु जहां तक आत्मा का प्रश्न है, वह जरा भी नुकसान में नहीं है। और यदि वह बुद्धिमान है तो उसका अंधापन सहयोगी हो सकता है।

इसलिए हमने भारत में अंधे आदमी को प्रज्ञा—चक्षु कहा है। ऐसा नहीं है कि हर एक अंधा प्रज्ञावान होता है, लेकिन संभावना के हिसाब से वह आत्मा के अधिक निकट होता है बजाय आख वालों के। क्योंकि आख वाले तो संसार में इन आंखों के द्वारा बहुत दूर निकल गए होते हैं। वे बहुत दूर चले गए हैं। तुम इन आंखों से संसार के दूसरे छोर पर चले जा सकते हो। और विज्ञान तुम्हारे लिए और भी शक्तिशाली आंखें बना रहा है कि तुम छोटी से छोटी चीज को भी, आणविक घटना को भी देख सको और तुम सुदूर तारों को भी देख सको।

विज्ञान तुम्हें स्वयं से, आत्मा से दूर हटाता चला जाता है। इसलिए कोई भी युग जितना वैज्ञानिक हो जाता है उतना ही वह कम धार्मिक होता चला जाता है। अब तुम्हारे पास बड़े शक्तिशाली यंत्र हैं जिनसे दूर जाया जा सकता है और तुम अपने से बहुत दूर चले गए हो।

इंद्रियां बहुत शक्तिशाली हो गयी हैं। वस्तुत: विज्ञान कुछ और नहीं कर रहा है, बल्कि वह आदमी के लिए शक्तिशाली इंद्रियां बना रहा है। अब तुम्हारा हाथ चंद्रमा पर पहुंच सकता है, तुम्हारी आंखें दूर तारों तक पहुंच सकती हैं। प्रत्येक इंद्रिय बहुत विराट हो गयी है। और यह होता ही चला जाता है।

एक अंधा आदमी अपने में बंद है, वह बाहर नहीं जा सकता। लेकिन वह भीतर जा सकता है; यदि वह इस बात से परेशान नहीं हो कि वह अंधा है, और यदि समाज उसकी मदद करे कि तुम्हारा अंधापन कोई दुर्भाग्य नहीं है बल्कि छिपे रूप से सौभाग्य की बात है।

यही अर्थ है जब हम किसी अंधे आदमी को प्रज्ञा—चक्षु कहते हैं। हम कहते हैं, ”तुम चिंता मत करो इन साधारण आंखों के लिए। तुम उन आंतरिक आंखों को पा सकते हो जिनसे तुम अपने को, स्वयं को देख सको, इसलिए उनके लिए चिंता मत करो। उन्हें पूर्णतया भूल ही जाओ। तुम कुछ खो नहीं रहे हो क्योंकि आंखों से किसी को कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। तुम भीतर सरलता से जा सकते हो क्योंकि बाहर जाने का द्वार बंद है। ”

आंखें तुम्हारे बाहर जाने के द्वार हैं। आंखों से ही तुम बाहर जाते हो, आंखों से ही इच्छा का जन्म होता है, आंखों से ही भ्रम पैदा होता है, प्रक्षेपण होता है, आंखों से ही सारा संसार चलता है। किंतु वह जो अत्यंत आंतरिक है, वहां इन आंखों से नहीं पहुंचा जा सकता। तुम्हें उसके लिए तो अंधा होना ही पड़ेगा। नहीं कि तुम्हें इन आंखों को निकाल कर बाहर फेंक देना है, बल्कि मतलब यह है कि तुम्हारी आंखें रिक्त हो जायें, वस्तु—रहित हो जायें, सपनों से खाली हो जायें। तुम्हारी आंखें शून्य हो जायें—वस्तुओं से, चित्रों से और सपनों से शून्य हो जायें।

यदि तुम एक बुद्ध की आंखों में देखो तो तुम उन्हें समग्र रूप से भिन्न पाओगे। बुद्ध तुम्हारी देखते हैं, लेकिन फिर भी वे तुम्हारी ओर नहीं देखते हैं। तुम उनकी आंखों के हिस्से नहीं बनते।

देखना खाली है। कभी—कभी तूम्हें भय भी लग सकता है क्योंकि तुम्हें लग सकता है कि वे तुम्हारे उदासीन हैं। वे तुम्हारी ओर इतनी रिक्तता से देखते हैं कि जैसे कोई ध्यान नहीं दे रहे हों। सचमुच वे तुम्हारी ओर कोई ध्यान नहीं दे सकते। ध्यान खो गया है, उनके पास सिर्फ सजगता अब वे किसी भी एक चीज के प्रति पूर्णतया ध्यान—युक्त नहीं हो सकते, क्योंकि एक ही चीज की ध्यान—युक्त होना इच्छा के कारण निर्मित होता है। अब वे तुम्हारी ओर ऐसे ही देखते हैं जैसे नहीं देख हैं। तुम कभी भी उनकी आख का हिस्सा नहीं बन सकते। यदि तुम उनकी आख का हिस्सा हो जाओ तुम उनके मन के भी हिस्से हो सकते हो, क्योंकि आंखें सिर्फ मन के लिए द्वार हैं। वे बाहर के संसार भीतर इकट्ठा करती रहती हैं। आंखें तो दृष्टि विहीन हो जानी चाहिए। केवल तभी तुम आत्मा को सकते हो।

यह सूत्र कहता है :

आंखें उस तक नहीं पहुंच सकती.....

वह आंखों की पकड़ के बाहर है। लेकिन हम हैं कि पूछते ही चले जाते हैं कि परमात्मा को कैसे देखा जाए। और हम कहे चले जाते हैं कि जब तक हम उसे देख न लें तब तक हम उस पर विश्वास नहीं कर सकते। तुम उसे नहीं देख सकते। देखना काम न आएगा। तुम सिर्फ संसार को देख सकते हो, परमात्मा को नहीं देखा जा सकता है। और यदि कोई कहता है कि मैंने परमात्मा को देखा है तो वह भ्रम में है। उसने कोई सपना देखा होगा। कोई सुंदर सपना देखा होगा, एक पवित्र सपना, लेकिन सपना ही। इसलिए यदि तुम कहते हो कि तुमने राम को देखा है, तुमने कृष्ण को देखा है, अथवा जीसस को देखा है तो तुम सपना देख रहे हो। अच्छे सपने हैं, सुंदर सपने हैं, लेकिन सपने ही हैं। तुम 'उसे' नहीं देख सकते। वहां आंखें कुछ सहायता नहीं कर सकतीं। आंखों के द्वारा उस तक नहीं पहुंचा जा सकता है। उसे देखने के लिए तो तुम्हें अंधा ही होना पड़ेगा।

जब तुम अपनी आंखों को गवां ही दो—वस्तुत जब देखने की कोई चाह ही न रह जाए—तुम्हारी आंखें शून्य हो जाएं तो अचानक वह भीतर प्रगट हो जाता है। उसके लिए किन्हीं आंखों की कोई जरूरत नहीं है। वह स्वयं प्रगट है। सामान्यत: चीजें स्वयं प्रगट नहीं हैं इसीलिए आंखों की जरूरत होती है। वह स्वयं प्रगट है। वास्तव में, गहरे अर्थों में जब तुम आंखों से देख रहे हो, तो 'वही' आंखों से देख रहा होता है, न कि आंखें देख रही होती हैं। यह एक दूसरा आयाम है जो कि समझ लेना चाहिए।

जब मैं तुम्हारी ओर देख रहा हूं तो क्या मेरी आंखें तुम्हारी ओर देख रही हैं? आंखें तो सिर्फ खिड़कियां हैं। मैं ही उन आंखों के द्वारा तुम्हारी ओर देख रहा हूं। आंखें तो सिर्फ खिड़कियां हैं; मैं उसके पीछे खड़ा हूं। यदि मैं खिड़की के पीछे खड़ा हो जाऊं और बाहर पहाड़ियों की ओर देखूं तो क्या तुम यह कहोगे कि खिड़की पहाड़ियों की ओर देख रही है? खिड़की की तो कोई बात भी नहीं करेगा। मैं ही खिड़की के माध्यम से देख रहा हूं। आंखें तो सिर्फ द्वार हैं, खिड़कियां हैं। उनके द्वारा चेतना ही देखती है। और इस चेतना को कोई जरूरत नहीं है कि उसे स्वयं को देखने के लिए भी आंखों से देखना पड़े। आंखें दूसरों के लिए हैं। आंखें दूसरों को देखने का उपाय हैं। तुम्हें स्वयं को देखने के लिए आंखों की जरूरत नहीं है।

उदाहरण के लिए : यदि मैं पहाड़ियों को देखना चाहूं तो मुझे खिड़की से बाहर देखना होगा, परंतु यदि मुझे स्वयं को ही देखना हो तो खिड़की की कोई जरूरत नहीं है। मैं खिड़की को बंद कर सकता हूं। उसकी कोई भी जरूरत नहीं है क्योंकि मैं खिड़की के बाहर नहीं हूं मैं खिड़की के भीतर हूं। बाकी हर चीज के लिए आंखें

सहायक हैं। प्रत्येक चीज के पास उनके द्वारा पहुंचा जा सकता है, केवल आत्मा तक आंखों के द्वारा नहीं पहुंचा जा सकता।

आंखें उस तक नहीं पहुंच सकती..

इसे स्मरण रखना। तब फिर यह झूठा प्रश्न कि ”मैं ईश्वर को कैसे देखूं ”गिर जाएगा। तुम फिर यह प्रश्न खड़ा ही नहीं करोगे और इस प्रश्न के इर्द—गिर्द झूठी खोज नहीं करोगे। तुम नहीं पूछोगे कि उसे कहां देखा जाए, कि उसे कहां पाया जाए। वह कहीं भी नहीं है, और वस्तुत: आंखों की बात ही उठाना व्यर्थ है। वह तो पीछे छिपा है—भीतर। अपनी आंखों को बंद करो और ‘वह’ प्रगट हो जाएगा।

लेकिन सिर्फ इन शारीरिक आंखों को बंद करने से वह प्रगट नहीं होगा क्योंकि सिर्फ इन शारीरिक आंखों को बंद करके तुम कुछ भी बंद नहीं कर रहे हो। तुमने जो संसार भीतर इकट्ठा कर लिया है वह तो चलता चला जाता है, और तुम उसी को देखते रहते हो। मैं अपनी आंखों को बंद कर ले सकता हूं और फिर भी तुम्हें देख सकता हूं। तब फिर आंखें रिक्त नहीं हैं। तब फिर आंखें अभी भी भरी हैं। जब सारे चित्र विलीन हो जायें, सारी अंकित छवियां विलीन हो जायें, तभी आंखें ?? होती हैं। और जब आंखें रिक्त हो जायें तो ही तुम उस तक पहुंच सकते हो। तभी तुम भीतर जा सकते हो।

न ही वाणी और न ही मन।

वाणी भी काम नहीं पड़ेगी। बौद्धिक सोच—विचार भी किसी काम न आएगा। जो भी तुम सोच सकते हो वह ‘वह’ नहीं होगा। क्योंकि सब सोच—विचार भी बाहर का ही है। विचार भी वस्तुओं का ही होता है। विज्ञान सोच—विचार पर जोर देता है; धर्म निर्विचार पर जोर देता है। विज्ञान का जोर और अधिक तार्किक चिंतन पर है ताकि वस्तुओं की प्रकृति और अधिक सही रूप से प्रगट हो सके। और धर्म कहता है कि सोचो ही मत, तभी आत्मा का स्वभाव तुम्हें प्रगट हो सकेगा। वे दोनों एक—दूसरे के ठीक विपरीत हैं।

धर्म कहता है, ”सोचना छोड़ो, सोच—विचार बंद करो, सब विचारों को गिरा दो, वे ही बाधाएं हैं। ”और विज्ञान कहता है, ”विचार को और अधिक तर्कपूर्ण बनाओ, सही करो, विश्लेषणात्मक करो, उसे बुद्धिसंगत बनाओ। उसमें किसी प्रकार की श्रद्धा या विश्वास का प्रवेश मत होने दो, उसमें किसी भी प्रकार का भाव मत आने दो, उसमें किसी भी प्रकार से तुम संलग्न मत हो। उसे बिलकुल तटस्थ रहने दो—आखिरी छोर तक तार्किक रहने दो। तभी केवल वस्तुओं का स्वभाव प्रगट हो सकेगा। ” और दोनों सही हैं। जहा तक संसार का प्रश्न है, विज्ञान सही है, और जहां तक आंतरिक विषयों का संबंध है, धर्म सही है।

परंतु तुम भांति में पड़ सकते हो, और वह भांति चारों ओर है, विश्वव्यापी है। एक वैशानिक को अनुभव होता है कि जितना अधिक उसका विचार गहरा होता है उतना ही वह किसी भी वस्तु के भीतरी छोर तक जा सकता है, तब वह सोचने लगता है कि यही विधि आंतरिक खोज के लिए भी उपयोगी है। तब भ्रांति शुरू होती है। यह विधि आंतरिक खोज में सहयोगी नहीं हो सकती। और वास्तव में, यदि वैज्ञानिक इस बात पर बहुत जोर दे कि वही विधि काम में लेनी है जो कि विज्ञान की खोज में काम में ली जाती रही है, वही प्रयोगात्मक ढंग, वही वस्तुगत विधि तो वह इस निष्कर्ष पर पहुंच जाएगा कि आत्मा जैसा कुछ भी नहीं होता। नहीं कि आत्मा नहीं है, परंतु वैज्ञानिक की वस्तुओं को आविष्कृत करने कि विधि के कारण, वह आत्मा का आविष्कार नहीं कर सकेगा। वह उसके पास से गुजर जाएगा। उस विधि के कारण ही वह उससे चूक जाएगा।

जो भी संसार में सहायक है, वही भीतर की खोज में अवरोध है। यही भ्रांति दूसरे छोर पर भी हुई है। जब कोई धार्मिक व्यक्ति निर्विचार से भीतर की आत्मा पर पहुंचता है, तो वह यह विश्वास करने लग जाता है कि वह बाहर के संसार को भी निर्विचार से ही प्रगट कर सकता है।

पूर्व ने यह भ्रांति बड़ी गहराई से पकड़ी है। इसीलिए पूर्व विज्ञान को जन्म नहीं दे सका। तुम निर्विचार से विज्ञान का सृजन नहीं कर सकते। पूर्व पूर्णतया अ—वैज्ञानिक रहा है। यहां बड़े—बड़े मनीषी पैदा हुए लेकिन वे विज्ञान को जन्म नहीं दे सके। उन्होंने बहुत चर्चा की, दर्शनशास्त्र के मामले में वे उच्च कोटि के थे, लेकिन बाह्य जगत में कुछ भी नहीं हुआ। कुछ हो भी नहीं सकता है।

पश्चिम ने विज्ञान का एक विराट भवन खड़ा कर दिया है, चूंकि वहा आइंस्टीन जैसे वैज्ञानिक हुए लेकिन भीतरी खोज कुछ भी न हो सकी। यहां तक कि अलबर्ट आइंस्टीन भी जब मरने लगा तो वह भी निराश ही मरा। उसने जगत की चीजों के रहस्य के बारे में गहरी डुबकी लगाई और उसने एक गहनत्म केंद्रीय तत्व प्रगट किया—सापेक्षता का नियम। लेकिन उसने यह भी महसूस किया कि यद्यपि उसने ऐसी बहुत—सी बातों के बारे में पता लगाया है जो कि पहले नहीं जानी गई थीं, लेकिन जहा तक आत्मा का संबंध था, वह उसके लिए रहस्य ही रहा। उसके बारे में कुछ भी नहीं जान सका। उसकी विधि उलटी है क्योंकि उसकी —दिशाएं भी उल्टी हैं।

किसी भी वस्तु को जानने के लिए तुम्हें बाहर जाना पड़ेगा, किंतु स्वयं को, आत्मा को जानने के लिए तुम्हें भीतर जाना पड़ेगा। बाहर जाने के लिए तुम्हें विचार में जाना पड़ेगा। विचार की प्रक्रिया बाहर जाने की प्रक्रिया है। भीतर जाने के लिए तुम्हें विचार बंद करना पड़ेगा, सोचना बंद कर देना पड़ेगा। निर्विचार ही भीतर जाने की प्रक्रिया है।

यह सूत्र कहता है:

........न ही वाणी और न ही मन।

मन भी कुछ सहायता न करेगा। केवल ध्यान ही सहायक हो सकता है। ध्यान तुम्हारे भीतर अ— मन की स्थिति पैदा करता है। इसे स्मरण रखो कि ध्यान तुम्हारे भीतर अ—मन की स्थिति पैदा करता इसीलिए मेरा इतना जोर है कि पूरी तरह पागल हो जाओ कि मन गिर जाये। मन हमेशा पागलपन का प्रतिरोध करता है। मन कहता है, ”यह तुम क्या कर रहे हो? क्या पागल हो गए हो? ”मन सदा तर्कपूर्ण बात चाहता है। मन सदा पूछता है कि तुम यह क्यों कर रहे हो। और यदि तुम इस ‘क्यों’ का जवाब नहीं दे सकते तो मन कहता है कि बंद करो।

लेकिन जीवन किसी भी ‘क्यों’ का जवाब नहीं देता। यदि तुम किसी के प्रेम में पड़ जाओ तो मन पूछता है कि तुम प्यार में क्यों गिरे हो? और फिर तुम उसके लिए कुछ कारण ढूंढ लेते हो, कि लड़की का चेहरा सुंदर है, आदि! बात यह नहीं है। वास्तव में लड़की का चेहरा सुंदर ही इसलिए लग रहा है क्योंकि तुम प्यार में पड़ गए हो, न कि किसी और कारण से। ऐसा नहीं है कि चूंकि उसका चेहरा सुंदर है, इसलिए तुम प्यार में पड़ गए हो। अन्यथा तो प्रत्येक उसी लड़की के प्रेम में पड़ जाएगा। लेकिन कोई और नहीं पड़ा है। ऐसा नहीं है कि चेहरा सुंदर है, बल्कि तुम्हारा प्रेम उसे सौंदर्य प्रदान कर रहा है। तुम्हारा प्रेम ही उसके चारों ओर सुंदरता की भूमिका खड़ी कर रहा है।

इसीलिए तुम दूसरे प्रेमियों पर हंसते रहते हो। तुम सोचते हो कि कोई दूसरा प्रेमी पागल है। ऐसी लड़की के प्रेम में पडा है? तुम्हें तो विकर्षण होता है, और उसे आकर्षण होता है! तुम्हें लगता है कि वह पागल हो गया है। नहीं, वह पागल नहीं हुआ है क्योंकि प्रेम कोई तर्क की घटना नहीं है। तुम प्रेम में गिरते हो। इसीलिए हम उसे गिरना कहते हैं क्योंकि तुम सिर से नीचे गिर गए हो। यह कोई प्रेम में उठना नहीं है। यह प्रेम में गिरना है, क्योंकि सिर को लगता है कि तुम नीचे गिर गए हो। तुम्हारा तर्क खो गया है, तुम पागल हुए जा रहे हो।

प्रेम एक तरह से पागलपन है, विक्षिप्तता है। वस्तुत: जीवन स्वयं भी एक पागलपन, एक विक्षिप्तता ही है। यदि तुम पूछते ही जाओ कि ‘क्यों?’ तो तुम एक पल भी नहीं जी सकते। यदि तुम पूछते ही जाओ, ”क्यों

श्वास लूं? क्यों आज बिस्तर से बाहर निकलूं? क्यों? "कोई उत्तर नहीं है। "आज सोए ही क्यों? "कोई उत्तर नहीं है। "क्यों रोज—रोज भोजन करें? क्यों उसी—उसी व्यक्ति से रोज प्रेम किया जाए? " कोई उत्तर नहीं है। जीवन उत्तर—रहित है। तुम प्रश्न तो उठा सकते हो, लेकिन उनका उत्तर देने वाला कोई नहीं है।

जीवन एक प्रकार से विक्षिप्तता ही है।

तर्क मृत्यु है; जीवन नहीं है। जितने अधिक तुम तर्कसंगत होते जाओगे उतने ही ज्यादा तुम मृत हो जाओगे क्योंकि बार—बार तुम पूछोगे कि क्यों? और उसका कोई उत्तर नहीं है। तब तुम कुछ भी नहीं करोगे और तब तुम सिकुड़ते जाओगे, बंद होते जाओगे। जीवन एक पागल फैलाव है। और ध्यान में हम जीवन की गहन और अधिक गहन गहराइयों में उतरते चले जाते हैं, आखिरी केंद्र बिंदु पर पहुंच जाते हैं। मन को पीछे ही छोड़ देना है। इसीलिए मैं कहता हूं कि मत पूछो 'क्यों'—सिर्फ चलो, और जो भी अपने आप तुम्हारे साथ होता हो उसे होने दो। यदि तुम उसे होने दोगे, तो प्रारंभ में मन कहेगा, "यह मत करो। दूसरे क्या सोचेंगे? लोग क्या कहेंगे? तुम्हारे जैसा तर्कसंगत आदमी और बच्चों की भांति नाच रहा है। पागलों की तरह रो रहा है, चिल्ला रहा है? यह सब क्या करते हो? " मन तुम्हें रोकने को कहता चला जाएगा, और तुममें मन की न सुनने का साहस होना चाहिए क्योंकि मन उस तक नहीं पहुंच सकता। तुम्हें उसे अलग रख देना पड़ेगा।

मन एक उपाय है संसार में व्यवहार करने का। उसका तुम्हारे लिए कोई उपयोग नहीं है। तुम मन के भी पहले से हो। तुम मन से भी ज्यादा गहराई में हो। मन तो तुम्हारे ऊपर हुई एक घटना है। वह सिर्फ परिधि पर है। हमारे पास भिन्न—भिन्न प्रकार के मन हैं, लेकिन हमारे स्वरूप भिन्न नहीं हैं। मन तो एक संग्रह है, एक कमाई है। एक बच्चा पैदा होता है, तो वह बिना मन के ही पैदा होता है। वह एक सरल चेतना है, और धीरे—धीरे उसके चारों तरफ मन निर्मित होता जाता है। उसे समाज में चलने के लिए मन की आवश्यकता है। काम करने के लिए, जिंदा रहने के लिए मन की आवश्यकता है।

मन सिर्फ एक साधन है। इसीलिए प्रत्येक समाज एक भिन्न प्रकार का मन निर्मित करता है। यदि तुम एक आदिवासी गांव में पैदा हुए हो जो कि पहाड़ों में छिपा है, जिसे आधुनिक जगत की टेक्यालाजी का कुछ भी ज्ञान नहीं है, जो भी सम—सामायिक है उसका उसे कुछ भी पता नहीं है, तो तुम्हारे माता—पिता तुम्हें एक अलग ही प्रकार का मन प्रदान करेंगे, क्योंकि तुम्हें एक भिन्न ही प्रकार के संसार में रहना है। यदि तुम पूर्व में पैदा हुए हो तो तुम्हारे पास एक अलग तरह का मन होगा; यदि तुम पश्चिम में पैदा हुए हो तो तुम्हारे पास एक अलग तरह का मन होगा। यदि तुम एक ही गाव में पैदा हुए हो और तुम ईसाई हो तो तुम्हारे पास एक अलग प्रकार का मन होगा, और यदि तुम मुसलमान हो तो तुम्हारे पास एक दूसरे ही प्रकार का मन होगा।

मन एक निर्माण है, एक निर्मित की हुई चीज है। परंतु हमारा स्वरूप, बिना किसी मन के हर जगह एक जैसा है। यदि तुम गहरे जाओ तो तुम्हें एक नई ही बात का पता चलेगा। यदि तुम मानव—प्राणी हो तो तुम्हारे पास एक प्रकार का मन है, और जो वृक्ष खिड़की के बाहर खड़े हैं, उनके पास भी मन है, वह दूसरी ही तरह का मन है। जहां तक 'बीइंग' का, स्वरूरप का प्रश्न है दोनों के पास एक जैसा ही स्वरूप है। केवल मन भिन्न—भिन्न हैं। चूंकि वृक्ष को वृक्षों के बीच रहना है, इसलिए उसको ऐसा ही मन निर्मित करना होता है कि वह वृक्षों के बीच जी सके। तुम्हें वैसे मन की जरूरत नहीं है। इसलिए तुम्हें लगता है कि वृक्ष बोलते नहीं हैं क्योंकि तुम उनकी भाषा नहीं जानते हो। तुम सोचते हो कि पशु नहीं बोलते हैं। तुम सोचते हो कि उनकी कोई भाषा नहीं है। वास्तव में, बात यह है कि चूंकि तुम उनको नहीं समझ सकते हो इसलिए तुम सोचते हो कि उनकी भाषा नहीं है। उनकी अपनी भाषा है। उनके पास अपना मन है जो कि उनके ढंग के अनुकूल है, उनके वातावरण के अनुकूल है, उनके समाज के अनुकूल है।

मन एक उपाय है, साधन है, बाहर के संसार में जीने के लिए। उसकी भीतर कोई जरूरत नहीं है। और यदि तुम उसे भीतर ले गए तो तुम भीतर प्रवेश नही कर सकते। मन के साथ तुम बाहर जा सकते हो, तुम भीतर नहीं जा सकते। मन को गिरा दो; उसे अलग रख दो। कह दो, "अब तुम्हारी जरूरत नहीं है। मैं भीतर की यात्रा पर जा रहा हूं—वहां तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है।

इसीलिए हम उसे नहीं जानते; और न ही हम यह जानते हैं कि उसे कैसे सिखायें।

जो भी मन से जाना जाता है उसे ही मन से सिखाया भी जा सकता है। लेकिन यदि मन से उसको जानना ही असंभव हो, तो फिर उसे सिखाया भी कैसे जा सकता है? शिक्षा तो मन के द्वारा ही होती है। इसीलिए उस ब्रह्म को, उस परम को, उस आत्मा को सिखाया नहीं जा सकता। उसको सिखाना असंभव है। तो फिर मैं क्या कर रहा हूं? अथवा बुद्ध, कृष्ण या जीसस क्या कर रहे हैं? यदि उसे सिखाया नहीं जा सकता तो फिर वे क्या कर रहे हैं? और केन—उपनिषद का ऋषि भी क्या कर रहा है यदि उसे सिखाया नहीं जा सकता? उसे सिखाया तो नहीं जा सकता—यह बात पूर्णत: सत्य है—लेकिन फिर भी कुछ किया सकता है।

एक स्थिति निर्मित की जा सकती है जिसमें कि वह तुम्हें छू जाए। उसे सिखाया तो नहीं जा सकता लेकिन फिर भी उसे संक्रमित किया जा सकता है। एक विशेष परिस्थिति में, तुम्हें वह पकड़ ले सकता है। इसलिए गुरु और शिष्य की सारी घटना कुछ पढ़ाने—सिखाने की नहीं है। सच पूछा जाए तो गुरु कुछ सिखाता नहीं है। गुरु तो सिर्फ तुम्हें उस हालत में, उस परिस्थिति में खींचने की, धक्का देने की कोशिश में है जिसमें कि तुम्हें वह घटना घट जाए।

योग और तंत्र की सारी विधियां सिर्फ उपाय मात्र हैं ताकि ऐसी परिस्थिति निर्मित की जा सके कि वह घटना घटित हो जाए। मैं तुम्हें सिर्फ उस स्थिति में ले जा सकता हूं जहां कि तुम एक भिन्न ही प्रकार की वास्तविकता के प्रति सजग हो सको। किंतु वह वास्तविकता, वह सत्य सिखाया नहीं जा सकता। क्या तुम किसी अंधे आदमी को समझा सकते हो कि प्रकाश क्या है? नहीं, तुम नहीं समझा सकते। चाहे तुम कुछ भी करो, तुम उसे सिखा नहीं सकते। लेकिन एक बात की जा सकती है : तुम उसकी आंखों का इलाज कर सकते हो, आंखों की शल्य—चिकित्सा की जा सकती है। और यदि वह अंधा आदमी देख सके तो वह जान सकेगा कि प्रकाश क्या होता है।

प्रकाश का अनुभव तो हो सकता है, परंतु उसे किसी अंधे आदमी को सिखाया नहीं जा सकता। और हम सब अंधे आदमी की तरह हैं, जहां तक आंतरिक वास्तविकता का संबंध है। तुम्हारी भीतरी आंखों को उसके प्रति खोला जा सकता है, लेकिन उसे तुम्हें सिखाया नहीं जा सकता।

इसीलिए श्रद्धा का धार्मिक जगत में बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। अँधे आदमी के पास श्रद्धा होनी चाहिए; वरना वह तुम्हें अपनी आख का आपरेशन नहीं करने देगा। वह कहेगा कि तुम मेरी आख और खराब कर दोगे। उसके पास आख है ही नहीं, फिर भी वह डरेगा कि पता नहीं तुम क्या करने वाले हो। और यदि उसे पता हो जाए कि तुम उसकी आख का आपरेशन करने वाले हो तो वह तुम्हें अपनी आंखों को छूने भी नहीं देगा। तुम उन्हें नष्ट कर सकते हो, कौन जाने! और अंधा आदमी कहेगा, "मुझे कैसे मालूम पड़े कि जब तुम मेरी आख का आपरेशन कर दोगे तो प्रकाश हो जाएगा? और प्रकाश क्या होता है? पहले मुझे यह तो समझाओ। पहले यह सिद्ध करो कि प्रकाश क्या होता है। और वह होता भी है, जब तक तुम यह सिद्ध न कर दो, मैं तुम्हें अपनी आंखों को हाथ नहीं लगाने दूंगा।"

और कोई भी चिकित्सक आज तक नहीं हुआ जो कि प्रकाश को सिद्ध कर सके। चिकित्सक तो इतना ही कह सकता है कि मुझमें विश्वास करो, भरोसा करो। इसके अलावा तो कुछ संभव नहीं है, कोई तर्क—वितर्क

काम नहीं आएगा। चिकित्सक सिर्फ इतना ही कह सकता है कि मुझ पर श्रद्धा करो। यदि तुम्हें कुछ लाभ नहीं भी हुआ तो भी एक बात पक्की है कि तुम्हारा कुछ खोने वाला नहीं है, क्योंकि तुम्हारे पास खोने के लिए भी आंखें नहीं हैं।

यही बात बुद्ध, कृष्ण और जीसस कहते रहे हैं, "श्रद्धा रखो। और तुम्हारे पास खोने के लिए भी कुछ नहीं है, फिर इतनी चिंता भी क्या है? मुझमें विश्वास करके तुम खोओगे भी क्या? तुम्हारे पास है भी क्या? यदि तुम्हारे पास कुछ भी हो तो जल्दी करो और भागो यहां से। किंतु तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है, कुछ भी तो नहीं है खोने के लिए, लेकिन फिर भी तुम इतने चिंतित हो! "

मेरे पास लोग आते हैं और वे कहते है, "हमें विश्वास कैसे हो? "

मैं उनसे कहता हूं "प्रश्न कैसे का नहीं है, क्योंकि कैसे का मतलब होता है उत्तर। श्रद्धा का अर्थ होता है कि तुम्हारे पास खोने को कुछ भी नहीं है, फिर क्यों नहीं एक प्रयोग करो? क्यों नहीं कोशिश करके देखो? "

कार्ल मार्क्स ने संसार के सर्वहारा लोगों को कहा, "तुम्हारे पास खोने को सिवाय तुम्हारी जंजीरों के और कुछ भी नहीं है। "यह बात शायद सर्वहारा लोगों के लिए इतनी सही न भी हो, परंतु मैं तुमसे कहता हूं कि सिवाय तुम्हारी जंजीरों के, सिवाय तुम्हारे बंधनों के, सिवाय तुम्हारे अंधेपन के और कुछ भी तो नहीं है तुम्हारे पास खोने को। और यह सारी घटना तभी संभव है जब कि तुम्हें श्रद्धा हो, क्योंकि तुम एक अनजान प्रदेश में यात्रा करने वाले हो जिसका कुछ भी पता—ठिकाना नहीं है।

मैं कहता हूं कि मैंने उसे जाना है, लेकिन मैं तुम्हें उसे जना नहीं सकता। मैं तुम्हें उस बिंदु तक पहुंचा सकता हूं जहां कि तुम्हें पता हो सके कि वह है, लेकिन मैं तुम्हें उसे सिखा नहीं सकता। कोई भाषा नहीं है उसे सिखाने के लिए। कोई मस्तिष्क नहीं ऐसा जो उसे सिखा सके। कोई मार्ग भी नहीं है उसे सिखाने का, और न कोई चिह्न ही है उसे सिखाने के लिए। जो भी तुम जानते हो उसे ज्ञान में अनुवादित नहीं किया जा सकता। वह उसके पार है।

मैंने कुछ जाना है, और मैं तुम्हें उस बिंदु तक ले जा सकता हूं जहा कि तुम भी उसे जान सको। तब तुम कह सकोगे, "हां, वह है।"

मन उसे नहीं जान सकता।

इसीलिए हम उसे नहीं जानते

क्योंकि जो भी हम जानते हैं वह मन के द्वारा ही जानते हैं। हमारा सारा शान ही हमारा मन और है, हमारा सारा मन कुछ और नहीं है, केवल हमारा जानना ही है। इसलिए हम उसे नहीं जान सकते……

…….. और न ही हम यह जानते हैं कि उसे कैसे सिखायें वह उससे भिन्न है जो कि ज्ञात है और वह उससे भी भिन्न है जो कि अज्ञात है!

इससे और भी गहरी समस्या खड़ी—होती है।

वह ज्ञात से भिन्न है…

यह स्पष्ट है। क्योंकि यदि वह ज्ञात से फित्र नहीं होता तो तुम उसे अब तक जान ही लेते।

जो भी तुम जानते हो, वह 'वह' नहीं है। और जो भी तुम्हारा जानने का ढंग है, उस ढंग से भी तुम उसे नहीं जान सकते, अन्यथा अब तक तुम उसे जान ही लेते, क्योंकि तुम लाखों—करोड़ों वर्षों से अस्तित्व में मौजूद हो। लेकिन फिर भी बार—बार तुम उसे चूकते रहे हो। और बुद्धपुरुष उसके बारे में बात करते चले जाते हैं, और तुम उनकी बात सुनते चले जाते हो, लेकिन कुछ भी घटता नहीं।

वह ज्ञात से भिन्न है और वह अज्ञात से भी भिन्न है।

क्योंकि अज्ञात को जाना जा सकता है। अज्ञात का इतना ही अर्थ है कि जो अब तक नहीं जाना गया उसी—ज्ञान की विधि का उपयोग करके किसी दिन वह जान लिया जाएगा।

विज्ञान जगत को दो भागों में बांटता है : शात तथा अशात। इसके आगे विज्ञान के पास कुछ नहीं भी है। विज्ञान कहता है, "ज्ञात और अज्ञात। ज्ञात वह है जो कि हमने जान लिया है, और अज्ञात वह है जो कि देर—अबेर जान लिया जाएगा। "

धर्म एक तीसरी श्रेणी उपस्थित करता है— " अज्ञेय। " धम कहता है कि कुछ है जो कि ज्ञात है, कुछ है जो कि अज्ञात है, और कुछ ऐसा भी है जो कि अज्ञेय है। यदि कुछ अज्ञेय है तो ही धर्म की संभावना हो सकती है, अन्यथा विज्ञान पर्याप्त है। अशात को शात में परिवर्तित करते जाना होगा।

यह संभावना है कि विज्ञान किसी दिन उस जगह आ जाएगा जहां कि एक ही वर्ग रह जाए— ज्ञात का वर्ग। धीरे—धीरे अज्ञात ज्ञात हो जाएगा। एक बिंदु ऐसा आ जाएगा जहा कुछ भी अज्ञात नहीं बचेगा। विज्ञान के लिए ऐसी कल्पना की जा सकती है। लेकिन धर्म कहता है कि कुछ ऐसा भी है जो न तो की भांति है, और न अज्ञात की भांति है—वह अज्ञेय है। चाहे तुम कुछ भी करो, तुम उसे नहीं जान सकते। अत: जब सब कुछ जान लिया जाएगा, तब भी अज्ञेय पीछे शेष रह जाएगा—रहस्य, रहस्यात्मक, रहस्यों का भी रहस्य बच रहेगा।

इस पर इतना जोर क्यों है कि वह अज्ञेय है? कपों नहीं इतना ही कहते कि वह अज्ञात है? क्योंकि जो भी ज्ञात है, वह मन के द्वारा ही ज्ञात है, और अज्ञात भी मन के ही द्वारा जान लिया जाएगा और 'वह' मन के पीछे है। तुम मन से कुछ भी करो, तुम उस तक कभी भी —न पडुंच सकोगे। तुम्हें मन को गिराना पड़ेगा। ओर मन के साथ शात भी गिर जाता है और अज्ञात भी गिर जाता है, क्योंकि ये ही दो मन के काम करने के ढंग हैं। शात और अज्ञात, ये दोनों ही मन के कार्यक्षेत्र हैं। जब मन गिर जाता है तो ये दोनों भी गिर जाते हैं, और तुम एक तीसरे आयाम में प्रवेश करते हो। तीसरा आयाम है, अज्ञेय का। तब तुम उस आयाम में प्रवेश करते हो जहा कि आत्मा है।

लेकिन ऋषि एक बहुत ही अनूठी बात कहता है :

ऐसा हमने अपने पूर्वजों से सुना है जिन्होंने उसके बारे में हमें बताया है।

वह कहता है कि ऐसा हमने अपने गुरुओं से सुना है। वह भी भलीभांति जानता है, वह कह सकता है, "मैंने ऐसा जाना है। "यह बात कहने में कोई भी तो कठिनाई नहीं है, लेकिन फिर भी वह कहता है, "ऐसा हमने सुना है। हमारे गुरुओं ने ऐसा कहा है। "

यह भारतीय परंपरा का अपना एक विशेष ढंग है, यह कहने का भारतीय ढंग है। सदा विनम्र बने रहने का भारतीय ढंग है। कोई आग्रह नहीं है कहने में। बुद्ध भी यही कहते हैं, "जो भी मैं कह रहा हूं वह मेरे पहले भी बहुत—से बुद्धों ने जाना था। यह कुछ नया नहीं है। "जोर इस बात पर है कि इसमें नया कुछ भी नहीं है, कुछ भी मौलिक नहीं है। और वास्तव में, सत्य कभी मौलिक नहीं हो सकता। केवल असत्य ही मौलिक हो सकता है। तुम झूठ को ईजाद कर सकते हो, लेकिन तुम सत्य का आविष्कार नहीं कर सकते; या कि कर सकते हो?

सत्य का आविष्कार नहीं हो सकता। सत्य शाश्वत है—समयातीत है। इसलिए यह बात कहना कि मैंने सत्य की खोज की है, मूढ़ता है। तुम उसे कभी खोजते नहीं, सिर्फ उसकी पुनखोंज करते हो। उसे ही बार—बार खोजा गया है, हजारों—लाखों बार। उसे ही बार—बार जाना गया है, सहस्त्रों बार। तुम उसे ही फिर—फिर खोजते हो, तुम उसे नया नहीं खोजते हो।

इसी तथ्य पर जोर देने के लिए ऋषि कहता है, "ऐसा उन्होंने कहा है जो हमसे पहले आये हैं। ऐसा सदैव जाना गया है। "ऋषि किसी मौलिकता का दावा नहीं करता। ऐसा दावा अहंकार का हिस्सा है। यह दावा कि

मैंने खोजा है, यह एक अहंकारी मन की बात है। सचमुच, अहंकार को बड़ी चोट लगती है यदि तुम कह दो कि इसमें मौलिकता क्या है? यदि कोई व्यक्ति कोई बात कहे और तुम कह दो कि यह मौलिक नहीं है तो उस व्यक्ति को चोट लगती है। यदि कोई आदमी कोई किताब लिखता है और तुम कहो कि यह मौलिक नहीं है, यह किताब कितनी ही बार बहुत—से लोगों द्वारा लिखी जा चुकी है, फिर तुमने व्यर्थ ही क्यों इतनी मेहनत की? तो उस आदमी को बड़ी चोट लगेगी। प्रत्येक लेखक, प्रत्येक चिंतक किसी प्रकार से यह सिद्ध करने का प्रयत्न करता है कि जो भी वह कह रहा है मौलिक है। यह एक नई बीमारी है।

पश्चिम में, यदि तुम कोई मौलिक बात नहीं कह रहे हो तो फिर उसे कहने का अर्थ ही क्या है? क्यों कह रहे हो? उसे कहो ही मत। पूर्व में बात बिलकुल विपरीत है। यदि तुम कुछ मौलिक बात कह रहे हो तो पूर्व कहेगा, रुको, और थोड़ा इस पर विचार करो। इसके दावेदार मत बनो; ऐसा मत कहो कि मौलिक बात है क्योंकि यदि यह मौलिक है तो जरूर इसमें कुछ गलती होगी। अन्यथा पहले भी यह जान लिया गया होता। सत्य तो शाश्वत है। यदि यह मौलिक है तो इसमें जरूर कोई त्रुटि होगी। तुम रुको! किसी और से मत कहो, वरना तुम कठिनाई में पड़ जाओगे क्योंकि तुम असत्य भी साबित हो सकते हो। रुको, सोचो, ध्यान करो। यह जगत इतना शाश्वत है, इतना सनातन है कि तुम ऐसा कैसे सोच सकते हो कि जो भी तुमने सत्य की भांति खोजा है वह पहले नहीं खोजा जा चुका है? यह असंभव है!

लेकिन ऐसा होता है क्योंकि हमारे ज्ञान की सीमा बहुत छोटी है। यह ऐसे ही है जैसे कि मौसम में वृक्ष पुष्पित होते हैं और उनमें फूल लगते हैं। ये फूल नहीं जान सकते उन फूलों को जो कि पिछले मौसम में आए थे। ये उन्हें नहीं जान सकते क्योंकि इनकी उन फूलों से कभी मुलाकात नहीं हुई। वे अपने को ही बहुत अनूठे, बहुत मौलिक समझेंगे, "हम इस पृथ्वी पर आए हैं, और इसलिए यह पृथ्वी इतनी सुंदर हो गई है। चूंकि हम खिले हैं, इसलिए सारा अस्तित्व ही हमारे साथ खिल उठा है। "

वे नहीं जानते कि यह बात सदा—सदा होती आयी है। हर साल मौसम आता है और फूल खिलते हैं। परंतु फूल तो आपस में मिल नहीं सकते, इसलिए हर फूल यही समझता है कि वह पहली बार इस पृथ्वी पर आया है। यह बात उसे एक नई हवा दे देती है, एक अहंकार पैदा कर देती है। वह अनुभव करता है कि वह कुछ है, कुछ विशेष है।

पूर्व का जोर सदा इस बात पर रहा है कि सत्य शाश्वत है। तुम उसे सिर्फ पुन: खोजते हो। बहुतों ने उसे जाना है, बहुत—से लोग उसे पुन: जानेंगे, तुम सिर्फ उस विराट शृंखला के एक छोटे—से हिस्से हो। यह तुम्हारा मौसम है इसलिए तुम अब खिले हो, लेकिन दूसरे बुद्ध भी खिले हैं। यह ऐसा ही है जैसे कि तुम प्रेम में पड़ते हो। तुम सोचते हो कि ऐसा प्यार पहले कभी भी नहीं किया गया, कि जैसे कुछ नया अस्तित्व के भीतर प्रवेश कर रहा है। कोई प्रेमी इस बात को मानने को तैयार नहीं है कि उसके पहले भी किसी ने उसी तरह से अपनी प्रेमिका से प्रेम किया है। कोई प्रेमी नहीं मान सकता।

और यह अच्छा है जहां तक बात की बात है। यह अच्छा ही है। तुम इससे अन्यथा मान भी ० सकते हो, जब कि तुम प्रेम में हो? तुम सोचते हो कि दूसरों ने भी प्रेम किया होगा, लेकिन इस भांति नहीं। दूसरों ने भी प्रेम किया होगा लेकिन इतनी गहरी बात नहीं हो सकती। ऐसा कभी नहीं हुआ। यह बिलकुल मौलिक है।

और यही बात विचारों के साथ होती है। जब कोई विचार तुम्हारे मस्तिष्क में आता है तो तुम सोचते हो कि ऐसा विचार पहले कभी किसी के मस्तिष्क में नहीं आया। किंतु विचार बादलों की भांति हैं, वे हर वर्ष आकाश में घिरते हैं, फिर वे बिखर जाते हैं, और फिर घिरते हैं। यह संसार एक पुनरुक्ति के चक्र में चलता रहता है।

इसलिए भारतीय, विशेषत: प्रज्ञावान भारतीय सदा से ही इस बात पर जोर देते रहे हैं कि जो भी वे कह रहे हैं उसमें कुछ भी नया नहीं है; उसे पहले भी कहा जा चुका है। यह एक बहुत ही निरहंकारी निवेदन है, और इसमें गहरी समझ छिपी है, "सत्य कैसे प्रतीक्षा करता रह सकता है मेरी कि मैं आऊं और उसे खोजूं? वह मेरे द्वारा ही खोजे जाने के लिए कैसे ठहरा रह सकता है? " उसे बार—बार खोजा गया है। परंतु ऐसा होता है कि कोई उसे खोजता है और वह फिर खो जाता है, क्योंकि उसे हस्तांतरित नहीं किया जा सकता।

यदि मैंने सत्य को जाना है तो मैं तुम्हें उसे नहीं दे सकता। उसे दिया नहीं जा सकता क्योंकि सत्य कोई वस्तु नहीं है। यह एक घटना है जो कि तुम्हारे स्वरूप के भीतर घटती है। उसे दिया नहीं जा सकता। इसलिए जिस सत्य को मैंने खोजा है, वह पुनः खो जायेगा। और जब तुम उसे खोजोगे तो तुमको लगेगा कि कुछ नया घटित हुआ है, कुछ मौलिक घटा है। लेकिन यदि तुम जान लो और तुम इसे बिना किसी अहंकार के लो तो तुम्हें यह भी अनुभव होगा कि ऋषि सच कह रहा है कि इसे पहले भी कहा गया है, पहले भी जाना गया है।

जिसे वाणी प्रगट नहीं कर सकती परंतु जो वाणी को प्रगट करता है—तू जान कि वही एकमात्र ब्रह्म है और न कि वह जो कि वस्तुगत है? जिसे लोग यहां पूजते हैं।

जिसे वाणी प्रगट नहीं कर सकती परंतु जो वाणी को प्रगट करता है...

तुम उसे कह नहीं सकते, तुम उसे बोल नहीं सकते, किंतु वाणी के द्वारा वह ही व्यक्त हो रहा है। सचमुच, बिना उसके तुम बोल नहीं सकते, बिना उसके तुम देख नहीं सकते, बिना उसके तुम अनुभव नहीं कर सकते। वही तुम्हारा जीवन है। तुम उसके बारे में बोलकर नहीं बता सकते, लेकिन वही है बोलने वाला, तुम उसे कहीं भी नहीं देख सकते, किंतु वही है देखने वाला; तुम उसके बारे में सोच भी नहीं सकते, परंतु वही है सोचनेवाला; तुम उसके बिना कुछ भी नहीं कर सकते, क्योंकि वही है करने वाला। इसलिए तुम चाहे कुछ भी करो, वही प्रगट होता है। तुम उसे प्रगट नहीं कर सकते, लेकिन जो भी तुम करते हो उससे वही प्रगट होता है क्योंकि वही है एकमात्र। ब्रह्म का अर्थ होता है जीवन। वही है एकमात्र। जिसे वाणी प्रगट नहीं कर सकती परंतु जो वाणी को प्रगट करता है—तू जान कि वही एकमात्र ब्रह्म है और न कि वह जो कि वस्तुगत है? जिसे लोग यहां पूजते हैं

लोग मूर्तियों की पूजा किये चले जाते हैं। वे परमात्मा को भी एक वस्तु बना लेते हैं, क्योंकि यदि हमारे सामने कुछ भी मौजूद नहीं हो तो हमें बड़ी बेचैनी मालूम पड़ती है। हमें बड़ी बेचैनी, बड़ी अकुलाहट लगती है। ऐसा ईश्वर जो अज्ञात हो, अज्ञेय हो, बड़ा कठिन हो जाता है। हम एक मूर्ति का सृजन कर लेते हैं, और फिर. हम उसे अपने सामने रख लेते हैं, और उसकी पूजा करते हैं।

एक तरह से यह बात बड़ी मूर्खता की है क्योंकि तुमने ही उस गइrत को बनाया था और अब तुम्हीं उसकी पूजा करने लगे। तुम उसकी ऐसे ही पूजा करते हो जैसे कि मूर्ति ने तुम्हें बनाया हो। तुमने उस मूर्ति को बनाया, असली बनाने वाला तो पीछे छिपा है। वस्तुत: परमात्मा उस पूजी जाने वाली मूर्ति में नहीं है। वह तो पूजा करने वालों के भीतर है। वह उस वस्तु में नहीं है। वह तो पूजा करने वालों के भीतर है। वह उस वस्तु में नहीं है जिसकी तुम पूजा कर रहे हो। वह तो अंतर का आखिरी हिस्सा है जहां से प्रार्थना उठ रही है। वह सदा भीतर है, लेकिन हमारे लिए कोई बात बाहर होने पर ही महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि हम एक ढांचे में थिर हो गए हैं जहां कि हर चीज वस्तुगत हो गई है। इसी से समस्या खड़ी होती है। इसलिए हमने
मंदिरों, मस्जिदों, गिरजों की स्थापना की; सिर्फ उसे वस्तुगत बनाने के लिए जिसे कि वस्तुगत नही बनाया जा सकता। लेकिन मनुष्य की मूढ़ताएं ऐसी हैं.।

मुहम्मद ने उपदेश दिया कि उसे वस्तु में नहीं डाला जा सकता। तुम उसकी मूर्ति नहीं बना सकते। उन्होंने बिलकुल ठीक बात कही थी। वे वही कह रहे थे जिसे उपनिषदों में कहा गया है। लेकिन मुसलमानों ने क्या किया? उन्होंने सोचा कि यह उनका कर्त्तव्य है कि वे मूर्तियों को तोड़ डालें, मंदिरों को नष्ट कर दें, उनमें आग लगा दें। क्योंकि उसे मूर्ति में नहीं ढाला जा सकता, इसलिए जहां भी उसे मूर्ति में डाला गया हो, उस वस्तु को ही नष्ट कर दो।

जरा मनुष्य की मूढ़ता तो देखो! मुहम्मद यह कहने की कोशिश कर रहे थे कि तुम भूलो मूर्ति को और भीतर जाओ। लेकिन वे मूर्ति को नहीं भूल सके। वे फिर से मूर्ति से ही ग्रसित हो गए : "चलो नष्ट करो। "अत: कोई ईश्वर को पत्थरों में पूज रहा है, और कोई पत्थरों को तोड़ रहा है, लेकिन दोनों ही पत्थर से जुड़े हैं अपने—अपने ढंग से, और दोनों ही सोचते हैं कि पत्थर बड़ा महत्वपूर्ण है—एक उसकी पूजा करने के लिए, और दूसरा उसे नष्ट करने के लिए। एक सोचता है कि यदि वह मूर्ति को नहीं पूजेगा तो वह धार्मिक नहीं हो सकेगा, और एक सोचता है कि यदि वह इस पत्थर को नहीं तोड़ेगा तो वह धार्मिक नहीं हो सकता। दोनों के लिए पत्थर महत्वपूर्ण हो गया।

हम वस्तु की ओर बढ़ते जाते हैं। या तो हम उससे प्रेम करते हैं, या फिर उससे घृणा करते हैं, लेकिन वस्तु वहीं बनी रहती है। और जिन्होंने भी आज तक जाना है उनका सारा जोर इस बात पर है कि वस्तु को भूलो और अपनी निजता में ठहर जाओ। किसी वस्तु का, किसी मूर्ति का, किसी नाम का अथवा किसी रूप का निर्माण मत करो। कुछ भी निर्मित मत करो। सर्जक तो पहले ही मौजूद है; तुम उस पर और सुधार नहीं कर सकते। कुछ न करो, केवल भीतर जाओ और उसे जानो।

जिसे मन नहीं समझ सकता परंतु जो मन को समझता है—तू जान कि वही एकमात्र ब्रह्म है और न कि वह जिसे लोग यहां पूजते हैं।

मन उसे नहीं समझ सकता, लेकिन वह मन को समझ सकता है। मन उसमें समाविष्ट है, सभी कुछ उसमें समाविष्ट है। पत्थर भी उसमें समाविष्ट है। लेकिन पत्थर उसे समाविष्ट नहीं कर सकता, यही मुख्य बात है। एक बड़ा वर्तुल खींचो, फिर उसके भीतर एक छोटा वर्तुल खींचो। बड़ा वर्तुल छोटे वर्तुल को समाए है। छोटा वर्तुल बड़े वर्तुल का हिस्सा है, लेकिन छोटा वर्तुल बड़े वर्तुल को नहीं समा सकता। तुम्हारा मन परमात्मा में समाविष्ट है, लेकिन तुम्हारा मन उसे अपने में समाविष्ट नहीं कर सकता। वह एक हिस्सा है, और एक हिस्सा सर्व को नहीं समा सकता। सर्व सभी कुछ को समझ सकता है, समा सकता है। और जब एक हिस्सा कहने लगे कि "मैं सर्व को समाए हूं " तो वह हिस्सा पागल हो गया है, वह हिस्सा विक्षिप्त हो उठा है।

जब कभी तुम समग्र को मन के द्वारा समझने की कोशिश करते हो तो तुम एक मूढ़ता कर रहे हो। यह असंभव है। एक बूंद सागर को नहीं समा सकती, किंतु सागर पानी की बूंद को समाए है। और यदि पानी की बूंद कहे कि मैं ही सागर हूं तो फिर बूंद का दिमाग खराब हो गया है। लेकिन यह बूंद सागर हो सकती है। यदि यह पानी की बूंद सागर में गिर जाए और अपनी सीमाओं को खो दे, तो बूंद सागर हो जाती है।

मन नहीं कह सकता है कि मैं जानता हूं। मन सागर की समग्रता में गिर सकता है, और तब वह उसका ही हिस्सा हो सकता है।

जो भी हम पूजते हैं वह सिर्फ एक खेल है। वह अच्छा है। यदि तुम्हें पूजा करना अच्छा लगता है ठीक है। खेल अच्छा है, और मैं कभी भी किसी के खेल को बिगाड़ने में उत्सुक नहीं हूं। यदि तुम पूजा करने में रस लेते हो और चर्च जाते हो तो यह अच्छा है, जाते रहो। लेकिन याद रखो कि तुम बुनियादी बात चूक रहे हो. कि वह आत्यंतिक पूजा करने वाले के भीतर छिपा है। इसलिए जब पूजा करो तो अपनी आंखों को पूजा की जाने वाली

वस्तु पर ही मत टिकाये रखना। अपने को भीतर पूजा करने वाले पर केंद्रित करना, वहां वह प्रगट होगा। वहीं वह छिपा है।

पांचवां प्रवचन

यह तुम्हारा स्वरूप है

पहला प्रश्न :

आपने कहा कि बौद्धिक समझ तथा ज्ञान से किसी को लाभ नहीं हुआ है, और उपनिषद कहते है कि किसी भी चीज का निषेध मत करो। यदि बुद्धि है और हमें उसका निषेध नहीं करना है तो फिर कौन—सा सर्वाधिक उत्तम मार्ग है जिससे उसका उपयोग किया जाये?

पहली बात जो बुद्धि के बारे में समझ लेनी है वह यह है कि बुद्धि टिकी ही निषेध पर है। बुद्धि का सारा काम ही निषेध करना है, न करना है। निषेध न करने पर उपनिषदों का जोर है वह आधार भूत रूप से तुम्हें बौद्धिक कसरत से मुक्त करने के लिए है।

बुद्धि सदा कहती है, ''नहीं'' अंत: जितना अधिक कोई बौद्धिक होता जाता है उतना ही वह हां कहने में असमर्थ होता जाता है। हां कहने का अर्थ होता है श्रद्धा, विश्वास; ना का अर्थ होता है संदेह; और बुद्धि संदेह पर निर्भर है। यदि तुम संदेह करते हो तो बुद्धि का काम शुरू होता है। यदि तुम संदेह नहीं करते तो बुद्धि का फिर कोई काम ही नहीं रह जाता।

बुद्धि का मतलब है निषेध। अंत: जब उपनिषद कहते है कि कुछ भी निषेध मत करो, तो उसका अर्थ होता है कि बुद्धि का कोई काम नहीं रह गया। अपने ही मन के बारे में जरा ख्याल करो।जब कभी तुम ना कहते हो तो मन काम करना शुरू कर देता है। जब कभी तुम हां कहते हो तो वह हां यात्रा की समापृति कर देता है। फिर कोई यात्रा आगे नहीं हो सकती।"

यह युग सर्वाधिक बौद्धिक युगों में से एक है, और यह जो बौद्धिक वातावरण चारों ओर निर्मित हुआ है वह सिर्फ हर चीज पर संदेह करने के कारण निर्मित हुआ है। जितनी बड़ी बुद्धि होगी, उतनी ही वह संदेहशील होगी। यदि तुम ना कहो तो वह बहुत त्वरा से काम करने लगेगी। और यदि तुम ही कह दो तो बुद्धि कट गई। इसीलिए सारे धर्मों का जोर श्रद्धा पर है क्योंकि श्रद्धा से बुद्धि नहीं चल सकती। फिर इसके चलने के लिए कोई आधार नहीं बचता। उसके आगे कोई लक्ष्य नहीं है। ही पर अंत आ जाता है। यदि तुम सारे अस्तित्व को ही कह सको तो सोच—विचार एकदम ठहर जाएगा। सोचने में निषेध का गुण छिपा है।

गुरु कहता है कि निषेध मत करो। निषेध के अभाव में बुद्धि विलीन हो जाती है। और तुम पूछते हो बूद्धि का क्या करें? वह वहा होगी ही नहीं। तुम्हें कुछ भी करने की जरूरत नहीं रह जाएगी। तुम्हें उसका निषेध नहीं करना पड़ेगा। और तुम बुद्धि का निषेध नहीं कर सकते क्योंकि निषेध करना ही बुद्धिगत है। यदि तुम बुद्धि का निषेध करते हो तो वह निषेध करना ही बुद्धिगत मन को और गहरी जड़ें प्रदान कर देता है। तुम उसके शिकार हो जाते हो। यदि तुम निषेध करते हो तो तुम बुद्धि के गहरे प्रयास के शिकार हो जाते हो। तुम उसका निषेध नहीं कर सकते। तुम उसका निषेध कैसे कर सकते हो? निषेध ही विचार को और उत्तेजित कर देता है। तुम कारण खोज सकते हो कि क्यों निषेध नहीं करें, लेकिन वे कारण ही बुद्धि के लिए आकर्षण हो जायेंगे। तुम्हें तर्क मिल जायेंगे कि क्यों निषेध करें, लेकिन वे तर्क भी बुद्धिगत ही होंगे।

विश्वास के पास कोई तर्क नहीं होते; न विरोध में, न पक्ष में। इसलिए वस्तुत: जिन लोगों ने भी परमात्मा के पक्ष में तर्क दिये हैं उन्हें मैं अधार्मिक कहता हूं। क्योंकि तर्कों का धर्म से कुछ लेना—देना नहीं है। सारे संसार

में बहुत से जाने—माने चिंतक हुए हैं, विशेषकर पश्चिम में, जिन्होंने परमात्मा के होने को सिद्ध करने की कोशिश की है। मैं उन्हें अधार्मिक कहता हूं—क्योंकि यदि तुम परमात्मा के होने को सिद्ध कर सकते हो, तो फिर बुद्धि परमात्मा के अस्तित्व से भी बड़ी हो जाती है। जब परमात्मा बुद्धि से सिद्ध किया जा सकता है, तो उसे बुद्धि से असिद्ध भी किया जा सकता है। अत: जो लोग भी सिद्ध करने की कोशिश करते हैं, वस्तुत: वे ही दूसरों को चुनौती देते हैं कि वे उसे असिद्ध करें।

नास्तिक हैं ही इसलिए क्योंकि तार्किक आस्तिक मौजूद हैं। जब तुम कहते हो, ”इसलिए परमात्मा है, ”तो तुम किसी अन्य को चुनौती दे रहे हो, उसकी बुद्धि को ललकार रहे हो, जो कि कह सके, ”यह बात गलत है। ” और तर्क दोनों तरफ से दिये जा सकते हैं, पक्ष तथा विपक्ष में, अंतहीन, पर वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचाते। सच्चे धार्मिक लोगों ने ईश्वर के लिये कभी कोई तर्क नहीं दिया। उन्होंने उसे जीया है। उन्होंने इस तरह जीया है जैसे कोई जी सकता है यदि परमात्मा हो तो। तुम परमात्मा को देख नहीं सकते, लेकिन तुम किसी दिव्य पुरुष को देख सकते हो, जो कि जीता जागता ईश्वर हो। वही एकमात्र प्रमाण है, लेकिन वह प्रमाण बुद्धि के लिए नहीं होगा। वह प्रमाण बौद्धिक जरा भी नहीं होगा। वह प्रमाण बुद्धि के परे होगा। वह प्रमाण तो सीधा तुम्हारे हृदय को छुएगा, तुम उसे अनुभव कर पाओगे।

जब कभी तुम किसी रामकृष्ण अथवा रमण को देखोगे, जब कभी तुम जीसस जैसे व्यक्ति को देखोगे तो यह बुद्धि नहीं होगी जो इस निष्कर्ष पर पहुंचेगी कि यह आदमी दिव्य है। तुम पहले महसूस करोगे। तुम्हारा हृदय किसी दूसरे ही आयाम में धड़कने लगेगा; तुम्हें उनके स्वरूप की एक नई ही गंध आएगी। लेकिन यह अनुभूति है; तुम इसे सिद्ध नहीं कर सकते।

बुद्धि सिद्ध कर सकती है, अथवा असिद्ध कर सकती है। लेकिन वह तुम्हें कभी विश्वास नहीं करा सकती। जब वह कुछ भी सिद्ध करती है तब भी वह सिर्फ अपने को ही सिद्ध करती है, उससे तो कुछ सिद्ध नहीं होता। यदि तुम ईश्वर के होने को सिद्ध भी कर दो तो भी इससे उसका होना सिद्ध नहीं होता, सिर्फ तुमने इससे इतना ही सिद्ध किया है कि तुम एक बहुत बुद्धिशाली व्यक्ति हो, इससे ज्यादा नहीं। तुमने यह सिद्ध कर दिया कि तुम्हारे पास एक तीक्ष्ण बुद्धि है। तुमने सिर्फ अपना ही अहंकार सिद्ध कर दिया, इससे ज्यादा तो कुछ भी नहीं किया।

और बुद्धि अहंकार के लिए सबसे सूक्ष्म भोजन है। उसके कारण ही तुम्हें लगता है कि तुम जानते हो, तुम्हें लगता है कि तुम सिद्ध कर सकते हो, तुम्हें महसूस होता है कि तुम असिद्ध कर सकते हो। तुम्हें ऐसी प्रतीति होती है कि तुम केंद्र हो। तब परमात्मा भी तुम्हारे ऊपर निर्भर हो गया! यदि तुम उसे सिद्ध कर सकी, तो ही वह हो सकता है, यदि तुम कह दो नहीं, तो वह नहीं हो जाएगा। वह नंबर दो हो गया। याद रहे, बुद्धि के लिए हर चीज नंबर दो हो जाती है, और बुद्धि प्राथमिक हो जाती है। हर चीज गौण हो जाती है! और बुद्धि प्रथम बनी रहती है।

श्रद्धा कहती है कि बुद्धि की सर्वोपरिता को फेंको, तभी केवल समग्र स्वरूप अपना काम कर सकता है। तब हमारा स्वरूप, हमारा होना प्राथमिक होगा, और बुद्धि द्वितीय होगी। तब अस्तित्व प्राथमिक होगा, और बुद्धि सिर्फ उसका एक अंग होगी। बुद्धि तानाशाह है, श्रद्धा लोकतंत्रीय है। श्रद्धा तुम्हारे ,समूचे स्वरूप को अभिव्यक्ति देती है, बुद्धि सिर्फ एक हिस्सा है जो कि सर्वोपरि होने का दावा करता है। जब उपनिषद कहते हैं कोई निषेध न करो?. बुद्धि विलीन हो जाती है। यदि तुम निषेध करते ही नहीं तो फिर बुद्धि होगी ही नहीं तुम्हारे पास। ‘नहीं’ की जरूरत होती है। वही पैर रखने की जगह है। बिना नहीं के बूद्धि खड़ी नहीं रह सकती।

इसलिए यह प्रश्न कि बुद्धि के लिए क्या करें पैदा ही नहीं होता। किसी भी बात का निषेध मत करो, और चिंता करने के लिए कोई बुद्धि नहीं बचेगी।

दूसरा प्रश्न:

सक्रिय ध्यान के पहले कुछ दिनों में मांस—पेशियां अकड़ जाती हैं और सब जगह दर्द होने लगता है। क्या कोई तरीका है इस कठिनाई को हल करने का?

जारी रखो। तुम उसके पार चले जाओगे। और कारण स्पष्ट हैं। दो कारण हैं. पहला, यह बहुत तीव्र व्यायाम है और तुम्हारे शरीर को इसके साथ समस्वर होना पड़ेगा। इसलिए तीन—चार दिनों के लिए ऐसा महसूस होगा कि सारा शरीर दुख रहा है। किसी भी नए व्यायाम के साथ ऐसा ही लगेगा। लेकिन कुछ दिनों के बाद तुम उसके पार हो जाओगे और तुम्हारा शरीर पहले से ज्यादा बलशाली महसूस होगा।

लेकिन यह बात भी आधारभूत नहीं है। आधारभूत बात तो गहरी चली जाती है, आधारभूत बात वह है जो कि आधुनिक मनोविज्ञान ने पता लगाई है। तुम्हारा शरीर सिर्फ भौतिक ही नहीं है। तुम्हारे शरीर में,तुम्हारी मांस—पेशियों में, तुम्हारे शरीर के ढांचे में बहुत—सी चीजें दमन के कारण प्रवेश कर गई हैं। यदि तुम क्रोध को दबा लेते हो तो वह शरीर में प्रवेश कर जाता है। वह मांस—पेशियों के भीतर चला जाता है, वह रक्त में चला जाता है। यदि तुम कुछ भी दबा लेते हो तो वह खाली मानसिक बात नहीं है, वह शारिरिक बात भी है, क्योंकि वस्तुत: तुम विभक्त नहीं हो।

तुम मन और शरीर, दो चीजें नहीं हो; तुम शरीर—मन हो, साइकोसोमेटिक हो। तुम दोनों हो एक साथ न। इसलिए जो भी शरीर के साथ किया जाता है वह मन तक चला जाता है तथा जो भी मन के साथ किया जाता है वह शरीर तक चला जाता है। मन और शरीर एक ही चीज के दो छोर हैं।

उदाहरण के लिए, यदि तुम क्रोधित होते हो तो शरीर के साथ क्या घटना घटती है पू जब कभी तुम क्रोध करते हो तो कुछ विशेष विष खून में छूट जाते हैं। बिना उन विषों के तुम क्रोध करने के लिए पागल नहीं हो सकते। तुम्हारे शरीर में विशेष प्रकार की ग्रंथियां हैं, और वे कुछ विशेष रसायन छोड़ती हैं।

अब यह बात वैज्ञानिक हो गई है। यह कोई दर्शनशास्त्र की बात नहीं रही। तुम्हारा रक्त विषाक्त हो जाता है। इसीलिए जब तुम क्रोध में होते हो तो ऐसा भी कोई काम कर सकते हो जो कि साधारणत: तुम नहीं कर सकते। क्योंकि तुम विक्षिप्त हो गए हो। तुम किसी बड़ी चट्टान को सरका सकते हो। तुम साधारणत: ऐसा नहीं कर सकते। बाद में तुम विश्वास भी नहीं कर सकते कि तुमने उस चट्टान को सरका दिया था, या कि उठा लिया था। जब तुम लौटकर फिर से सामान्य हो जाओगे तब तुममें इतनी शक्ति नहीं होगी कि तुम उस चट्टान को उठा सकी, क्योंकि अब तुम वही नहीं हो। कुछ विशेष रसायन तुम्हारे खून में बह रहे थे। तुम आपातकाल की स्थिति में आ गए थे। तुम्हारी सारी शक्ति सक्रिय हो गयी थी।

परंतु जब एक पशु क्रोधित होता है तो क्रोधित ही होता है। उसके पास कोई नैतिकता नहीं होती, कोई उसके लिए शिक्षा नहीं होती। वह सीधा क्रोधित हो जाता है और क्रोध निकल जाता है। जब तुम क्रोधित होते हो तो तुम भी पशु की भांति क्रोधित होते हो, किंतु फिर समाज है, नैतिकता है, व्यवहार की बातें हैं और दूसरी हजारों चीजें हैं और तुम क्रोध को नीचे दबा देते हो। तुम्हें दिखाना पड़ता है कि तुम क्रोधित नहीं हो; तुम्हें मुस्कुराना पड़ता है—एक चिपकाई हुई मुस्कान। तुम्हें मुस्कुराहट को निर्मित करना पड़ता है, और क्रोध को नीचे दबाना पडता है। शरीर को तब क्या हो रहा है? शरीर तो लड़ने के लिए तत्पर था—या तो लड़ने को, या फिर भागने को, खतरे से दूर भागने को; या तो सामना करने को या फिर बचकर निकलने को शरीर तैयार था।

शरीर तैयार था कि कुछ करे, क्रोध सिर्फ कुछ करने के लिए तैयारी है। शरीर हिंसा के लिए, आक्रमण के लिए तैयार है।

यदि तुम हिंसक अथवा आक्रामक हो गए तो ऊर्जा मुक्त हो जाएगी। लेकिन तुम नहीं हो सकते। यह सुविधाजनक नहीं है, इसलिए तुम उसे भीतर दबा देते हो। तब फिर उन मांस—पेशियों का क्या होगा जो कि आक्रमण के लिए तैयार हो गई थीं? वे पंगु हो जायेंगी। ऊर्जा उन्हें धक्के मारेगी आक्रमण के लिए, और तुम उन्हें वापस धक्का दोगे कि आक्रामक मत होओ। एक द्वंद्व उठ खड़ा होगा। तुम्हारी मांस—पेशियों में, तुम्हारे खून में, तुम्हारे शरीर के कोषों में द्वंद्व पैदा हो जाएगा। वे सब कुछ अभिव्यक्त करना चाहते हैं और तुम उन्हें धक्का दे रहे हो कि अभिव्यक्त नहीं करें। तुम उन्हें दबा रहे हो। तुम्हारा शरीर पंगु हो जाता है। और यह बात प्रत्येक भाव के साथ होती है। और ऐसा रोज—रोज वर्षों तक होता रहता है। तब फिर तुम्हारा शरीर सब जगह से पंगु हो जाता है। सारी नसें पंगु हो जाती हैं। वे बहती हुई नहीं रहती, वे तरल नहीं रहती, वे जीवंत नहीं रह जाती हैं। वे मुर्दा हो जाती हैं, वे विषाक्त हो जाती हैं। वे सब उलझ जाती हैं, वे स्वाभाविक नहीं रहती हैं।

किसी भी पशु की ओर देखो और उसके शरीर की सुंदरता को देखो। मनुष्य के शरीर को क्या हो गया है? क्यों वह इतना सुंदर नहीं है? क्यों? प्रत्येक जानवर इतना सुंदर है, क्यों मनुष्य का शरीर ही सुंदर नहीं है? उसे क्या हो गया है? तुमने उसके साथ कुछ किया है। तुमने उसे नष्ट कर दिया है, और उसका स्वाभाविक बहाव खो गया है, और रुक कर सड़ गया है। तुम्हारे शरीर के हर हिस्से में विष भरा है। तुम्हारे शरीर की हर मांस—पेशी में दमित क्रोध, दमित काम, दमित लोभ, दमित ईर्ष्या, दमित घृणा दबी पड़ी है; वहा हर चीज दबी पड़ी है। सचमुच तुम्हारा शरीर रुग्ण है।

इसलिए जब तुम ध्यान करना प्रारंभ करते हो तो ये सारे विष छूटने लगते हैं। और जहां—जहां से शरीर रुक गया है, वहां—वहां से पुन: पिघलना शुरू करता है और फिर से तरल हो जाता है। और यह एक दुर्धर्ष प्रयास है। चालीस साल तक गलत ढंग से जीने के बाद अचानक ध्यान करना—सारे शरीर में एक तूफान आ जाता है। तुम्हें सारे शरीर में दर्द महसूस होता है। किंतु यह दर्द अच्छा है, और तुम्हें उसका स्वागत करना चाहिए। शरीर को फिर से बहने दो, फिर से वह सुंदर व बालवत हो जाएगा। फिर से तुम एक नई जीवंतता का अनुभव करने लगोगे। लेकिन इसके पहले कि वह जीवंतता आए, वे जो अंग मुर्दा हो गए हैं उन्हें फिर से जिंदा होना होगा, और यह थोड़ा पीड़ादायी तो होगा।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हमने शरीर के चारों ओर एक कवच बना रखा है, और वह कवच ही समस्या है। जब तुम्हें क्रोध आता है, यदि उस समय तुम्हें अभिव्यक्त करने की छूट दे दी जाए तो तुम क्या करोगे? तुम क्रोध में होते हो तो तुम अपने दात पीसने लगते हो, तुम अपने नाखूनों और हाथों से कुछ करने लगते हो क्योंकि वह पशु योनि से हमारे साथ आया है। तुम अपने हाथों से कुछ करना चाहते हों—किसी चीज को नष्ट करना चाहते हो।

यदि तुम कुछ भी नहीं करो तो तुम्हारी उंगलियां पंगु हो जाती हैं; उनकी सुंदरता व लावण्य खो जाता है। वे जीवित अंग नहीं रहेंगी और उनमें जहर भर जायेगा। इसके कारण ही जब तुम किसी से हाथ मिलाते हो तो वास्तव में कोई स्पर्श नहीं होता, क्योंकि उनमें कोई जीवन नहीं होता, वे मुर्दा हैं।

तुम इसे अनुभव कर सकते हो। किसी छोटे बच्चे का हाथ छूकर देखो और तुम्हें उसमें कुछ सुक्ष्म अंतर महसूस होगा। जब बच्चा तुम्हारे हाथ में अपना हाथ देता है.. यदि बच्चा तुम्हें अपना हाथ देना नहीं चाहता तो वह तुमसे अपना हाथ दूर हटा लेगा। वह तुम्हें अपना मुर्दा हाथ नहीं देगा। वह हाथ दूर कर लेगा। लेकिन यदि वह अपना हाथ तुम्हें देना चाहता है तो तुम महसूस करोगे कि उसका हाथ तुम्हारे हाथ में पिघल रहा है। उसकी

ऊष्णता, उसका बहाव ऐसा होगा जैसे कि सारा बच्चा ही उस हाथ में आ गया है। उसके इस स्पर्श में ही वह अपना सारा प्रेम व्यक्त कर देगा, जितना कि अभिव्यक्त किया जा सकता है।

लेकिन वही बच्चा जब बड़ा हो जाता है तो वह इस तरह से हाथ मिलाता है जैसे कि उसका हाथ एक मुर्दा चीज है। वह उस हाथ में नहीं आएगा, वह उसके द्वारा बहेगा नहीं। और ऐसा इसलिए हुआ है क्योंकि बीच में बहुत—सी बाधाएं आ गई हैं। क्रोध रुक गया है। वास्तव में, इसके पहले कि तुम्हारे हाथ पुन: जीवंत हो सकें उन्हें पीड़ा से गुजरना पड़ेगा, उन्हें क्रोध की गहरी अभिव्यक्ति से गुजरना पड़ेगा। यदि वह क्रोध मुक्त नहीं किया गया तो वह क्रोध रास्ते में अवरोध खड़े करेगा और प्रेम वहां से नहीं बह सकेगा।

केवल तुम्हारे हाथ ही नहीं बल्कि तुम्हारा सारा शरीर इस तरह रुक गया है। तुम किसी को सीने से। लगाओ, तुम किसी को अपनी छाती के निकट ले आओ, लेकिन उससे तुमने किसी को अपने हृदय के पास ले लिया है ऐसा नहीं होता। ये दोनों बातें, दो अलग चीजें हैं। तुम किसी को गले लगा सकते हो, यह एक शारीरिक घटना हुई। लेकिन यदि तुम्हारे हृदय के चारों ओर कवच है, भावों की रुकावट है तो आदमी इतना ही दूर रहेगा जितना कि वह दूर था, और कोई निकटता संभव नहीं है। लेकिन वास्तव में ली यदि तुम किसी को निकट ले आओ, यदि कवच नहीं हो, तुम्हारे और उसके बीच कोई दीवार नहीं हो, तो। फिर तुम्हारा हृदय दूसरे के हृदय में पिघल जाएगा, और एक 'मिलन होगा, एक मैत्री होगी।

तुम्हारे शरीर को बहुत जहरों से मुक्त करना है। तुम विषाक्त हो चुके हो। और तुम्हें पीड़ा महसूस होगी क्योंकि ये सारे जहर जड़ें जमा चुके हैं। अब मैं फिर से अराजकता पैदा कर रहा हूं। यह ध्यान तुम्हारे भीतर पुन: अराजकता को पैदा करेगा ताकि तुम्हें पुनर्गठित किया जा सके, ताकि एक नई रचना संभव हो सके। जैसे तुम हो, तुम्हें तो नष्ट करना है, केवल तभी नया जन्म सकता है। जैसे तुम हो, तुम पूरी तरह गलत हो गये हो। तुम्हें तो नष्ट करना होगा, तभी कुछ नया निर्मित किया जा सकता है। उसमें पीड़ा होगी, वेदना होगी, लेकिन यह वेदना सहने योग्य है।

अत: ध्यान जारी रखो, और शरीर में पीड़ा होती है तो उसको होने दो। शरीर को रोको मत, शरीर को वेदना से गुजरने दो। यह पीड़ा तुम्हारे अतीत से आती है, लेकिन यह चली जाएगी, यदि तुम इसको जाने दोगे। और यह चली जाएगी तो पहली बार तुम्हारे पास शरीर होगा, अभी तो सिर्फ तुम्हारे पास एक कारागृह है, एक बंद कैपसूल है। तुम चारों ओर खोल में बंद हो; तुम्हारे पास एक स्फूर्तिभरा, जीवंत शरीर नहीं है। पशुओं के पास भी तुमसे ज्यादा सुंदर, ज्यादा जीवंत शरीर होता है।

इसीलिए हम कपड़ों से इतने ग्रसित हैं—क्योंकि शरीर दिखाने योग्य और देखने योग्य ही नहीं हैं। हम कपड़ों से बड़े ग्रसित हो गए हैं। जब कभी तुम नग्न खड़े हो तो तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि तुमने शरीर का क्या कर डाला है। कपड़े तुमसे भी तुम्हारा शरीर छिपाये रखते हैं।

ऐसा मेरा अनुभव बहुत ध्यान शिविरों में हुआ है कि यदि कुछ लोग शिविर में नग्न हो पाते हैं तो ये वे ही लोग हैं जो शरीर से सुंदर हैं। इसलिए वे डरे हुए नहीं हैं। जिनके शरीर कुरूप हैं वे लोग आकर शिकायत करते हैं कि यह बात अच्छी नहीं है, कि लोग नंगे हो जायें। उनका डर स्वाभाविक है। वे दूसरों के नंगे होने से डरे हुए नहीं हैं, वे सच में अपने से भयभीत हैं। वे स्वयं अपने शरीर को नहीं देख सकते। और यह रुग्णता एक दुश्चक्र है, क्योंकि यदि तुम्हारे पास सुंदर शरीर नहीं है तो तुम इसे छिपाना चाहोगे। और जब तुम उसको छिपाते हो तो वह अधिकाधिक मृत हो जाता है। क्योंकि तब उसके प्रति सजग होने की जरूरत नहीं है कि वह जीवंत हो।

सदियों से वस्त्र पहनने के कारण हमने अपने शरीर से संबंध खो दिया है। यदि तुम्हारा सिर काट दिया जाए और तुम अपने शरीर को देखो तो मुझे पक्का विश्वास है कि तुम अपने शरीर को नहीं पहचान पाओगे कि

यह तुम्हारा शरीर है। या कि पहचान लोगे? तुम उसे नहीं पहचान पाओगे क्योंकि तुम अपने शरीर से परिचित भी नहीं हो। तुम्हें उसकी कोई भी प्रतीति नहीं है। तुम सिर्फ उसमें रह रहे हो—बिना उसकी परवाह किये।

हमने हमारे शरीर के साथ बहुत हिंसा की है। इसीलिए जब मैं इस अराजकतापूर्ण ध्यान में तुम्हारे शरीर को पुन: जीवंत होने को बाध्य कर रहा हूं तो बहुत—सी बाधाएं टूटेंगी; बहुत थिर हो गई चीजें पिघलेगी, बहुत जम गई पद्धतियां तरल हो जायेगी। पीड़ा होगी, लेकिन उसका स्वागत करो। यह शुभ है, और तुम उसके पार हो जाओगे। यह एक आशीष है। जारी रखो। यह सोचने की जरूरत ही नहीं है कि क्या करें। तुम सिर्फ ध्यान को सतत जारी रखो। मैंने सैकड़ों लोगों को इस प्रक्रिया से गुजरते देखा है और थोड़े ही दिनों में पीड़ा चली जाती है। और जब पीड़ा चली जाती है तो तुम्हारे चारों ओर एक सूक्ष्म आनंद होता है।

तुम्हें वह आनंद अभी नहीं हो सकता, क्योंकि अभी तो पीड़ा है। तुम्हें पता हो या न हो, लेकिन सारे शरीर में पीड़ा है। तुम सिर्फ उसके प्रति बेहोश हो क्योंकि वह सदैव ही साथ चल रहा था। जो भी सदा साथ होता है, हम उसके प्रति मूच्छिर्त हो जाते हैं। ध्यान से तुम पुन: सजग हो जाओगे, और तब मन कहेगा : "इसे मत करो; सारा शरीर दुख रहा है। " मन की मत सुनो, सिर्फ करते चले जाओ।

थोड़े ही समय में दर्द चला जाएगा, और जब दर्द चला जाएगा, और तुम्हारा शरीर फिर से संवेदनशील हो जाएगा, और उसके चारों ओर कोई बाधाएं नहीं होंगी, कोई जहर नहीं होगा, तो तुम्हारे चारों ओर एक सूक्ष्म आनंद की अनुभूति तुम्हें होगी। जो भी तुम कर रहे हो, तुम सदा एक आनंद की लहर को तुम्हारे शरीर के चारों ओर अनुभव करोगे।

वास्तव में, आनंद का अर्थ ही यह है कि तुम्हारा शरीर एक लय में है, इससे ज्यादा कुछ नहीं। कि तुम्हारा शरीर एक संगीत भरी लय में है, इससे ज्यादा कुछ और नहीं। आनंद कोई खुशी नहीं है। खुशी हमें किसी चीज से निकालनी पड़ती है। आनंद का अर्थ है बस तुम हो—जीवत, पूरी तरह थिरकते हुए, शक्ति से भरे। और तुम्हारे शरीर के चारों ओर एक सूक्ष्म संगीत, और तुम्हारे भीतर एक लयबद्धता—यही है आनंद। तुम आनंद से भर सकते हो जब कि तुम्हारा शरीर बह रहा हो, जब कि वह सरिता की भांति बह रहा हो।

वह आएगा लेकिन तुम्हें इस वेदना से गुजरना होगा, इस दर्द से गुजरना होगा। यह तुम्हारी नियति का एक हिस्सा है, क्योंकि तुमने ही इसका सृजन किया है। लेकिन यह चला जाता है। यदि तुम बीच में रोको नहीं तो यह चला जाता है।

यदि तुम बीच में ही रुक गए तो पुराना जमाव फिर आ जाएगा। और चार पांच दिन में ही तुम्हें सब कुछ ठीक वैसा ही लगेगा, जैसे कि पहले तुम थे। उस ठीक लगने के प्रति सावधान रहो।

तीसरा प्रश्न :

क्या आप हमें सक्रिय ध्यान के पांचवें चरण के बारे में कुछ संकेत करेंगे?

इसके बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है, इसीलिए मैंने कभी चर्चा नहीं की। चौथी अवस्था आखिरी अवस्था है जिसके बारे में बात की जा सकती है। पांचवीं अवस्था घटेगी, लेकिन उसके बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। और कोई जरूरत भी नहीं है। और पांचवीं अवस्था कोई अवस्था भी नहीं है, वह तुम्हारा स्वरूप है। पहली चार अवस्थाएं हैं; लेकिन पांचवीं कोई अवस्था, कोई चरण नहीं है। वह तम्हारा होना है, वह तुम्हारा स्वभाव है। लेकिन उसके बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यदि तुम चौथी अवस्था में आ जाओ तो पांचवीं अपने आप घटेगी, इतना पक्का है। यदि चौथी अवस्था में समग्र मौन को उपलब्ध हो जाओ तो पांचवीं घटित होगी। यह तुम्हारे मौन का ही विकास है।

लेकिन उसके बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। और जो भी कहा जाएगा वह गलत समझा जाएगा। उदाहरण के लिए यदि मैं कहूं कि वह परम आनंद है—और ऐसा कहा गया है कि वह परम आनंद है—तो तुम उसे गलत समझ लोगे, क्योंकि तुम नहीं जानते कि आनंद क्या होता है। तुम थोड़े से सुख जानते हो और तुम सोचते हो कि आनंद भी सुखों जैसा ही होगा। नहीं, आनंद ऐसा नहीं है। तुम सिर्फ सुख की भाषाएं ही सोच सकते हो क्योंकि तुम उसी से परिचित हो। तुम सोच सकते हो कि वह असीम सुख होगा, लेकिन वह नहीं है। वह सुख जरा भी नहीं है।

अथवा तुम निषेध की भाषा में सोच सकते हो कि कोई पीड़ा नहीं होगी, कोई दुख नहीं होगा—जैसा कि बूद्ध ने कहा है। बुद्ध ने कहा है, "उस चेतना की आत्यंतिक स्थिति में कोई दुख नहीं होगा। "तब लोगों ने बुद्ध से कहा, इतना काफी नहीं है, कुछ और अधिक कहो। आप वह कह रहे हो जो नहीं होगा, कृपया उसके बारे में भी कहो जो होगा। आप कह रहे हो कि वहा दुख नहीं होगा, लेकिन वहा क्या होगा?" बुद्ध ने उत्तर देने से इंकार कर दिया। उन्होंने कहा, "मैं कुछ भी नहीं कहूंगा। इतना ही मैं कह सकता हूं कि वहां कोई दुख नहीं होगा। "

लेकिन यह भी गलत समझा जाएगा, क्योंकि इससे तो तुम बीच में ही छोड़ दिए गए हो। यदि वह कहा जाए कि आत्यंतिक अनुभव सुख जैसा होगा तो बात गलत हो जाएगी। यदि यह कहा जाए कि कोई दुख नहीं होगा, जो कि पहले कथन से ज्यादा ठीक है, लेकिन फिर भी बिलकुल सही नहीं है क्योंकि तुम्हें फिर भी यह खयाल तो हो ही जाएगा कि यह नकारात्मक बात ही होगी, जबकि वह ऐसी नहीं है। बुद्ध को इस देश में गलत समझा गया। उन्हें निषेधवादी, नकारवादी समझा गया, क्योंकि वह कह रहे थे कि निर्वाण में दुख नहीं होगा, बस इतना ही। न कोई सच्चिदानंद—सत्? चित्? आनंद—बल्कि सिर्फ दुख नहीं होगा।

लेकिन कुछ भी कहा जाए, गलत ही समझा जाएगा क्योंकि हम वही समझ सकते हैं जो हम जानते हैं। तुम सुख को जानते हो, तुम दुख को जानते हो, लेकिन पांचवीं अवस्था में दोनों नहीं होंगे। द्वैत मिट जाएगा : कोई दुख नहीं होगा, कोई सुख नहीं होगा। अब यह बात समझ के बाहर चली जाती है। फिर वह कैसी स्थिति होगी? यदि कोई दुख नहीं होगा, कोई सुख नहीं होगा; तो फिर क्या होगा, कैसा होगा? इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। तुम इसकी कल्पना नहीं कर सकते।

बर्ट्रेंड रसल ने कहीं पर कहा है कि यदि ऐसा ही है कि निर्वाण या वह आत्यंतिक अनुभव दुख और सुख की सीमा के पार होता है तो वह अवश्य गहरी नींद की भांति होगा—एक गहरी नींद होगा। यह बात तर्कपूर्ण लगती है। यदि कोई दुख अथवा सुख नहीं हो तो तुम चेतन कैसे होगे? चेतना के लिए आवश्यक है कि कुछ हो जिसके प्रति चेतन रहा जा सके। यदि कुछ भी नहीं हो—न दुख, न सुख—तो फिर चेतना के लिए कोई चुनौती नहीं बचती, अत: तुम गहरी मूर्च्छा में, कोमा में पड़ जाओगे।

हर बात गलत समझी जाएगी, इसीलिए मैं उसकी बात नहीं करता हूं। मैं सिर्फ तुम्हें मंदिर के द्वार तक ले जा सकता हूं और वहां तुम्हें प्रवेश करने और जानने को छोड़ देता हूं। मैं तुम्हें मंदिर के दरवाजे पर छोड़ देता हूं। ये चार चरण तुम्हें द्वार तक ले जाने में सहायक हैं—तब तुम सीधे अंदर जा सकते हो। तुम द्वार के सामने खड़े हो, और द्वार खुला है। और यदि मंदिर तुम्हें आकर्षित करता है, पुकारता है, चुनौती देता है, तो तुम उसमें प्रवेश कर जाओगे। पांचवें चरण से कोई वापस नहीं लौटा है। कोई लौट भी नहीं सकता क्योंकि वह आखिरी आनंद, अल्टीमेट एक्सटेसी है। तुम्हारा सारा अस्तित्व ही उसकी ओर आकर्षित होता है।

पांचवें को चर्चा के बाहर ही छोड़ दिया जाता है। वह तुम्हारा अपना स्वरूप है। वह कोई स्थिति अथवा अवस्था नहीं है। पहली चार अवस्थाएं हैं। पहली में तुम अपनी श्वास पर, अपनी प्राण ऊर्जा पर काम कर रहे हो। श्वास ही जीवन है। पहले चरण में तुम अपने जीवन पर काम कर रहे हो। तुम अपने श्वास के ढांचे को तोड़

रहे हो। अराजकतापूर्ण श्वास से तुम अपने व्यवस्थित श्वास लेने के ढंग को नष्ट कर रहे हो। और यदि तुम अपने श्वास लेने के ढांचे को नष्ट कर दो तो तुम्हारे शरीर के बाकी सारे ढांचे ढीले पड़ जायेंगे।

श्वास सबसे सूक्ष्म चीज है काम करने के लिए। तुमने इस पर कभी ध्यान नहीं दिया है, परंतु जब भी तुम्हारा मन बदलता है तो तुम्हारी श्वास बदल जाती है। जरा—सी तुम्हारे मन में बदलाहट होती है कि श्वास बदल जाती है। अथवा ज्यादा सही होगा कहना कि इसके पहले कि मन का भाव बदलता है, श्वास बदल जाती है। जब तुम प्रसन्न होते हो तो तुम दूसरी ही तरह से श्वास लेते हो। जब तुम क्रोध से भरे होते हो तो तुम दूसरी ही तरह से श्वास लेते हो। जब तुम तनाव से भरे होते हो तो श्वास की गति दूसरी होती है। जब तुम विश्राम में होते हो तो तुम भिन्न प्रकार से श्वास लेते हो। श्वास की लय हमेशा बदलती जाती है।

इसे जरा देखो, अपनी श्वास की गति को देखो। तुम सारे दिन एक ही तरह से श्वास नहीं लेते हो। सुबह तुम दूसरे ढंग से श्वास लेते हो, शाम को तुम दूसरे ढंग से श्वास लेते हो। सिर्फ तुम्हारी श्वास को जानने मात्र से तुम्हारे मन पर क्या हो रहा है उसे जाना जा सकता है।

देर— अबेर, जब चिकित्सा विज्ञान और मनोविज्ञान श्वास की घटना के भीतर गहरे प्रवेश कर सकेंगे तो वे उसका ग्राफ बना सकेंगे। तुम्हारे श्वास का ग्राफ यह बतायेगा कि सारे दिन में तुम कौन—कौन से भावों से गुजरे हो। जब तुम सो रहे होते हो तो तुम दूसरी ही तरह से श्वास लेते हो। जब तुम सजग होते हो तो तुम दूसरी ही तरह से श्वास लेते हो। जब तुम तंद्रा में होते हो तो तुम दूसरी तरह से श्वास लेते हो। श्वास को आसानी से बदला जा सकता है। और यदि तुम श्वास को बदल सको तो मन को बदल सकते हो। तुम दोनों तरह से काम कर सकते हो।

योग की बहुत—सी परंपरायें हैं। कुछ परपरायें, विशेषत: राजयोग, मन से प्रारंभ करता है। वे कहते हैं कि पहले मन को बदलों, उसके बाद श्वास अपने आप बदल जाएगी। और दूसरी परपरायें हैं, विशेषत: हठयोग, जो कि कहता है कि श्वास को बदल लो और मन उसके पीछे—पीछे आ जाएगा। और दोनों ही सही हैं क्योंकि दोनों ही एक—दूसरे से संबंधित हैं।

एक काम करो : किसी दिन अपनी आराम कुर्सी पर विश्राम में लेटे हुए, और जब सारा संसार आनंदित मालूम पड़ रहा हो और तुम भी शात और आनंदित हो तो अपनी श्वास का निरीक्षण करो। केवल भीतर आती—जाती श्वास को देखो कि तुम कैसे श्वास ले रहे हो, कितना समय भीतर लेने और बाहर करने में लगता है। सब कुछ नोट कर लो। उसके बाद एक काम और करो। जब कभी तुम क्रोध में हो तो उसी तरह से श्वास लो जिस तरह से तब ले रहे थे जब तुम विश्राम में थे। तब क्रोध करना असंभव होगा। तब तुम क्रोध नहीं कर सकोगे। तुम क्रोध कर ही नहीं सकते। वह असंभव होगा क्योंकि क्रोध के लिए एक भिन्न प्रकार की श्वास की गति चाहिए।

जब तुम प्रेम में हो, अपनी प्रेमिका, अपने मित्र अथवा अपनी पत्नी के निकट बैठे हो तब ध्यान रखो कि तुम किस भांति श्वास ले रहे हो। फिर उसी भांति दूसरी जगह श्वास लेने की कोशिश करो, और अचानक तुम्हें मालूम होगा कि प्रेम ऊपर उठकर आने लगा। इसे ध्यान रखो। बिस्तर पर अपनी प्रेयसी कै साथ लेटे हुए ध्यान रखो कि तुम किस भांति श्वास ले रहे हो। फिर तुम किसी वृक्ष के पास बैठ जाएगे और वैसे ही श्वास लो और अचानक तुम्हें लगेगा कि वह वृक्ष प्रेयसी हो गया। अब प्रेम बह रहा है।

बिना इस तथ्य को जाने तुम अपने लिए कितनी पीड़ा पैदा कर लेते हो। तुम गलत ढंग से गलत स्थानों पर श्वास लेते रहते हो, और तुम बहुत—सी झंझटें और परेशानियां पैदा कर लेते हो।

पहले चरण में, हम श्वास पर काम करते हैं और अराजकता पैदा करते हैं। क्योंकि जब तक एक अराजकता पैदा नहीं होगी, तुम्हारा जन्म नहीं हो सकता है। पहला चरण है कि श्वास के पुराने ढाचों को तोड़ दो।

दूसरे चरण में, हम सारे दमित भावों को उघाड़ने की कोशिश कर रहे हैं। यदि तुमने वास्तव में ही गहरी व अराजकतापूर्ण श्वास ली है तो दमित भाव सरलता से ऊपर आ जायेंगे। वे अपने आप उपर ने लगेंगे और तुम्हें कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। दूसरा चरण अपने आप आ जाएगा यदि पहला चरण सही रूप से किया गया है। यदि तुमने पहले चरण में कोई प्रतिरोध नहीं किया है तो दूसरा स्वत: उसका अनुकरण करता हुआ आ जाएगा। दूसरे चरण में, हम भावों को बाहर निकालने की कोशिश कर रहे हैं—उन्हें बाहर अभिव्यक्त कर देना है, उन्हें बाहर फेंक देना है।

जब तुम किसी पर क्रोधित होते हो तो तुम उस पर अपना क्रोध फेंकते हो, तब तुम एक शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हो। फिर वह भी क्रोध करेगा। और यह कई जीवनों तक चलेगा, और तुम दुश्मनी करते चले जाओगे। इसे तुम सदियों तक चला सकते हो। इसका कभी अंत नहीं होगा। यह कहां खतम होगा? केवल एक ही संभावना है. तुम उसे ध्यान में समाप्त कर दो, न कि कहीं और। क्योंकि ध्यान में तुम किसी और पर क्रोध नहीं कर रहे हो, तुम सिर्फ क्रोध कर रहे हो।

स्मरण रहे, यह बड़ा आधारभूत भेद है। तुम किसी और पर क्रोध नहीं कर रहे हो। तुम सिर्फ क्रोधित हो, और क्रोध समष्टि में निकल रहा है। तुम किसी के प्रति घृणा नहीं कर रहे हो। यदि घृणा का भाव आता है तो तुम सिर्फ घृणा कर रहे हो, और घृणा बाहर निकाली जा रही है। ध्यान में भाव किसी से संबंधित नहीं किये जा रहे हैं, वे असंबंधित हैं। वे आकाश में चले जाते हैं, और आकाश हर चीज को शुद्ध कर देता है।

स्मरण रहे कि यह ऐसे ही है जैसे कोई गंदी नदी सागर में गिरती है। सागर उसे शुद्ध कर देता है। जब कभी तुम्हारा क्रोध, तुम्हारी घृणा, तुम्हारी कामुकता समष्टि में जाती है, सागर में गिरती है, तो वह उसे शुद्ध कर देता है। जब कभी कोई गंदी नदी दूसरी नदी में गिरती है तो वह उसे भी गंदा कर देती है। जब तुम किसी और पर क्रोध करते हो तो तुम उस पर अपनी गंदगी फेंक देते हो। फिर वह भी अपनी गंदगी तुम पर फेंकेगा और यह एक—दूसरे को गंदा करने की प्रक्रिया हो जाएगी।

ध्यान में तुम स्वयं को आकाश में फेंक रहे हो ताकि शुद्ध हो सको। जितनी भी ऊर्जा तुम फेंकते हो वह सब की सब शुद्ध हो जाती है। आकाश इतना विराट है, वह इतना बड़ा सागर है कि तुम उसे गंदा नहीं कर सकते। ध्यान में हम लोगों से संबंधित नहीं होते हैं। ध्यान में हम सीधे समष्टि से संबंधित होते हैं।

दूसरे चरण में, हम भावों को बाहर फेंकते हैं। यह एक केथार्सिस है, निर्जरा है। तीसरे चरण में, हम एक मंत्र का उपयोग कर रहे हैं—हू। यह एक सूफी ध्वनि है, जैसे कि हिंदुओं की एक ध्वनि है ओम्? लेकिन यह वर्तमान आदमी के लिए ज्यादा काम की है बजाय ओम् के। क्योंकि ओम् एक बहुत ही नाजुक ध्वनि है। जब तुम ओम् कहते हो तो वह हृदय से नीचे कभी नहीं जाता। यह बहुत आक्रामक नहीं है; यह बहुत ही अहिंसक है। सर्वाधिक अहिंसक ध्वनियों में से एक ध्वनि है ओम्।

यह ध्वनि तुमसे भिन्न प्रकार के लोगों के लिए खोजी गई थी। यह उनके लिए थी जो कि बहुत ज्यादा प्रेमपूर्ण तथा अहिंसक लोग थे, उनके लिए थी जो कि स्वभावत: सीधे व सरल लोग थे उनके लिए थी जो कि प्रकृति के बीच गांवों में रहते थे, उनके लिए थी जो कि अशिक्षित थे, पढ़े—लिखे नहीं थे, और संस्कारित तथा सुसंस्कृत नहीं थे। वे पशुओं की तरह थे—शुद्ध, सीधे, भोले— भाले। ओम् की ध्वनि उनके लिए खोजी गई थी। उन्हें बदलने के लिए इतना ही बहुत था। यह एक बहुत ही नाजुक चोट है—ओम्। यह हृदय पर बहुत ही हल्के

से चोट करती है। उन लोगों के लिए इतना ही काफी था क्योंकि उनके पास हृदय थे। तुम्हारे लिए इससे काम नहीं चलेगा। तुम्हें तो बहुत ही हिंसक चोट चाहिए।

सूफियों ने इस दूसरी ध्वनि की खोज की—हू। यह अल्ला—हू का हिस्सा है। सूफी अल्लाह, अल्लाह की रट लगाते हैं, और जब तुम इसे बार—बार दोहराते हो तो यह अल्ला—हू अल्ला—हू हो जाता है। फिर उसके बाद प्रारंभ का हिस्सा गिरा दिया जाता है, अल्लाह गिरा दिया जाता है, केवल हू को रख लिया जाता है। उसके बाद केवल ' हू हू हू' बच जाता हे। जब तुम कहते हो '—हू', तो वह सीध तुम्हारे काम —केंद्र पर चला जाता है। वह सीधा काम—केंद्र में प्रवेश कर जाता है, वह काम—केंद्र पर चोट करता है।

आज का युग इतना काम —केंद्रित हो गया है कि तुम्हें काम —ऊर्जा पर चोट करने की जरूरत तै। हृदय अब है ही नहीं। यदि तुम ओम् से कोशिश करते हो तो तुम उस द्वार पर दस्तक देते हो जो कि खाली है। भ हा अब कोई नहीं रहता है। गुरुत्वाकर्षण का केंद्र वहां से हटकर अब काम—केंद्र पर आ गया हे। तुम्हारे केंद्र अब हृदय नहीं है। हृदय केंद्र हो सकता है यदि तुम प्रेम में केंद्रित हो, लेकिन अभी तुम 'काम में केंर्द्रित हो, न कि प्रेम में।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं—और वे ऐसा तुम्हारे अध्ययन से कहते है—कि प्रेम कुछ और नही बल्कि में जाने का खेल है। और उनकी बात सही है क्योंकि उनके सामने दूसरे कोई भी अन्य पहलू अध्ययन के लिए नहीं हैं। वे तुम्हारा अध्ययन करते हैं, और यह निष्कर्ष निकालते हैं कि प्रेम कुछ और नहीं बल्कि काम के पहले खेले जाने वाला एक खेल है—केवल ऐसी स्थिति पैदा करना है जिसमें काम, सेक्स घटित हो सके. इससे ज्यादा कुछ नहीं। इसीलिए जब काम घटित हो जाता है, प्रेम विलीन हो जाता है। यह ऐसा ही है जैसे कि जब तुम्हें भूख लगती है तो तुम भोजन की ओर आकर्षित होने लगते हो और भोजन की ओर लुभावनी आंखों से देखते हो। परंतु जब भूख मिट जाती है, तो भोजन से आंखें मोड़ लेते है। सारा आकर्षण खो जाता है।

अत: जब तुम अपनी पत्नी अथवा अपने पति को प्रेम करते हो तो प्रेम सिर्फ एक औपचारिकता कि बात होती है यौन में उतरने के लिए, क्योंकि सीधे यौन में उतरना बहुत अशिष्टता होगी। अत: वह सिर्फ एक स्निग्धता लाने का काम करता है। जब यौन तृप्त हो जाता है तो पति बिस्तर पर दूसरी ओर करवट लेकर सो जाता है। वह समाप्त हुआ; सारा जादू खतम हुआ। वह फिर आएगा जब उसे पुन: वह विशिष्ट भूख लगेगी। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि प्रेम कुछ और नहीं है बल्कि एक पूर्व खेल है, केवल सभ्यता कर एक खेल है। और वे सही हैं क्योंकि वे किसी दूसरे प्रकार के आदमी को नहीं जानते हैं।

'ओम्' का आविष्कार किया गया था दूसरे ही प्रकार के व्यक्ति के लिए—उनके लिए जो कि प्रेम पूर्ण थे। ऐसा नहीं है कि उन्होंने काम को कभी नहीं भोगा था, उन्होंने भोगा था, अन्यथा तुम यहां नहीं हो सकते थे। उन्हें भी यौन की आवश्यकता थी. लेकिन बुनियादी फर्क यह था कि वे प्रेम में केंद्रित थे, और उनका काम सिर्फ प्रेम की ही अभिव्यक्ति था, इससे ज्यादा और कुछ नहीं। प्रेम आधारभूत था, और काम उसकी बहुत—सी अभिव्यक्तियों में से एक था। वह गहनतम अभिव्यक्ति था, लेकिन प्रेम की ही एक अभिव्यक्ति था। उन्होंने पहले प्रेम किया था, और फिर यौन घटित हुआ था। वह कोई बौद्धिक नहीं था, वह कोई पूर्व—नियोजित नहीं था।

यदि तुम कोई समकालीन शब्द का उपयोग करना चाहो तो मैं कह सकता हूं कि काम कुछ और नहीं था, बल्कि एक 'आफ्टर—प्ले' था। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि प्रेम और कुछ नहीं बल्कि एक 'फोर—प्ले है। लेकिन मैं कहता हूं कि तब यौन कुछ और नहीं बल्कि 'आफ्टर—प्ले' था। यह सिर्फ खेल को पूरा करने के लिए था। वह शिखर था, वह केंद्र नहीं था। प्रेम केंद्र था। तब हृदय एक दूसरी ही तरह से धड़कता था, भिन्न ही प्रकार से काम करता था। तब ' ओम्' पर्याप्त था काम करने के लिए। 'ओम्' उस आदमी की सहायता करता था

जो कि बहुत प्रेमपूर्ण था, और जिसके पास हृदय था। यदि कोई आदमी इससे अन्यथा है तो वह उसके लिए काम का सिद्ध नहीं होगा।

'हू आज के युग के लिए ध्वनि है। वह सीधे तुम्हारे काम—केंद्र पर चोट करती है। यदि तुम वस्तुत: जोर से 'हू हू हू ' की चोट करो तो भीतर तुम्हें एक सूक्ष्म चोट लगती हुई महसूस होगी। और काम—ऊर्जा दो रास्तों से गति कर सकती है : वह बाहर की ओर जा सकती है, वह भीतर की ओर जा सकती है।

जब तुम किसी स्त्री या पुरुष की ओर आकर्षित होते हो तो ऊर्जा बाहर की ओर जाने लगती है। वास्तव में, एक स्त्री अथवा एक पुरुष बाहर से तुम पर चोट करने लगा। यह शाब्दिक अर्थों में भी सही है। जब तुम्हें लगे कि कोई स्त्री तुम्हें आकर्षित कर रही है, तब यदि तुम ठीक से सजग होकर गौर करो तो तुम देखोगे कि सूक्ष्म रूप से तुम्हारे काम—केंद्र पर चोट पड़ रही है। स्त्री की ऊर्जा, अथवा पुरुष की ऊर्जा तुम्हारे उस केंद्र पर चोट कर रही है। वैसी ही चोट तुम्हें तब भी महसूस होगी जब तुम 'हू, की आवाज करोगे; पर यह चोट भीतर से होगी। और यदि तुम भीतर से काम—केंद्र पर चोट करते ही चले जाओ तो एक द्वार खुलेगा और ऊर्जा भीतर की ओर जाने लगेगी, ऊपर की ओर उठने लगेगी।

एक बार तुम्हें यह पता चल जाये कि इस ऊर्जा को ऊपर और भीतर की ओर कैसे ले जाया जाये तो तुम ऊंचे आरगाज्य—आनंद के ऊंचे शिखर को महसूस करोगे, जो कि तुम किसी भी स्त्री अथवा पुरुष के साथ महसूस नहीं कर सकते। एक आंतरिक मिलन होना प्रारंभ होगा।

पहला चरण है कि तुम्हारे प्राण को बदला जाए—तुम्हारी श्वास की प्रक्रिया को बदला जाए। दूसरा चरण है कि तुम्हारे दमित भावों को, तुम्हारे मन के दमित हिस्सों को बाहर फेंका जाए। और तीसरा चरण है कि तुम्हारी जीवन—ऊर्जा को ऊपर की ओर गतिमान किया जाए। और जब ऊर्जा उर्ध्वगमन करने लगती है, तब तुम्हें कुछ नहीं करना है, तुम्हें सिर्फ मुर्दे के भांति लेट जाना है, ताकि उसकी दिशा में कोई परिवर्तन न हो। ऊर्जा ऊपर की ओर उठने लगती है, और तुम्हें कुछ नहीं करना है। इसलिए मैं सदा जोर देता हूं कि हिलो—डुलो मत। जब मैं तीसरे चरण में कहता हूं 'स्टाप' तो पूरी तरह रुक जाओ। कुछ भी मत करो। क्योंकि कुछ भी किया तो वही विचलित होने का कारण बन जाएगा और तुम सारी बात से चूक जाओगे। जरा—सी कोई बात, एक खांसी या छींक, और तब तुम सारी चीज ही चूक सकते हो, क्योंकि मन विचलित हो गया। तब बहाव एकदम रुक जाएगा क्योंकि तुम्हारा ध्यान कहीं और चला गया।

कुछ भी मत करो। तुम मर जाने वाले नहीं हो। यदि छींक भी आ रही है और तुम दस मिनट के लिए नहीं छीको तो तुम मर नहीं जाओगे। यदि तुम्हें खासी आ रही हो, या तुम्हें कहीं खुजली आ रही हो, या गले में खराश चल रही हो और यदि तुम कुछ नहीं करो तो तुम मर नहीं जाओगे। डरो नहीं, आज तक कोई भी मरा नहीं है। जहा तक शरीर का प्रश्न है, मुर्दे हो जाओ, ताकि ऊर्जा एक बहाव में गति कर सके। जब ऊर्जा ऊपर की ओर बहती है तो तुम अधिकाधिक मौन हो जाते हो। मौन, ऊर्जा के ऊपर की ओर बहने की सह—उत्पत्ति है, और तनाव ऊर्जा के नीचे की ओर बहने की सह —उत्पत्ति है। तुम अधिकाधिक संताप में रहोगे जब ऊर्जा नीचे की ओर बह रही होती है। तुम अधिकाधिक शांत, मौन, स्थिर रहोगे जब ऊर्जा ऊपर तथा भीतर की ओर बह रही होगी। और ये शब्द 'नीचे' तथा 'बाहर' दोनों पर्यायवाची हैं; और ' भीतर' तथा 'ऊपर' ये दोनों शब्द भी पर्यायवाची हैं। तुम बिलकुल मौन हो गए और ऊर्जा बाढ़ की भांति बह रही है तो वह सारे चक्रों से होकर गुजर रही है, सारे केंद्रों से गुजर रही है। और जब वह सारे चक्रों से गुजरती है, तो वह उन्हें साफ करती है, उन्हें शुद्ध करती है। वह उन्हें सक्रिय तथा जीवंत करती है, और वह बाढ़ अंतिम चक्र तक चली जाती है।

काम पहला चक्र है, सबसे नीचे का और हम सबसे नीचे के चक्र पर ही जीते हैं। इसलिए हम जीवन को उसके न्यूनतम पर जानते हैं। जब ऊर्जा ऊपर की ओर बहती है और अंतिम चक्र पर पहुंचती है—सहस्रार पर पहुंचती है—तो ऊर्जा अपने अधिकतम पर होती है। जीवन अपने अधिकतम पर होता है। तब तुम्हें अनुभव होगा, कि सारा विश्व शात हो गया है, एक जरा—सी ध्वनि भी नहीं है। हर चीज पूर्णतया मौन हो गई होती है जब ऊर्जा अपने अंतिम, आखिरी चक्र पर आती है।

तुम पहले चक्र को जानते हो; उसी से समझना ठीक रहेगा। जब ऊर्जा काम केंद्र पर आती है तो तुम पूरी तरह तनाव से भर जाते हो। सारा शरीर ज्वर से तपने लगता है, तुम्हारा प्रत्येक कोष तप्त हो जाता है। तुम्हारा तापमान बढ़ जाता है, तुम्हारा रक्तचाप तेज हो जाता है, तुम्हारी श्वास विक्षिप्त हो जाती है। तुम्हारा सारा शरीर एक अस्थायी विक्षिप्त स्थिति में आ जाता है—निम्नतम पर।

इससे ठीक विपरीत बात होती है अंतिम चक्र पर। तुम्हारा सारा शरीर इतना शीतल, इतना शात हो जाता है कि जैसे विलीन हो गया हो। तुम उसका अहसास भी नहीं कर पाते हो। तुम शरीर—रहित हो जाते हो, जैसे कि शरीर है ही नहीं। और जब तुम शांत होते हो तो सारा अस्तित्व भी शांत होता है क्योंकि अस्तित्व कुछ और नहीं है बल्कि एक दर्पण है; वह तुम्हें ही प्रतिबिंबित करता है। हजारों—हजारों दर्पणों में वह तुम्हें ही प्रतिबिंबित करता है। जब तुम शात हो जाते हो तो सारा अस्तित्व भी शांत हो जाता है।

यह चौथा चरण है। और मैं पांचवें के विषय में कुछ भी नहीं कहूंगा। यह द्वार है—परिपूर्ण मौन। तब तुम मंदिर में प्रवेश कर सकते हो और तुम उसे जान सकते हो। लेकिन मैं इससे ज्यादा और कुछ नहीं कह सकता। और यदि तुम उसे जान लोगे तो तुम भी कुछ नहीं कह सकोगे। वह अनिर्वचनीय है।

अंतिम प्रश्न :

सुबह के ध्यान तथा दोपहर के ध्यान में मैं जोरों से शारीरिक गतियों से प्रारंभ करता हूं लेकिन कहीं बीच में—विशेषत: जब 'संगीत और चारों ओर की चीख—पुकार बड जाती है—एक अजीब शांति मुझे घेर लेती है और धीरे—धीरे शरीर की गतियां मंद पड़ जाती हैं। जैसे—जैसे संगीत की आवाज बढ़ती जाती है यह शांति गहरी होती जाती है और मुझे ऐसा अनुभव होता है जैसे मैं इस चारों ओर के तूफान में एक शांति का केंद्र हूं यह स्वागत जैसा मालूम होता है।

क्या यह प्रतिक्रिया है और इसलिए क्या इसे निरुत्साहित करना चाहिए? क्या मैं संकल्प पूर्वक तेज शारीरिक गतिविधियां करता ही जाऊं और केवल अंत में ही शांत होऊं? अंत में भी जब हमें उत्सव मनाना होता है मुझे शांत रहने में ही आनंद आता है—और जितना अधिक संगीत व चीख—पुकार मचती है उतनी ही शांति गहरी होती जाती है।

यही वह शांति है जिसकी मैं अभी बात कर रहा था। जब ऊर्जा ऊपर की ओर बाढ़ की भांति गीत करती है तो ऐसी शांति तुम पर घटित होगी। इसे निरुत्साहित मत करो, इसी के लिए तो हम प्रयत्न कर रहे है। इसका स्वागत करो। यही है अतिथि जिसकी हम प्रतीक्षा कर रहे हैं। प्रारंभ तेजी से करो। लेकिन यदि तुम्हें लगे कि शरीर की गतियां तथा शोर अपने आप मंद होते जा रहे हैं, और एक गहरी शांति तुम पर उतर रही है, और चारों ओर का तूफान, शोर, चीख—पुकार आदि तुम्हारी शांति को प्रभावित नहीं करते बल्कि और गहरा करते है—तो तुम आश्वस्त हो सकते हो कि यह वास्तविक है, और तुम स्वयं को धोखा नहीं दे रहे हो। तो तुम शांत बने रहो। और अंत में यह घटित होगा, यदि तुम वास्तव में ही शांत हो गए हो तो शांति ही तुम्हारा महोत्सव होगी।

लेकिन यह बात अलग— अलग लोगों के साथ अलग—अलग रूप से घट सकती है। यह निर्भर करता है। यह लोगों के अपने—अपने ढंग के अनुसार घटित होगा। कुछ लोग अपना आनंद नाचकर व्यक्त करना चाहेंगे, कुछ गीत गाकर, और कुछ सिर्फ रोकर। लेकिन ये आंसू दुख के नहीं होंगे, वरन आनंद में बहेंगे। कोई सिर्फ शात ही बना रहेगा—यही उसका महोत्सव होगा।

इसलिए इस बात की चिंता मत करो कि किस भांति महोत्सव मनायें। जैसे भी तुम्हारे साथ यह बात घटित हो, वही तुम्हारा महोत्सव होगा। और यदि इस प्रकार की शांति तुम पर उतरती है तो इसका स्वागत करो, आनंद लो। इसके साथ सहयोग करो ताकि यह अधिकाधिक गहरी हो सके।

छठवां प्रवचन

परमात्मा आस्तित्व है

सूत्र:

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षषि पश्यति

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।। 6।।

यच्छोत्रेण न शृणोति येन श्रोतमिद श्रुतम्।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।। 7।।

यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राण: प्रणीयते।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्ध नेदं यदिदमुपासते।। 8।।

केनोपनिषद प्रथम अध्याय

6

जिसे दृष्टि नहीं देख पाती लेकि?न जो दृष्टि को देख पाता है—तू जान कि वही एकमात्र ब्रह्म है; और वह नहीं जिसकी लोग यहां पूजा करते हैं।

7

जिसे कान नहीं सुन पाते लेकिन जो कानों को सुन पाता है—

तू जान कि वही एकमात्र ब्रह्म है; और वह नहीं जिसकी लोग यहां पूजा करते हैं।

8

जिसे प्राण प्रगट नहीं कर पाते लेकिन जो प्राण को प्रगट कर पाता है—तू जान कि वही एकमात्र ब्रह्म है; और वह नहीं जिसकी लोग यहां पूजा करते हैं।

यह सदी एक बड़ी विचित्र घोषणा से प्रारंभ हुई। और उस घोषणा को करने वाला फ्रेडरिक नीत्शे था। उसने कहा, ''परमात्मा मर गया है। और इसलिए आदमी पूर्णत: स्वतंत्र है।'' जब यह घोषणा की गई थी तब यह बड़ी विचित्र मालूम पड़ी थी। लेकिन यह भविष्यवाणी सही सिद्ध हुई। और धीरे—धीरे यह बात आधुनिक मन के लिए आधार स्तंभ हो गई।

सचमुच आज के आदमी के लिए परमात्मा मर गया है। ऐसा नहीं है कि परमात्मा मर गया है; यदि परमात्मा मर जाए तो फिर कुछ भी जीवित नहीं रह सकता। क्योंकि परमात्मा से हमारा मतलब है, एक मूलभूत, शाश्वत जीवन जो कि अस्तितिव की आधारशिला है। लेकिन आधुनिक मनुष्य के लिए परमात्मा मर गया है। अथवा हम यूं भी कह सकते है कि आज का आदमी परमात्मा की और मर चूका है। संबंध टूट चूका है। वह सेतु अब नहीं रहा। चाहे तुम विश्वास करो, या न करो, इससे कोई भेद नहीं पड़ता। तुम्हारा विश्वास भी बहुत उपरी है। वह बहुत गहरे नहीं जाता।

तुम्हारा अविश्वास भी बहुत उपरी है। जब विश्वास ही ऊपरी है तो फिर अविश्वास गहरे कैसे जा सकता है। जब आस्तिक ही बड़े थोथे है तो फिर नास्तिक भी बहुत गहरे कैसे हो सकते है। जब हां का ही अर्थ खो गया है, तो फिर ना में क्या अर्थ हो सकता है? जो भी अर्थ नास्तिक का होता है वह आस्तिक से ही आता

है। जब ऐसे लोग हों जो कि अपने पूरे अस्तित्व से परमात्मा को हां कह सकें तभी केवल ना का कुछ अर्थ होता है; वह गौण है।

परमात्मा मर गया है और उसके साथ ही अविश्वास भी मर चुका है। विश्वास मृत हो गया है और उसके साथ ही अविश्वास भी मृत हो गया है। यह सदी और आज का आधुनिक मन एक प्रकार से बड़ी ही विचित्र स्थिति में है। ऐसा पहले कभी भी नहीं हुआ।

ऐसे लोग थे जो कि आस्तिक थे, जो सचमुच में ही विश्वास करते थे कि परमात्मा है। ऐसे भी लोग थे जो कि पक्के नास्तिक थे, जो कि उतनी ही त्वरा से विश्वास करते थे कि परमात्मा नहीं है। लेकिन आधुनिक मन उदासीन है। वह चिंता नहीं करता कि परमात्मा है या नहीं; यह बात असंगत है। कोई परमात्मा के पक्ष में या विपक्ष में सिद्ध करने में रस नहीं लेता।

वास्तव में, यही अर्थ है नीत्शे की घोषणा का कि परमात्मा मर गया है। तुम उसे इंकार करने की भी परवाह नहीं करते। तुम उसके विरुद्ध तर्क भी नहीं करते। वह सेतु ही टूट गया। हमारा उससे अब कोई सबंध नहीं रहा—न पक्ष में, न विपक्ष में। ऐसा क्यों हो गया है? क्यों ऐसी घटना आधुनिक मन के भीतर इतनी प्रगाढ़ हो गई है—यह उदासीनता? हमें इसके कारणों का पता लगाना चाहिए।

पहला तो कारण यह है कि हम सदा से परमात्मा के बारे में एक व्यक्ति की तरह सोचते रहे हैं। परमात्मा के बारे में एक व्यक्ति की तरह सोचना गलत है, असत्य है, और यह खयाल नष्ट हो जाना चाहिए यह विचार कि परमात्मा कोई व्यक्ति है, नियंता है, सर्जक है, पालनकर्ता है, यह बात गलत है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। यह विचार हमारे मन के कारण ही इतना महत्वपूर्ण हो गया है। जब भी हम किसी चीज के बारे में सोचते हैं तो हम हमेशा उसके बारे में या तो किसी व्यक्ति की भांति सोचते हैं या फिर किसी वस्तु की भांति सोचते हैं। केवल ये ही दो विकल्प हमारे लिए खुले होते हैं। यदि कोई चीज है या तो वह वस्तु की भांति होनी चाहिए, या फिर व्यक्ति की भांति होनी चाहिए।

हम यह सोच भी नहीं सकते, कभी कल्पना भी नहीं कर सकते कि वस्तु और व्यक्ति दोनों किसी चीज के प्रगट रूप हैं—जो कि छिपी है। वही शक्ति वस्तु हो जाती है, वही शक्ति व्यक्ति हो जाती है, किंतु वह शक्ति दोनों ही नहीं है। वह परमात्मा मर गया है जिसे व्यक्ति की तरह समझा गया था। वह धारणा मृत हो गई है। और उस धारणा को मरना ही था, क्योंकि व्यक्ति की तरह परमात्मा को सिद्ध नहीं किया जा सकता। एक व्यक्ति के रूप में वह हमारी कोई समस्या नहीं सुलझा सकता। बल्कि इसके विपरीत वह और भी समस्याएं खड़ी कर देता है। क्योंकि यदि परमात्मा है तो फिर जगत में इतनी बुराई क्यों है? तो फिर वही इस बुराई को होने दे रहा है, वह जरूर इसके साथ सहयोग कर रहा है। तब वह एक बुरे व्यक्ति के रूप में आ जाता है।

आंद्रे गाइड ने कहीं पर कहा है, ”मेरे लिए यह कल्पना करना कि परमात्मा शभ है, मुश्किल है। लेकिन मैं यह —कल्पना कर सकता हूं कि वह बुराई है, बुराई की भाति है, शैतान की भांति है, क्योंकि संसार में इतनी बुराई है, इतना दुख है, इतनी यातना है, इतनी पीड़ा है। ” हम विश्वास ही नहीं कर सकते की ईश्वर यह सारा कारोबार चला रहा है। जरूर कोई शैतान इस सब का चलाने वाला होना चाहिए—कोई महाशैतान। ईश्वर तो जरूर शुभ होना चाहिए, वरना कैसा ईश्वर है वह? एक बुनियादी अच्छी होनी ही चाहिए। लेकिन जैसा जगत हमको दिखलाई पड़ता है, उसके हिसाब से तो परमात्मा अच्छाई की तरह नहीं हो सकता बल्कि दुष्टता की तरह मालूम पड़ता है—कि वह बुराई के साथ खेल रहा है। और एक प्रकार से यह भी लगता है कि वह इतने सारे दुख देकर तथा लोगों को सता कर आनंद ले रहा है।

यदि परमात्मा कोई व्यक्ति है तो फिर दो विकल्प बचते हैं : या तो वह कोई शैतान होना चाहिए, या फिर हमें इंकार करना पड़ेगा कि वह है। और दूसरा विकल्प ज्यादा अच्छा है। ईश्वर को एक व्यक्ति' की भांति मरना पड़ा क्योंकि यह कल्पना करना कि वह अच्छा है मुश्किल हो गया। लेकिन यह धारणा ही गलत थी, यह धारणा मनुष्य केंद्रित थी, 'एन्थोपोसेन्ट्रिक' थी। हमने परमात्मा की कल्पना एक सर्वोच्च व्यक्ति की भांति, एक अतिमानव, सुपरमैन की भाति की थी। परमात्मा को भी हमारी ही तरह का एक बढ़ा दिखाया गया व्यक्ति ही माना गया था। हमने सिर्फ मनुष्य का ही एक विकसित रूप दिखा दिया था।

बाइबिल में कहा गया है कि परमात्मा ने आदमी को अपनी शकल में बनाया, लेकिन यह बात भी आदमी की ही कही हुई है। असली बात ठीक उल्टी है—आदमी ने परमात्मा को अपनी शकल में निर्मित किया है। इस आदमी की प्रतिमूर्ति का जाना जरूरी था। और अच्छा ही हुआ कि इस प्रकार का परमात्मा मर गया। क्योंकि इस धारणा के खो जाने के बाद हम एक नई, ताजा खोज शुरू कर सकते हैं कि परमात्मा क्या है।

उपनिषद बिलकुल भिन्न हैं, वे कभी भी नहीं कहते कि परमात्मा कोई व्यक्ति है, इसलिए वे आज के आदमी के लिए संगत हैं। वे नहीं कहते कि परमात्मा कोई व्यक्ति है। वे कहते हैं कि परमात्मा अस्तित्व की आधारशिला है, न कि व्यक्ति। परमात्मा अस्तित्व है, न कि अस्तित्वगत है। यह भेद जरा सूक्ष्म है लेकिन इसे समझने की कोशिश करो।

एक वस्तु होती है, एक पुरुष होता है, एक स्त्री होती है, एक व्यक्ति होता है, लेकिन वे नष्ट हो सकते हैं। जो भी होता है वह नहीं भी हो सकता है। वह उसमें अंतर्निहित है। जो भी अस्तित्व में आ सकता है, वह अस्तित्व के बाहर भी जा सकता है। लेकिन अस्तित्व स्वयं विनष्ट नहीं हो सकता। इसलिए हम कह सकते हैं कि एक कुर्सी होती है, हम कह सकते हैं कि एक मकान होता है, क्योंकि उनका अस्तित्व विनष्ट हो सकता है। लेकिन हम यह नहीं कह सकते कि परमात्मा होता है।

परमात्मा ही अस्तित्व है, ऐसा नहीं है कि परमात्मा का अस्तित्व है, परमात्मा अस्तित्व का ही पर्यायवाची है। वास्तव में, यह कहना भी कि परमात्मा है, यह भी पुनरुक्ति है। परमात्मा का अर्थ है, 'है'। यह भाषा ही गलत है कि परमात्मा है, क्योंकि होने का अर्थ ही है परमात्मा। परमात्मा का अर्थ ही होता है — है, होना। ऐसा कहना कि परमात्मा का अस्तित्व है, गलत है। परमात्मा ही अस्तित्व है; अथवा परमात्मा अस्तित्व का ही दूसरा नाम है। अस्तित्व कभी नहीं मरता है, कभी अस्तित्व के बाहर नहीं जाता है। रूप आते हैं, और जाते हैं; रूप बदलते रहते हैं। रूप के जगत में, आकृतियों के जगत में कुछ भी स्थायी नहीं है। इसलिए उपनिषद कहते हैं कि नाम तथा रूप—ये ही संसार हैं, और जो कुछ भी नाम और रूप के परे है वही परमात्मा है। लेकिन क्या है नाम और रूप के परे? अस्तित्व स्वयं ही नाम तथा रूप के परे है।

उपनिषद परमात्मा को किसी व्यक्ति की भांति नहीं सोचते हैं, बल्कि एक अस्तित्व की भाति—अस्तित्व की आधारशिला की भांति, सोचते हैं। नाम और रूप के परे। क्या है नाम और रूप के परे न: इस मकान के चारों ओर वृक्ष हैं, वे हैं। इन वृक्षों के परे पहाड़ियां हैं, वे भी हैं। तुम यहां हो, तुम भी हो। इन वृक्षों में, इन पहाड़ियों में, तुम में, क्या चीज है जो कि समान है? रूप समान नहीं है; तुम्हारा रूप भिन्न है, वृक्षों का रूप अलग है, पहाड़ियों की आकृति बिलकुल अलग है। नाम भी समान नहीं है, रूप भी समान नहीं है। फिर क्या है समान? वह जो सामान्य तत्व है, वही है परमात्मा। तुम हो, वृक्ष हैं, पहाडियां हैं; यह होना, यह अस्तित्व समान है। बाकी हर चीज सांयोगिक है। सारभूत बात यह है कि तुम हो, वृक्ष हैं, पहाड़ियां हैं, अस्तित्व समान है। यह अस्तित्व ही परमात्मा है।

परंतु उपनिषद कभी लोकप्रिय नहीं हुए। वे कभी लोकप्रिय हो भी नहीं सकते, क्योंकि परमात्मा अस्तित्व है तो फिर तुम्हारे लिए सारा अर्थ ही खो जाता है—क्योंकि तब तुम अस्तित्व से अपना संबंध कैसे जोड़ोगे? यदि परमात्मा कोई व्यक्ति हो, पिता हो, मां हो, भाई हो, प्रेमिका हो, प्रेमी हो तो तुम संबंध जोड़ सकते हो, तुम किसी न किसी संबंध की कल्पना कर सकते हो। लेकिन अस्तित्व के साथ कैसे संबंध जोड़ोगे? अस्तित्व तो इतना शुद्ध है, इतना अमूर्त है! फिर तुम उससे प्रार्थना कैसे करोगे? फिर तुम उसे कैसे पुकारोगे? फिर तुम उसके समक्ष कैसे रोओगे और चिल्लाओगे? वहां कोई भी नहीं है।

मनुष्य की इस कमजोरी की वजह से उपनिषद कभी भी लोकप्रिय नहीं हुए। वे इतने सत्य हैं कि वे कभी भी बहुत लोकप्रिय नहीं हो सकते। सत्य को लोकप्रिय बनाना करीब—करीब असंभव है क्योंकि आदमी का मन उसे जैसा वह है वैसा ही स्वीकार नहीं करेगा। मनुष्य का मन केवल इतना ही सोच सकता कि यदि परमात्मा कोई व्यक्ति है तो हम उससे संबंधित हो सकते हैं। इसलिए भक्ति की परंपरायें इतनी लोकप्रिय होती रही हैं। कोई प्रार्थना कर सकता है, भक्ति में डूब सकता है, समर्पण कर सकता है। कोई है वहां जिसके प्रति वह यह सब कर सकता है, इसलिए यह बात इतनी आसान हो गई। तुम प्रार्थना कर सकते हो, तुम बात कर सकते हो, तुम संवाद कर सकते हो। वास्तव में, वहां कोई नहीं है, परंतु तुम्हारे लिए यह बात सरल हो जाती है। यदि तुम कल्पना कर सकते हो कि कोई वहां है जो कि तुम्हारी प्रार्थना को सुन रहा है तो तुम्हारे लिए प्रार्थना करना सरल हो जाता है।

कोई भी नहीं सुन रहा है.. सिर्फ अमूर्त अस्तित्व है जिसके पास न तो कान हैं सुनने के लिए, न आंखे हैं देखने के लिए, और न हाथ हैं स्पर्श करने के लिए। लेकिन तब तुम्हारे लिए प्रार्थना करना कठिन हो जाएगा। इस कठिनाई के कारण ही मनुष्य ने ईश्वर को एक व्यक्ति की तरह सोचा। तब हर बात सरल हो जाती है, लेकिन हर बात गलत भी हो जाती है। एक तरफ सरल हो जाती है, लेकिन दूसरी तरफ सब बात गलत हो जाती है।

वैसा ईश्वर मर गया है और अब उसे पुनर्जीवित करने का कोई उपाय भी नहीं है। कोई उपाय नहीं है उसमें फिर से प्राण फूंके जायें और उसकी धड़कन को गति दी जाए। वह वस्तुत: ही मर गया है। उस ईश्‍वर को जगत में वापस नहीं लाया जा सकता है। हम उस जगह से, उस क्षण से गुजर चुके। मनुष्य का मन ज्यादा प्रौढ़ हो गया है। परमात्मा के प्रति बच्चों जैसा रुख पुन: नहीं आ सकता। लेकिन हम अभी भी उसके साये में जी रहे हैं, अभी भी हम वही सोच रहे हैं जो कि मर गया है। अभी भी हम उसके विषय में उन्हें परिभाषाओं में सोच रहे हैं जो मुर्दा हो गई हैं। अभी भी हम उसके चित्र बनाये जा रहे हैं यद्यपि सारे नाम और रूप खो चुके हैं।

अब उपनिषद संगत हैं। पांच हजार वर्ष पहले वे अपने समय से आगे थे। जब यह केनोपनिषद लिखा गया तो यह अपने समय से पूर्व था। अब समय आ गया है और अब इस केनोपनिषद को समझा जा सकता है। उपनिषदों को समझा जा सकता है क्योंकि परमात्मा अब व्यक्ति की तरह नहीं रहा। अब ईश्‍वर केवल एक अवैयक्तिक अस्तित्व की तरह हो सकता है।

लेकिन इसमें कठिनाई आयेगी क्योंकि तब तुम्हें सब कुछ बदलना पड़ेगा। तुम्हारे धर्म का सारा ढांचा ही परिवर्तित करना पड़ेगा, क्योंकि केंद्र ही विलीन हो गया है। पुराने धर्म का केंद्र विलीन हो गया है, और एक नए केंद्र के साथ एक नए प्रकार का धर्म पैदा होगा—धर्म का एक नया ही रूप जन्मेगा।

इसलिए मेरा जोर ध्यान पर है, प्रार्थना पर नहीं। क्यों? क्योंकि प्रार्थना के लिए किसी व्यक्ति की जरूरत होती है, ध्यान के लिए किसी व्यक्ति की जरूरत नहीं है। तुम वहा बिना किसी व्यक्ति के हुए ध्‌यान कर सकते हो, क्योंकि ध्यान प्रार्थना नहीं है। वह किसी के प्रति नहीं किया जा रहा है। वह तो बिना किसी के वहां हुए तुम कर रहे हो, वह कोई संबंध नहीं है।

यदि ईश्वर मर गया है तो प्रार्थना अर्थहीन हो गई। केवल ध्यान ही अर्थपूर्ण हो सकता है। जब तुम प्रार्थना करते हो तो तुम किसी के प्रति प्रार्थना करते हो। लेकिन जब तुम ध्यान करते हो तो तुम सिर्फ ध्यान करते हो। जब तुम प्रार्थना करते हो तो प्रार्थना में दो होते हैं, वह द्वैत की बात है—एक तुम हो और एक दूसरा भी कोई होता है जिसके प्रति वह प्रार्थना की जा रही होती है। ध्यान अद्वैतवादी है; वहां दूसरा कोई नहीं है। वह संबंध जरा भी नहीं है, तुम अकेले हो। और जितना अधिक तुम इस अकेलेपन में उतरते हो, उतना ही तुम ध्यान में प्रवेश करते चले जाते हो।

ध्यान का अर्थ है अकेले होने की सामर्थ्य। और न केवल अकेला होना बल्कि अकेले होने का आनंद लेना। इतना अकेला होना कि दूसरा बिलकुल ही मिट जाए—कि दूसरा न हो जाए। इतना अकेला होना कि तुम अपने भीतर गिरने लग जाओ। भीतर खाई पैदा हो जाये और तुम उस खाई में गिरते ही चले जाओ। जब तुम अपने भीतर गिर जाते हो तो देर—अबेर आकृति खो जाएगी, नाम भी खो जाएगा, क्‌योंकि वे सिर्फ ऊपरी सतह पर ही होते हैं। जितने गहरे तुम डुबकी लगाते हो उतने ही तुम परमात्मा के निकट होते हो। क्योंकि परमात्मा अस्तित्व की भांति है, व्यक्ति की भांति नहीं।

तो यही भेद है। यदि तुम प्रार्थना करते हो तो परमात्मा बाहर है, और वह परमात्मा मर गया है। अब वह बाह्य परमात्मा नहीं रहा। तुम उसके विषय में सोचते रह सकते हो कि वह कहीं स्वर्ग में है, कि आकाश के पार है, लेकिन तुम्हें भी लगेगा कि यह बात बड़ी बचकानी है। वहां कोई भी नहीं है। वैसा ईश्वर प्रत्येक निवास से भागता रहा है।

एक समय ऋग्वेद के जमाने में वैसा परमात्मा हिमालय में रहता था, क्योंकि हिमालय में पहुंचा नहीं जा सकता था। वह कैलाश पर्वत पर रहता था। लेकिन आदमी वहां भी पहुंच गया, इसलिए वह वहा से भागा और भागकर ऐसी जगह पहुंच गया जहां कि अब नहीं पाया जा सके। फिर उसने अपना घर चांद—तारों पर बनाया। लेकिन आदमी चांद पर भी पहुंच गया, और अब वह वहां भी नहीं है। आज नहीं कल आदमी सब जगह पहुंच जाएगा और ईश्वर कहीं भी नहीं मिलेगा क्योंकि वह आखिर कहां छिप सकता है? अब कोई भी जगह ऐसी नहीं है जो कि पहुंच के बाहर हो, अथवा सब जगह पहुंचा जा सकेगा। अब कोई स्थान उसके छिपने के लिए नहीं बचेगा। अब यह धारणा और आगे नहीं चल सकती। ईश्वर को व्यक्ति की तरह नहीं पाया जा सकता। और यह अच्छा ही है क्योंकि अब तुम प्रार्थना से हट कर ध्यान पर आ सकते हो।

प्रार्थना सच में बचकानी बात है। एक तरह से वह रुग्ण बात है, क्योंकि तुम ईश्वर को अपनी ही कल्पना के अनुसार बनाते हो और फिर उसकी प्रार्थना करते हो। और तुम इतने भ्रांतिपूर्ण हो सकते हो कि तुम स्वयं ही अपनी प्रार्थना का उत्तर भी परमात्मा की तरफ से देने लग सकते हो। तब तुम सचमुच ही विक्षिप्त हो गए। तब तुम अपने होश में नहीं हो। तुम ऐसा कर सकते हो; बहुत से लोगों ने ऐसा किया है, और वे बड़े संत माने जाते हैं। वे रुग्ण लोग थे, क्योंकि ईश्वर के साथ सिर्फ मौन ही संभव है। जब तुम गौन होते हो तो तुम किसी और से संबंधित नहीं हो सकते, तुम अपने ही भीतर चले जाते हो। फिर परमात्मा एक भीतर की शक्ति हो जाता है। वह अब कोई बाहरी व्यक्ति नहीं रहा; अब वह आंतरिक शक्ति हो गया।

प्राचीन भारतीय साहित्य में एक सुंदर कहानी है :

ऐसा कहा जाता है कि ईश्वर ने संसार को बनाया और फिर वह इस पृथ्वी पर रहने लगा। यह संसार उसी का बनाया हुआ था इसलिए उसे इसमें आनंद आया और वह आदमी, पशुओं, वृक्षों के साथ रहने लगा। लेकिन वह बड़ी मुसीबत में पड़ गया, क्योंकि सारे दिन उसे परेशान किया जाने लगा, रात भी चैन से नहीं सो सकता

था। लोग शिकायतें करते रहते थे कि यह गलत है, वह गलत है, आपने ऐसा क्‍यों किया, आप इसे ऐसा क्यों नहीं करते? प्रत्येक आदमी आता और अपनी सलाह और सुझाव देता।

ईश्वर इतना परेशान और तंग हो गया कि उसने अपने मुख्य देवताओं तथा मंत्रियों की एक सभा बुलाई और उनसे कहा, "ऐसी जगह खोजो जो कि मेरे अपने सृजन से दूर हो, जहा कि मैं छिप सकु क्योंकि या तो ये लोग मुझे मार डालेंगे या फिर मैं आत्महत्या कर लूंगा। हर क्षण ये मुझे सलाह देने चले आते हैं और कहते हैं— यह करो, वह करो; यह गलत है, वह नहीं किया जाना चाहिए; और इनकी रायें भी इतनी एक—दूसरे से विरोधी हैं कि यदि मैं इनकी मानूं तो भारी गड़बड़ हो जायेगी।"

तो किसी ने सुझाव दिया, "आप हिमालय चले जायें। आप गौरीशंकर पर्वत पर, एवरेस्ट पर छिप जायें।

ईश्वर ने कहा, "लेकिन तुम आगे की नहीं देखते हो। कोई तेनसिंह, हिलेरी वहां भी आ जायेंगे, और सिर्फ थोड़े ही घंटों का सवाल है। " ईश्वर के लिए तो थोड़े ही घंटों की बात है, इसलिए उसने कहा, "इससे कुछ भी नहीं होगा। "

तब फिर किसी ने सुझाव दिया, "आप चांद पर चले जायें।"

ईश्वर ने कहा, "लेकिन तुम्हें पता नहीं कुछ मिनटों के बाद आदमी वहां भी पहुंच जायेगा। "तब एक का मंत्री खड़ा हुआ और उसने आकर धीरे से ईश्वर के कान में कहा, "अच्छा होगा कि आप आदमी के भीतर ही छिप जायें। वहां वह कभी भी घुसने की कोशिश नहीं करेगा। "और ऐसा कहा जाता है कि ईश्वर ने उसका सुझाव मान लिया, और उस क्षण के बाद उसे किसी ने परेशान नहीं किया।

अब समय आ गया है कि उसे वहां भी परेशान होना पड़े। और ध्यान से ही तुम वहां प्रवेश कर सकते हो, न कि प्रार्थना से। क्योंकि तुम्हारी प्रार्थना सोचती है कि वह कहीं गौरीशंकर पर अथवा चंद्रमा पर अथवा कहीं और है; प्रार्थना सदा उसे कहीं बाहर खोजने में लगी रहती है। ध्यान इस धारणा को पूरी तरह मिटा देता है कि वह कहीं बाहर है, अथवा उससे प्रार्थना की जा सकती है, अथवा उससे बात—चीत की जा सकती है, अथवा उससे संबंध जोड़ा जा सकता है। नहीं, सिर्फ तुम अपने भीतर प्रवेश कर सकते हो। और जितने गहरे तुम भीतर उतरते हो, उतने ही गहरे तुम उसमें उतरते जाते हो। लेकिन यह मिलन मौन में होगा क्योंकि वह दूसरा नहीं है। वह तुम ही हो। वह तुम्हीं होकर तुममें छिपा है।

यदि तुम मेरी बात समझ रहे हो, यदि तुम प्रार्थना और ध्यान में अंतर समझ सकते हो—ईश्वर एक व्यक्ति की भांति, और ईश्वर एक अस्तित्व की भाति—तो इस सूत्र को समझना आसान होगा:

जिसे दृष्टि नहीं देख पाती लेकिन जो दृष्टि को देख पाता है— तू जान कि वही एकमात्र ब्रह्म है; और वह नहीं जिसकी लोग यहां पूजा करते हैं।

जिसे दृष्टि नहीं देख पाती

यदि वह बाहर है तो तुम उसे देख सकते हो; तब दृष्टि उसे देख पाने में असफल नहीं हो सकती। तब फिर मार्ग और विधियां खोजी जा सकती हैं; और तुम उसे देख सकते हो यदि वह बाहर है। लेकिन वह वहां नहीं है। इसीलिए यह सूत्र कहता है :

जिसे दृष्टि नहीं देख पाती

तुम उसे नहीं देख सकते, उसे देखने का कोई रास्ता नहीं है। चाहे तुम कुछ भी करो, तुम उसे नहीं देख सकते। लेकिन लोगों ने उसे देखा है, फिर उनके लिए क्या कहें? उनके लिए क्या सोचें? उन्होंने देखा है।

ऐसे ईसाई संत हुए हैं जिन्होंने कहा कि हमने जीसस को हमारे सामने खड़ा हुआ देखा है। ऐसे हिंदू भक्त हुए हैं जिन्होंने कहा कि हमने कृष्ण को बांसुरी बजाते देखा है। ऐसी बहुत—सी घटनाएं घटी हैं सारी दुनिया में।

कोई उसे राम की भांति देखता है, कोई उसे कृष्ण की भांति देखता है, किसी ने जीसस की तरह से देखा है, किसी ने मेरी की तरह देखा है, और वे देखते ही चले जाते हैं। और यह उपनिषद कहता है

जिसे दृष्टि नहीं देख पाती......

तब फिर वे लोग कोरी कल्पना ही कर रहे होंगे। सुंदर कल्पना! बहुत गहरी तृप्ति देने वाली! जब तुम जीसस को अपने सामने खड़े हुए देखते हो तो तुम एक गहरी तृप्ति से भर जाते हो, बहुत गहरे संतोष को पा लेते हो। लेकिन यह भी सपना ही है, सुंदर है पर सपना ही है। ऐसा स्वप्न जो तुमने निर्मित किया है; ऐसा स्वप्न जिसकी तुमने कामना की थी, जिसे तुमने देखने की चाह की थी। और जिसे भी तुम देखना चाहते हो तुम उसे देखने में समर्थ हो, क्योंकि मनुष्य का मन समर्थ है किसी भी कल्पना को निर्मित करने में और उसे साकार रूप देने में। यह मनुष्य के मन की क्षमता है। तुम एक सपना निर्मित कर सकते हो और उसे साकार रूप भी दे सकते हो।

निश्चित ही, वह सिर्फ तुम्हारे ही लिए वास्तविक होगा, किसी और के लिए नहीं। इसलिए जब तुम जीसस को देखो तो तुम उन्हें दूसरों को नहीं दिखा सकते। यदि तुम्हारे मित्र कहें कि हमें भी तुम्हारे स्वप्न को दिखाओ तो तुम कुछ भी नहीं कर सकते। तुम कुछ भी नहीं कर सकते क्योंकि स्वप्न का एक विशेष गण यह होता है कि उसमें किसी को भी सहभागी नहीं बनाया जा सकता। तुम अपना सपना देख सकते हो, मैं अपना सपना देख सकता हूं लेकिन तुम मेरे सपने में प्रवेश नहीं कर सकते, मैं तुम्हारे सपनों में प्रवेश नहीं कर सकता। सपना सर्वाधिक निजी बात है संसार में। हर चीज को सार्वजनिक बनाया जा सकता है, लेकिन सपनों को सार्वजनिक नहीं बनाया जा सकता। चाहे तुम अपने मित्र को, अपनी पत्नी को, अपने पति को कितना ही प्रेम करते होओ, चाहे तुम कितने ही निकट क्यों न हो, तुम एक—दूसरे के सपनों में प्रवेश नहीं कर सकते। सपना निजी ही रहता है।

और यही बात ऐसे दर्शनों के लिए भी सही है। जैसे तुम जीसस को देख रहे हो, कोई अन्य इस अनुभव को तुमसे नहीं बांट सकता। तुम उनके साथ सड़क पर चल रहे हो, लेकिन बाकी सब लोग तुम्हें अकेले ही चलते हुए देखेंगे; वह तुम्हारा अपना निजी कल्पित स्वप्न है। मैंने एक घटना के बाबत सुना है। एक बार ऐसा हुआ :

एक सुंदर युवा लड़की ने स्वप्न में देखा कि एक राजकुमार घोड़े पर चढ़ कर आया, उसने उसे ऊपर उठाया, उसका गहरा चुंबन लिया, और फिर उसे घोड़े पर बिठा कर ले गया। घोड़ा तेजी से दौड़ रहा था और तब उस लड़की ने राजकुमार से पूछा, "तुम मुझे कहां लिए जा रहे हो? यह तो बताओ, तुम मुझे कहां ले जा रहे हो? " उस राजकुमार ने कहा, "यह तुम्हारा सपना है। तुम्हीं बताओ। सपना तुम्हारा है, तुम्हें ही बताना होगा कि मैं कहां ले जा रहा हूं। तुम मुझे बताओ! "

जब तुम जीसस या कृष्ण को सामने देखते हो तो वास्तव में होता यह है कि तुम अपने मन को दो भागों में बांट लेते हों—एक जो कि भक्त बन गया होता है, और दूसरा जो कि ईश्वर हो जाता है। और यदि तुम पूछो कृष्ण से कि तुम मुझे कहा ले जा रहे हो? तो वह कहेंगे कि यह तुम्हारा सपना है, तुम्हीं मुझे बताओ!

लेकिन जब मैं तुम्हें कह रहा हूं कि यह सपना है तो मैं कोई इसकी निंदा नहीं कर रहा हूं। मैं सिर्फ तथ्य की बात कर रहा हूं। सपना सुंदर है। तुम उसका आनंद ले सकते हो! उसमें कुछ भी गलत नहीं है। सपने का, एक सुंदर सपने का आनंद लेने में गलत हो भी क्या सकता है? तुम उसका आनंद ले सकते हो। समस्या तो तब खड़ी होती है जब तुम उसे सत्य समझने लगते हो। तब तुम खतरनाक रास्ते पर चलने लगे; तब सजग हो जाओ। मन कुछ भी प्रक्षेपित कर सकता है।

किसी भी पागलखाने में जाओ और देखो। वहां तुम प्रत्येक को किसी न किसी से बातें करते हुए देखोगे जो कि वहां मौजूद नहीं है। प्रत्येक बात कर रहा है और जवाब भी दे रहा है। वहां हर आदमी दो में बंट गया है। वे लोग स्वप्न देखते ही रहते हैं, वे प्रक्षेपणों को देखते रहते हैं। और वे प्रक्षेपण उन्हें इतने सत्य प्रतीत होते हैं कि हमें उन लोगों को पागलखाने में रखना पड़ता है, क्योंकि अब इन लोगों पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। उनका वास्तविकता से संबंध छूट गया है, और अब वे सिर्फ स्वप्न के संसार से जुड़े हुए हैं।

पागल आदमी का इतना ही अर्थ है कि उसका वास्तविकता से संबंध छूट गया, तथ्य से कोई संबंध नहीं रहा; केवल उसका अपनी कल्पना से संबंध है। वह अपने ही निजी संसार में रहता है। वह तुम्हारे साथ इस संसार में नहीं जीता; वह उसका हिस्सा नहीं है। और तुम एक पागल आदमी को विश्वास नहीं दिला सकते कि वह गलत है। यह बात असंभव है। वह तुम्हारी समझ को गड़बड़ा सकता है, लेकिन तुम उसे भ्रम में नहीं डाल सकते। और यदि तुम लंबे समय तक किसी पागल आदमी के साथ रहो तो तुम भी पागल हो सकते हो।

मैंने सुना है कि एक बार ऐसा हुआ :

एक बादशाह पागल हो गया। उसे शतरंज खेलने का बड़ा शौक था, अत: किसी मनोवैज्ञानिक ने सलाह दी कि यदि कोई शतरंज का बहुत बड़ा खिलाड़ी उसके साथ शतरंज खेले तो उसका दिमाग तनावरहित हो सकता है। वह बादशाह अभी भी शतरंज का शौक रखता था। सारा संसार उसके लिए मिट गया था, केवल शतरंज ही उसके और वास्तविक संसार के बीच एकमात्र सेतु था। अत: एक बहुत बड़े शतरंज के खिलाड़ी को बुलाया गया, और उसने उस बादशाह के साथ शतरंज खेलना शुरू किया। एक साल तक यह चलता रहा। वह आदमी उस पागल बादशाह के साथ शतरंज खेलता रहा। और अंत में यह हुआ कि वह बादशाह तो ठीक हो गया, लेकिन वह शतरंज का खिलाड़ी पागल हो गया। बादशाह वापस अपनी पुरानी स्थिति में आ गया, लेकिन वह बेचारा शतरंज का खिलाड़ी पागल हो गया।

यदि तुम किसी पागल आदमी के साथ एक साल तक रहो तो तुम्हारे लिए पागल न होना मुश्किल होगा। वह तुम्हें बुरी तरह भ्रमित कर देगा, लेकिन तुम उसे भ्रमित नहीं कर सकते, वह उसके पार है। तुम उसका स्पर्श भी नहीं कर सकते क्योंकि वह अपनी ही निजी दुनिया में रहता है, और तुम उसकी इस निजी दुनिया में प्रवेश नहीं कर सकते। उसके निजी संसार में प्रवेश करना असंभव है। और तुम उसको समझा भी नहीं सकते कि वह गलत है। गलत और सही, सच और झूठ, ये सारे भेद वास्तविक दुनिया के हैं। स्वप्न के संसार में न कुछ गलत है न कुछ सही है। जो भी है, वह अपने आप में सही है; सिर्फ वहा होने मात्र से ही वह सही है।

धार्मिक विक्षिप्तताएं हैं, और धर्म निरपेक्ष विक्षिप्तताएं हैं। जो लोग पागल हो जाते हैं, वे दो प्रकार के हैं—धर्म—निरपेक्ष तथा धार्मिक। जब तुम धार्मिक ढंग से पागल होते हो तो लोग तुम्हारी इज्जत करते हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि तुमने कुछ उपलब्ध कर लिया है। अत: याद रखो कि धर्म—निरपेक्ष रूप से पागल मत होना; सदैव धार्मिक ढंग से ही पागल होना। तब फिर लोग तुम्हारा सम्मान करेंगे—लेकिन सिर्फ पूर्व में। अब पश्चिम में यह बात नहीं रही। चाहे कोई भी ढंग हो, वे तुम्हें पागल ही कहते हैं।

जब कभी तुम वास्तविकता को अपने मन के माध्यम से प्रक्षेपित करते हो तो तुम अपने चारों ओर एक भ्रम पैदा करते हो, और तब तुम देखते हो। लेकिन उपनिषद इतने ज्यादा वास्तविक हैं, वे कहते हैं तम देख ही नहीं सकते है। जिसे दृष्टि नहीं देख पाती लेकिन जो दृष्टि को देख पाता है...

तुम आंखों से उसे नहीं देख सकते, लेकिन वह तुम्हारी आंखों को देख सकता है, क्योंकि वह तुम्हारे पीछे छिपा है। तुम्हारी आंखें उसके सामने हैं। वह तुम ही हो; वह तुम्हारी आंखों को देख सकता है। लेकिन तुम उसे आंखों से नहीं देख सकते। वह तुम्हारी सारी इंद्रियों के पीछे छिपा है, वह तुम्हारी इंद्रियों को तो देख सकता है।

यदि तुम ध्यान में गहरे जाओ तो तुम अपने शरीर के आंतरिक केंद्र को देख सकते हों—भीतर की दीवार को देख सकते हो। यह एक बड़ी विचित्र घटना रही है, क्योंकि पश्चिम में केवल अभी तीन सौ वर्ष से ही चिकित्सा—विज्ञान शरीर के आंतरिक ढांचे को जान पाया है—और वह भी काट—पीट करके। शरीर को काट कर, शरीर का विश्लेषण कर, पश्चिमी चिकित्सा विज्ञान शरीर के भीतरी ढांचे को जान पाया है।

लेकिन यह एक विचित्र घटना रही है। योगी तथा तांत्रिक लोग उसे सदा से जानते रहे हैं। और उन्होंने कभी भी शरीर को काटा नहीं। वे जानते हैं कि कितनी नाडिया हैं। उन्होंने पूरी तरह जाना है कि सारा भीतरी शरीर किस तरह काम करता है लेकिन उन्होंने कभी कोई शरीर काटा—पीटा नहीं। वे कोई शल्य—चिकित्सक नहीं थे। कैसे उन्होंने इस सबके विषय में जाना? उन्होंने उसके बारे में एक बिलकुल ही भिन्न तरीके से जाना। वे भीतर इतने ध्यानपूर्वक मौन हो गये कि वे उस मौन में अपने शरीर से अलग हो गए वे भीतर सिर्फ एक सजगता ही बच गए। तब उन्होंने देखा कि भीतर क्या है।

हम अपने शरीर को सिर्फ बाहर से ही जानते हो। यह बड़ी अजीब बात है क्योंकि तुम रहते तो भीतर लेकिन फिर भी तुमने उसका भीतर से अवलोकन नहीं किया। यह ऐसे ही है जैसे तुम एक घर में रहो और—तुम उसके चारों तरफ ही चक्कर लगाते रहो और उसको भीतर से कभी भी नहीं जानो कि वह भीतर से कैसा दिखाई पड़ता है। तुम्हारे शरीर की दो सतहें हैं। एक तो बाहरी सतह है, जिसका हमें पता है क्योंकि हम उसे आंखों से देख सकते हैं, हत्थों से स्पर्श कर सकते हैं। फिर एक भीतर की सतह है शरीर की जिसके लिए आंखों और हाथों का उपयोग नहीं किया जा सकता।

यदि तुम सजग और शांत हो जाओ, अलग हो जाओ, तो तुम आंतरिक सतह को जान सकोगे। तब तुम अपनी आंखों को देख सकते हो, तब तुम अपने कानों को सुन सकते हो, तब तुम अपने हाथों को स्पर्श कर सकते हो, और तब तुम अपने शरीर को जान सकते हो। किंतु तुम्हारा शरीर तुम्हें नहीं जान सकता। यही बात यह सूत्र कहता है :

जिसे दृष्टि नहीं देख पाती लेकिन जो दृष्टि को देख पाता है—तू जान कि वही एकमात्र ब्रह्म है और वह नहीं जिसकी लोग यहां पूजा करते हैं।

सिवाय तुम्हारे शरीर के, कोई मंदिर प्रवेश करने और खोजने योग्य नहीं है। कोई मस्जिद और कोई चर्च नहीं है जहां ईश्वर रहता है। वह तुम्हारे ही भीतर रहता है। यदि तुम प्रवेश कर सको, और लौट कर वापस अपनी चेतना के केंद्र पर आ सको, तो तुम जानोगे कि वही एकमात्र ब्रह्म है—जो कि आखिरी, आत्यंतिक है, वस्तुत: सत्य है, वास्तविक अस्तित्व है। और उसके शिकार मत हो जिसे यहां लोग पूजते हैं। लोग अपनी ही कल्पना की पूजा करते रहते हैं।

लोग अपने ही द्वारा निर्मित चीजों को पूजते रहते हैं। फिर फैशन बदल जाते हैं, और उनके साथ लोगों की कल्पना बदल जाती है। फिर तुमको मूर्तियां बदलनी पड़ती हैं, नई प्रतिमायें, पूजा के नए स्थान बनाने पड़ते हैं। इसी कारण पृथ्वी पर इतने सारे धर्म हैं, अन्यथा यह बेतुका है। कैसे इतने सारे धर्म हो सकते हैं। यदि सत्य एक है तो फिर इतने सारे धर्म कैसे हो सकते हैं? विज्ञान एक है, फिर धर्म एक क्यों नहीं है? ईसाई विज्ञान, हिंदू विज्ञान, मुस्लिम विज्ञान ऐसा क्यों नहीं है?

यह संभव नहीं है क्योंकि विज्ञान तथ्यों पर काम करता है। और यदि आप तथ्य पर काम करते हैं तो विज्ञान एक ही हो सकता है, क्योंकि तथ्य कोई निजी नहीं होता। यदि तुमने कोई तथ्य जाना है तो प्रत्येक को उसको स्वीकार करना होता है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। तुम उसे इंकार नहीं कर सकते। और यदि तुम विज्ञान को इंकार करते हो तो उससे तुम्हारा ही अहित होगा। यदि भौतिकशास्त्र किसी नियम को जान पाता है, तो तुम

नहीं कह सकते, "मैं तो भारतीय हूं मैं इस' नियम को नहीं मान सकता जो कि इंग्लैंड में खोजा गया है। मैं कैसे एक अंग्रेज आदमी अथवा एक चीनी आदमी का अनुसरण कर सकता हूं? हम अलग— अलग देश के लोग हैं; हमारी संस्कृतियां भिन्न—भिन्न हैं। " तुम ऐसा नहीं कह सकते। एक भौतिकी नियम, भौतिकी नियम है। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता है कि उसे कौन खोजता है। एक बार खोज लिया गया तो वह फिर सारे विश्व का हो गया।

विज्ञान एक है, लेकिन धर्म क्यों एक नहीं है? यदि वह भी आत्यंतिक नियम है तो वह भी एक होना चाहिए, विज्ञान से ज्यादा एक होना चाहिए क्योंकि विज्ञान तो सिर्फ बाहरी तथ्यों की खोज है, धर्म आंतरिक सत्यों की खोज है। फिर ऐसा क्यों होना चाहिए? तीन सौ धर्म हैं, यह कैसे संभव हो सकता है?

ये तीन सौ धर्म हैं झूठे सपनों के कारण, न कि सत्य के कारण। वे तुम्हारे सृजनों के कारण हैं, न कि तुम्हारी वास्तविक जानकारी के कारण। तुम अपनी पूजा का ढंग अपने आप निर्मित करते हो। तुम स्वयं अपने—अपने मंदिर बनाते हो। तुम्हारे धर्म एक कलात्मक सृजन हैं, न कि वैज्ञानिक प्रतीतिया हैं—कलात्मक रचनाएं हैं। तुम अपने धर्म को एक रंग दे देते हो, और तुम अपने बनाए चित्रों को चाहने लग जाते हो और तुम यह कभी नहीं सोच सकते कि दूसरा कोई भी चित्र तुम्हारे अपने चित्र से अच्छा हो सकता है। तुम उसे चाहते हो, इसलिए तुम लड़ते चले जाते हो कि तुम्हारा चित्र ही सर्वोच्च है, दूसरा कोई भी ऐसा चित्र नहीं बना सकता। बाकी सब दोयम है। यदि तुम अच्छे आदमी हुए तो तुम दूसरों के चित्रों को सहन कर सकते हो। तुम दूसरों के चित्रों को ज्यादा से ज्यादा स्वीकार कर सकते हो, अपना बड़प्पन जताते हुए, कि वे लोग थोड़े मूर्ख एवं मूढ़ हैं। थोड़ा ठहरो वे भी सही बात पर आ जायेंगे।

ईसाई प्रतीक्षा करते रहते हैं कि हिंदुओं को आखिर समझ आ जाएगी, और वे ईसाई हो जायेंगे। हिंदू लोग भी इस इंतजार में हैं कि ये मूर्ख ईसाई किसी न किसी दिन लौट कर हिंदू हो जाएंगे। आखिर सत्य से कब तक बचेंगे? और जैन लोग हैं, वे सोचते हैं कि ये सारे हिंदू और ईसाई झूठे गुरुओं का, कृष्ण या क्राइस्ट का अनुकरण कर रहे हैं। लेकिन आखिर लंबे अरसे तक ये लोग झूठे गुरुओं का अनुगमन भी कब तक करेंगे; किसी न किसी दिन तो ये सही गुरु महावीर के पास आ ही जायेंगे। अंततः ये लोग महावीर का अनुगमन करेंगे ही।

प्रत्येक आदमी भीतर यही सोचता रहता है कि वह सही है, और बाकी सब लोग गलत हैं।

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि जनसाधारण के लिए धर्म एक कल्पना की बात है। उनकी अपनी कल्पनायें हैं; उन्होंने अपने संसार स्वयं रंग लिए हैं। उसमें कोई बुराई भी नहीं है। तुम अपना घर अपनी ही पसंद से सजाते हो, यह ठीक भी है। कौन है जो कहेगा कि यह बात गलत है? यह कहने का हक किसी को नहीं है। तुम अपनी पसंद के अनुसार अपना घर सजाते हो, लेकिन तुम सजावट के लिए किसी से लड़ते नहीं। तुम ऐसा तो नहीं कहते कि मेरी सजावट आखिरी सत्य है। प्रत्येक आदमी को अपने अनुसार अपना घर सजाने का हक है।

यही बात तुम अपने मन के साथ भी करते हो। तुम उसे भी अपनी आकृतियों से, पूजा से, प्रार्थना से, अपनी बाइबिल से, अपनी गीताओं से सजाते रहते हो। तुम अपने आंतरिक जगत को सजाते चले जाते हो, और फिर तुम उसके हिस्से हो जाते हो और उसी में रहने लगते हो। यही भ्रांति है।

यह सूत्र कहता है कि वही एकमात्र ब्रह्म है जिसे कि तुम इंद्रियों का अतिक्रमण करने के बाद जान सकते हो; जबकि तुम इंद्रियों के पीछे चले जाते हो, और जब तुम आंखों को भी देखते हो, जब तुम कानों को भी सुनते हो, और जब तुम हाथों को भी भीतर से स्पर्श करते हो।

.. तू जान कि वही एकमात्र ब्रह्म है और वह नहीं जिसकी लोग यहां पूजा करते हैं।

जिसे कान नहीं सुन पाते लेकिन जो कानों को सुन पाता है— तू जान कि वही एकमात्र ब्रह्म है; ओर वह नहीं जिसकी लोग यहां पूजा करते हैं

जिसे प्राण प्रगट नहीं कर पाते लेकिन जो प्राण को प्रगट कर पाता है— तू जान कि वही एकमात्र ब्रह्म है; और वह नहीं जिसकी लोग यहां पूजा करते हैं

सारे मंदिर, सारी मस्जिदें, सारे गिरजे झूठे हैं। मैं उनकी कोई निंदा नहीं कर रहा हूं मैं सिर्फ एक तथ्य की बात कह रहा हूं। वे झूठे हैं क्योंकि वे सब हमारी कल्पनाओं की कृतियां हैं। और मैं यह नहीं कहता कि उनको नष्ट कर दो। मैं कहता हूं कि उनका भी आनंद लो। लेकिन ऐसा मत सोचना कि यह आनंद लेना तुम्हें उस आत्यंतिक तक ले जाएगा। इन निर्माणों का रस लो। यह खेल अच्छा है, इसमें कुछ भी तो बुरा नहीं है। लोग सिनेमा देखने जाते हैं, लोग नृत्य—घरों में जाते हैं। फिर उन्हें इस धार्मिक—कल्पना का आनंद लेने से क्यों रोका जाए? उन्हें अपने मंदिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों में जाने देना चाहिए—वे इसके लिए स्वतंत्र हैं। और यह एक तरह से अच्छा ही है कि कोई धार्मिक कल्पना हो, बजाय कुछ भी न होने के। लेकिन ऐसा मत सोचना कि तुम वहां ब्रह्म को जान लोगे। नहीं, तुम नहीं जान सकते। वह वहां है ही नहीं, इसलिए तुम कुछ भी नहीं कर सकते। तुम अपना आनंद ले सकते हो, तुम अपनी कल्पना का आनंद ले सकते हो, तुम्हारे सपनों के संसार में विचरण कर सकते हो।

अगर यह बात समझ में आ जाए तो मंदिर हो सकते हैं। वे सुंदर कलाकृतियां हैं लेकिन उनमें ही खो ही जाओ। वहा जरूर जाओ, लेकिन वहा खो मत जाओ। इसे सतत स्मरण रखो कि जिसे भी लोग यहां पूजते हैं, वह असली ब्रह्म नहीं है, क्योंकि असली ब्रह्म तो पूजा करने वाले के भीतर ही छिपा है। इसी बात पर सारा जोर है। जब मैं पूजा करता हूं तो एक मैं हूं और एक वह वस्तु है जिसकी मैं पूजा करता हूं। ब्रह्म कहां है? उस वस्तु में अथवा पूजा करने वाले में? उपनिषदों का जोर पूजा करने वाले पर है, न कि पूजा की विषयवस्तु पर, क्योंकि वह वस्तु तो गौण है; वह तो पूजा करने वाले ने निर्मित की है। जो मूल्य उसे तुम देते हो वह तो तुम्हारे द्वारा प्रक्षेपित किया गया है, तुमने ही वह मूल्य दिया है। वह तुम्हारी ही उस वस्तु को दी गई भेंट है।

तुम एक गोल पत्थर कमरे में रखवा सकते हो और तुम उसकी शिव की भांति, शिवलिंग समझकर पूजा कर सकते हो। और यह पत्थर हजारों वर्षों से रास्ते में पड़ा था, अथवा नदी के घाट पर पड़ा था। किसी ने उसकी पूजा नहीं की। किसी ने नहीं सोचा कि वह शिव है। नदी ने कभी कोई परवाह नहीं की। पशु वहां से गुजरे, उन्होंने कभी उसकी ओर नहीं देखा और अचानक तुम उस पत्थर को बदल देते हो। अचानक वह पत्थर पूजा की वस्तु बन गया, पवित्र हो गया, और अब उसे कोई स्पर्श भी नहीं कर सकता है। और पहले लोग उसके ऊपर से पाव रखकर गुजरते रहे। उनके पांव सदियों से उसे छूते रहे। अब अचानक तुम उसका एक मंदिर बना देते हो। तुम उस पत्थर को वहां स्थापित कर देते हो, तुम कहते हो, "यह शिवलिंग है, कि यह शिव—देवता का प्रतीक है, " फिर और तुम उसकी पूजा करने लगते हो, और तुम बहुत अच्छा महसूस करने लगते हो।

इस सबमें कुछ भी बुरा नहीं है। पत्थर सुंदर है, और यदि तुम्हें उसमें आनंद आ रहा है, तो आनंद अवश्य लो। लेकिन स्मरण रहे कि पत्थर सिर्फ पत्थर है, और शिव तुम्हारे ही सृजन हैं, तुमने ही उन्हें निर्मित किया है। तुमने ही उन्हें प्रक्षेपित किया है, तुमने ही पत्थर को शिव में परिवर्तित कर दिया है।

ईश्वर को तुमने निर्मित कर लिया है; और पत्थर को इस बात का पता भी नहीं है। और अगर वह पत्थर यह सब देख पाए तो उसे भी हंसी आएगी और वह भी सोचेगा, "यह आदमी पागल हो गया है। क्या कर रहे हो यह, मेरी पूजा कर रहे हो? " पूजा करने वाला ही पूजा की वस्तु को निर्मित करता है। भक्त भगवान को निर्मित करता है।

उपनिषद कहते हैं कि तुम वहां वास्तविक ब्रह्म को नहीं पाओगे : तुम सिर्फ अपनी ही कल्पना को वहां पाओगे। अच्छा हो कि तुम पूजा करने वाले के भीतर प्रवेश करो। पूजा की जाने वाली वस्तु को भूलो, और यह जानने का प्रयत्न करो कि यह पूजा करने वाला कौन है—यह कौन है जो कि पूजा कर रहा है? कौन है यह जो कि प्रार्थना कर रहा है? कौन है यह जो कि मंदिर जा रहा है? और यदि तुम यह खोज सको कि कौन है यह जो कि पूजा करता है तो तुमने ब्रह्म को पा लिया।

मैंने सुना है :

एक बार एक झेन गुरु हुआ पो उपदेश दे रहा था। अचानक एक आदमी उठ खड़ा हुआ। उस आदमी ने कहा, "मैं वर्षों से सुनता आ रहा हूं और प्रत्येक यही बात कहता है कि 'स्वयं को जानी', लेकिन मुझे इसका अर्थ समझ में नहीं आता। स्वयं को जानो, इससे आपका अर्थ क्या है? कृपया इसका अर्थ सीधे—सादे शब्दों में समझायें। मैं कोई बहुत पढ़ा—लिखा आदमी नहीं हूं। मैं यह पारिभाषिक शब्दावली नहीं समझता। कृपया सरल और सीधी बात कहें। आपका स्वयं को जानने से क्या अर्थ है? "हुआंग पो ने कहा, "यदि तुम यह पारिभाषिक शब्द नहीं जानते, तो फिर मैं भाषा का उपयोग नहीं करूंगा।" उसने लोगों से कहा कि भाई, रास्ता दो ताकि मैं इस आदमी तक पहुंच सकूं।

हुआंग पो अपने मंच से नीचे उतरा और उस आदमी के पास गया। वह आदमी तो घबड़ा गया, क्योंकि उसने तो कभी कल्पना भी नहीं की थी कि इतने निकट आने की क्या जरूरत हो सकती है। क्या यह आदमी हमला करने वाला है? और हुआंग पो बहुत ही आक्रामक दिखाई पड़ रहा था, वह शेरनुमा आदमी था। इसलिए वह व्यक्ति तो एकदम डर गया, और दूसरे लोग भी घबड़ा गए कि न जाने क्या होने वाला है। और वे हुआंग पो के बारे में जानते थे। कभी उसने थप्पड़ लगा दिया था तो कभी उसने किसी की दरवाजे के बाहर फेंक दिया था और कभी उसने पीटा भी था.. अत: क्या होने वाला है? पूर्ण शांति हो गई, लोगों की सांसें रुक गईं।

फिर हुआंग पो उसके करीब आया और उसने उस व्यक्ति की कॉलर पकड़ कर कहा, "अपनी आंखें बंद करो। " उस आदमी ने डर के मारे आंखें बंद कर लीं। एकदम सन्नाटा छा गया। उस व्यक्ति ने अपनी आंखें बंद की हुई थीं. तभी हुआंग पो बोला. "अब जानो कि वहां कौन है? "अत: वह आदमी वहीं खड़ा रहा और पूरे हॉल में शांति छा गई, कोई सास भी नहीं ले रहा था, और हुआंग पी वहा खड़ा था। उस आदमी ने अपनी आंखें बंद कर ली थीं।

वह आदमी जरूर कोई बहुत सीधा—सादा आदमी रहा होगा। उसने आंखें बंद कर लीं और खोजने लगा कि वह कौन है तू उसने खोजा, खोजा और खोजा और समय बीतता चला गया। फिर हुआंग पी ने पूछा अपनी आंखें खोलो, और बोलो कि तुम कौन हो?"

उस आदमी ने आंखें खोलीं, लेकिन उसकी आंखें दूसरी ही हो गई थीं, उनका सारा गुण बदल गया था। वह आदमी हंसने लगा, फिर वह जमीन पर झुका और उसने हुआंग पी के चरण छुए और बोला मैंने कभी नहीं सोचा था कि आप इस तरह से मुझे मेरे ऊपर फेंक देंगे। अब मुझसे मत पूछें। मैं नहीं बता सकता। क्योंकि मैं पढ़ा—लिखा आदमी नहीं हूं। लेकिन अब मैं कभी नहीं पूछूंगा मैं कौन हूं। मैंने जान लिया है।"

उपनिषद तुम्हें तुम्हारे ऊपर फेंकने की कोशिश कर रहे हैं। पूजा की वस्तु को विस्मृत करो, केवल भीतर प्रवेश करो। लेकिन तुम भीतर कैसे जाओगे? पूजा की वस्तु को भूलना सरल है, लेकिन भीतर जाना कठिन है, क्योंकि मन में वस्तुएं भरी हैं जो कि तुम्हारे चारों ओर चिपकी हैं। जब भी तुम अपनी आंखे बंद करते हो तो तुम्हारे चारों ओर कल्पना का संसार होता है, सपने तैरते रहते हैं, आकृतियां बनती रहती हैं, विचारों का जुलूस

चलता रहता है। फिर तुम संसार में चले जाते हो। वस्तुओं का संसार अब वहां नहीं है, लेकिन विचारों का संसार वहां मौजूद है। जब तक विचारों का संसार समाप्त न हो, तुम उस पूजा करने वाले को नहीं जान सकते।

कैसे वह समाप्त होगा? यदि तुम उसके साथ सहयोग करते चले जाओगे तो तुम उसे निर्मित करते चले जाओगे। तुम वस्तुओं के संसार को कभी नष्ट नहीं कर सकते क्योंकि तुमने कभी उसका निर्माण नहीं किया लगा है। स्मरण रहे कि हम वस्तुओं के संसार को नहीं मिटा सकते। कैसे तुम इन पहाड़ों को, सितारों को, चांद को, पृथ्वी को मिटा सकते हो? तुम इन्हें कभी नहीं मिटा सकते क्योंकि तुमने इनको निर्मित नहीं किया था। लेकिन तुम विचारों के संसार को मिटा सकते हो क्योंकि वहा तुम्हीं एकमात्र निर्माता हो। किसी दूसरे ने उसमें कुछ भी सहायता नहीं की है। तुमने अकेले ही सारा कार्य किया है।

विचार जीते हैं क्योंकि तुम उनके साथ सहयोग करते हो। सहयोग मत करो। केवल यही एकमात्र विधि है; सिर्फ उपेक्षा कर दो। बस उनको देखो—बिना उनको प्यार किए, बिना उनसे घृणा किए बिना उनकी निंदा किए, बिना उनकी प्रशंसा किए, बिना कहे कि वे सुंदर हैं, बिना कहे कि वे बुरे हैं। कुछ कहो मत, कोई रुख या भाव ही मत रखो। सिर्फ उपेक्षा करो—एक देखने वाले, द्रष्टा रहो।

आकाश में बादल चल रहे हैं। तुम एक वृक्ष के नीचे बैठे हो और तुम बादलों को आकाश में तैरते हुए देखते हो; तुम कोई रुख नहीं अपनाते। तुम नहीं कहते कि ये बादल क्यों तैर रहे हैं, उन्हें तैरना चाहिए या उन्हें नहीं तैरना चाहिए। तुम कुछ भी निर्णय नहीं लेते। तुम सिर्फ द्रष्टा बने रहते हो, और तुम बादलों को आकाश में चलते देखते रहते हो।

इसी प्रकार से विचारों को भी अंतर आकाश में चलते देखते रहो। कोई रुख मत अपनाओ। जैसे ही तुमने कोई भी रुख लिया कि तुमने सहयोग शुरू किया। बाहर के आकाश से बादल नहीं चले जायेंगे यदि तुमने कोई भी रुख नहीं लिया, लेकिन भीतर के आकाश के बादल जरूर विलीन हो जायेंगे। वे तुम्हारे ही कारण होते हैं। यदि तुम उनके प्रति उदासीन हो जाओ, तो वे चले जाते हैं। वे अतिथि हैं, तुम इस बात को चाहे जानो या न जानो। वे अतिथि हैं, और उनको तुमने ही निमंत्रित किया है।

बहुत समय हो गया है और तुम भूल चुके हो कि तुमने कब उन्हें निमंत्रण भेजा। यह भी हो सकता है कि तुमने पिछले जन्मों में उन्हें निमंत्रित किया हो। लेकिन कुछ भी तुम्हारे अंतर जगत में नहीं होता बिना तुम्हारे निमंत्रण भेजे। प्रत्येक विचार को निमंत्रित किया गया है, और अभी भी जब वह उठता है तो तुम उसे ऊजी देते हो।

तुम दो प्रकार से ऊर्जा दे सकते हो : यदि तुम पक्ष में हो तो तुम ऊर्जा देते हो; यदि तुम विपक्ष में हो तो तुम ऊर्जा देते हो। दोनों ही ढंगों में विचार को तुमसे ऊर्जा मिलती है। केवल एक ही रास्ता है असंबंधित होने का, और वह है उपेक्षा रखना। बुद्ध ने उसे उपेक्षा कहा है। उन्होंने कहा कि यदि तुम विचारों के प्रति उपेक्षा का भाव रखोगे तो वे विलीन हो जायेंगे।

उपेक्षा पर जोर रहे। कोई भी रुख मत अपनाओ; कोई चुनाव मत करो। केवल साक्षी रहो, और वे विलीन हो जायेंगे। और जब वे विलीन हो जाते हैं तो अचानक पूजा करने वाला प्रगट होता है, अचानक तुम प्रगट हो जाते हो तुम्हारे ही समक्ष। वह प्रगट होना ही ब्रह्म है, और वह नहीं जिसकी लोग यहां पूजा करते हैं।

सातवां प्रवचन

ध्यान और आंतरिक आँख

पहला प्रश्न :

सुबह आपने कहा कि पूजा के द्वारा ब्रह्मको नहीं पाया जा सकता। वरन वह पूजा करने वाले के भीतर ही पाया जाता है। लेकिन सदगुरूओं को उनके शिष्यों ने सदा ही ईश्वर की भांति पूजा है। कृपया इसका महत्व समझायें।

सदगुरूओं को ईश्वर की भांति पूजा गया है। किंतु यह सिर्फ प्रारंभ है, न कि अंत। सदगुरू तभी वास्तव में सदगुरू है यदि वह अपने शिष्यों को अंत में सब पूजा से मुक्त कर दे। परंतु प्रारंभ में ऐसा ही होगा। क्योंकि प्रारंभ में सदगुरू तथा शिष्य के बीच एक प्रेम का संबंध होता है। और वह बड़ा गहन होता है। और जब भी तुम किसी के प्रेम में होते हो तो दूसरा तुम्हें दिव्य दिखाई पड़ता है।

सामान्य प्रेम में भी प्रेमी हमें परमात्मा दिखाई पड़ताहै। सदगुरू तथा शिष्य के बीच जो संबंध होता है वह बहुत ही गहरा प्रेम—संबंध होता है। असल में, तुम गुरु के प्रेम में पड़ जाते हो। और इसमें कुछ भी गलत नहीं है। और जब तुम गुरु के प्रेम में पड़ जाते हो तो तुम पुजा करने लग जाते हो। लेकिन सदगुरू उसे एक खेल की भांति ही लेता है। यदि वह भी उसे गंभीरता से ले और उसमें रस लेने लगे, और महत्व देने लगे, तो वह फिर सदगुरू नहीं हे। उसके लिए वह सिर्फ एक खेल है—लेकिन खेल अच्छा है, क्योंकि इससे शिष्य की सहायता की जा सकती है।

इससे शिष्य की सहायता कैसे होगी? जितना अधिक शिष्य गुरु की पूजा करता हे उतना ही वह गुरु के निकट आता जाता है। उतना ही वह घनिष्ठ होता जाता है, उसनाही वह सर्मिपित होता जाता है।
ग्राहक, निष्क्रिय होता जाता है। और जितना अधिक वह ग्राहक निष्क्रिय तथा समर्पित होता है उतना ही वह गुरु जो भी कहने की कोशिश कर रहा है उसको समझ पाता है। और जब यह घनिष्ठता आखिरी बिंदु पर आ जाती है, केवल एक इंच की दूरी भर रह जाती है, एक जरा सा ही अंतराल शेष रह जाता है, जब निकटता इतनी गहरी हो जाती है कि सदगुरु शिष्य को उसकी ओर ही वापस मोड़ सकता है, तब सदगुरु शिष्य की सहायता करता है कि वह उससे भी मुक्त हो जाए।

प्रारंभ में यह असंभव है। तुम समझ न सकोगे। यदि गुरु तुम्हें अपने से मुक्त करने की कोशिश करे पो तुम नहीं समझ पाओगे। प्रारंभ में तो तुम चाहोगे कि कोई हो जिसका तुम सहारा ले सको। प्रारंभ में तुम किसी पर निर्भर होना चाहोगे। प्रारंभ में तुम चाहोगे कि तुम किसी के ऊपर पूरी तरह निर्भर हो जाओ। यह आंतरिक आवश्यकता है। और तुम्हें प्रारंभ से मालिक बनाया नहीं जा सकता। प्रारंभ तो एक आध्यात्मिक निर्भरता की भाति ही होगा।

लेकिन यदि सदगुरु भी इससे संतुष्ट हो जाए कि तुम उस पर निर्भर हो तो वह सदगुरु नहीं है। वह नुकसानदायक है, वह खतरनाक है; तब उसे कुछ भी पता नहीं है। यदि वह भी तृप्ति अनुभव करता हो तो फिर यह निर्भरता आपसी हो गई। तुम उस पर निर्भर करते हो और वह तुम पर निर्भर करता है। और यदि गुरु तुम पर किसी भी बात के लिए निर्भर करता हो तो फिर वह किसी काम का नहीं है। किंतु यदि वह तुम्हें प्रारंभ से ही

मना कर दे तो कोई निकटता नहीं बन पाएगी। और यदि कोई निकटता ही न बनेगी तो अंतिम कदम नहीं उठाया जा सकता।

जब तुम गुरु में इतनी श्रद्धा करो कि जब वह तुम्हें कहे, "अब मुझे भी छोड़ दो, "तो तुम उसे भी छोड़ दो, तभी तुम मुक्त होने में समर्थ हो सकोगे। यदि तुम अपने गुरु पर इतनी अधिक श्रद्धा करते हो कि यदि गुरु कहे, "तुम मुझे मार डालो, "तो तुम उसको मार भी सकी, केवल तभी तुम मुक्त हो सकोगे, उसके पहले नहीं। और यह स्थिति धीरे— धीरे ही लानी पड़ेगी। यह एक लंबी प्रक्रिया है। इसमें कभी पूरा जीवन निकल जाता है, और कभी—कभी कितने ही जीवन बीत जाते हैं, गुरु शिष्य पर काम करता रहता है।

शिष्य को कुछ भी पता नहीं है। वह नहीं जानता, वह अंधेरे में चलता जाता है। गुरु शिष्य को उस बिंदु पर ले जा रहा है जहां शिष्य—शिष्य नहीं रहेगा, बल्कि वह भी अपने आप में एक गुरु हो जाएगा। जब तुम भी गुरु हो जाते हो, जब गुरु पर निर्भर होने की जरूरत नहीं रहती, जब तुम अकेले भी हो सकते हो, और जब तुम अकेले हो तो भी कोई दुख नहीं है, कोई पीड़ा, कोई क्रोध नहीं है, जब तुम अकेले में भी आनंदित हो, तभी तुम मुक्त हो।

और वास्तव में, जब शिष्य गुरु के पास होता है तो गुरु उसको ईश्वर दिखाई पड़ता है।

शिष्य के लिए यह बात तथ्य है क्योंकि इतना प्रेम गुरु की ओर से बहता है, इतनी तीव्र ऊर्जा—तरंगें गुरु के माध्यम से बहती हैं कि गुरु स्रोत हो जाता है। और सिर्फ गुरु की उपस्थिति से ही तुम ऊपर उठ जाते हो। सिर्फ उसके स्पर्श से ही तुम बदल जाते हो। सिर्फ उसके निकट होने मात्र से ही तुम एक दूसरे ही आयाम में तरंगायित हो जाते हो।

इसलिए यदि गुरु ईश्वर दिखाई पड़ता है तो यह बात शिष्य के लिए एक तथ्य है, और इसमें कुछ भी गलत नहीं है। गुरु परमात्मा ही है। गलती सिर्फ इतनी ही है कि शिष्य को अभी पता नहीं है कि वह भी परमात्मा है। वह गुरु के संबंध में गलत नहीं है, वह अपने संबंध में गलत है। और यदि गुरु कहता है, "मैं परमात्मा नहीं हूं " तो वह इस संभावना का द्वार ही बंद कर रहा है कि एक दिन वह शिष्य को कह सके कि "तुम भी परमात्मा हो। " गुरु ऐसा नहीं कहेगा क्योंकि यही तो प्रगट करना है।

यदि शिष्य को इतनी प्रतीति भी हो जाये कि गुरु परमात्मा है तो यह भी बड़ा कदम है। अब दूसरा कदम यह होगा कि शिष्य यह अनुभव कर ले कि वह स्वयं भी परमात्मा है। और जब शिष्य यह अनुभव कर ले कि वह भी परमात्मा ही है तो सारा अस्तित्व ही फिर परमात्मामय हो जाता है। तब यह भी कहने की जरूरत नहीं रह जाती कि गुरु परमात्मा है। यह बात फिर असंगत है। सारा अस्तित्व ही परमात्मा है, अत: फिर गुरु को ही परमात्मा पुकारने का क्या अर्थ है? लेकिन प्रारंभ में यह बात बड़ी महत्वपूर्ण है।

स्मरण रहे, शिष्य के लिए सत्य को कई चरणों में प्रगट करना है। उसे एकबारगी प्रगट नहीं किया जा सकता, क्योंकि तुम उसे बर्दाश्त करने में समर्थ नहीं होओगे, तुम उसे सहन करने के योग्य नहीं हो, वह बहुत ज्यादा विनष्टकारी होगा। उसे धीरे—धीरे ही प्रगट करना होगा, टुकड़ों —टुकड़ों में। केवल उतना ही प्रगट किया जाएगा जितना तुम जज्ब कर सको, जितना तुम्हारा खून, तुम्हारी हड्डी बन सके, तुम्हारा ह्रदय बन सके, जो कि तुम्हारे लिए विनाशक सिद्ध न हो।

अत: बहुत—सी बातें बाद में कही जायेंगी। गुरु बहुत—सी बातें कहता जाएगा। जितने तुम समर्थ होते जाओगे, उतना अधिक गुरु कहता जायेगा। और जब तुम इतने समर्थ हो जाओगे कि अब तुम अनिर्भर हो सकते हो तो आखिरी बात जो गुरु कहेगा, वह होगी, "मैं तुम्हारे लिए एक बंधन हूं अब इस आखिरी जंजीर को भी छोड़ दो, अब इस अंतिम दासता को भी त्याग दो। "

जब जरथुस्त्र अपने शिष्यों से दूर जा रहा था, पहाड़ियों में सदा—सदा के लिए विलीन होने जा रहा था, तो उसने अपने शिष्यों से कहा, "अब यह आखिरी संदेश। और आखिरी संदेश यह है—मेरे से सावधान रहो; मैं खतरनाक हूं। तुम मुझ पर निर्भर हो सकते हो, और मेरी सारी कोशिश तुम्हें स्वतंत्र करने की है। तुम मेरे शब्द को सत्य समझ सकते हो, और मेरी सारी कोशिश यह है कि कोई भी शब्द सत्य नहीं है। अत: अब मुझ से सावधान रहो। "

किसी भी सदगुरु का आखिरी संदेश यही होगा, "मेरे से सावधान! " लेकिन यह बात प्रारंभ में नहीं कहीं जा सकती। इसलिए सदगुरुओं ने स्वयं को शिष्यों के द्वारा पूजे जाने दिया है। वे अपने भीतर तो हंसते रहे होंगे क्योंकि वे जानते हैं कि क्या खेल चल रहा है! शिष्य तो बहुत गंभीर है। वह सोचता है कि वह जो भी कर रहा है बड़ा महत्वपूर्ण है। लेकिन गुरु सिर्फ खेल खेल रहा है।

यह ऐसे ही है जैसे तुम छोटे बच्चों के साथ खेलते हो, तुम उनके खिलौनों से खेलते हो और तुम गंभीर होने का नाटक करते हो। गुरु सचमुच बच्चों के बीच में होता है। वे दोनों इतने अलग— अलग तलों पर होते हैं कि यदि गुरु को कुछ भी कहना हो तो उसे बच्चों की भाषा में बोलना पड़ता है। धीरे—धीरे वह बच्चों को एक भिन्न जगत में ले जाएगा, जहा की भाषा भिन्न है। यह एक लंबी प्रक्रिया होने वाली है।

लेकिन उपनिषद तो आखिरी बात कह रहे हैं; वे संपूर्ण धर्म का सारभूत हैं। वास्तव में, वे प्रारंभिक लोगों के लिए नहीं हैं। वे उनके लिए हैं, जिन्होंने प्रारंभ को बहुत पीछे छोड़ दिया है। वास्तव में, वे उनके लिए हैं जो बहुत समय से संघर्ष कर रहे हैं— ध्यान कर रहे हैं, खोज रहे हैं, पूछताछ कर रहे हैं। केवल तभी उपनिषद सहायक हो सकते हैं।

मैं उपनिषदों पर बोल रहा हूं क्योंकि तुम ध्यान कर रहे हो। तुम्हारे ध्यान के द्वारा तुम्हें एक झलक मिल सकती है जिसमें उपनिषद को समझना सरल हो जाएगा। लेकिन यदि तुम ध्यान नहीं कर रहे हो तो उपनिषद तुम्हारे सिर के ऊपर से निकल जाएगा। उसका कुछ भी अर्थ तुम्हारे लिए नहीं होगा। केवल एक ध्यानपूर्ण हृदय से ही तुम उसके संदेश के साथ संपर्क स्थापित कर सकोगे।

उपनिषदों का संदेश सर्वाधिक सरल है, लेकिन परम है, सर्वोच्च है। भाषा भी बड़ी सरल उपयोग की गई है। सरलतम भाषा है, लेकिन उस भाषा के द्वारा जो बात कही गई है वह अंतिम है; उसे और आगे नहीं सुधारा जा सकता है। कुछ भी और नहीं कहा जा सकता है जो कि उपनिषदों ने पहले से नहीं कह दिया है। यदि सब धर्मों के सारे ग्रंथों को भी जला दिया जाए, और सिर्फ एक उपनिषद को बचा लिया जाए तो कुछ भी नहीं खोएगा, क्योंकि सारे बीज वहा मौजूद हैं। इन बीजों को फिर से बो दो, और तुम उससे पूरी धार्मिकता वापस प्राप्त कर सकते हो। लेकिन ऐसा तुम तभी कर सकते हो जब कि तुम गहन ध्यान कर रहे हो, साथ—साथ भीतर हृदय में उतरते जा रहे हो, अपने आंतरिक केंद्र पर पहुंच रहे हो, केवल तभी तुम समझ सकोगे, खाली बौद्धिक कोशिश से कुछ भी न समझ सकोगे।

किसी ने कहा है कि उपनिषद बहुत पुनरुक्ति करते प्रतीत होते हैं, वे वही—वही बात बार—बार वहीं कहे चले हैं, इन इंद्रियों के बारे में और उन इंद्रियों के बारे में कहते हैं—आंखों के बारे में कहते हैं, और कानों के बारे में कहते हैं। क्यों वे बार—बार पुनरुक्ति करते हैं? क्या इसमें कोई बड़े महत्व की बात छिपी है?

हां, छिपी है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि गुरु बच्चों से बोल रहा है। तुम्हारी स्मृति पर बहुत भरोसा नहीं किया जा सकता, इसलिए सत्य को सतत दोहराना पड़ता है। फिर भी यह मात्र आशा ही है कि वह समझा जा सकेगा।

बुद्ध वही—वही बात बार—बार दोहराते थे। उपनिषद भी उसी बात को पुनरुक्त करते चले जाते हैं। वे बच्चों से बातें कर रहे हैं—बच्चे जो कि ध्यान नहीं दे पा रहे हैं। इसलिए वे बहुत बार चूक जायेंगे। ऐसी आशा की जाती है कि कभी न कभी उनका ध्यान पकड़ लिया जाएगा, इसलिए बातों को दोहराया जाता है। चूंकि तुम सजग नहीं हो, इसलिए। अन्यथा, उस आत्यंतिक को एक शब्द में भी कहा जा सकता है। और वह भी ज्यादा है। उसे मौन से भी कहा जा सकता है। एक शब्द की भी जरूरत नहीं है उसे कहने के लिए। लेकिन तब तुम उस मौन को नहीं समझ सकोगे।

कोई आदमी एक झेन रहस्यदर्शी रिंझाई के पास आया। उसने रिंझाई से कहा, "मुझे केवल जो सारभूत हो वही कहो, क्योंकि मैं जल्दी में हूं मैं एक बहुत बड़ा सरकारी अफसर हूं और मेरे पास समय नहीं है। मैं इस रास्ते से गुजर रहा था तो मैंने सोचा, चलें, पता करें क्योंकि यह बात मेरे दिल में बहुत दिनों से थी। इसलिए मुझे सार में कहें कि धर्म मूलरूप से क्या है? "

रिंझाई मौन रहा। उस बड़े अफसर को बड़ी बैचेनी हुई। उसने कहा, "आपने मेरी बात सुनी या नहीं? लगता है कि आप बहरे हैं। मैं आपसे धर्म के बारे में जो सार शब्द है उसे कहने के लिए कह रहा हूं। "

रिंझाई ने कहा, "मैंने वह बता दिया है। अब तुम जा सकते हो। "

उस अफसर ने कहा, "लेकिन मैंने तो सुना ही नहीं। "

रिंझाई ने कहा, "जो सुना जा सके वह सारभूत नहीं होगा। मैंने तुम्हें कुंजी दे दी है। मौन कुंजी है। अब तुम जाओ। तुम जल्दी में हो। "

लेकिन अब उस अफसर को भी दिलचस्पी होने लगी। यह आदमी अदभुत है। उसने कहा, "कृपया थोड़ा समझा कर कहें। यह तो बहुत संक्षिप्त हुआ; बड़ा छोटा—सा, बीज रूप हुआ। थोड़ा विस्तार से कहें तो अच्छा होगा। "

रिंझाई ने कहा, "लेकिन वह बात को दोहराना होगा, क्योंकि जो भी मैं कहना चाहता था, कह दिया है। अब तुम मुझे दोहराने के लिए बाध्य कर रहे हो। "

अफसर ने कहा, " भले ही पुनरुक्ति हो, लेकिन थोड़ा विस्तार से कहिए। "

तो रिंझाई ने कहा, " ध्यान। " यह फिर वही बात हुई, क्योंकि ध्यान का अर्थ होता है मौन। इसके अलावा और क्या अर्थ हो सकता है? अब यह एक शब्द है। पहले वह खाली मौन था, वह ज्यादा वास्तविक था। अब यह शब्द हो गया—ध्यान।

उस आदंमी ने कहा, "यह बात अभी भी मेरे लिए कठिन है। मैं संसारी आदमी हूं। इसे आप कृपया समझायें। यह अभी भी मेरे लिए एक पहेली ही है। "

रिंझाई ने कहा, "यदि मैं इसे और विस्तार में कहता हूं तो यह झूठ हो जाएगा। सत्य तो पहले ही दे दिया गया था, अब तो सिर्फ यह शब्दों में पुनरुक्ति है। यह आधा झूठ तो हो ही गया है, और यदि मैं इसके आगे विस्तृत करूंगा तो यह पूरा का पूरा ही झूठ हो जाएगा। अत: मुझे पाप में पड़ने के लिए बाध्य मत करो। अब तुम जाओ, तुम जल्दी में हो। "

उपनिषद तुम्हारे लिये दोहराये चले जाते हैं, क्योंकि तुम्हारे ध्यान पर कोई भरोसा नहीं है। बुद्ध का ढंग बहुत कठिन था : वे प्रत्येक वाक्य 'को तीन बार दोहराते थे—केवल करुणावश। हो सकता है तुमने पहली बार में न सुना हो; दूसरी बार में भी न सुना हो। आशा की जाती थी कि तीसरी बार में तो तुम सुन ही लोगे।

जीसस लोगों को कहानियां सुनाये चले जाते हैं। मैं भी कहानियां, किस्से, बोध—कथाएं सुनाता रहता हूं। उनकी कोई अनिवार्यता नहीं है; वह समय को बरबाद करना है, लेकिन मैं तुम्हारे कारण उनका उपयोग करता

हूं क्योंकि बच्चे कहानियों को जल्दी समझ लेते हैं बजाय किसी और चीज के। इतनी तो उम्मीद की जा सकती है कि कम से कम कहानियां तो तुम्हारे दिमाग में चली ही जायेंगी, और उनके इर्द—गिर्द कुछ सार की बात की सुगंध भी भीतर अनजाने में चली जाएगी। तुम कहानी को नहीं भूल सकते। और यदि तुम कहानी को याद रख सकते हो तो उसके संग—साथ में कुछ और बात भी स्मृति में चली आएगी। जीसस इतनी कहानियां सुनाते थे, क्योंकि बच्चों के साथ कोई और तरीका संभव नहीं है। बुद्ध भी कहानियां सुनाते रहे हैं।

यह सिर्फ तुम्हारे कारण ही उपनिषद बार—बार पुनरुक्ति करते हैं। इसके अलावा कोई मतलब नहीं है। सारी बात एक वाक्य में कही जा सकती है कि इंद्रियां उस आत्यंतिक तक नहीं पहुंचा सकेगी। किंतु उपनिषद कहे चले जाते हैं कि दृष्टि उस तरफ नहीं ले जाएगी, श्रवण भी नहीं ले जाएगा, हाथ भी वहां तक नहीं पहुचायेंगे...।

एक ही बात को तुम्हारी खातिर दोहराना पड़ता है और फिर भी तुम नहीं समझते हो, यही रहस्य है। तुम सुनते हो, और तुम केवल सुनते ही नहीं, तुम्हें ऐसा भी लगता है कि यह पुनरुक्ति है। लेकिन फिर भी समझ पैदा नहीं होती है। समझने की कोशिश करो, विश्लेषण मत करो। ऋषि के मन को समझने का प्रयत्न मत करो कि वह क्यों दोहरा रहा है। अपने मन को समझो और सजग हो जाओ ताकि ऋषि को दोहराना न पड़े।

मैंने सुना है कि एक बार ऐसा हुआ:

एक झेन फकीर ने अपना पहला प्रवचन दिया, और फिर दूसरे सप्ताह भी उसने वही प्रवचन दिया, और फिर तीसरे सप्ताह भी उसने उसी प्रवचन को पुनरुक्त किया, ज्यों का त्यों दोहरा दिया। सभा के लोग बड़े बेचैन हो गये, यह तो बात कुछ ज्यादा हो गई। धार्मिक प्रवचन तो पहले ही काफी उबाने वाले होते हैं, किंतु उसने फिर दूसरी बार भी वही दोहरा दिया और तीसरी बार भी वही दोहरा दिया, उन्हीं शब्दों को ज्यों का त्यों रख दिया। यह तो हद हो गई, अत: सभा ने सोचा कि कुछ करना चाहिए।

एक आदमी को चुना गया कि वह उनकी ओर से बोले। वह उस फकीर के पास गया और बोला, "बात क्या है? क्या तुम्हारे पास एक ही प्रवचन है?"

उस फकीर ने कहा, "नहीं, मेरे पास और भी हैं।"

तो उस प्रतिनिधि ने कहा, "फिर आपने वही—वही प्रवचन तीन बार क्यों दोहराया? हम तो उससे तंग चुके हैं। "

उस झेन फकीर ने कहा, "लेकिन तुमने अभी पहले के संबंध में कुछ भी नहीं किया है। जब तक तुम उसके लिए कुछ करते नहीं, मैं दूसरे पर नहीं जा सकता। मेरे पास बहुत सारे प्रवचन हैं, लेकिन तुमने पहले के विषय में क्या किया अब तक? मैं तीन बार उसे दे चुका हूं। तुमने क्या किया? तुमने कुछ भी तो नहीं किया। और जब तक तुम पहले प्रवचन के लिए कुछ न करो, मैं दूसरे पर नहीं जा सकता।"

कहते हैं लोग सभा में धीरे—धीरे आना बंद हो गये। और यह भी कहते हैं कि वह फकीर वही उपदेश देता रहा। जबकि वहां कोई भी नहीं होता, फिर भी वह वही उपदेश सूने मंदिर में पुन: दोहराता। तब तो लोगों ने उस रास्ते से गुजरना भी छोड़ दिया, क्योंकि उधर से गुजरते वक्त वे लोग वही प्रवचन फिर। फिर सुनते तो लोग उससे डरने लगे, दूर भागने लगे। वे उस फकीर से सड़क पर या कहीं भी मिलने से बचने लगे। क्योंकि वह कहीं मिल जाए और पूछे कि तुमने इस प्रवचन का क्या किया? वह फकीर सारे गांव के खयालों में मंडराने लगा।

इसलिए उपनिषद बार—बार दोहराये चले जाते हैं क्योंकि तुमने अभी पहली बात के लिए ही कुछ भी नहीं किया है। तुमने पहली बात के बारे में ही कुछ नहीं किया है, इसलिए वे उसे दूसरी बार, तीसरी बार

दोहरते हैं। एक सौ आठ उपनिषद हैं; और वे कोई नई बात नहीं कहते, वे उसी बात को' बार—बार दोहराते रहते हैं। एक ही उपनिषद एक सौ आठ बार पुनरुक्त किया गया है। लेकिन फिर भी उसके बारे में कुछ नहीं किया जाता। तुम्हें और और उपनिषदों की आवश्यकता है।

गुरु के मन के बारे में विचार मत करो। अपने ही मन के बारे में विचार करो।

दूसरा प्रश्न :

आपने कहा कि अराजकतापूर्ण श्वास से आप हमारे पुराने गलत ढांचों को नष्ट करना चाहते हैं ताकि हमें पुन: एक नए आयाम में निर्मित किया जा सके। कृपया बतायें कि पुराना ढांचा नष्ट हो जाने के नये आयाम में यह पुनर्निर्माण कैसे घटित होता है?

तुमने मुझे गलत समझ लिया। अराजक विधि पुराने ढांचों को नष्ट करने के लिए है, न कि नए को के लिए। कोई भी ढांचा बनाना नहीं है। केवल पुराने को नष्ट कर देना है। विधियां, सारी ध्यान की विधियां तुम्हारे संस्कारों को नष्ट करने के लिए हैं, नए संस्कार निर्मित करने के लिए नहीं। वरना तो सिर्फ जंजीरें बदल जायेंगी, कारागृह बदल जायेगा। नया कारागृह थोड़ा अच्छा प्रतीत होगा, लेकिन वह भी कारागृह ही है।

एक असंस्कारित मन लक्ष्य है—एक ऐसा मन जिसके चारों तरफ कोई ढांचा नहीं है। पुराने ढांचे को नष्ट कर देना है, और नये को निर्मित नहीं करना है, क्योंकि नया थोड़े ही दिनों में पुराना हो जायेगा। पुराने की जगह में कुछ नहीं बनाना है; तुम्हें बिलकुल अकेला छोड़ देना है बिना किसी ढाचे के। लेकिन तुम ढांचों में रहने के इतने आदी हो गये हो कि तुम सोच ही नहीं सकते कि तुम बिना ढांचों के कैसे जी सकते हो? बिना संस्कारों के तुम जी कैसे सकते हो? बिना किसी अनुशासन के तुम कैसे रह सकते हो? बिना जंजीरों के तुम कैसे रहोगे? तुम दासता में इतने लंबे समय तक रहे हो, तुम संस्कारों के वशीभूत इतने समय तक रहे हो कि तुम स्वतंत्रता के बारे में सोच भी नहीं सकते। लेकिन तुम जी सकते हो! वास्तव में, तभी तुम जी सकते हो।

एक संस्कारित मन जीवंत नहीं है। उदाहरण के लिए, मेरे पास लोग आते हैं और कहते हैं, "आप हमें कोई अनुशासन, कोई नियम तो देते नहीं, कि हम क्या खायें और क्या न खायें; कि क्या करें और क्या नहीं करें। आप हमें सिर्फ ध्यान बतलाते हैं और हमें एक अराजकता में ले जाते हैं। आप हमें कुछ भी ऐसा नहीं बताते कि कैसे रहें। आप हमें सिर्फ अराजकता में धक्का दे देते हैं, और कोई अनुशासन नहीं देते। " मैं तुम्हें कोई भी अनुशासन नहीं देता, क्योंकि केवल तुम्हारे शत्रु ही तुम्हें अनुशासन दे सकते हैं। मैं तुम्हें सजगता देता हूं न कि अनुशासन। और सजगता से तुम्हें एक स्वतःस्फूर्त प्रकाश मिलेगा कि क्या करें और क्या नहीं करें। और पहले से कौन तय कर सकता है, और उसकी जरूरत भी क्या है? जब क्षण आएगा, जब जैसी परिस्थिति होगी तो तुम सजग होओगे उसके अनुसार करने के लिए—जो भी तुम्हारी सजगता को प्रतीत होगा, वही हो जाएगा।

यदि तुम सजग हो, तो तुम्हें किसी भी अनुशासन की जरूरत नहीं है। केवल सोये हुए लोगों को ही अनुशासन की जरूरत होती है, क्योंकि उनको पता नहीं है कि क्या करें। उन्हें एक ढांचे की जरूरत है अनुसरण करने के लिए। उनका सारा जीवन एक दुख हो जाता है क्योंकि कोई भी ढांचा काम नहीं आ सकता इस परिवर्तनशील जीवन में।

प्रत्येक ढांचा एक कारागृह हो जाएगा, क्योंकि जीवन सतत बदल रहा है। इस क्षण एक कृत्य शुभ हो सकता है, लेकिन दूसरे क्षण में वही बात अशुभ हो सकती है क्योंकि परिस्थिति बदल गई। और तुम एक मृत ढांचे का अनुगमन करते रहते हो; तुम कहीं भी तो ठीक नहीं बैठते।

तुम अपने ही जीवन को देखो : प्रत्येक आदमी मिसफिट है। कोई भी उपयुक्त नहीं है, कोई भी कहीं ठीक नहीं बैठता। और क्या है कारण? ढांचा, अनुशासन, संस्कार। तुम उन्हें सब जगह ले जाते हो। जो भी परिस्थिति

हो, तुम्हारे चारों ओर एक ढांचा होता है। तुम कभी भी ठीक नहीं बैठ सकते। जीवन बदल रहा है, जीवन बहता हुआ है। वह नदी की भांति है; वह वैसा ही कभी भी नहीं है। एक क्षण के लिए भी जीवन वही नहीं है। वह सतत बहता जाता है और तुम्हारा ढांचा स्थिर है, जो कि बदलता नहीं है। तुम उसमें फिट नहीं हो सकते।

सारे संसार में प्रत्येक आदमी अनफिट हो गया है, वह कहीं भी ठीक नहीं बैठता। और जब तुम्हें प्रतीत होता है कि तुम ठीक नहीं बैठ रहे हो, तो तुम्हें लगता है कि जैसे तुम्हें निंदित किया जा रहा है, तुम्हें बेकार समझा जा रहा है—जैसे कि जीवन तुम्हारे प्रतिकूल हो। बात इससे बिलकुल उल्टी है; तुम्हारे संस्कार जीवन—विरोधी हैं। एक ऐसा आदमी जो बिना किसी संस्कारों के है वही इस परिवर्तनशील जीवन के प्रति ठीक से प्रतिसंवेदन कर सकता है, क्योंकि उसका कोई ढांचा नहीं है। जीवन एक परिस्थिति पैदा करता है; वह सिर्फ सजग है। जो भी उस समय घटता है उसी के अनुसार वह बर्ताव करता है। ऐसा आदमी कभी भी नहीं पछतायेगा; तुम सदैव पछताते रहोगे—चाहे तुम कुछ भी करो।

तुम एक लड़की से प्रेम करते हो; अब यह विकल्प है कि उससे विवाह करो या नहीं। तुम चाहे कुछ भी करो, तुम पछताओगे। यदि तुम उससे विवाह कर लो तो तुम सारी जिंदगी पछताते रहोगे कि दूसरा विकल्प अच्छा था। यदि तुम विवाह नहीं करो तो भी वही बात होगी, तब भी तुम सोचोगे कि दूसरा विकल्प ज्यादा ठीक था। क्योंकि तुम सजग नहीं हो। केवल एक सजग आदमी ही पूरी तरह, समग्रता से प्रतिसंवेदन करेगा।

तुम केवल टुकड़ों में, हिस्सों में ही प्रतिसंवेदन करते हो। और जब भी तुम प्रतिसवेदन करते हो तो वह टुकड़ों में ही होता है। तुम्हारे भीतर दूसरे हिस्से भी होते हैं जो कि उसके लिए मना करते होते हैं। देर—अबेर वे बदला लेंगे। वे कहेंगे, हम कह रहे थे कि ऐसा मत करो। पश्चात्ताप का अर्थ क्या होता है? पश्चात्ताप का अर्थ होता है कि तुम विभाजित हो। तुम कुछ करते हो और उसी समय तुम्हारे भीतर कोई हिस्सा उसके खिलाफ होता है। वह हिस्सा तुम्हें देख रहा होता है और वह हिस्सा कह रहा होता है कि यह मत करो, यह गलत है। दूसरा हिस्सा कहे चला जाता है, यह बात ठीक है, करो। और तुम करते हो।

तुम कहीं ठीक नहीं बैठोगे क्योंकि तुम तभी ठीक बैठ सकते हो, जबकि तुम प्रवाह की तरह हो, बहते हुए हो। कोई जमी हुई चीज, एक सरिता जैसे अस्तित्व में ठीक नहीं बैठ सकती 1 तुम्हें बहते हुए, तरल होना चाहिए। यदि तुम तरल, बहते हुए, बदलते हुए, सजग, जागरूक हो, तभी तुम कभी पश्चात्ताप नहीं करतो। तब तुम कभी अपराधी महसूस नहीं करोगे। तब तुम्हें कभी ऐसा नहीं लगेगा कि जो तुमने किया उससे बेहतर भी कुछ था। नहीं, उससे ज्यादा अच्छा कुछ भी नहीं हो सकता, क्योंकि तुमने समग्रता से प्रतिसवेदन किया। वही सब कुछ था जो कि किया जा सकता था। उससे अन्यथा कुछ भी संभव नहीं था।

मेरी ध्यान की विधि तुम्हें कोई नया ढांचा देने के लिए नहीं है, यह सिर्फ पुराने ढांचे को गिराने के लिए है। उसे नष्ट करने के लिए और तुम्हें एकदम मुक्त छोड़ देने के लिए है, ताकि तुम्हारे चारों ओर कोई कारागृह नहीं हो। निश्चित ही तुम्हें कुछ कठिनाई होगी, क्योंकि कारागृह में एक सुरक्षा भी थी। अब वर्षा होगी और कोई जगह शरण लेने को न होगी, आधिया चलेंगी और कोई ऐसा स्थान नहीं होगा जहा कि शरण ली जा सके; और सूर्य चमकेगा पूरी गर्मी और ताप से भरकर और सिर छिपाने को कोई भी जगह न होगी। और तुम्हारी आंखें अंधेरे की इतनी अभ्यस्त हो गई हैं कि रोशनी में तुम्हें बड़ी बेचैनी महसूस होगी। लेकिन यही तुम्हें मुक्ति प्रदान करेगी। तुम्हें खुले आकाश में नई जिंदगी को महसूस करना होगा।

एक बार तुम स्वतंत्रता और इसके सौंदर्य को जान लो, एक बार तुम सजग हो जाओ, एक बार तुम कारागृह के बाहर आ जाओ, अपनी पुरानी आदत के बाहर आ जाओ, तो तुम फिर किसी पुराने ढांचे अथवा अनुशासन के लिए माग नहीं करोगे।

लेकिन इसका यह अर्थ भी नहीं है कि तुम्हारा जीवन एक अराजकता हो जाएगा। नहीं! तुम्हारा जीवन ही वास्तव में एक सुव्यवस्थित जीवन होगा। अभी जो जिंदगी तुम जी रहे हो वही अराजकतापूर्ण है। केवल सतह पर ही वह अनुशासित दिखाई पड़ती है। उसके पीछे, उसके नीचे, बहुत अनुशासनहीनता, बहुत तूफान छिपा पड़ा है। केवल ऊपर सतह पर तुमने एक व्यवस्था निर्मित की हुई है। अपने भीतर देखो, बहुत गड़बड़ है वहां। ऊपर से अनुशासित जीवन और भीतर वहां बिलकुल गड़बड़ है; वहां एक भारी अराजकता है। यह बात बड़ी विरोधभासी मालूम पड़ती है, लेकिन ऐसा है, यह सत्य है। एक होशपूर्ण जीवन में ही सुव्यवस्था हो सकती है—जबरदस्ती नहीं, बल्कि स्वतःस्फूर्त, जीवंत। वह अनुशासन जीवन के साथ बदलता जाएगा और उसे बदलना ही चाहिए।

सहज जीवन तुम्हारी आंखों के समान है। क्या तुम्हें पता है कि तुम्हारी आंखें लगातार बदलती रहती हैं? और जब वे बदलना बंद हो जाती हैं, तो फिर तुम्हें किसी तकनीकी मदद की आवश्यकता पड़ती है। जब मैं तुम्हारी ओर देखता हूं और तुम मुझसे दस फीट की दूरी पर हो तो मेरी आंखों का फोकस एक प्रकार का होता है। जब मैं पहाड़ियों को देखता हूं जो कि बहुत दूर हैं तो मेरी आंखें तुरंत बदल जाती है। आंखों के लेंस फौरन बदल जाते हैं। केवल तभी मैं पहाड़ियों को देख सकता हूं। और जब मैं चाँद को देख रहा होता हूं तो मेरी आंखें एकदम बदल जाती हैं।

तुम घर में प्रवेश करते हो, वहां अंधेरा है; तुम्हारी आंखें बदल जाती हैं। तुम घर से बाहर आते हो, वहां प्रकाश है, तुम्हारी आंखें बदल जाती हैं। और जब तुम्हारी आंखें बदलना बंद कर देती हैं, तो फिर वे रुग्ण हैं। वे बहती हुई होनी चाहिए, केवल तभी वे देखने में समर्थ हो सकती हैं। तुम्हारी चेतना आख की भांति जितना अधिक बहती हुई, जितना अधिक तरल, बिना किसी ढांचे के, स्थिति के अनुसार बदलती हुई होगी, उतना ही अधिक तुम्हारी चेतना सजग होगी।

ध्यान से तुम्हें एक आंतरिक आख उपलब्ध होगी जो कि निरंतर बदलती रहेगी, नई परिस्थिति के प्रति निरंतर सजग होगी, लगातार प्रतिसंवेदन करती हुई होगी। किंतु जो भी प्रतिसंवेदन होगा, वह तुम्हारी समग्रता से होगा, न कि किसी ढांचे से; वह प्रतिसंवेदन तुमसे आएगा, न कि तुम्हारे संस्कारों से।

अभी तो जो भी तुम करते हो, जो भी प्रतिक्रिया तुम करते हो, वह तुम्हारे संस्कारों से आता है। यदि तम एक जैन परिवार में पैदा हुए हो तो सिर्फ मांसाहारी भोजन को देखकर ही तुम्हें जुगुप्सा पैदा हो जाएगी, तुम्हें मितली आने लगेगी। वह मितली तुम्हारे भीतर से नहीं आ रही है, वह मितली तुम्हारे संस्कारों से आ रही है। क्योंकि वह किसी मुसलमान को नहीं आती; वह किसी ईसाई को नहीं आती। ऐसा नहीं है कि तुम बहुत अहिंसक हो, और वे लोग हिंसक हैं, यह सिर्फ बचपन के संस्कारों के कारण है। और वे ही संस्कार काम करने लग जाते हैं जैसे ही तुम मांस को देखते हो।

सिर्फ 'मांस' शब्द से ही तुम्हें एक सूक्ष्म मितली उठने लगेगी। सिर्फ एक शब्द, और तुम्हें मितली का भाव होने लगेगा। क्या वह तुमसे से आ रही है? यदि वह तुमसे आ रही है तो फिर तुम्हारा सारा जीवन प्रेम का जीवन होना चाहिए। लेकिन वह नहीं है। तुम भी उतने ही निर्दयी हो जितना कोई भी हो सकता है। जैन भी उतना ही निर्दयी है जितना कोई मुसलमान है, और कभी—कभी तो ज्यादा ही होता है। उसे ज्यादा निर्दयी होना ही पड़ेगा क्योंकि वह अपनी हिंसा भोजन से नहीं निकाल सकता। उसे कहीं दूसरी जगह से व्यक्त करना होगा।

जब तुम खाते हो तो तुम अपनी हिंसा व्यक्त करते हो। यदि तुम मांस खाते हो तो तुम्हारी हिंसा ''गजन के द्वारा निकल जाती है। ऐसा सामान्यत: देखने में आया है कि मांसाहारी लोग शाकाहारी लोगों से ? लादा प्रेमपूर्ण होते हैं। क्यों? ऐसा होना तो नहीं चाहिए। उनकी हिंसा भोजन के द्वारा निकल जाती है।

तुम्हारे शरीर में तुम्हारे दांत सर्वाधिक हिंसक अंग हैं। हिंसक लोग ज्यादा भोजन करते हैं बजाय अहिंसक व्यक्तियों के। भोजन को दांतों से कुचलने में बहुत—सी हिंसा, क्रोध, घृणा निकल जाती है। जो लोग मांस और इस तरह के सामिष भोजन करते हैं तो उनकी हिंसा के लिए एक प्राकृतिक द्वार मिल जाता है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जाओ और मांस खाओ। लेकिन यदि तुम मांसाहारी भोजन नहीं करते हो, सर्फ संस्कारवश यदि तुम मांस आदि नहीं खाते हो तो इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम ज्यादा प्रेमपूर्ण तथा अहिंसक हो। तुम्हारी हिंसा दूसरे अधिक सूक्ष्म रास्ते खोजेगी। तुम्हारे दूसरों के साथ संबंध ज्यादा निर्दयी होगे, विषैले होंगे।

लेकिन यदि तुम वस्तुत: ही किसी ढांचे के अनुसार व्यवहार नहीं कर रहे हो, और यह इसलिए है कि तुम्हारे भीतर प्रेम पैदा हो गया है, यदि तुम पशु का मांस खाने में जो हिंसा है उसके प्रति सजग हो गये हो, यदि तुम अपने आप ही सजग हो गये हो, किसी परंपरा के कारण नहीं, न कि जन्म के कारण, न किसी शिक्षा के कारण, न किसी शास्त्र के कारण बल्कि अपने ही ध्यान के अनुभव के कारण तुम सजग हो गये हो, कि यह मूढ़ता है, किसी जानवर को अपने भोजन के लिए मारना बड़ी भारी मूढ़ता है—यदि ऐसा तुम्हें अपने ध्यान के अनुभव में प्रतीत हुआ है—तों फिर बात बिलकुल भिन्न है। तब तुम्हारी सारी जिंदगी बड़ी प्रेम—पूर्ण तथा अहिंसक होगी। तब तुम भोजन से ग्रसित नहीं होंगे, बल्कि भोजन को जीवन के लिए एक अनिवार्यता की भांति स्वीकार कर लोगे। और तुम किसी भी बंधे—बंधाये नियम के पीछे पागल नहीं होओगे। वास्तव में कोई बंधे—बंधाये नियम नहीं होंगे। केवल एक सतत जीवंत जागरूकता होगी।

अत: मैं तुम्हारे लिए कोई नया ढांचा नहीं निर्मित कर रहा हूं। मैं विनाशक हूं। मैं वास्तव में कुछ भी निर्मित नहीं कर रहा हूं। मैं तो सिर्फ नष्ट करने वाला हूं क्योंकि कुछ भी निर्मित करने की आवश्यकता नहीं है। तुम पहले ही ढांचे के पीछे मौजूद हो। जब ढांचा नष्ट हो जाएगा तो तुम मुक्त हो जाओगे। यदि वह ढांचा जिसने कि तुम्हें बाधा है, नहीं होगा, तो तुम होओगे।

तुम्हें निर्मित करने का सवाल ही पैदा नहीं होता, तुम तो पहले से ही हो। केवल कारागृह की दीवारों को गिरा देना है, और तुम खुले आकाश के नीचे होओगे।

इसलिए तुमने मुझे गलत समझ लिया है। मैंने तुमसे कहा कि यह अराजकतापूर्ण ध्यान तुम्हारे संस्कारों, तुम्हारी दासता, तुम्हारे मन, तुम्हारे अहंकार को नष्ट करने के लिए है—गहरे अर्थों में तुम्हें ही नष्ट करने के लिए है। ताकि नया जन्म सके। मैं नहीं कह रहा हूं कि इसे मैं निर्मित करूंगा। कोई भी निर्मित नहीं कर सकता है; और उसकी कोई भी जरूरत नहीं है; वह तो पहले से ही है!। वह वहा मौजूद ही है। केवल खोल को तोड़ देना है, और वह बाहर आ जाएगा।

सारा धर्म इस अर्थ में विनाशकारी है। समाज निर्माता है, धर्म विनाशकारी है। समाज संस्कारों को निर्मित करता है। समाज तुम्हें हिंदू ईसाई, जैन बनाता है। समाज तुम्हें वही नहीं रहने देता जो तुम हो। वह तुम्हें एक ढांचा देता है, क्योंकि समाज एक संगठन है। समाज चाहता है कि तुम उसके संगठन में ठीक बैठ जाओ, उसके नियमों के अनुसार हो जाओ। समाज तुम्हें नहीं चाहता। समाज को केवल तुम्हारी कुशलता चाहिए। तुम महत्वपूर्ण नहीं हो, तुम लक्ष्य नहीं हो। तुम एक यांत्रिक चीज की तरह होने चाहिए। जितने यांत्रिक तुम हो जाओ, समाज उतनी ही तुम्हारी प्रशंसा करेगा, क्योंकि तब तुम कम खतरनाक होओगे। कोई भी यंत्र

खतरनाक नहीं होता। वह कभी भी रास्ते से इधर—उधर नहीं जाता; वह कभी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता, वह कभी विद्रोह नहीं करता; वह विद्रोही नहीं है।

कोई भी यंत्र विद्रोही नहीं है; वह हो भी नहीं सकता। सारे यंत्र रूढ़िवादी हैं। वे आज्ञाकारी हैं, वे अनुगामी हैं। समाज तुम्हें एक यांत्रिक वस्तु में बदलना चाहता है। तब तुम ज्यादा कुशल, कम खतरनाक, विश्वसनीय, जिम्मेवार होते हो और कोई भय नहीं होता, कोई खतरा नहीं होता। तुम पर भरोसा किया जा सकता है।

समाज तुम्हारे चारों ओर एक यांत्रिक संरचना खड़ी कर देता है, वही संस्कार है। और वह तुम्हें थोड़े—से द्वार दे देता है, और कुछ द्वारों को पूरी तरह बंद कर देता है। वह तुम्हारे भीतर से कुछ हिस्से चुन लेता है, बाकी सबको इंकार कर देता है। वह कहता है कि केवल एक हिस्सा ही तुम्हारा अच्छा है, और बाकी हिस्से बुरे हैं, अत: उन्हें इंकार कर दो। समाज तुम्हें समग्रता में, एक इकाई में स्वीकार नहीं करता, वह केवल थोड़े—से हिस्से को स्वीकार करता है। इसलिए संस्कार होते हैं।

धर्म सदैव विनाशक है। एक तरह से धर्म सदा समाज—विरोधी है।

किंतु समाज बड़ा चालाक है। वह धर्म को भी एक प्रशासकीय संस्था में बदल देता है। वह धर्म क् भी अपना एक हिस्सा बना लेना चाहता है।

जीसस विद्रोही थे, चर्च विद्रोही नहीं है। जीसस समाज के विद्रोह में थे, क्योंकि वे यात्रिक हिस्से को नष्ट करना चाहते थे, और वे तुम्हारी स्वतस्फूर्तता को मुक्त करना चाहते थे। उन्हें समाज के विरोध में होना ही पड़ेगा; समाज उन्हें क्रास पर लटकायेगा ही। लेकिन जीसस को क्रास पर लटकाने मात्र से तुम जीसस को नष्ट नहीं कर सकते। वास्तव में, यदि तुम जीसस को नष्ट ही करना चाहते हो तो क्रास पर लटकाने से कुछ भी न होगा। तुम्हें उनके चारों ओर एक चर्च खड़ा करना होगा तभी उनको नष्ट किया जा सकता है।

कहा जाता है कि एक बार ऐसा हुआ कि शैतान बहुत परेशान हो गया, क्योंकि एक आदमी जमींन पर बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया था। उसने अपने मंत्रियों को बुलाया और पूछा, " अब क्या किया जाए? एक आदमी ने फिर सत्य को पा लिया है, वह बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया है, और हमारा धंधा खतरे में है। क्या करें? लोगों को उसके पास जाने से कैसे रोकें? "

शैतान के एक पुराने से पुराने अनुयायी ने कहा, "कोई चिंता न करें। हम जाते हैं और हम उसके चारों ओर एक चर्च संगठित कर देंगे। आप चिंता न करें। तब चर्च बाधा हो जाएगा, और लोग उसके पास सीधे नहीं पहुंच सकेंगे। चर्च बीच में होगा, तब जो भी वह कहेगा वह नहीं सुना जाएगा, लोग उसको सीधे नहीं सुनेंगे। चर्च पहले उसकी व्याख्या करेगा, और व्याख्या से तुम जो चाहो नष्ट कर सकते हो।"

सत्य को बहुत आसानी से नष्ट किया जा सकता है यदि तुम उसे एक व्यवस्था दे दो, एक संगठन प्रदान कर दो। जब धर्म एक संप्रदाय हो जाता है तो वह समाज का हिस्सा हो जाता है। जब कभी धर्म जीवंत होता है, और संप्रदाय नहीं होता तो वह समाज का विरोधी होता है। जीसस समाज के विरोध में है, महावीर समाज के विरोध में हैं, बुद्ध समाज के विरोध में हैं। किंतु बौद्ध धर्म, जैन धर्म तथा ईसाई धर्म ये सब समाज के हिस्से हैं। ये सब धर्म नहीं हैं।

धर्म तो विद्रोही होता है, और विद्रोह यही होता है कि धर्म यात्रिकता को तोड़ने की कोशिश करता है, क्योंकि यांत्रिकता ही तुम्हारा नर्क है। सहजता ही तुम्हारा स्वर्ग है, यांत्रिकता ही नर्क है।

मैं तुम्हें कोई नया ढांचा नहीं दे रहा हूं—न तो नया और न पुराना। मैं तो सिर्फ ढांचे को नष्ट कर रहा हूं और तुम्हें अकेला छोड़ देना चाहता हूं बिना किसी ढाचें के। बिना किसी ढांचे का जीवन ही धार्मिक जीवन होता

है। बिना किसी आरोपित व्यवस्था का जीवन ही धार्मिक जीवन होता है। बिना किसी अनुशासन का, किंतु एक आंतरिक जागरूकता का जीवन ही धार्मिक जीवन होता है।

अंतिम प्रश्न :

केनोपनिषद ने प्रारंभ में हमें कहा कि किसी भी चीज का निषेध नहीं करना है और एक समग्ररूपेण स्वीकार होना चाहिए। लेकिन सुबह आपने कहा कि प्रार्थना मूर्तिपूजा मंदिर चर्च आदि सब झूठ खड़े हैं मन के प्रक्षेपण पर आधारित हैं यह तो निषेध की बात प्रतीत होती है।

ऐसा नहीं है। यह सिर्फ तथ्य को कहना है। यह कहना कि सपना सिर्फ एक सपना है, उसका निषेध नहीं है। यह कहना कि प्रक्षेपण सिर्फ एक प्रक्षेपण है, यह उसका निषेध नहीं है। यह कहना कि झूठ बात एक झूठ बात है, सिर्फ तथ्य की घोषणा है। यह उसे इंकार करना नहीं है। समग्र स्वीकार का यह अर्थ नहीं है कि असत्य को भी सत्य की तरह कहा जाये, कि स्वप्न को भी वास्तविकता बताया जाए।

समग्र स्वीकार का अर्थ है कि जो भी है वह स्वीकृत है। यदि पूजा करने वाले का मन देवी—देवताओं का प्रक्षेपण कर रहा है तो इसे भी स्वीकार करना है। यह तथ्य है कि पूजा करने वाले वैसा कर रहे हैं। और तुमसे यह नहीं कहा गया है कि तुम जाओ और उनके प्रक्षेपणों को नष्ट करो; तुमसे यह नहीं कहा गया है कि तुम जाओ और उनकी मूर्तियों को, उनके मंदिरों को नष्ट करो। यदि तुम समझ गये हो तो वह समझ ही तुम्हें बदल देगी। तुम वे प्रक्षेपण पैदा नहीं करोगे। और यदि तुम उन्हें पैदा करना चाहते हो, तो भी तुम जानोगे कि वे प्रक्षेपण हैं, और मैं उनका आनंद ले रहा हूं।

ऐसा कहा जाता है कि नरोपा जो कि तिब्बत का एक महानतम रहस्यदर्शी हुआ है, वह एक बहुत ही अजीब तरह का व्यक्ति था। मैं अजीब कह रहा हूं क्योंकि वह ऐसे—ऐसे काम करता था जो कि कभी किसी गुरु से अपेक्षित नहीं हैं। उसे शराबघर में शराब पीते हुए पाया गया। किसी ने उससे कहा, "नरोपा, यह तुम क्या कर रहे हो? तुम बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति हो, तुमने उस लक्ष्य को पा लिया है, और तुम शराब पी रहे हो?"

नरोपा ने कहा, "यह एक खेल है। और जब खेल ही है तो मुझे परवाह नहीं कि इसे ऐसे खेला जाए या वैसे। एक बार मुझे पता हो गया कि मैं भीतर शाश्वत हूं तो फिर इस शराब से डरना क्या? क्या डर है? "मैंने कहा कि वह एक बेबूझ व्यक्तित्व है। लेकिन वह कह रहा है कि यह शराब है और जो भी इससे घटता है वह एक सपना है। वह यह नहीं कह रहा है कि यह वास्तविकता है; वह कह रहा है कि यह एक सपना है।

उसने कहा, "मेरा कोई आग्रह नहीं है, पक्ष में अथवा विपक्ष में। ऐसा हुआ कि एक मित्र ने मुझे निमंत्रण दिया था और मैंने उसे मना नहीं किया। एक मित्र का निमंत्रण था, उसके लिए यह सत्य है; मेरे लिए यह सिर्फ सपना है। लेकिन यह सपना मेरे लिए ही है, उसके लिए नहीं। फिर चिंता क्या? उसके लिए यह मुश्किल होगा।"

मैं तुम्हें एक दूसरी बात कहता हूं जो कि इस बात से जरा ज्यादा करीब होगी—कम बेबूझ होगी।

ऐसा हुआ कि कबीर के परिवार के लोग परेशान हो गए। परिवार गरीब था, और जो भी कबीर के घर आता, कबीर उसे भोजन के लिए निमंत्रित कर देते। और कम से कम दो सौ आदमी कबीर के दर्शन के लिए रोज आते थे। और वह हर एक को खाने के लिए निमंत्रित कर देते थे।

तो उनके पुत्र कमाल ने एक दिन कहा, "बंद करिये यह सब। हम गरीब लोग हैं। हम भीख मांग कर लाते रहे हैं। हम उधार लाते रहे हैं, अब तो कोई उधार भी नहीं देता। आप यह कर क्या रहे हैं? आप तो हमें चोर बनाकर रहेंगे।"

कमाल बहुत क्रोध में था। लेकिन कबीर हंसने लगे और उन्होंने कहा, "तुमने पहले यह बात क्यों नहीं सोची? चोरी करनी पड़ेगी? यह तो अच्छा खयाल है।"

लेकिन कमाल भी आखिर कबीर का ही पुत्र था, उसने कबीर की ओर देखा, "कबीर एक रहस्यवादी संत, और ऐसा कह रहे हैं—चोरी करो, चोर हो जाओ द् जरूर इनकी बुद्धि ठिकाने नहीं है। या फिर ये समझ नहीं रहे हैं कि ये क्या कह रहे हैं। "लेकिन कमाल ने कहा, "तो फिर ठीक है। मैं जाऊंगा, और मैं चोरी करूंगा, लेकिन आपको भी मेरे साथ आना पड़ेगा। "कमाल सोच रहा था कि अब कबीर जरूर होश में आ जायेंगे। कबीर और चोरी करें?

कबीर उसी समय खड़े हो गये और बोले, "ठीक है, मैं चलता हूं।"

कमाल ने भी सोचा कि आज फैसला हो ही जाना चाहिए। उसने सोचा कि कहीं पर जाकर कबीर रुक जायेंगे और हंसकर कहेंगे कि मैं तो यूं ही मजाक कर रहा था। लेकिन नहीं, कमाल एक घर में घुस गया, वह घर के मालिक का कुछ धन बाहर निकाल कर ले आया, और कबीर वहा पर तैयार खड़े थे। यह तो हइ हो गई। इसके आगे तो बात को बदलने की कोई संभावना नहीं थी। कमाल ने पूछा, " अब क्या किया जाये ई क्या हम यह सब सामान अपने घर ले चलें?"

कबीर ने कहा, "ठीक है, लेकिन पहले तुम जाकर घर के लोगों को जगा दो, और उन्हें बता दो। "कमाल ने पूछा, "यह चोरी करने का कौन—सा ढंग है?"

कंबीर ने कहा, "कम से कम उन्हें बता तो दो, वरना वे व्यर्थ ही चिंता करेंगे। "

जो लोग कबीर के अनुयायी हैं, उन्होंने बाद में इस कहानी को कहना बंद कर दिया क्योंकि यह बड़ी बेतुकी बात है कि कबीर चोरी के लिए सम्मति दें। लेकिन बात क्या थी? सुबह कमाल ने पूछा, "मामला क्या है? अब मुझे पूरी बात बताओ। क्या आप चोरी के पक्ष में हैं?"

कबीर ने कहा, "सभी कुछ उसी का है। कोई भी अन्य मालिक नहीं है।"

जरा इस चित्त को देखो। ऐसे चित्त के लिए सभी स्वीकार है। समग्र स्वीकार है। चोरी भी स्वीकृत है। लेकिन वे कहते हैं, "जाओ और घर के लोगों को बता दो ताकि वे व्यर्थ में चिंता न करें।"

कमाल ने उनसे कहा, "वे लोग सोचेंगे कि हम चोर हैं।"

कबीर ने कहा, "वे ठीक ही साचेंगे। हम चोर हैं।"

कमाल बोला, "तो कल आपकी जितनी इज्जत है मिट्टी में मिल जायेगी। कोई भी आपका सम्मान नहीं करेगा?"

कबीर ने कहा, "बिलकुल ठीक है। लोग चोरों का सम्मान करें भी क्यों?"

समग्र स्वीकार का अर्थ है किसी भी बात के लिए निषेध नहीं। जब तुम स्वीकार करते हो तो तुम कुछ शर्तों के साथ स्वीकार करते हो। तुम कहते हो, "अच्छा ठीक है, मैं यह करूंगा लेकिन यदि ऐसा न हुआ तो। मैं चोरी करूंगा यदि परमात्मा मुझे नर्क में न गिराये तो। मैं चोरी कर सकता हूं यदि उसमें कोई पाप न हो तो। मैं चोरी कर सकता हूं यदि लोग मेरा अपमान नहीं करें तो।" लोग जो करेंगे उसे भी स्वीकार करना है। समग्र स्वीकार एक बहुत ही जीवंत ढंग है जीने का। लेकिन तब सभी कुछ स्वीकार होता है। जो भी फिर परिणामस्वरूप होता है उसका भी स्वीकार है। किसी भी बात के लिए किसी भी बिंदु पर निषेध नहीं है। यह अंतिम बात है, आत्यंतिक मार्ग है जीवन का। वस्तुत: ऐसा ही संन्यासी होना चाहिए। संन्यासी के पास समग्र स्वीकार होना चाहिए।

लेकिन जब हम कहते हैं कि तुम सपने निर्मित कर सकते हो तो हम निषेध नहीं कर रहे हैं। हम सिर्फ एक तथ्य की घोषणा कर रहे हैं। यदि तुम चाहो तो सपने निर्मित कर सकते हो। मैं उन्हें सरलता से निर्मित करने में तुम्हारी सहायता कर सकता हूं। लेकिन स्मरण रहे कि वे सपने ही हैं।

समस्या तो तब खड़ी होती है जब सपना सत्य हो जाता है। तुम अपने कृष्ण के साथ खेल सकते हो, तुम उनके साथ नृत्य कर सकते हो। उसमें क्या बुरा है? नृत्य अपने आप में अच्छा ही है, उसमें गलत क्या है? तुम अपने कृष्ण के साथ खेल ही तो रहे हो, उसमें तुम किसी का कुछ नुकसान तो नहीं कर रहे हो। नाचो और खेलो। तुम्हारे लिए ठीक होगी यह बात। लेकिन याद रहे कि यह बात सत्य नहीं है, वास्तविक नहीं है। यह एक प्रक्षेपण है, तुमने ही निर्मित किया है।

यदि तुम इसे स्मरण रख सको तो तुम खेल—खेल सकते हो, लेकिन तुम कभी भी उससे तादात्म्य नहीं जोड़ोगे। तुम इसके प्रति जागते चले जाओगे कि यह एक खेल है। एक खेल सिर्फ एक खेल ही है यदि तुम उससे तादात्म्य नहीं जोड़ते हो तो। यदि तुम तादात्म्य निर्मित कर लेते हो, तो वह एक गंभीर बात हो जाती है। वह एक समस्या हो जाती है। अब तुम उससे ग्रसित रहोगे।

आठवां प्रवचन

अनादि.....अनंत

द्वितीय खंड

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि

नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम्।

यदस्य त्वं यदस्य देवेष्यथ नु

मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम्।।1।।

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।

यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च।।2।।

द्वितीय अध्याय

1

तुम सोचते हो कि तुम ब्रह्म को भलीभांति जानते हो,

तो तुम वास्तव में बहुत कम जानते हो,

क्योंकि ब्रह्म का जो रूप तुम जीवित प्राणियों में

तथा देवताओं में समाया हुआ देखते हो वह एक मामूली बात है।

इसलिए तुम्हें ब्रह्म के बारे में और आगे खोजबीन करनी चाहिए।

2

मैं नहीं सोचता कि मैं उस?ए भलीभांति जानता हूं,

न ही मैं ऐसा सोचता हूं कि मैं उसे नहीं जानता। फिर भी मैं जानता भी हूं।

हममें से वही उसे जानता है जो जानता है कि वह अज्ञात और ज्ञात दोनों से भिन्न है।

उस परम का ज्ञान कई कारणों से विरोधाभासी है। एक दावा कि मैं जानता हूं—यही बाधा बन बन जाता है। क्योंकि जैसे ही तुम कहते हो कि मैं जानता हूं तो तुम्हारा जो केवल ज्ञान पर नहीं होता, तुम्हारा जोर 'मैं' पर भी होता है; और यह 'मैं' ही बाधा है। अहंकार सर्वाधिक सूक्ष्म बाधा है, किंतु सर्वाधिक शक्तिशाली। इसलिए जब कोई कहता है कि मैं जानता' तो वह 'मैं'ही ज्ञान को नष्ट कर देता है। 'मैं' उसे नहीं जान सकता क्योंकि उसे जाना ही तभी जाता है जबकि तुम पूरी तरह तिरोहित हो गये होते हो। जब तुम नहीं हो जाते हो, तो बह होता है। यह पहली समस्या है।

ऐसा कहा जाता है कि डेल्फी के ओरेकल ने घोषणा की कि सुकरात अभी जीवित लोगों में सर्वाधिक ज्ञानी आदमी है। जिन्होंने उसे सुना वे सुकरात के पास गये और बोले,"ओरेकल ने घोषणा की है कि मैं पृथ्वी पर सर्वाधिक ज्ञानी आदमी हैं।"

सुकरात हंसने लगा और बोला,"ओरेकल को यह घोषणा थोडा पहले करनी चाहिए थी—तब मैं प्रसन्न हुआ होता। अब तो बहुत देर हो गई। वापस जाओ और ओरेकल को कहो कि मैं पृथ्वी पर सर्वाधिक अज्ञानी आदमी हूं।

जब मैं छोटा था और अहंकार से भरा था तो मेरी रास थी ओरेकल की है—कि मैं जानता हूं—क्योंकि तब मेरा 'मैं' इतना मजबूत था कि बह सोच ही नहीं सकता था कि उस आत्यंतिक रहस्य को जाना ही नहीं जा सकता। 'मैं' इतना प्रबल था कि मैं यह सोच ही नहीं सकता था कि मैं भी अज्ञानी हो सकता हूं। जो भी था, मैं सोचता था मैं जानता हूं, अथवा जाना जा सकता है। लेकिन जैसे—जैसे मेरा ज्ञान बढ़ा, मेरी समझ बढी, वैसे—वैसे मेरा अज्ञान मुझे मालूम होने लगा। इसलिए वापस जाओ और ओरेकल से कह दो कि सुकरात स्वयं कहता है कि वह सिर्फ अज्ञानी है, उसे कुछ भी पता नहीं है।"

लोग लौटे, और उन्होंने ओरेकल से कहा, "तुम जो कहते हो सुकरात उसे स्वीकार करने से इंकार करता है। और जब वह स्वयं इंकार करता है तो जरूर इसका कुछ मतलब होना चाहिए। वह कहता है वह सर्वाधिक अज्ञानी आदमी है।"

ओरेकल हंसने लगा और उसने कहा, "इसीलिए हमने उसके सर्वाधिक ज्ञानी होने की घोषणा की है, क्योंकि महाज्ञानी ही यह जान सकता है कि वह अज्ञानी है।"

यही विरोधाभास है : जो अज्ञानी हैं वे सदैव सोचते हैं कि वे जानते हैं। यह अज्ञान का ही हिस्सा है। यह सोचना कि तुम जानते हो यह अज्ञान का हिस्सा है, यह अज्ञान से ही आता है। यदि तुम अज्ञानी हो तो गुम सोचोगे कि तुम बहुत कुछ जानते हो। तुम जितने अज्ञानी होते हो उतना तुम्हें ज्ञानी होने का भ्रम होता है। अज्ञान ज्ञान से भरा होता है। सच पूछा जाये तो अज्ञान ज्ञान पर ही जीता है, उसी पर पलता है। जितने अधिक तुम ज्ञानी होते जाते हो, सजग होते जाते हो, समझदार होते जाते हो, उतना ही अधिक तुम्हें मालूम पड़ता है कि तुम कितने अज्ञानी हो। और एक क्षण ऐसा आता है कि तुम्हें लगता है कि तुम कुछ भी नहीं जानते। तुम बस अज्ञानी हो। ज्ञान का सारा बोझ हट जाता है। ज्ञान का कोई भार तुम पर नहीं रहता। तुम पा तने हलके हो जाते हो कि तुम उडने लगते हो। ज्ञान बोझ है।

जब तुम्हें प्रतीति होती है कि तुम नहीं जानते हो तो अहंकार विलीन हो जाता है; वह बच ही नहीं सकता है। वह सिर्फ ज्ञान के साथ बच सकता है। वास्तव में जब भी तुम ज्ञान का दावा करते हो तो वह दावा सिर्फ तुम्हारे अहंकार का ही होता है। 'मैं जानता हूं—जोर जानने पर नहीं है बल्कि सारा जोर 'मैं' पर है। जब तुम कहते हो कि मैं नहीं जानता तो जोर अज्ञान पर नहीं है, अब जोर अहंकारशून्यता पर है। जैसे ही तुम कहते हो कि मैं नहीं जानता, तब तुम कहां हो? कहा है 'मैं'? अब वह कहीं भी नहीं है। अब वह केवल एक शब्द ही रह गया है उपयोग करने के लिए। अब उसका समानार्थी तुम्हारे भीतर कुछ भी नहीं बचा। यह पहली समस्या है।

एक ईसाई संत तरतुलियन ने मनुष्यता को दो भागों में बांटा है। वह कहता है कि मनुष्य जाति का एक हिस्सा एक वर्ग में है—वह है अज्ञानी जानने वाले, और दूसरा वर्ग है : जानने वाले अज्ञानी। पूरी मनुष्य जाति दो भागों में बांट दी गई है। एक तो अज्ञान है जो कि जानता है, और दूसरा ज्ञान है जो कि अज्ञानी है। यदि तुम ज्ञान का दावा करते हो तो तुम अज्ञानी हो। यदि तुम अज्ञान को स्वीकार करते हो तो तम ज्ञान को उपलब्ध हो सकते हो? क्योंकि अज्ञान में 'मैं' नहीं बच सकता। और जब 'मैं' नहीं होता तो द्वार खुला होता है। तुम वास्तविकता को सीधे देख सकते हो।

तुम ही बाधा हो। जब तुम नहीं होते तो कोई बाधा नहीं होती—यह पहली बात है।

दूसरी बात वह आत्यंतिक केवल अज्ञात ही नहीं है, ब्रह्म केवल अज्ञात ही नहीं है—वह अज्ञेय भी है। तम उसे जान सकते हो लेकिन तुम उसे समग्रत: नहीं जान सकते। इससे एक नई उलझन खड़ी होती है। तम उसे जान तो सकते हो, परंतु तुम उसे समग्रत: नहीं जान सकते? क्यौंकि तुम सिर्फ इसके एक हिस्से हो, और एक हिस्सा सर्व को, पूर्ण को नहीं जान सकता। कैसे एक हिस्सा पूर्ण को समग्रता से जान सकता है और साथ ही

हिस्सा बिलकुल अनभिज्ञ भी नहीं रह सकता, क्योंकि वह पूर्ण का हिस्सा है। अत: एक तरह से वह जानता भी है, वह एक तरह से अनुभव भी करता है, वह एक प्रकार से समझता भी है, किंतु फिर भी वह समग्र को समझ नहीं सकता, क्योंकि समग्र इतना विराट है।

एक नदी सागर में गिरती है... वह सागर को जान पाती है, वह सागर को अनुभव कर पाती है, वह सागर में ही रहती है, वह उसी में समा जाती है, लेकिन वह समग्र सागर में नहीं घुल सकती, वह सारे सागर पर नहीं फैल सकती; वह समग्र सागर को नहीं जान सकती। वह सिर्फ एक हिस्से को ही जान सकती है।

जब तुम्हारी चेतना नदी की भांति ब्रह्म में गिरती है, उस आत्यंतिक के महासागर में, तो तुम 'उसे' जानते हो, लेकिन तुम उसे उसकी समग्रता में नहीं जान पाओगे। तुम जान नहीं सकते, उसकी कोई संभावना नहीं है। इसलिए ब्रह्म अज्ञेय है, क्योंकि सर्व अंश के लिए अज्ञात ही बना रहता है। इसलिए समस्या खड़ी होती है। जब भी कोई जान लेता है—वह अज्ञानी हो जाता है, अहंकारशून्य हो जाता है और जान लेता है—तो भी वह नहीं कह सकता कि मैंने सर्व को जान लिया।

वह नहीं कह सकता कि मैंने नहीं जाना है, और वह यह भी नहीं कह सकता कि मैंने जान लिया है। वह यही कह सकता है कि एक तरह से मैं जानता भी हूं और एक तरह से मैं नहीं भी जानता हूं। एक अर्थ में मैंने 'उसमें' प्रवेश किया है, और 'उसने' मुझमें प्रवेश किया है, किंतु मैं एक बूंद हूं और वह एक सागर है। मैं उसे जानता हूं किंतु फिर भी सर्व एक रहस्य ही है। इसी कारण, जिन्होंने अपनी निर्दोषता में उसे जान लिया है, उसमें गिरकर उसे पहचान लिया है, वे भी एक प्रकार से मुश्किल में ही हैं कि उसके लिए क्या कहें। वे अपने ज्ञान का इनकार भी नहीं कर सकते, और अपने शान की घोषणा भी नहीं कर सकते। यह ऐसा ही है।

इसी कारण बहुत—से लोग चुप ही रह गये। बुद्ध ब्रह्म के बारे में किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं देते थे। जहां कहीं भी जाते उनके शिष्य यह खबर फैला देते थे कि उस आत्यंतिक के बारे में कोई प्रश्न न पूछा जाये, क्योंकि बुद्ध उसका कोई उत्तर नहीं देने वाले हैं।

किसी ने बुद्ध से पूछा, " आखिर आप उत्तर क्यों नहीं देते हैं?"

बुद्ध ने उत्तर दिया, "यदि मैं उत्तर देता हूं तो वह किसी न किसी तरह से झूठ ही होने वाला है। यदि मैं कहूं कि मैं जानता हूं तो यह बात गलत है क्योंकि बूंद सागर को कैसे जान सकती है? यदि मैं कहूं कि मैं नहीं जानता हूं तो भी बात गलत होगी, क्योंकि बूंद सागर को जानती है। बूंद सागर की ही आणविक इकाई है। सारा सागर बूंद में भी मौजूद है।

"वस्तुत: एक बूंद को समग्रता से जान कर तुम सागर को जान सकते हो, क्योंकि बाकी तो कुछ और नहीं है। बूंद में वह सब मौजूद है, लेकिन फिर भी वह बूंद ही है। इसलिए अगर मैं कहता हूं कि मैं जानता हूं तो बात गलत होगी, क्योंकि मैं एक बूंद ही हूं। यदि मैं कहूं कि मैं नहीं जानता हूं तो भी बात गलत हो जायेगी क्योंकि मैं जानता हूं। मैं भी सागर हूं—एक सूक्ष्म सागर, अत: अच्छा है कि मौन ही रहा जाये। "लेकिन मौन भी गलत समझा जा सकता है, और गलत ही समझा गया। जो लोग बुद्ध के विरुद्ध थे उन्होंने कहना शुरू किया कि बुद्ध इसलिए नहीं बोलते क्योंकि वह जानते नही हैं। अब तक उन्होंने ब्रह्म में प्रवेश ही नहीं किया है, इसलिए वे चुप हैं। वरना उन्हें कहना चाहिए।

देखें इस मुश्किल को। यदि वे कहते हैं कि मैं जानता हूं तो भी दिक्कत होने वाली है; यदि वे कहते हैं कि मैं नहीं जानता हूं तो भी मुश्किल पैदा होने वाली है। और यदि वे चुप रहें तो लोग गलत समझेंगे।

उस आत्यंतिक को किसी भी तरह संप्रेषित नहीं किया जा सकता, चाहे तुम मौन रहो चाहे कुछ कहो। वह असंप्रेषित ही रहता है। उसे हस्तांतरित नहीं किया जा सकता; वह बिना दिये ही रह जाता है। उसे रांप्रेषित भी नहीं किया जा सकता। वह संप्रेषण के भी पार है।

एक तीसरी कठिनाई और आती है, और एक नई समस्या बना देती है। वह समस्या यह है कि ब्रह्म का अर्थ होता है—आधार—सभी कुछ का स्रोत। स्रोत को रहस्य ही बने रहना चाहिए। उसे परिभाषित नहीं किया जा सकता। कौन उसको भाषा देगा? क्योंकि कोई भी उससे हट कर खड़ा नहीं हो सकता उसका रहस्य खोलने के लिए कोई होना चाहिए जो दूर से, अलग खड़ा होकर द्रष्टा हो सके, तटस्थ रह कर देख सके। हम आत्यंतिक से दूरी पर खड़े नहीं रह सकते। हम उसी में हैं जैसे कि तालाब में मछलियां तैरती होती हैं। वे मछलियां पृथक खड़ी नहीं हो सकतीं, वे तालाब को द्रष्टा की भांति नहीं देख सकतीं।

कबीर कहा करते थे कि एक बार दो पंडित नदी के किनारे खड़े होकर सागर कैसा होता है इस पर बात करते थे। एक मछली को यह बात पकड गई; उसने पूछताछ शुरू कर दी। उसके लिए यह बात निरंतर चिंतन का विषय बन गई—सागर कैसा होता है?

उसने अपने बड़े—बूढ़ों से पूछा, परंतु उन्होंने कहा कि उन्होंने भी दूसरों से सागर के बाबत सुना है पर उन्हें कुछ पता नहीं है कि सागर कैसा होता है। उन्होंने सागर कभी देखा नहीं था—और वे सागर में ही थीं। लेकिन तुम जिसमें रहते हो उसे कैसे देख सकते हो? वे उसी में पैदा हुई थीं, लेकिन जिसमें तुम पैदा हुए हो, उसे तुम कैसे जान सकते हो? तुम उससे इतने एक होते हो, और वह तुमसे इतना एक होता है कि कोई भी दूरी नहीं होती, अत: तुम उसे नहीं जान सकते।

तो वह जिज्ञासु मछली पता लगाती ही गई। कोई भी उसके सवाल का जवाब नहीं दे पाया, लेकिन सभी ने यही कहा कि उन्होंने भी सुना है कि सागर होता है।

कबीर कहते हैं कि यही हालत आदमी की भी है जो कि पूछता ही चला जाता है कि ईश्वर क्या होता है, वह कहां है, ईश्वर कौन है? हम सब परमात्मा में ही हैं, इसीलिए यह कठिनाई है। और मछली के लिए तो यह भी संभव है कि नदी के या सागर के बाहर छलांग लगा ले। कुछ क्षणों के लिए तो मछली सागर के बाहर छलांग लगा ही सकती है, और किनारे पर आकर सागर को देख सकती है। लेकिन मनुष्य के लिए तो वह भी संभव नहीं है। तुम ब्रह्म के बाहर छलांग नहीं लगा सकते, उसका कोई भी किनारा नहीं है। तुम बाहर नहीं कूद सकते क्योंकि कुछ भी उसके बाहर नहीं है। सभी कुछ उसके भीतर है, और कुछ भी बाहर नहीं है। यही अर्थ होता है असीम का।

तुम अस्तित्व के बाहर नहीं जा सकते—या कि जा सकते हो? क्योंकि जिस क्षण भी तुम अस्तित्व के बाहर जाते हो वैसे ही तुम 'न' हो जाते हो। तुम अस्तित्व के बाहर नहीं जा सकते। सभी कुछ अस्तित्व है। सभी जगह अस्तित्व ही है। तुम कहीं भी जाओ, अस्तित्व ही है। अत: दूरी संभव नहीं है। तुम द्रष्टा नहीं हो सकते, तुम ब्रह्म का अवलोकन नहीं कर सकते। इस रहस्य को खोला नहीं जा सकता। यह रहस्य इतना आधारभूत है, इतना आत्यंतिक है, इतना सार्वभौमिक है, और तुम सिर्फ सागर की एक मछली हो। ब्रह्म को उस भांति नहीं जाना जा सकता जैसे कि हम दूसरे तथ्यों को जानते हैं क्योंकि दूसरे तथ्य हम देख सकते हैं।

विज्ञान खोलता है, विज्ञान खोलता ही जाता है। लेकिन विज्ञान रहस्यों को खोलता जा सकता है क्योंकि विज्ञान आत्यंतिक प्रश्न को नहीं लेता। वह सिर्फ उन प्रश्नों को लेता है जो अंतिम नहीं हैं। वह यह जान सकता है कि हाइड्रोजन क्या है। वह यह भी जान सकता है कि आणविक ढांचा क्या होता है। तुम देख सकते हो। तुम प्रयोगशाला में जा सकते हो और देख सकते हो। और तुम वस्तुओं के रहस्य में प्रवेश कर सकते हो। क्योंकि वस्तु

आखिरी, आत्यंतिक बात नहीं है। लेकिन तुम ब्रह्म के साथ प्रयोग कैसे कर सकते हो और कैसे उसे देख सकते हो? कहां और कैसे उसमें प्रवेश करोगे? जहां भी जाओगे तुम उसी के एक हिस्से होओगे, उसी में होओगे। इस रहस्य को खोला नहीं जा सकता।

ब्रह्म एक रहस्य ही बना रह जाता है। और यदि ब्रह्म एक आत्यंतिक रहस्य है तो तुम कैसे कह सकते हो कि तुमने जान लिया? तुम कुछ तभी जान सकते हो यदि उसका रहस्य—रहस्य न रहे। जैसे ही तुम कुछ जानते हो वह रहस्य नहीं रह जाता। इसीलिए विज्ञान रहस्य को नष्ट करने वाला है। और जितना अधिक विज्ञान बढ़ता जाता है, और जितने अधिक लोग वैज्ञानिक ढंग से प्रशिक्षित होते जाते हैं, उतना ही रहस्य से उनका नाता टूटता जाता है।

विज्ञान सच में ही रहस्य का हत्यारा है, वह रहस्य की हत्या करता चला जाता है। इसीलिए संसार इतना दरिद्र हो गया है, और विज्ञान ने उसे इतना समृद्ध कर दिया है! जगत पहले कभी भी इतना दरिद्र और इतना समृद्ध नहीं था।

प्रत्येक चीज पहले से ज्यादा समृद्ध हो गई है। तुम ज्यादा अच्छे मकानों में रह रहे हो, ज्यादा अच्छे कपड़ों का उपयोग कर रहे हो, अधिक अच्छा भोजन कर रहे हो। प्रत्येक चीज पहले से ज्यादा समृद्ध हो गई है। सम्राट भी ईर्ष्या से भर जायेंगे यदि उन्हें उनकी कब्रों से निकाल कर जीवित कर दिया जाये। अशोक और अकबर भी तुम्हारे सामने दरिद्र ही दिखलाई पड़ेंगे, क्योंकि अशोक भी वैसी कमीज का उपयोग नहीं करता था जैसी कमीज तुम पहनते हो। जो स्नानघर तुम काम में लाते हो वह अकबर के लिए भी एक विलासिता की बात थी।

जहां तक वस्तुओं का सवाल है संसार पहले से बहुत ज्यादा समृद्ध हो गया है, लेकिन आदमी अधिकाधिक दरिद्र हो गया है, क्योंकि कोई रहस्य ही नहीं बचा है। जीवन बिना किसी रहस्य का हो गया है—मृत। केवल रहस्य ही जीवंत हो सकता है।

जरा बच्चों की ओर देखो : वे ज्यादा जीवंत हैं। क्यों? और क्यों एक का आदमी इतना जीवंत नहीं दिखलाई पड़ता? यह कोई उम्र के ज्यादा हो जाने का सवाल नहीं है। बुनियादी बात थोड़ी गहरी है। बच्चा जीवंत है क्योंकि बच्चा रहस्य के जगत में जी रहा है; उसके लिए हर बात एक रहस्य है—प्रत्येक चीज। बीज फूट रहा है, बच्चा उस फूटते बीज को देख रहा है। यह एक इतना बड़ा रहस्य है कि उसको विश्वास नहीं होता कि ऐसा भी हो सकता है। एक चिड़िया एक डाल पर आ बैठी है और गीत गा रही है : यह बात कितनी रहस्यपूर्ण है! आकाश में बादल घुमड़ रहे हैं और वर्षा हो रही है... सभी कुछ रहस्यपूर्ण है। बच्चा एक आश्चर्य के जगत में रहता है; इसीलिए इतनी जीवंतता है क्योंकि हर चीज एक चुनौती है। जीवन सपाट नहीं है। जीवन में कई क्षेत्र हैं जो कि अनजान हैं। बच्चा कूदता—फांदता रहता है, पूछताछ करता रहता है, हर चीज की ओर देखता रहता है। हर चीज इतनी विस्मयपूर्ण है क्योंकि बच्चा अबोध है।

उपनिषदों के दिनों में हर व्यक्ति इतना जीवंत होता था, प्रत्येक चीज रहस्यपूर्ण थी। विस्मय का भाव था। और जब विस्मय होता है तो तुम जीवंत होते हो क्योंकि बाहर एक चुनौती होती है रहस्य का पता लगाने के लिए। विज्ञान रहस्यों को मारता जाता है। वह हर चीज को समझाता जाता है। तुम चाहे कुछ भी करो, उसकी व्याख्या मौजूद है। और एक बार व्याख्या हो गयी तो विस्मय समाप्त हो गया, हर चीज सपाट गयी। जब कुछ भी खोजने को बाकी न रहा तो सारी चुनौती ही जाती रही। और जब कोई चुनौती न हो जीवन मर जाता है, वह नाच नहीं सकता, वह विस्फोटित नहीं हो सकता। फिर कुछ भी नहीं बचता।

इन तीन सौ वर्षों में मनुष्यता इतनी दरिद्र बना दी गई है कि उसकी कल्पना नहीं की जा सकती विज्ञान ने वस्तुओं के जगत की व्याख्या कर दी, और मनोविज्ञान ने मन के जगत को स्पष्ट कर दिया यदि तुम प्रेम में

पड़ते हो तो यह एक रहस्य है। लेकिन जाओ फ्राँयड के पास, और वह सारी बात समझा देगा। वह कहेगा, ”यह कुछ नहीं है, केवल शरीर में हारमोन्स हैं, और इनके बारे में बहुत गंभीर होने की आवश्यकता नहीं है। यह सिर्फ रसायनों का काम है। सिर्फ एक विशेष प्रकार के हारमोन्स हैं जो कि तुम्हें प्रेम में पड़ने के लिए मजबूर करते हैं। इसमें कुछ पागल होने की जरूरत नहीं है। उन हारमोन्स को शरीर के बाहर निकाला जा सकता है, और प्रेम विलीन हो जायेगा। अथवा उन हारमोन्स का एक इंजेक्यान देने की जरूरत है और तुम गहरे प्रेम में पड़ जाओगे। अत: यह बात सिर्फ हारमोन्स की है। इसमें ज्यादा खो जाने की जरूरत नहीं है। ”और एक बार यह बात स्पष्ट कर दी जाये, तो प्रेम का सारा रहस्य चला गया।

अभी वे सारी दुनिया में यौन सिखा रहे हैं। एक तरह से तो यह अच्छा है लेकिन सिर्फ एक विपरीत दवा की भांति। विक्टोरिया के जमाने की अतिनैतिक शिक्षा है, उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ठीक है कि बच्चों को यौन की शिक्षा दी जाये। लेकिन गहरे में यह बहुत खतरनाक है क्योंकि एक बार बात साफ हो गई तो सेक्स का रहस्य ही समाप्त हो जायेगा। और ऐसा विशेषकर अमेरिका में हो रहा है जहां कि यौन के संबंध में सभी कुछ पता है, लोग यौन में रस खोते जा रहे हैं। उनका रस खो ही जायेगा यदि सारी बात जान ली गयी।

मास्टर्स तथा जॉनसन, इन दो प्रयोगकर्ताओं ने यौन के रहस्य में इलेक्ट्रानिक्स यंत्रों द्वारा प्रवेश किया है। जब कोई युगल प्रेम कर रहा हो तो स्त्री के गुप्तांग में इलेक्ट्रानिक यंत्रों के द्वारा यह बात रिकार्ड होती जाती है कि क्या घट रहा है। एक ग्राफ बनता जाता है। जब एक युगल प्रेम कर रहा होता है तब यंत्र सारे समय यह रिकार्ड करते हैं कि रक्त में, श्वास में, शरीर में, हारमोन्स में क्या घट रहा है। तब सारा रहस्य ही स्पष्ट हो जाता है और तब वे कहते हैं, ”यह बस एक यांत्रिक बात है। ऐसा इन इन कारणों से होता है। ” एक बार यौन का रहस्य खो जाये तो तुम्हारा जीवन एक ऊब हो जायेगा। जब तुम अपनी पत्नी के साथ या प्रेमिका के साथ प्रेम कर रहे होओगे तो तुम्हें पता है कि क्या घट रहा है। रक्त—चाप बदल रहा है, हारमोन्स दौड़ रहे हैं, तुम्हें सब पता है। और तब सच में कोई जरूरत ही नहीं रह जायेगी कि तुम प्रेम में पड़ो, क्योंकि तब प्रेम यंत्रों द्वारा भी किया जा सकता है।

मास्टर्स तथा जॉनसन ने इलेक्ट्रानिक के लिंग तथा योनियां भी तैयार की हैं। और अब वे कहते हैं कि एक इलेक्ट्रानिक लिंग, एक विद्युत—यंत्र, ज्यादा गहरे संभोग का चरम आनंद प्रदान कर सकता है बजाय किसी भी पुरुष के, क्योंकि वह कंपित होता ही जाता है—और सारी बात सिर्फ कंपन की ही तो है। आदमी के पास सीमित ऊर्जा है, लेकिन एक इलेक्ट्रानिक उपकरण के पास असीम ऊर्जा है। चालू कर दो और वह कंपित होता ही रहता है। वह किसी स्त्री को बहुत गहरे संभोग का आनंद दे सकता है। वह एक साथ बहुत—से संभोग के चरम आनंद प्रदान कर सकता है। और एक बार एक स्त्री को पता चल जाये कि एक बिजली से चलने वाला लिंग आनंद ऊंचाई इतनी ऊंचाई दे सकता है तो फिर उसके सामने सारे प्रेमी फीके पड़ जायेंगे। लेकिन यह खतरनाक है। यह एक बहुत ही खतरनाक क्षेत्र में उतरना है। एक बार रहस्य का पता चल गया तो सारा रोमांस ही चला जाएगा।

विज्ञान ने हर प्रकार से जीवन के रहस्यों को खोलने की कोशिश की है। मैं इस तथ्य पर इसलिए जोर दे रहा हूं क्योंकि इसकी पृष्ठभूमि में तुम धर्म का अर्थ समझ सकते हो।

धर्म है जीवन को रहस्य से भरना, और विज्ञान है रहस्य को खोलना। धर्म कहता है कि रहस्य इतना आत्यंतिक है कि उसके बारे में कुछ भी नहीं जाना जा सकता है। और तुम जो भी जानते हो वह बस अस्थायी है। और जो भी तुम जानते हो वह सिर्फ समस्या को आगे सरकाना है। यह कभी हल होता नहीं। तुम सिर्फ एक कदम और पीछे सरका देते हो। कुछ हल तो होता नहीं। तुम्हारी सारी व्याख्याएं सिर्फ कृत्रिम हैं क्योंकि

आत्यंतिक तो छिपा ही रहता है, और कोई भी व्याख्या उसे स्पष्ट नहीं कर पाती। क्यों का उत्तर नहीं दिया जा सकता, चाहे तुम कैसे का उत्तर दे भी दो।

उदाहरण के लिए, विज्ञान कह सकता है कि पानी में कोई भी रहस्य नहीं है। केवल हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन के अणुओं को मिलाने से पानी बन जाता है—एच टू ओ—और सारा रहस्य हल हो गया। दो अणु हाइड्रोजन के और एक अणु ऑक्सीजन का और सारा रहस्य सामने आ जाता है। लेकिन धर्म कहता है कि यह तो केवल कैसे का उत्तर हुआ। क्यों का तो उत्तर नहीं आया। क्यों दो अणु हाइड्रोजन के और एक अणु ऑक्सीजन के मिलाने से पानी बन जाता है—क्यों? हम केवल कैसे को जानते हैं, कि यदि दो अणु हाइड्रोजन तथा एक अणु ऑक्सीजन को मिलाया जाये तो पानी निर्मित हो जाता है। हम केवल कैसे को जानते हैं, लेकिन क्यों का उत्तर तो नहीं आता—और यह क्यों ही ब्रह्म है।

क्यों ऐसा होता है कि दो अणु हाइड्रोजन तथा एक अणु ऑक्सीजन से पानी बनता है? क्यों हाइड्रोजन के तीन अणुओं से नहीं? क्यों नहीं हाइड्रोजन के चार अणु और आक्सीजन का एक अणु? विज्ञान कहता है, "हमारा रस क्यों में नहीं है। हम केवल कैसे से ही मतलब रखते हैं। "धर्म कहता है, "कैसे तो बहुत ऊपरी पूछताछ की बात है, क्योंकि जब तक तुम क्यों का उत्तर नहीं देते, कैसे का उपयोग किया जा सकता है, लेकिन रहस्य तो अपनी जगह पर मौजूद है, रहस्य मिटा नहीं। अस्तित्व का क्यों ही ब्रह्म है। "

अत: विज्ञान अंततः टेकनालाजी में परिवर्तित हो जाता है, क्योंकि यह सिर्फ 'कैसे' है—जानकारी। इसलिए विज्ञान हमेशा ही टेक्नालाजी में परिवर्तित होता जाता है। तुम कैसे को जानते हो, फिर तुम्हें तकनीक का पता चल जाता है, तुम उसका उपयोग कर सकते हो, और इस तरह तकनीक पैदा हो जाती है। अत: विज्ञान टेक्नालाजी के आगे आगे दौड़ने वाला बन जाता है, बस टेक्नालाजी का एक मार्गदर्शक। धर्म रहस्य पर आधारित है। उसका विश्वास रहस्य में है और इस बात में है कि रहस्य आत्यंतिक है। तुम उसे नहीं मिटा सकते, तुम उसे परिभाषित नहीं कर सकते। और यही उसकी सुंदरता है क्योंकि एक बार तुम्हें अनुभव हो जाए कि यह जो रहस्य है, आत्यंतिक है और इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती, तो तुम पुन: एक छोटे बच्चे की भांति हो जाते हो जो कि आश्चर्य से भरा है। और जब आश्चर्य तुम्हें पकड़ ले तभी तुम सर्वाधिक जीवंत हो। और जब कोई विस्मय का भाव नहीं है तो तुम न्यूनतम पर जी रहे हो।

तुम जीवन से बिना किसी विस्मय भरी आंखों के गुजर जाते हो, इसीलिए जीवन इतना ऊब से भरा प्रतीत होता है। जीवन ऊबपूर्ण नहीं है, ये सिर्फ तुम्हारी विस्मय से रहित आंखें हैं, वे ही ऊब पैदा करती हैं। यदि तुम अंतर्दृष्टि पुन: प्राप्त कर सको, यदि तुम एक विस्मय भरा चित्त फिर से प्राप्त कर सको जो अंत तक विस्मय से भरा रहे, जहां यह उस परम रहस्य से मिलता है, जहां तुम विस्मय करते ही चले जाते हो, करते ही चले जाते हो और तुम इसे कभी हल नहीं कर सकते हो...।

पहेली कोई रहस्य नहीं है क्योंकि तुम पहेली को हल कर सकते हो। लेकिन रहस्य एक ऐसी पहेली हे जिसको हल नहीं किया जा सकता है। विज्ञान का रस उन पहेलियों में है जिन्हें हल किया जा सकता है, जिनका उत्तर दिया जा सकता है। धर्म का रस तो सिर्फ रहस्य में है जिसका कोई समाधान नहीं है। और जितने गहरे तुम प्रवेश करते हो, उतना ही तुम जानते हो कि इसका समाधान करना असंभव है।

यूनानी दर्शन शास्त्री कहते हैं कि दर्शनशास्त्र का जन्म विस्मय में होता है। उपनिषद कहते हैं कि दर्शन का जन्म विस्मय में होता है, लेकिन धर्म का अंत भी विस्मय में ही होता है। क्योंकि दर्शनशास्त्र का जन्म विस्मय में होता है, लेकिन वह विस्मय के विरुद्ध है। वह पैदा तो विस्मय में ही होता है, लेकिन फिर वह उसको मिटाने की कोशिश में लग जाता है, उसके उत्तर पाने की कोशिश में लग जाता है, उत्तर और व्याख्याएं पाने की कोशिश

करने लगता है। दर्शन का जन्म विस्मय में होता है, और उस विस्मय पर विजय पाना है, ग्रीक दर्शनशास्त्र के इस दृष्टिकोण के कारण ही पश्चिमी विज्ञान का जन्म हुआ। उसका स्रोत ग्रीक मन में ही रहा।

पश्चिमी विज्ञान सिर्फ ग्रीक—दर्शन की सफलता है। दर्शनशास्त्र का जन्म आश्चर्य में होता है, लेकिन उसका अंत व्याख्या में होता है, और तब वह विज्ञान हो जाता है। दर्शनशास्त्र शुरू तो विस्मय से होता है लेकिन समाप्त होता है व्याख्या में, प्रणाली में, विधान में; तब फिर वह विज्ञान हो जाता है। और फिर विज्ञान प्रयोग करता है, और 'कैसे' को जान लेता है तो वह टेक्नालाजी बन जाता है।

उपनिषद कहते हैं कि धर्म का अंत भी विस्मय में ही होता है; ऐसा नहीं कि वह शुरू विस्मय में होता है। तुम चाहे कहीं भी प्रारंभ करो, धर्म का अंत भी विस्मय में ही होगा। रहस्य वहा ज्यों का त्यों बना रहता है, उसका कभी हल नहीं हो पाता। यही बुनियादी भेद है भारतीय चित्त और ग्रीक चित्त में। और ये ही दो आधारभूत चित्त हैं सारे जगत में। ग्रीक चित्त के कारण पश्चिमी विज्ञान का जन्म हुआ। और भारतीय चित्त के कारण किसी विज्ञान का जन्म नहीं हुआ; धर्म का जन्म हुआ।

सारे बड़े धर्म पूर्व में पैदा हुए। पश्चिम में कभी कोई धर्म पैदा नहीं हुआ। सारे बड़े धर्म पूर्व में ही पैदा हुए, और जो सबसे गहरे धर्म थे वे भारत में पैदा हुए। दूसरे धर्म जो कि भारत के आस—पास पैदा हुए लेकिन ठीक भारत में नहीं, वे सिर्फ भारतीय धर्म की प्रतिध्वनिया हैं। क्राइस्ट मूल रूप से हिंदू थे, इसीलिए यहूदी उन्हें नहीं समझ सके, उन्हें उनको मारना पडा। सारे गहनतम धर्म—हिंदू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म—भारत में ही पैदा हुए। और विज्ञान मौलिक रूप से एथेन्स में पैदा हुआ—यह ग्रीक है।

ग्रीक दृष्टिकोण यह है कि जब तुम जीवन के प्रति सजग होते हो तो तुम विस्मय से भर जाते हो। अब मनुष्य के मन का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह इस विस्मय को नष्ट कर दे, और व्याख्या खोजे। उपनिषद कहते हैं कि जहा भी तुम्हें कोई व्याख्या मिले, तुम उसमें गहरे जाओ—देर— अबेर तुम उस आधार पर पहुंच जाओगे जहां कि रहस्य है। व्याख्या केवल ऊपरी सतह है।

किसी बात की व्याख्या नहीं की जा सकती है : उपनिषदों का यह दृष्टिकोण है। प्रत्येक चीज अव्याख्य है और अव्याख्य ही रहेगी। यह सिर्फ मनुष्य का अहंकार ही है जो कि सोचता है कि व्याख्या मिल गई है। रहस्य पर इतना जोर क्यों है? क्योंकि यदि रहस्य हो केवल तभी तुम अज्ञानी बने रह सकते हो। इसे स्मरण रखो—यदि रहस्य है, अस्तित्व में परम रहस्य है, केवल तभी तुम अज्ञानी रह सकते हो। रहस्य के होते हुए ही तुम भीतर हृदय में अज्ञानी रह सकते हो। यदि सभी की व्याख्या की जा सके तो तुम जानी हो जाते हो। तब तुम ज्ञान से चिपक सकते हो। तब तुम ज्ञान से चिपक जाओगे और शान बहुत जयादा महत्वपूर्ण हो जायेगा।

पश्चिमी विश्वविद्यालयों में वे सदियों से शान पढ़ा रहे तैं। अभी पूर्व में भी विश्वविद्यालयों में शान की शिक्षा दी जा रही है, क्योंकि वे पश्चिम की नकलें ही हैं। प्रारंभ में बुनियादी रूप से पूर्वी विश्वविद्यालयों ने ज्ञान की शिक्षा कभी नहीं दी। नालंदा तथा तक्षशिला ने कभी ज्ञान की शिक्षा नहीं दी। मैं ध्यान सिखा रहे थे। वे एक गहरे अज्ञान की, और चारों ओर फैले एक रहस्य की शिक्षा दे रहे थे। अब कोई पूर्वी विश्वविद्यालय नहीं बचा है। सारे विश्वविद्यालय पश्चिमी हो गये हैं, चाहे वे कहीं भी हों, पूर्व में हों चाहे पश्चिम में। वे हमारे मस्तिष्कों को ज्ञान से भर रहे हैं।

अत: जब भी कोई विद्यार्थी विश्वविद्यालय से लौट कर आता है तो भरा हुआ होता है। उसके पास आत्मा नहीं होती, उसके पास सिर्फ ज्ञान होता है। और फिर वह समस्याएं खड़ी करता है। वह करेगा ही, क्योंकि विश्वविद्यालय ने सिर्फ उसे एक अहंकार ही दिया है। उसने मानवता अथवा विनम्रता का एक छोटा—सा टुकड़ा भी नहीं सीखा। उसने निरहंकारिता का तो एक बिंदु भी नहीं जाना। उसने कभी उस खिड़की से नहीं झांका जहां

जीवन रहस्य है और उसे कुछ भी पता नहीं है—उसने उस झरोखे से कभी नहीं देखा। उसे तो बस ज्ञान से भर दिया गया है। शान उसे ऐसी अनुभूति देता है कि वह बहुत अर्थपूर्ण और बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह जानता है। उसका अहंकार मजबूत हो जाता है और फिर वह अहंकार सारी संभव समस्याएं पैदा करता है।

अहंकार ही राजनीति पैदा करता है, अहंकार ही महत्वाकांक्षा को जन्म देता है। अहंकार ही ईर्ष्या को जन्म देता है, अहंकार ही सतत संघर्ष, हिंसा पैदा करता है, क्योंकि अहंकार तब तक संतुष्ट नहीं हो सकता जब तक वह शिखर पर नहीं हो। और प्रत्येक आदमी शिखर पर पहुंचना चाहता है। एक गलाघोंट प्रतियोगिता जीवन के हर कार्यक्षेत्र में चलती रहती है—अर्थशास्त्र में, राजनीति में, शिक्षा में, सब कहीं एक गलाघोंट प्रतिस्पर्धा चल रही है। कोई भी स्वयं में रुचि नहीं ले रहा है। हर आदमी शिखर पर पहुंचने की महत्वाकांक्षा में रस ले रहा है। और कोई भी नहीं सोचता कि वह जा कहां रहा है, वह कब शिखर पर पहुंचेगा। तुम्हें मिलेगा क्या शिखर पर पहुंच कर? कुछ भी तो नहीं मिलने का। तुम सिर्फ अपना जीवन बरबाद कर लोगे।

पूर्वी विश्वविद्यालय एक गहरा अज्ञान सिखा रहे थे—वह जो आधारभूत अज्ञान है कि मनुष्य रहस्य में प्रवेश नहीं कर सकता, क्योंकि रहस्य आखिरी है, परम है। वह प्रकृति का आधार है, और मनुष्य उसी रहस्य का हिस्सा है। जब ये दो रहस्य मिलते हैं—मनुष्य के भीतर का रहस्य तथा अस्तित्व के भीतर का रहस्य—जब ये दो रहस्य मिलते हैं तो आनंद होता है। जीवन सौंदर्य से भर जाता है, वह एक शाश्वत संगीत हो जाता है, वह एक नृत्य हो जाता है। तुम तभी नृत्य कर सकते हो जब कि कोई रहस्य हो। एक नर्तक परमात्मा की जरूरत है—एक ऐसा परमात्मा जो कि नृत्य कर सकता हो। और अस्तित्व चारों ओर नृत्य कर रहा है। देखो! यह कोई सिद्धात की बात नहीं है। देखो अस्तित्व को! वह चारों ओर नृत्य कर रहा है। प्रत्येक कण नाच रहा है। केवल तुम ही जमीन में गड़ कर बैठ गये हो। तुम हिल भी नहीं सकते, तुम नृत्य नहीं कर सकते, क्योंकि तुम जानते हो—तुम्हारा ज्ञान ही विष बन गया है।

अब हम सूत्र में प्रवेश करें

यदि तुम सोचते हो कि तुम ब्रह्म को भलीभांति जानते हो तो तुम वास्तव में बहुत कम जानते हो.......

वस्तुत:, तुम कुछ भी नहीं जानते—जरा सा भी नहीं, क्योंकि तुम अभी भी मौजूद हो दावा करने के लिये। अहंकार अभी भी बना हुआ है। अहंकार अभी भी केंद्र बना हुआ है। अहंकार अभी भी दावा कर रहा है, कह रहा है, "मैं जानता हूं। "

यदि तुम सोचते हो कि तुम ब्रह्म को भलीभांति जानते हो तो तुम वास्तव में बहुत कम जानते हो...

और यदि तुम ऐसा कहते हो तो यह केवल सोचना मात्र है—कोई अनुभव नहीं। तुम सोच सकते हो कि तुम जानते हो, लेकिन यह कोई अनुभव नहीं है। यदि तुम अनुभव कर लो तब तुम यह कहने में समर्थ नहीं होगे कि "मैं जानता हूं।"

वह इतना विराट है कि तुम उसको जानोगे कैसे? वह इतना अंतहीन, आदिहीन है कि कैसे जान पाओगे तुम उसे? यह दावा मूढ़तापूर्ण, अश्लील प्रतीत होता है। ब्रह्म को जानने की बात केवल एक मूढ़तापूर्ण दावा प्रतीत होती है। केवल मूढ़ ही ऐसा दावा कर सकते हैं। ऐसा दावा सिर्फ अज्ञान से ही आ सकता है। क्योंकि वस्तुत: तुम अभी कुछ भी नहीं जानते, तुम दावा कर सकते हो।

यदि तुम सोचते हो कि तुम ब्रह्म को भलीभांति जानते हो तो तुम वास्तव में बहुत कम जानते हो क्योंकि ब्रह्म का जो रूप तुम जीवित प्राणियों में तथा देवताओं में समाया हुआ देखते हो वह एक मामूली बात है।

यदि तुमने ब्रह्म की अनुभूति प्रगट जगत में कर भी ली हों—वृक्षों में, पहाड़ों में, व्यक्तियों में, पशुओं में, पक्षियों में—यदि तुमने इस जीवन को भी ब्रह्म की तरह अनुभव कर लिया हो तो भी यह एक मामूली बात है। यह सिर्फ अप्रगट का एक बिलकुल छोटा—सा हिस्सा है।

उपनिषद कहते हैं कि ब्रह्म के दो रूप हैं—प्रगट तथा अप्रगट। प्रगट रूप संसार बन गया है, और अप्रगट अज्ञात ही रहता है। उसमें से बहुत—से संसार निकलते जाते हैं, बहुत—से उसमें वापस खो भी जाते हैं। यह कोई पहला संसार नहीं है, याद रखो।

ईसाइयत अभी दो सदी पहले तक कहा करती थी कि जगत सिर्फ जीसस से चार हजार चार वर्ष पूर्व ही बना है। फिर इस दावे में तथा वैज्ञानिक अन्वेषणों में भारी द्वंद्व उठ खड़ा हुआ, क्योंकि विज्ञान के हिसाब से यह पृथ्वी लाखों—करोड़ों वर्षों से अस्तित्व में है। उनमें विरोध था। अब, वैज्ञानिकों का ज्ञान जितना अधिक बढ़ता जाता है, प्रारंभ उतना ही पीछे सरकता जाता है। लेकिन उपनिषद कहते हैं कि यह तो बहुतों में से सिर्फ एक जगत है; इसके पहले भी कितने ही जगत बने और विलीन हो गये।

अस्तित्व एक अनंत प्रक्रिया है। इसलिए वस्तुत: उसका कोई प्रारंभ नहीं है और न ही कोई अंत हो सकता है। कोई प्रारंभ हो भी कैसे सकता है? प्रारंभ का तो अर्थ होता है कि उसके पहले कुछ भी नहीं था। तो फिर कुछ नहीं में से यह संसार कैसे निकला? कुछ भी होने के लिए कुछ तो होना ही चाहिए। 'कुछ' कुछ नहीं में से नहीं निकल सकता। वह व्यर्थ की बात है। कैसे 'कुछ नहीं' में से कुछ निकल सकता है? और यदि कुछ भी निकलता है तो इसके पहले कुछ न कुछ होना ही चाहिए।

उपनिषद कहते हैं कि यह पहली सृष्टि नहीं है, यह पहला सृजन नहीं है। यह आदिहीन, अंतहीन अस्तित्व की लंबी शृंखला की एक कड़ी है। सृष्टियां होती रही हैं, और मिटती रही हैं। जैसे कि एक बच्चा पैदा होता है, फिर वह जवान होता है और फिर मर जाता है। लेकिन बच्चा माता—पिता से पैदा होता है, और वे माता—पिता भी दूसरे माता—पिता से पैदा होते हैं। और ऐसा चलता चला जाता है, और तुम्हें कहीं भी इसका प्रारंभ नहीं मिलने वाला है।

उपनिषद के पास अदम और ईव की कोई धारणा नहीं है, जो कि पहले स्त्री—पुरुष थे। वे कहते हैं कि पहला पुरुष, पहली स्त्री संसार में कभी नहीं हुए। पहले की बात ही व्यर्थ है। हम सदा मध्य में हैं। प्रारंभ कभी नहीं था, इसलिए कभी अंत भी नहीं होने वाला है।

बच्चे की भांति पृथ्वी भी माता—पिता से उत्पन्न होती है। यह दो बड़े तारों के बीच में टकराव हो सकता है। जब दो माता—पिता टकराये तो पृथ्वी का जन्म हुआ। अब वैज्ञानिक कहते हैं कि ऐसी ही कोई घटना घटी होगी कि दो तारे टकराये होंगे। कौन जानता है? हो सकता है कि उपनिषद सच हों? जब दो तारे, एक पुल्लिंग व एक स्त्रीलिंग टकराये तो पृथ्वी पैदा हुई। पृथ्वी जीवंत है—वह मृत नहीं है। मृत पृथ्वियां भी हैं। अभी वैज्ञानिकों को शक होने लगा है कि कहीं चांद मृत पृथ्वी न हो। हो सकता है कि कुछ समय पहले वह जीवंत रहा हो।

यह पृथ्वी जीवंत है। यह जो वृक्षों का हरापन है यह उसके जीवन का हिस्सा है। तुम्हारी चेतना उसके विकास का एक हिस्सा है। यह विकसित हो रही है। यह जवान है, यह की होगी, और यह मरेगी भी, लेकिन जीवन तब कहीं और प्रस्फुटित हो जायेगा। अब वैज्ञानिक कहते हैं कि गणित के हिसाब से पचास हजार पृथ्वियों की सारे अस्तित्व में जीवित होने की संभावना है—पचास हजार जीवित ग्रह! मात्र एक गणितीय संभावना। हमारा दूसरी जीवित पृथ्वियों से कोई संपर्क नहीं है। लेकिन जब एक पृथ्वी मर जाती है तो दूसरी पैदा होती है।

कहीं जन्म घटित होता है तो कहीं पर मृत्यु; कहीं मृत्यु घटित होती है तो कहीं पर जन्म। जीवन सतत चलता रहता है। यह एक सातत्य है—एक सनातन सातत्य।

जो भी हम जानते हैं वह एक बहुत छोटा—सा, आणविक हिस्सा है। पीछे की तरफ वह एक अनादि आदि की भांति फैला है; आगे की तरफ वह एक अंतहीन अंत की भांति फैला है। हम सदा मध्य में हैं। केवल अस्तित्व का एक कण ही जाना गया है। और यह सारा अस्तित्व जो कि इतना विराट है, वह भी एक हिस्सा ही है। सर्व भी एक हिस्सा ही है क्योंकि यह प्रगट है।

मेरी ओर देखो. मैं तुम्हें कुछ संप्रेषित कर रहा हूं। जो कुछ भी मैं तुम्हें संप्रेषित कर रहा हूं वह एक प्रगट हिस्सा है। मेरे हृदय में बहुत—सा भाग बचा रहता है जो कि असंप्रेषित है, वह अप्रगट हिस्सा है। मेरा मौन एक अप्रगट भाग है। मेरे शब्द प्रगट भाग हैं। मेरे शब्दों में मेरे मौन का कुछ अंश भी संप्रेषित हो जाता है, लेकिन मेरे शब्द मेरा पूरा अस्तित्व नहीं हैं। मेरे शब्द सिर्फ एक हिस्सा हैं, और इस हिस्से के पीछे एक गहरा मौन छिपा हुआ है।

एक कवि एक गीत गा रहा है—रवीन्द्रनाथ अथवा शैली अथवा यीट्स एक गीत गा रहा है—वह गीत कवि के अस्तित्व का बस एक प्रगट हिस्सा है। लेकिन उस अस्तित्व से हजारों—लाखों गीत प्रगट हो सकते हैं।

उपनिषद कहते हैं कि यह सारा जगत—यह सारा संसार, यह ब्रह्मांड—सिर्फ एक गीत है जो कि प्रगट हो गया है। भगवत्ता के हृदय में अनंत गीत प्रतीक्षा कर रहे हैं प्रगट होने के लिए। उसने बहुत—से गीत गाये हैं जो कि विलीन हो गये हैं। वह अभी इस गीत को गा रहा है; वह बहुत—से गीत गायेगा। हम सिर्फ एक ही गीत से परिचित हो सकते हैं, एक गीत से भी पूर्णत: परिचित होना मुश्किल है—सिर्फ उसकी धुन के एक हिस्से से, एक टुकड़े से, एक शब्द से, एक भाव से परिचित हो सकते हैं। अनंत है इसके चारों ओर जो कि अनजाना ही छूट जाता है।

यह सूत्र कहता है :

.. ब्रह्म का जो रूप तुम जीवित प्राणियों तथा देवताओं में समाया हुआ देखते हो वह एक मामूली बात है इसलिए तुम्हें ब्रह्म के बारे में और आगे खोजबीन करनी चाहिए।

सचमुच इस खोज का कहीं अंत नहीं आता। यह चलती ही रहती है। और जितना अधिक तुम जानते हो उतनी ही गहराइया और और खुलती चली जाती हैं। जितना अधिक तुम खोजबीन करते हो उतने ही बड़े द्वार खुलते चले जाते हैं। रहस्य कभी भी खुल नहीं पाता, वह और अधिक गहरा होता जाता है। जितना अधिक तुम जानते हो, उतना ही तुम्हारे आगे जानने को शेष रह जाता है। जितना विशाल तुम्हारा दृष्टि—क्षेत्र होता है, जितनी विशाल तुम्हारी चेतना होती है, उतनी ही विशाल संभावनाएं तुम्हारे आगे जानने के लिए प्रगट होती हैं। और ऐसा चलता जाता है, और आगे और आगे। यह खेल अंतहीन है।

इसलिए जब भी तुम्हें लगे कि रुकना है, तो सजग हो जाना। ऐसा कोई बिंदु नहीं है जहा कि रुका जा सके। जहां भी तुम्हें महसूस हो, " अब मैंने पा लिया, "तो सजग हो जाना! तुम पुन: अहंकार के ही शिकार हो रहे हो। ऐसा कोई भी बिंदु नहीं है जहां कोई कह सके, "मैंने पा लिया। " हमेशा ऐसा है कि अब पहुंचे कि तब पहुंचे, पर पहुंचते कभी भी नहीं हैं।

यही अर्थ है ब्रह्म की असीमता का। तुम कभी ऐसी जगह पर नहीं पहुंचते जहा तुम कह सको, "अब यात्रा समाप्त हुई। "यात्रा चलती ही चली जाती है। और यह यात्रा अनंत जीवन की है। तुम कहीं पर मिट जाते हो परंतु यात्रा कभी समाप्त नहीं होती। तुम्हारा अहंकार एक बिंदु पर नहीं रहता। और उस क्षण ही वास्तविक यात्रा का प्रारंभ होता है—लेकिन तब वह अनंत तक चलती चली जाती है। उसका कभी अंत ही नहीं आता,

उसका कोई अंत आ भी नहीं सकता। तुम कहीं खो जाते हो। जब तुम्हें महसूस होता है कि तुम स्वयं के लिए एक बोझ हो तो तुम स्वयं को गिरा देते हो और आगे चले जाते हो। यह चलना शाश्वत है।

मैं नहीं सोचता कि मैं उसे भलीभांति जानता हूं...

गुरु कहता है :

मैं नहीं सोचता कि मैं उसे भलीभांति जानता हूं न ही मैं ऐसा सोचता हूं कि मैं उसे नहीं जानता...

यही है रहस्य। मैं नहीं कह सकता कि मैं उसे भलीभांति जानता हूं क्योंकि जानने को बहुत शेष बचा है, और हमेशा और बहुत जानने को शेष बचा ही रहेगा। यह ब्रह्म को जानना, इसकी हमेशा सिर्फ शुरुआत होती है, लेकिन कोई अंत कभी नहीं आता। तुम एक बार प्रारंभ कर दो बस, फिर यह चलता चला जाता है।

इसलिए मैं नहीं कह सकता कि मैं उसे भलीभांति जानता हूं... यह दावा गलत ही होगा... न ही मै ऐसा सोचता हूं कि मैं उसे नहीं जानता.. यह विपरीत बात भी सच नहीं है। मैं यह भी नहीं कह सकता कि मैं उसे नहीं जानता— मैं उसे जानता भी हूं।

यही अंतर है ग्रीक तथा भारतीय चित्त में। ग्रीक चित्त इस वाक्य को कभी नहीं समझ सकता है। अरस्तु के लिए यह वाक्य सोच पाना असंभव है। अरस्तु कहेगा, ”यह तर्क का बुनियादी सिद्धात है कि यदि तुम जानते हो तो तुम जानते हो; और यदि तुम नहीं जानते हो तो नहीं जानते हो, इसके बीच में कुछ भी नहीं हो सकता है। ” यदि तुम जिंदा हो तो जिंदा हो, यदि तुम मृत हो तो तुम मृत हो। इन दोनों के बीच में कुछ भी नहीं हो सकता है। या कि हो सकता है? क्या तुम कह सकते हो, ”मैं नहीं कह सकता कि मैं जीवित हूं और मैं यह भी नहीं कह सकता कि मैं मर गया हूं ‘? तब अरस्तू कहेगा, ”तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। दोनों में से एक ही बात सही है—दोनों बातें सही नहीं हो सकतीं। ”अरस्तु कहता है, ”दोनों बातें सही नहीं हो सकतीं, दो विपरीत बातें सत्य नहीं हो सकतीं। केवल एक ही सत्य होगी।”

उपनिषद का यह ऋषि कहता है, ”मैं नहीं कह सकता कि मैं जानता हूं। ”

तो फिर अरस्तू कहेगा, ”रुको, बात खतम हुई। यदि तुम नहीं कह सकते कि जानते हो, तो खतम करो बात को।”

लेकिन ऋषि फिर आगे यह भी कहता है, ”मैं यह भी नहीं कह सकता कि मैं नहीं जानता हूं। ”इस बात को अरस्तू स्वीकृति नहीं दे सकता। पश्चिमी तर्क का जनक, उसको संस्थापित करने वाला अरस्तु ऐसी बात के लिए स्वीकृति नहीं दे सकता। वह कहेगा, ”अब तुम्हारा दिमाग खराब हुआ जा रहा है। ”क्या तुम कह सकते हो कि तुम कमरे के भीतर हो? तुम नहीं कह सकते हो। और तुम यह भी नहीं कह सकते हो कि तुम कमरे के बाहर हो। या तो तुम कमरे के भीतर हो या तुम कमरे के बाहर हो—दोनों सत्य नहीं हो सकते हैं।

क्या तुम कह सकते हो, ”मैं नहीं कह सकता हूं कि मैं कमरे के भीतर हूं और मैं यह भी नहीं कह सकता हूं कि मैं कमरे के बाहर हूं ”? हमें भी यही सही दिखता है। अरस्तू सही दिखता है। सामान्य मन के लिए, साधारण तर्क के लिए वह बिलकुल ठीक है; तर्कसंगत है।

इन अर्थों में भारतीय ऋषि अतर्कसंगत हैं। वे विरोधी बातें एक साथ कहे चले जाते हैं, लेकिन इसके माध्यम से उन्हें कुछ संप्रेषित करना है। वस्तुत: वे गलत नहीं हैं। उनके पास कहने को कुछ है और वह ‘कुछ’ इतना रहस्यपूर्ण. है कि उसे केवल तभी कहा जा सकता है जब विरोधी बातें एक साथ कही जाएं। रहस्य केवल विरोधों के माध्यम से, असंगतियों के माध्यम से ही कहा जा सकता है।

मैं नहीं सोचता कि मैं उसे भलीभांति जानता हूं न ही मैं ऐसा सोचता हूं कि— मैं उसे नहीं जानता; फिर भी मैं जानता भी हूं।

"एक अर्थ में मैं उसे जानता हूं और एक अर्थ में मैं उसे नहीं जानता। मैं जानता हूं क्योंकि मैं उसका ही एक हिस्सा हूं। यह असंभव है कि मैं उसे नहीं जानूं। और मैं उसे नहीं जानता क्योंकि अंश समग्र को कैसे जान सकता है? यह बात असंभव है एक अंश के लिए कि वह समग्र को जान सके।"

दोनों ही बातें सही हैं। और यदि तुम्हें दोनों बातें ठीक प्रतीत होती हों तो इन दो विरोधी बातों के बीच एक नया ही अर्थ निकलता मालूम पड़ेगा। तुम्हें प्रतीति होगी कि ऋषि आखिर क्या कहना चाहता है। और तुम्हें यह भी महसूस होगा कि उसे अभिव्यक्त करना कितना कठिन है। बहुत कुछ प्रतीति हो रही है और शब्द उतना अधिक नहीं ले जा सकते, इसलिए दोनों विरोधों की जरूरत है कि उस बात को कह सकें।

उदाहरण के लिए, उपनिषद कहते हैं, "परमात्मा बहुत दूर है। " और फिर तुरंत वै यह भी कहते हैं, "वह बहुत निकट है। " यदि वह दूर है तो निकट कैसे हो सकता है? अथवा यदि वह निकट ही है तो दूर कैसे हो सकता है? लेकिन उनके पास कुछ कहने के लिए है, और वह बहुत महत्वपूर्ण बात है। इस बेतुकी बात से वे उसको संप्रेषित करने की कोशिश कर रहे हैं जिसे कि संप्रेषित —करना आसान नहीं है, जिसे कि संप्रेषित किया ही नहीं जा सकता। वह बहुत दूर है क्योंकि तुम उसे भूल चुके हो। वह विस्मृति ही दूरी निर्मित करती है। और वह बहुत निकट है, क्योंकि जो कुछ भी तुम करते हो चाहे तुम उसे भूलो, चाहे स्मरण करो, तुम उसके बिना जीवित नहीं रह सकते। वही तुम्हारे हृदय कोई धड़कन है। वही भीतर और बाहर सांस ले रहा है; वही तुम हो। तुम उसे भूल सकते हो, लेकिन फिर भी तुम वही रहते हो। इसीलिए यह विरोधाभासी कहने का ढंग चुना गया है : "वह दूर भी है, और निकट भी, "और, "मैं उसे जानता हूं और मैं उसे नहीं जानता।"

उपनिषद सुकरात से सहमत न?हीं होंगे ' मैंने तुमसे कहा कि सुकरात ने कहा था, "कभी पहले मैं जानता था; अब मैं कहता हूं कि —मैं नहीं जानता। " वह पुन: यूनानी ढंग ही अपना रहा है। वह बहुत संगत है। वह कहता है, "एक बार मुझे महसूस हुआ था कि मैं जानता हूं। लेकिन अब मुझे प्रतीत हो रहा है वह बात गलत थी—अब मैं नहीं जानता हूं। "उपनिषद कहेंगे कि दोनों ही बातें गलत हैं। एक तीसरी संभावना भी है जबकि तुम कहो, "एक तरह से मैं जानता हूं एक तरह से मैं नहीं जानता हूं। " पहले सुकरात परम ज्ञान का दावा कर रहा था, अब वह परम अज्ञान का दावा कर रहा है। लेकिन दोनों ही हालत में वह परम का दावा करता है। वह परम को पकड़े हुए है; वह विरोधाभासी नहीं है। एक बार उसने कहा, "मैं जानता हूं "अब वह कहता है, "मैं नहीं जानता। "उपनिषद के ऋषि दोनों बातें युगपत कहते हैं : "मैं जानता हूं और मैं नहीं जानता हूं। " दोनों के बीच की बात को महसूस करने का प्रयत्न करो, दो पंक्तियों के बीच... ठीक अंतराल में।

हममें से वही उसे जानता है जो जानता है कि वह अज्ञात और ज्ञात दोनों से भिन्न है।

जो शात है वह तुम्हारा ज्ञान है, जो अज्ञात है वह तुम्हारा अज्ञान है। यदि तुम कहते हो, "मैं जानता हूं " तुमने उसे ज्ञात बना दिया। यदि तुम यह कहते हो, "मैं नहीं जानता, " तुमने उसे अज्ञात बना दिया। और तुममें से वास्तविक ज्ञानी केवल वही है, जो कि जानता है कि न तो वह ज्ञात है और न अज्ञात है, बल्कि अज्ञेय है। वह रहस्य है।

केवल वही जो कि उसे एक रहस्य की भांति जानता है, एक परम रहस्य की भांति, एक आत्यंतिक रहस्य की भांति जो कि कभी खोला नहीं जा सकता, केवल वही उसे जानता है।

नौवां प्रवचन

मृत्यु : जीवन की पराकाष्ठा

पहला प्रश्न :

सुबह के सक्रिय ध्यान के चौथे चरण में शरीर को मृत तथा निश्चल के प्रयास में, व्यक्ति तनावपूर्ण हो जाता है। चूंकि यह चरण पूर्ण विश्राम का तथा अपने को छोड़ देने का है, कैसे कोई विश्राम में जाये और साथ ही निश्चल भी रहे? बजाए आनंद के, यह एक तनाव हो जाता है।

एक मृत व्यक्ति पूर्ण विश्राम में होता है। वह तनावपूर्ण नहीं हो सकता। एक मृत व्यक्ति तनाव से भरा हुआ नहीं हो सकता, या कि यह हो सकता है? वह विश्राम में है क्योंकि कोई अहंकार नहीं बचा जो कि तनावपूर्ण हो सके। केवल अहंकार ही तनाव में होता है। अंत: चौथे चरण में, जब मैं कहता हूं कि मृत हो जाओ।

उसका मतलब यही है कि इतने विश्राम में हो जाओ जैसे कि एक मरा हुआ आदमी होता है। तुम्हें निश्चल और मृत हो जाने की चेष्टा नहीं करनी है। यदि तुम प्रयास करोगे तो उसके बड़े उल्टे परिणाम आयेंगे। निश्चल होने की चेष्टा मत करो, मर जाने का कोई प्रयास मत करो। सिर्फ विश्राम करो और मृत हो जाओ।

ये दो भिन्न बातें हैं। यदि तुम मृत: होने की चेष्टा करोगे तो तुम्हारा सारा शरीर तनाव से भर जायेगा। और जब तुम तनाव से भरे होते हो तो तुम: मृत' नहीं हो सकते, तुम विश्राम में नहीं हो सकते। सिर्फ शरीर को ढीला छोड़ दो जैसे कि वह है ही नहीं, जैसे कि वह मुर्दा हो गया हो। उसे मृत करने के लिए कोई प्रयास नहीं करो। सिर्फ विश्राम में रहो और महसूस करो कि, शरीर मुर्दा हो गया हे, और तुम्हें इस विषय में कुछ भी नहीं करना है।

मैं तुमसे कहता रहा हूं कि यदि छींक भी आती हो तो छीको मत, खांसो मत। लेकिन यदि तुम्हारे गले में खराश चलती हो तो तुम क्या करोगे? यदि तुम उसे रोकने का प्रयास करोगे तो वह और भी तेज हो जायेगी। यदि तुम उसे रोकोगे तो वह और भी जोर से आयेगी क्योंकि यह एक प्रकार का दमन है। और तुम्हें खांसना ही पड़ेगा। या यदि तुम्हें लगे कि छींक आ रही है, तो तुम क्या करोगे? यदि तुम उसे रोकोगे तो वह और भी बलवती हो जायेगी। वह पहले से भी ज्यादा जोर से आयेगी।

लेकिन एक रास्ता है : यदि तुम्हें लगे कि गले में खराश हो रही है और तुम खांसना चाहते हो, तो गले को ढीला छोड़ दो। उसे रोको मत; सिर्फ गले को ढीला कर दो। खराश के प्रति उदासीन हो जाओ और गले को ढीला छोड़ दो। इसे तनाव न दो क्योंकि तनाव और अधिक खराश पैदा करेगा। गले को ढीला छोड़ दो और इसके प्रति उदासीन हो रहो। ऐसा महसूस करो कि उससे तुम्हारा कुछ लेना—देना नहीं है। और कुछ ही क्षणों में खराश चली जाएगी। यदि तुम्हें लगे कि छींक आ रही है, उसके प्रति उदासीन हो जाओ, उसके लिए कुछ भी मत करो। उस हिस्से को ढीला छोड़ दो जहां तुम्हें लगे कि छींक जोर लगा रही है, और उसके प्रति उदासीन हो जाओ।

उस उदासीनता में, सौ में से निन्यानबे मौकों पर छींक विलीन हो जायेगी। सौ में से सिर्फ एक ही संभावना है कि छींक आये—लेकिन वह भी तुम्हें बाधा नहीं पहुंचायेगी, क्योंकि तुम उसके प्रति इतने उदासीन हो कि यदि वह आये भी तो भी तुम्हें ऐसे ही लगेगा जैसे वह किसी और को आई है। तुम इतने ज्यादा उससे अलग हो कि यदि वह आती भी है तो भी उससे कोई अंतर नहीं पड़ता। भीतर तुम अविचलित ही रहोगे।

और मैं तुम्हें यह नहीं कह रहा हूं कि छींको मत क्योंकि इससे दूसरों को बाधा पहुंचती है—नहीं। और मैं तुमसे यह भी नहीं कह रहा हूं कि खांसो मत क्योंकि दूसरों को इससे बाधा पहुंचती है। वह बात नहीं है। तुम स्वयं गड़बडा जाओगे। तुम सारे प्रयास का मूल बिंदु ही चूक जाओगे; सारी मेहनत व्यर्थ हो जायेगी।

सुबह के ध्यान में तनाव रहित होओ। तीसरे चरण के बाद विश्रामपूर्ण होओ। एक बात और तुम्हें स्मरण रखनी है : सुबह के ध्यान में जब मैं कहूं कि 'स्टाप' अथवा जब संगीत रुक जाये, तो अपने शरीर को व्यवस्थित मत करो। कोई आसन मत बनाओ, नीचे लेटो भी मत। जैसा है वैसा ही शरीर को छोड़ दो। तत्क्षण वहीं पर रुक जाओ, चाहे वह कितना ही असुविधापूर्ण हो।

तुम कूद रहे थे और वह स्थिति कोई आराम की नहीं है, उसी स्थिति में अडिग रह जाओ, उसको बदलो नहीं। जैसे ही तुम्हें पता चले कि संगीत बंद हो गया है, तुम भी रुक जाओ। बिलकुल मृत हो जाओ। क्योंकि तुम अपने शरीर को आरामपूर्ण बना सकते हो, तुम लेट सकते हो, लेकिन इस अंतराल से ही ऊर्जा में गड़बड़ी हो जायेगी, इस अंतराल से दिशा बदल जायेगी।

तीन चरणों में तुमने एक जीवंत शक्ति, एक बाढ़ जैसी शक्ति पैदा की थी। अब सिर्फ अपने शरीर को सुविधा देकर तुम उसे भूल ही जाओगे, और तुम्हारा ध्यान विचलित हो जायेगा। ऐसा मत करो। जब मैं कहूं "स्टाप! " तो तुरंत रुक जाओ—वहीं जैसे हो। और धोखा देने की कोशिश मत करो कि कौन देख रहा है! क्यों न शरीर को थोड़ा आरामदायक स्थिति में कर लें। इससे किसी को क्या लेना—देना! तुम अपने को ही धोखा दे रहे हो।

एक बात और! दूसरे चरण में, जब तुम अपने सारे दमित भावों को व्यक्त कर रहे होते हो, जब तुम रेचन में पूरे पागल हो गये होते हो, तो एक बात बड़े जोर से करो : अपने चेहरे की मांस—पेशियों को सिकोड़कर ढीला छोड़ दो। सिकोड़ो और छोड़ो। तुम्हारा शरीर इतना तनावपूर्ण नहीं है, जितना कि तुम्हारा चेहरा, क्योंकि तुम्हारा चेहरा तुम्हारे सारे तनावों का केंद्र बिंदु है। और तुम्हारा चेहरा सर्वाधिक अभिव्यक्ति करता है, इसीलिए चेहरा सर्वाधिक दमन करने वाला हो जाता है। अपने चेहरे से ही तुम दबाते हो या अभिव्यक्त करते हो। इसलिये दूसरे चरण में, सारे शरीर से अभिव्यक्त करो, लेकिन इसे भी स्मरण रखो : अपने चेहरे को खींचो तथा ढीला छोड़ो, खींचो तथा ढीला छोड़ो। इस ढंग से बहुत—से दमित भाव आसानी से निकल जायेंगे।

विश्राम कोई करने की बात नहीं है, वस्तुत: तुम विश्राम कर नहीं सकते। कोई भी नहीं कर सकता, क्योंकि विश्राम कुछ भी करने के विरुद्ध है। तुम सिर्फ करना छोड़ सकते हो, और विश्राम घटित होता है। इसलिए जब मैं कहूं "स्टॉप! "और संगीत ठहर जाये, तो पूर्णतया रुक जाओ जैसे भी तुम हो, फिर कुछ भी मत करो। तुम सिर्फ रुक जाओ—सब करना बंद कर दो! जरा भी हलचल नहीं। तब फिर एक बहुत गहरी शांति घटित होगी, और तब तुम्हें अंतर पता चलेगा। तुम अपने को आरामपूर्ण स्थिति में रखने की चेष्टा कर रहे थे, अब से अपने शरीर को आरामपूर्ण स्थिति में रखने की कोशिश मत करो।

दोपहर के ध्यान में भी कीर्तन के बाद, जब संगीत रुके, तो तुम भी रुक जाओ—जैसे भी तुम हो। अचानक सारी क्रिया रुक जाती है और सारी ऊर्जा भीतर की ओर चली जाती है; उसके लिए कोई अवसर इधर—उधर जाने का नहीं है। और यही बात शाम के ध्यान के लिए भी है, जो कि हम अभी करेंगे। जब मैं कहूं "स्टाप! " तो पूरी तरह रुक जाओ जैसे भी तुम हो। और फिर पुन: जब संगीत बजे और तुम अपने आनंद को अभिव्यक्त करने लगो, केवल तभी पुन: हिलना—डुलना शुरू करो। इन दोनों के बीच के अंतराल में न—करने में रहो, और विश्राम घटित होगा।

दूसरा प्रश्न

परम अनुभव पाना इतना कठिन क्यों है?

नहीं, ऐसा नहीं है। उसे पाना कठिन नहीं है। वह तो बहुत ही सरल है। लेकिन चूंकि वह इतना सरल है, वह कठिन हो गया है। हमारा अहंकार सदा उसमें रस लेता है जिसे कि पाना कठिन है, क्योंकि तब अहंकार को एक चुनौती मिलती है। अहंकार का कोई रस उसे करने में नहीं है जो सरल है। यही समस्या है। अहंकार का रस ध्यान करने में नहीं है; यही एकमात्‌र कारण है कि वह इतना कठिन प्रतीत होता है।

यह इतना सरल है—इतना सरल है कि इससे कोई चुनौती नहीं है। इससे कोई महत्वाकांक्षा पूरी नहीं होती; तुम्हें संसार की कोई शक्ति इसके पाने से नहीं मिलती; तुम संसार में कोई सम्मान इसके द्वारा नहीं पा सकते। वस्तुत: संसार में तुम्हें इसके द्वारा ऐसा कुछ भी नहीं मिलता जो कि दिखाई देता हो। बल्कि इसके विपरीत तुम कुछ खोते चले जाते हो, और आखिर में तुम स्वयं को खो देते हो। यह कठिन है क्योंकि तुम अपने को खोना नहीं चाहते। यदि तुम अपने को खोने को राजी हो जाओ तो यह बहुत सरल है। एक क्षण में घटना घट सकती है। वरना तुम्हें बहुत—से जीवन लग जायेंगे, और घटना नहीं घटेगी।

प्रश्न समय का नहीं है, प्रश्न गहरा है। प्रश्न यह है कि क्या तुम अपने को खोने को राजी हो? लेकिन तुम फिर पूछ सकते हो कि क्यों अपने को खोना इतना कठिन है? क्यों लोग आसानी से खोने को तैयार नहीं हो जाते? उसका कारण है, और कारण यह है कि स्वयं को खोना मृत्यु जैसा है और कोई मरना नहीं चाहता। प्रत्येक जीना चाहता है—ज्यादा जीना चाहता है। प्रत्येक मृत्यु से बचना चाहता है।

निश्चित ही कोई इससे बच नहीं सकता। कोई भी इससे बचने में सफल नहीं होता। मृत्यु घटती है। मृत्यु ही एकमात्र निश्चित बात है। बाकी सब अनिश्चित है जीवन में। केवल मृत्यु ही निश्चित है। मृत्यु तो होगी ही; चाहे तुम उससे बचने का प्रयास करो या न करो। तुम उससे बचकर नहीं भाग सकते। एक अर्थ में वह तभी घट गई जिस क्षण तुम पैदा हुए। आधी तो तभी घट गई, और बाकी आधी पीछे आने को है। और इन दो आधों को अलग नहीं किया जा सकता।

बुद्ध बार—बार कहते हैं, "एक बार पैदा हो गये तो तुम्हें मरना ही पड़ेगा। " तुम जन्म के साथ ही मृत्यु में भी प्रवेश कर गये। यह एक प्रवेश है। एक अर्थ में तुम मर ही गये हो। तुमने मरना शुरू कर ही दिया है। जिस क्षण तुम जन्मे उसी क्षण से तुमने मरना शुरू कर दिया। तुम्हारी मृत्यु की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई।

लेकिन हम मृत्यु से डरते हैं, और हम जीवन को पकड़ते हैं। क्यों हम जीवन को पकड़ते हैं? और क्यों हम मृत्यु से डरे हुए हैं? तुमने इस पर कभी सोचा नहीं होगा। इसका कारण कि क्यों हम जीवन को पकड़े हैं और क्यों मृत्यु से भयभीत हैं, सोचने में नहीं आता। हम जीवन को इसलिए पकड़े हैं क्योंकि हमें जीना नहीं आता। हम जीवन से बहुत बुरी तरह से चिपके हैं क्योंकि वास्तव में हम जीवंत नहीं हैं। और समय भाग रहा है, और मृत्यु निकट और निकट आती जा रही है। और हम डरे हैं कि मृत्यु तो निकट आती जाती है और हम अभी तक जीये ही नहीं।

यही भय है : मृत्यु आ जायेगी और हम अभी तक जी न पाये। हम तो जीने की तैयारी ही कर रहे हैं। कुछ भी तैयार नहीं है, जीवन की घटना अभी घटी ही नहीं। हमने उस परम आनंद को नहीं जाना जिसे कि जीवन कहते हैं। हमने उस आनंद को नहीं जाना जिसे जीवन कहते हैं। हमने कुछ भी नहीं जाना। हम सिर्फ भीतर बाहर सांस ही लेते रहे। हम तो सिर्फ नाम को जिंदा हैं। जीवन तो एक आशा है, और मृत्यु निकट आ रही है। और यदि जीवन की घटना अभी भी नहीं घटी, और मृत्यु उसके पहले आ जाती है, तो सचमुच डरने की बात ही है, हम मरना नहीं चाहेंगे।

केवल वे ही लोग जो कि जी लिये हैं, सच में जीए हैं, केवल वे ही मरने को, मौत का स्वागत करने को, अनुग्रह भाव से स्वीकार करने को राजी होंगे। तब मृत्यु शत्रु नहीं है। तब मृत्यु तृप्ति बन जाती है।

यदि तुम वाकई जी लिये, और जान लिये कि जीवन क्या है, तब फिर मृत्यु जीवन की समाप्ति नहीं है। तब वह तृप्ति है, तब वह शिखर है, पराकाष्ठा है, तब वह आखिरी भेंट है जो कि जीवन तुम्हें दे सकता है—और श्रेष्ठतम भी।

जीवन दो चीजें देता है—एक है प्रेम, दूसरी है मृत्यु। और दोनों ही खतरनाक हैं क्योंकि दोनों में ही तुम्हें मरना होगा। प्रेम में भी तुम्हें अपने को मिटाना होगा; मृत्यु में भी तुम्हें अपने को मिटाना होगा। और तुम मृत्यु से इतने डरे हुए हो, अपने को खोने से इतने भयभीत हो कि भीतर गहरे में तुम प्रेम से भी डरे हुए हो। तुम प्रेम की बातें तो करते हो, लेकिन कोई भी प्रेम करने को राजी नहीं है क्योंकि प्रेम मृत्यु जैसा है। प्रेम और मृत्यु, ये प्राकृतिक घटनाएं हैं।

यदि मनुष्य प्राकृतिक ढंग से जीये तो प्रेम भी होगा और मृत्यु भी घटित होगी, और दोनों ही शिखर होंगे। प्रेम है दूसरे व्यक्ति में मिटना, और मृत्यु है समष्टि में मिटना। किंतु प्रेम आत्यंतिक मिटना नहीं है, तुम उसमें से वापस आ जाते हो। तुम दूसरे व्यक्ति में से पुन: वापस आ जाओगे, वह पुनर्जीवन है। और मृत्यु भी आखिरी नहीं है क्योंकि तुम पुन: जन्मोगे। तुम समष्टि में से पुन: वापस लौट आओगे, और तुम किसी शरीर में प्रवेश कर जाओगे और फिर से शरीर धारण कर लोगे। ध्यान परम मृत्यु है : वह प्रेम तथा मृत्यु दोनों के पार है। तुम उसमें से वापस नहीं आ सकते। इसीलिए यह सर्वाधिक खतरनाक है। मृत्यु में भी संभावना है कि तुम फिर से लौटकर आ जाओगे, कि तुम दोबारा जन्म ले लोगे। तुम उसमें मिट जाओगे, लेकिन तुम उसमें पुन: अपने को संगठित कर लोगे, और पुन: विकसित हो जाओगे। अत: मृत्यु सिर्फ एक परिवर्तन का मार्ग होगी, लेकिन ध्यान तो आखिरी मृत्यु होगी—आत्यंतिक, परम मृत्यु। तुम उसमें से वापस नहीं आ सकते।

इसीलिए इतना डर है। और इस भय के कारण ही यह इतना कठिन लगता है। वरना यह इतना ही सरल है जितना और कुछ भी सरल हो सकता है। लेकिन प्रेम कठिन है, इसलिए ध्यान कठिन होगा। मृत्यु कठिन है, इसलिए ध्यान भी कठिन होगा।

इसीलिए मेरे लिए प्रेम इतना महत्वपूर्ण है। यदि तुम प्रेम कर सको तो तुम आसानी से ध्यान कर सकोगे। लेकिन सारा समाज प्रेम के खिलाफ है, सारी संस्कृति प्रेम के विरुद्ध है। वे सारी सावधानी लेते हैं कि कहीं प्रेम घटित न हो जाये। उन्होंने विवाह निर्मित किया है ताकि प्रेम पैदा न हो सके। विवाह से उन्होंने उसका द्वार ही बंद करने का प्रयास किया है। इसके पहले कि तुम प्रेम में पड़ो जो कि मिटने की प्रक्रिया है, उन्होंने तुम्हारी रक्षा कर दी। उन्होंने प्रेम को अनैतिक बनाने के लिए सब तरह की शिक्षाएं बना दीं, सब तरह की व्यर्थ बातें तुम्हारे मस्तिष्क में भर दी हैं।

और बुनियादी रूप से तुम भी भयभीत हो क्योंकि प्रेम में अपना व्यक्तित्व तुम्हें खोना पड़ेगा। तुम जो हो वही बने रहना चाहते हो, इसलिए तुम अपने को बचाते हो। यदि तुम प्रेम में भी जाते हो तो तुम बड़ी सुरक्षा के साथ जाते हो—बहुत सावधानी के साथ। तुम प्रेम में भी अपने व्यक्तित्व को बचाए रखते हो। तुम एक अहंकार ही बने रहते हो। इसलिए दो अहंकार मिलते हैं, लेकिन यह मिलन ऊपरी ही होने वाला है। वे निकट आ सकते हैं, लेकिन मिलन कभी नहीं होता। वे एक दूसरे में कभी भी घुल मिल नहीं पाते वे एक दूसरे में कभी भी अपने को खो नहीं पाते।

यदि तुम प्रेम कर सको तो ध्यान बड़ा सरल होगा। संसार ज्यादा धार्मिक होगा यदि प्रेम को स्वीकार कर लिया जाये। यदि प्रेम को सहयोग दिया जाये और प्रेम तुम्हारे चारों ओर एक स्वाभाविक वातावरण हो जाये,

तो ध्यान बहुत सरल हो जायेगा क्योंकि प्रेम के माध्यम से तुम एक स्वाद जानोगे कि मिटने का क्या अर्थ है, भले ही यह एक क्षण के लिए ही क्यों न हो। फिर तुम लंबे क्षणों के लिए मिटने की हिम्मत कर सकते हो।

और यदि तुम प्रेम कर सको तो तुम मृत्यु से नहीं डरोगे। प्रेमी मृत्यु से कभी नहीं डरते। और यदि कोई आदमी मृत्यु से डरा हुआ है तो तुम पक्का समझ सकते हो कि न तो उसने प्रेम किया है और न ही किसी ने उसको प्रेम किया है। मृत्यु का भय ही बताता है कि जीवन में प्रेम नहीं है। प्रेमी मरने के लिए सरलता से तैयार रहते हैं। वे एक दूसरे के लिए मर सकते हैं। वे तथाकथित जीवन की परवाह नहीं करते क्योंकि उन्होंने इससे भी ऊंचा जीवन जान लिया है, उन्होंने उच्चतर जीवन का स्वाद चख लिया है। वे इस जीवन की बहुत परवाह नहीं करते।

लेकिन देखो उन लोगों की ओर जिन्होंने कभी प्रेम नहीं किया—वे सदा मृत्यु से भयभीत होंगे। कंजूसों को देखो—वें सदा मृत्यु से डरे हुए होंगे। और कंजूस लोग वे ही होते हैं जिन्होंने कभी किसी को प्रेम नहीं किया, क्योंकि यदि तुमने एक व्यक्ति को भी प्रेम किया तो फिर तुम पैसे को कभी प्रेम न कर सकोगे। पैसा तो परिपूरक है। जब तुम किसी व्यक्ति को प्रेम नहीं कर सकते, जब तुम एक जिंदा आदमी को प्रेम नहीं कर सकते, तो तुम मृत पैसे को प्रेम करते हो।

कंजूस, जो कि अपनी संपत्ति से चिपटे रहते हैं, उन्हें पता भी नहीं होता कि प्रेम क्या होता है? उनका सारा प्रेम मृत पैसे की तरफ चला जाता है। और क्यों चला जाता है? उसके गहरे संबंध हैं। एक व्यक्ति जो कि धन के प्रति बहुत आसक्त है, वह मृत्यु से डरेगा। वस्तुत: जो आदमी मृत्यु से भयभीत है वह धन से बहुत प्रेम करेगा, क्योंकि धन उसे मृत्यु के खिलाफ एक सुरक्षा का उपाय मालूम पड़ेगा। यदि तुम्हारे पास धन है, तो तुम्हें सुरक्षा मालूम पड़ेगी। यदि तुम्हारे पास धन नहीं है तो तुम्हें असुरक्षा मालूम पड़ती है। मृत्यु कभी भी घट जायेगी और तुम कुछ भी नहीं कर सकोगे। धन से तुम्हें लगता है कि तुम कुछ कर सकते हो। धन सहायक होगा।

एक व्यक्ति जो कि प्रेम करता है वह धन से प्रेम नहीं करेगा, क्योंकि जो व्यक्ति प्रेम करता है वह मृत्यु से डरा हुआ नहीं होगा। और यदि कोई मृत्यु से डरा हुआ नहीं है तो उसकी कोई पकड़ नहीं होगी, आसक्ति नहीं होगी, धन की विक्षिप्त दौड़ नहीं होगी। यह बात ही असंभव है।

यदि तुम प्रेम कर सको, तो तुम मृत्यु को आसानी से स्वीकार कर लोगे। वह एक गहरा विश्राम होगा, एक लंबी नींद, अस्तित्व में खूबसूरत ढंग से समा जाना होगा। और यदि तुम मृत्यु के प्रति ग्राहक हो सको तो ध्यान बिलकुल सरल बात होगी। सारी समस्या तो यह है कि प्रेम नहीं है। जब मृत्यु ही भय हो गई है तो ध्यान कठिन हो जायेगा, क्योंकि वह दोनों है—प्रेम और मृत्यु। जहां तक तुम्हारे अहंकार का प्रश्न है वह मृत्यु है, और जहां तक दिव्य अस्तित्व का संबंध है वह प्रेम है।

मैं ध्यान की परिभाषा एक गणित के सूत्र की तरह करता हूं : ध्यान = प्रेम + मृत्यु। प्रेम अस्तित्व के प्रति, समग्र के प्रति और अहंकार की मृत्यु। वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, क्योंकि तुम समग्र को तभी प्रेम कर सकते हो यदि तुम अपने को छोड़ने को राजी हो। यदि तुम मरने को तैयार हो, तभी तुम फिर से ब्रह्म की भांति अस्तित्व में जन्म सकते हो।

जीसस कहते हैं कि यदि तुम स्वयं को खो दो तो ही तुम बच सकते हो। और जो अपने को बचाने का प्रयास करेंगे वे खो देंगे।

यह कठिन है क्योंकि तुमने प्रेम नहीं किया है। यह कठिन है क्योंकि तुम अभी जीये नहीं हो। यह अपने आप में कठिन नहीं है। ध्यान अपने आप में बहुत सरल है—एक सहज घटना है। यदि कोई मनुष्य प्राकृतिक ढंग से विकसित हो, प्रेम में गिरे, जाने कि प्रेम क्या है, जाने कि प्रेम कैसा जीवन है और कैसी मृत्यु है, इसके बाहर निकले, मृत्यु का स्वाद जानता हो, वह मृत्यु को प्रेम करेगा—तब वह मृत्यु को जीवन के विरुद्ध नहीं समझेगा।

मृत्यु का तब गुण ही बदल जाता है। तब वह जीवन का अंतिम बिंदु, आखिरी शिखर हो जाती है। तब ध्यान बड़ा सरल हो जाता है।

तुममें से वे लोग जो कि खोने को राजी हैं, वे समझ सकते हैं कि वह बहुत सरल है। तुममें से जो खोने को राजी नहीं हैं, वे नहीं समझ सकते हैं। एक मित्र मेरे पास आज आये। वे बोले, "जो भी आप कहते हैं वह बिलकुल ही सत्य मालूम पड़ता है। मैं पूर्णतया संतुष्ट हूं मेरा मन आपके साथ पूरी तरह सहमत है लेकिन मुझे यह ध्यान करने के लिए मत कहें। क्या यह संभव नहीं है, "उन मित्र ने पूछा, "क्या यह संभव नहीं है कि आपके विचारों से पूरी तरह सहमत हो जाने से मुझे बुद्धत्व प्राप्त हो जाये? क्या इस ध्यान में जाना आवश्यक है?

क्या है भय? तुम मुझसे बौद्धिक रूप से सहमत हो सकते हो, लेकिन तुम अपने को नहीं खो रहे हो। और वस्तुत: यदि तुम भीतर गहरे झांको तो तुम्हें सारी प्रक्रिया ही उलटी चलती दिखाई पड़ेगी। तुम मुझसे बौद्धिक रूप से सहमत हो क्योंकि तुम्हें सदा से लगता रहा है कि मैं जो भी कहता हूं वह सत्य है। वस्तुत: तुम मेरे साथ सहमत नहीं हो, मैं तुम्हारे साथ सहमत हूं। मैं तुम्हें स्वीकारयोग्य मालूम पड़ता हूं। इससे तुम्हारा अहंकार ही पुष्ट होता है। "बिलकुल सही! " तुम अपने मन में कहते हो, "यही तो मैं भी सोच रहा था सदा से। ठीक, आप बिलकुल ठीक हैं क्योंकि यही मेरा भी विचार था। " तुम्हें संतोष मालूम होता है, तुम्हारा अहंकार मजबूत होता है। यह तुम्हें बुद्धत्व की ओर नहीं ले जायेगा, उल्टे यह तुम्हें और भी गहन अज्ञान में ले जायेगा, क्योंकि अहंकार,.,।

क्या है भय? ध्यान में जाने में तुम्हें भय है कि तुम्हें अपना अहंकार खोना पड़ेगा; तुम्हें अपनी पहचान खोनी पड़ेगी। और यह ध्यान भी एक पागलपन का ध्यान है। यदि मैं तुम्हें कहूं "केवल बुद्धासन में बैठ जाओ, अपनी आंखें बंद कर लो, "तुम सरलता से बैठ जाओगे क्योंकि उसमें कोई डर नहीं है। तुम आसानी से बैठ सकते हो क्योंकि वस्तुत: उसमें कुछ भी अपेक्षा नहीं है। लेकिन इस विक्षिप्त ध्यान में जहां तुम्हें अपना परिचय, अपना अहंकार, अपनी प्रतिमा आदि सब खोना पड़ता है और तुम बिलकुल पागल हो जाते हो और तुम्हें लगता है कि अब तो तुम्हारा नियंत्रण भी गया.. और जल्दी ही पूरे समूह का मन तुम पर काबू करने लगता है।

तब तुम नाचने लगते हो; लेकिन तुम भलीभांति गहरे में जानते हो कि तुम नहीं नाच रहे हो। पूरा समूह नाच रहा है, तुम तो सिर्फ उसके हिस्से हो गये हो। तुम उसे बंद भी नहीं कर सकते। वस्तुत: एक क्षण ऐसा आता है जबकि तुम उसे बंद नहीं कर सकते, तुम अपने वश में नहीं हो। तुमसे विराट कुछ है जो कि तुम पर अपना वश जमा लेता है, तुमसे विराट हावी हो गया है। यही भय है।

यदि तुम सिद्धासन में बुद्ध की तरह बैठ जाओ तो तुम अपने नियंत्रण में रहते हो। लेकिन यह ध्यान तुम्हें नियंत्रण से बाहर ले जाता है। वस्तुत: यह तुम्हारे नीचे की जमीन सरका देता है। तुम एक खाई में गिरने लगते हो, किसी तूफान में जहां तुम नहीं बचते। कुछ गहरा, कुछ विराट, कुछ अधिक शक्तिशाली तुम पर काबू कर लेता है। अब ऐसा नहीं है कि तुम नाच रहे हो; कुछ और ही है जो कि नाच रहा है; तुम तो उस विराट नाच के एक हिस्से हो। यह बात भय देने वाली है। यही बात मुश्किल पैदा करती है।

इसलिए मैं तुम्हें कहूंगा कि खोने को तैयार रहो और बात बिलकुल सरल हो जायेगी। रोको, और सब मुश्किल हो जाता है। प्रतिरोध ही इसे कठिन बना देता है। छोडो अपने को और सब आसान हो जाता है। और उन्हीं मित्र ने आगे और भी पूछा है। वे कहते हैं?

मुझे ऐसा लगता है कि यह प्रकृति की मर्जी है कि उसने इसको अत्यंत कठिन बना दिया है ताकि मनुष्य को विकसित होने में युगों लग जाये इसके पहले कि वह पहुंचे। क्या इसके पीछे परमात्मा का कुछ प्रयोजन नहीं है कि आदमी को वहां पहुंचने में इतना समय लगता है?

आदमी का मन बड़ा चालाक है। तुम दूसरों पर जिम्मेवारी डालते रहते हो; "यह प्रकृति का ढंग है कि इसको कठिन बनाया है। " तुम्हीं कठिन बनाये दे रहे हो, यह कोई प्रकृति का ढंग नहीं है। प्रकृति का ढंग तो हमेशा सीधा और सरल है। प्रकृति का अर्थ है प्राकृतिक, सहज, सरल।

प्रकृति में कुछ भी कठिन नहीं है। केवल आदमी चीजों को जटिल बना देता है, उन्हें कठिन और मुश्किल कर देता है। प्रकृति तो सहज प्रवाह है। लेकिन तुम धोखा दे सकते हो। तुम कह सकते हो कि यही प्रकृति का ढंग है कि ध्यान कठिन है। तब तुम्हारी मुक्ति हुई। तब तुम्हारा कुछ लेना—देना नहीं और तुम कुछ भी कर नहीं सकते। यही प्रकृति का ढंग है अत: तुम क्या कर सकते हो?

तुम सिर्फ प्रतीक्षा कर सकते हो; अथवा जो भी तुम करते आ रहे हो उसे करते जा सकते हो। तुम्हें ध्यान करने की आवश्यकता नहीं। तुमने सारी जिम्मेदारी प्रकृति पर डाल दी।

लेकिन यदि यह बात वास्तव में सही है तो फिर ध्यान घटेगा। यदि तुम वास्तव में सारी जिम्मेवारी, सारा दायित्व—स्मरण रहे, सारा—प्रकृति पर छोड़ देते हो, तो ध्यान घटेगा। तब फिर कोई आवश्यकता नहीं है.... कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। लेकिन जब तुम दुखी होओ, तो किसी से भी कुछ कहने की जरूरत नहीं है। दुखी होना और जानना कि यह प्रकृति का ढंग है। जब दर्द हो तो उसका इलाज मत मांगना, जानना कि यही प्रकृति का ढंग है। यदि तुम इसे समग्रता से कर सकी, तो फिर ध्यान की कोई भी आवश्यकता नहीं है, ध्यान तब हो ही गया।

लेकिन तुम चालाक हो। केवल ध्यान के साथ ही तुम कहते हो कि यह प्रकृति का ढंग है, बाकी किसी बात के लिए नहीं कहते। बाकी सबके लिए तुम संघर्ष करते हो, तुम प्रयास करते हो। यदि तुम गरीब हो तो तुम अमीर होने की पूरी कोशिश करते हो, और नहीं कहते कि यह प्रकृति का ढंग है। तुम नहीं कहते कि जब मैं सचमुच ही इस योग्य हो जाऊंगा तो प्रकृति मुझे अमीर बना देगी। तब तुम प्रकृति के लिए प्रतीक्षा नहीं करते।

यदि तुम सच में ईमानदार हो, तो छोड़ो सब कुछ प्रकृति पर। तब तुम्हें ध्यान करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह सब कुछ प्रकृति पर छोड़ना ही गहरे से गहरा ध्यान होगा। लेकिन यदि तुम ईमानदार नहीं हो तो तुम धोखा दे सकते हो, ताकि जो भी तुम चाहो करते रही, और जो तुम नहीं करना चाहो उसे प्रकृति के कंधों पर डालते रहो।

इस चालाकी के प्रति सजग रहो। हम यही कर रहे हैं। मैं तो तैयार हूं यदि तुम सचमुच ही सब कुछ प्रकृति पर छोड़ सको, तो फिर तुम्हारे लिए कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं ' है। लेकिन यदि तुम समग्ररूप से छोड़ने को तैयार नहीं हो तो थोड़ी अपने ऊपर कृपा करो, ध्यान को मत फेंको। ऐसा न कहो कि प्रकृति का अपना कुछ तात्पर्य है इसलिए प्रकृति ने ध्यान को इतना कठिन बना दिया है। प्रकृति उसे कठिन नहीं बना रही है। वे ही मित्र कहते हैं :

क्या इसके पीछे परमात्मा का कुछ प्रयोजन नहीं है कि आदमी को वहां पहुंचने में इतना समय लगता है?

तुम उसे प्रकृति पर ही नहीं डाल रहे बल्कि तुम उसे सुंदर तथा दिव्य भी बना रहे हो : "परमात्मा का कुछ उद्देश्य छिपा है इसके पीछे, इसीलिए तुम लक्ष्य तक नहीं पहुंच पा रहे हो। इसीलिए तुम ध्यान को उपलब्ध नहीं हो पा रहे हो। इसीलिए समाधि इतनी कठिन है। " नहीं! तुम्हीं बाधा खड़ी कर रहे हो ईश्वरीय प्रयोजन में। और एक ढंग से कोई ईश्वरीय प्रयोजन नहीं हो सकता है क्योंकि अस्तित्व उद्देश्य रहित है। यह सिर्फ एक खेल है।

उद्देश्य मनुष्यता का हिस्सा है। तुम्हारा उद्देश्य है। अस्तित्व का कोई उद्देश्य नहीं है। उद्देश्य के होने में कोई सार भी नहीं है। अस्तित्व तो एक प्रवाह—अपनी ऊर्जा का उत्फूल्ल प्रवाह है। यह एक उत्सव है, न कि उद्देश्य। यह एक सतत महोत्सव है। अस्तित्व कितने ही रूपों में आनंद मना रहा है। कहीं कोई उद्देश्य नहीं है।

और अस्तित्व को कोई चिंता नहीं है यदि तुम आनंद को उपलब्ध नहीं होते। यह सिर्फ तुम्हारी चिंता है। यदि तुम नहीं पहुंचते तो तुम दुख भोगोगे। तुम्हारे नहीं पहुंचने से अस्तित्व दुखी नहीं है। और अस्तित्व तुम्हें जबरदस्ती भी नहीं करेगा कि तुम आनंद में जाओ। यह तुम पर निर्भर है।

अस्तित्व एक गहन स्वतंत्रता है। यदि तुम दुख पाना चाहो तो दुख पाओ, यदि तुम आनंद में डूबना चाहो तो आनंद में डूबो। यह तुम्हारा अपना चुनाव है। लेकिन यह बात हमारी समझ के बाहर है कि सभी कुछ हमारा चुनाव है, क्योंकि तब हम स्वयं जिम्मेवार हो जाते हैं। यदि तुम्हें पता चले कि तुम्हारी पीड़ा के लिए तुम्हीं जिम्मेवार हो तो तुम्हें बडा बुरा लगेगा। इससे यह बेहतर लगता है कि हम किसी और को हमारी पीड़ा के लिए जिम्मेवार ठहरा दें।

लेकिन स्मरण रहे, यदि कोई और तुम्हारे दुख का कारण है तो फिर तुम कभी भी मुक्त नहीं हो सकते। तब कोई मुक्ति संभव नहीं है। लेकिन यदि तुम्हीं कारण हो अपने दुख के तो फिर मुक्ति तुम्हारे हाथ में है; तुम कुछ कर सकते हो और इसे बदल सकते हो।

मैं तुमसे कहता हूं—तुम्हीं कारण हो अपने स्वर्ग और अपने नर्क के। यदि तुम नर्क में पड़े हो तो यह तुम्हारा ही चुनाव है। और जिस क्षण तुम निश्चय कर लो उसी वक्त तुम उससे बाहर आ सकते हो। कोई तुम्हें रोकनेवाला भी नहीं। कोई तुमसे कहेगा नहीं कि मत जाओ। दरवाजे तुम्हारे खिलाफ बंद नहीं हैं। वास्तव में कोई दरवाजे ही नहीं हैं, और कोई शैतान दरवाजे पर नहीं खड़ा है। तुम्हें बाहर निकलने के लिए किसी पासपोर्ट की भी जरूरत नहीं है। यह केवल तुम्हारा ही निर्णय है कि तुम वहां पर हो।

तुम पीड़ा में हो क्योंकि तुमने पीड़ा में रहने का निर्णय कर रखा है। जिस क्षण भी तुम तय कर लो उसी क्षण तुम इसके बाहर आ सकते हो। तुम आनंद में हो सकते हो यदि तुम आनंद में होने का निर्णय कर लो। तुम्हारा निर्णय ही तुम्हारा होना है। जो भी तुम हो, तुम्हारा ही चुनाव है। तुमने ऐसा होना चुना है, इसलिए ऐसे हो। किसी और चीज पर जिम्मेवारी डालने की कोशिश मत करो—प्रकृति पर, परमात्मा पर, धर्म पर, नियति पर। उन पर मत थोपो।

लेकिन यदि तुम्हें वस्तुत: ऐसा लगता है कि तुम कुछ भी नहीं कर सकते हो, तुम असहाय हो, तो फिर मैं कहता हूं कि सारी जिम्मेवारी डाल दो। ये ही दो तरीके हैं। सारी जिम्मेवारी डाल दो, फिर तुम्हें कुछ भी नहीं करना है और सब कुछ घटित हो जायेगा। क्योंकि जैसे ही तुम सारी जिम्मेवारी फेंक देते हो तो अहंकार भी फेंक दिया जाता है, फिर अहंकार खड़ा नहीं रह सकता। यदि तुम सारा दायित्व प्रकृति पर, या परमात्म शक्ति पर, या अ, ब, स, पर डाल देते हो तो अहंकार नहीं बचता। और जब अहंकार नहीं बचता तभी बात बनती है।

और यदि तुम समग्र दायित्व नहीं डाल सकते, पूर्णतया समर्पण नहीं कर सकते, यदि तुम ऐसा महसूस नहीं कर सकते कि तुम पूरी तरह से असहाय हो—समग्र शब्द को याद रखना—तो फिर तुम्हें कुछ करना होगा जिससे कि अहंकार को गलाया जा सके। तब प्रयास की जरूरत है।

या तो यह या वह, लेकिन दोनों के बीच में मत डोलते रहो। और दो नावों पर यात्रा करने का प्रयास मत करो। तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। तुम कभी कहीं नहीं पहुंचोगे।

और मैंने ऐसा देखा है कि जब मैं लोगों से कहता हूं कि सब कुछ परमात्मा पर छोड़ो, तो वे कहते हैं कि मैं कैसे छोड़ सकता हूं? मैं कैसे समर्पण कर सकता हूं? मैं नहीं जानता कि परमात्मा क्या है। जब तक मैं उसे जान न लूं मैं सब कुछ उस पर कैसे छोड़ सकता हूं? वे कहते हैं, यह जरा कठिन है। वे कहते हैं कि कोई रास्ता बतायें कि हम कुछ कर सकें।

यदि मैं उनको कहता हूं कि यह करो ?ं इस विधि से चलोगे तो पा लोगे, तो तुरंत वे कोई न कोई बाधा उपस्थित कर देते हैं। वे कहते हैं कि आदमी तो असहाय है। हम क्या कर सकते हैं। हम इतने असहाय हैं, सिर्फ कठपुतली हैं नियति के हाथों में, जो कि अज्ञात है।

यदि मैं उनको कहता हूं कि सब कुछ नियति पर छोड़ दो तो वे कहते हैं कि यह असंभव है। यदि मैं उनको कहता हूं कि कुछ करो, तब भी वे कहते हैं कि यह असंभव है। मन बड़ा चालाक है और हमेशा बचना चाहता है। उसके प्रति सावधान रहो, केवल तभी कुछ तुम्हारे साथ घट सकता है। वरना तुम अपनी सारी जिंदगी यूं ही भटकते रहोगे और कुछ भी नहीं होने का।

तुमने इसके पहले भी बहुत से जीवन यूं ही गंवा दिये हैं। तुम पहली बार यहां ध्यान के बारे में सुनने के लिए नहीं आये हो—तुमने बहुत बार सुना है। ऐसा नहीं है कि तुम केवल मेरे साथ ही चालाकी कर रहे हो। तुम पहले भी चालाकी कर चुके हो। तुमने बुद्ध को सुना है, तुमने जीसस को सुना है, तुमने कृष्ण को सुना है, तुम वहां मौजूद थे—चेहरे दूसरे थे, स्वभावत:, पर तुम मौजूद थे वहां। तुम बहुत पुराने हो, काफी पुरातन, लेकिन तुम्हारी चालाकी इतनी गहरी है कि बुद्ध भी असफल हो जाते हैं, जीसस आते हैं और चले जाते हैं और तुम अचल बने रहते हो। कोई तुम्हें तुम्हारे मार्ग से विचलित नहीं कर सकता। तुम चलते ही जाते हो। तुम सबको पीछे छोड़ देते हो।

इसलिए तुमसे बात करते समय या तुम्हें ध्यान की ओर ले जाते समय, मैं भलीभांति जानता हूं कि तुम कोई नये नहीं हो। तुमने पहले भी बहुत कुछ किया है, लेकिन कभी भी पूरे हृदय से नहीं किया। और जब तक समग्ररूपेण किसी काम को नहीं करो, कुछ भी नहीं हो सकता। या तो पूरी तरह नियति के साश हो जाओ, परमात्म शक्ति के साथ हो जाओ—फिर तुम नहीं बचोगे। अथवा पूरी तरह किसी ध्यान विधि के साथ हो जाओ, ताकि अहंकार क्रमश: धीरे— धीरे मिटाया जा सके। विधि धीरे— धीरे चलने की बात है, समर्पण समग्र है और अंतिम है। समर्पण एक क्षण की बात है, विधि समय लेगी। मैं तुम्हें विधि दे रहा हूं क्योंकि मैं जानता हूं कि तुम समर्पण नहीं कर सकते।

तीसरा प्रश्न :

मैने सदा आपको समर्पण के बारे में बोलते हुए सुना है और मुझे ऐसा लगता है कि रूपांतरण को उपलब्ध करने के लिए समर्पण ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात है तब फिर समर्पण कैसे करें? उसका क्या अर्थ है क्या विधि है और क्या प्रक्रिया है? और सक्रिय ध्यान का समर्पण की स्थिति में पहुंचने में क्या योगदान है?

समर्पण के विषय में पहली जो बात समझ लेनी है वह यह है कि तुम यह नहीं पूछ सकते कि कैसे। क्योंकि 'कैसे' के पूछते ही विधि आ जाती है, 'कैसे' के साथ उपाय आ जाता है। समर्पण अपने आप में पर्याप्त है। उसे किसी विधि की जरूरत नहीं है। कैसे समर्पण करें पूछने का अर्थ होता है कि कैसे प्रेम करें। और यदि तुम पूछते हो कि कैसे प्रेम करें तो एक बात पक्की है कि प्रेम तुम्हारे लिए नहीं है। क्योंकि कोई यह बात पूछ ही कैसे सकता है कि प्रेम कैसे करें। और यदि किसी को प्रशिक्षित किया जाये, तो जो भी वह प्रेम के बारे में सीखेगा वह झूठ होगा। प्रशिक्षण सब कुछ झूठ कर देगा।

एक बार ऐसा हुआ :

एक युवक मेरे पास सीखने आता था कि प्रेम कैसे करें। और मैं उससे कहता कि जाओ और यह करो और लड़की को ऐसे ऐसे कहो। तो वह जाता और लौटकर मुझे बताता कि क्या—क्या हुआ। लेकिन वह सदा ही असफल रहा। उसने बहुत—सी लड़कियों के साथ कोशिश की, और वह सदा ही असफल रहा क्योंकि सदा कुछ न कुछ गड़बड़ हो जाती। वह तैयार होकर जाता और मैं उसे किसी बात के लिए सिखाता—पढ़ाता, तैयार

करता, लेकिन जीवन में वैसा कभी नहीं होता—लड़की उससे कुछ और बात कह देती और उससे उत्तर नहीं बन पड़ता। तब वह मुश्किल में पड़ जाता। वह वापस लौटकर आता और कहता कि आपने कहा था कि यह उत्तर देना, लेकिन उसने तो ऐसा कभी पूछा ही नहीं। तो मैंने उस युवक को कहा कि यह तो बड़ा मुश्किल मामला है। जब तक कि मैं तुम दोनों को ही तैयार न करूं, लेकिन तब यह सिर्फ एक नाटक हो जायेगा।

तुम समर्पण करना सीख नहीं सकते। यदि तुम कर सको तो कर सकते हो और इससे ज्यादा कुछ भी नहीं है। यदि तुम नहीं कर सको तो छोड़ दो पूरी तरह से, तब किसी विधि के अनुसार चलो। विधि में किसी समर्पण की जरूरत नहीं है; विधि परिपूरक है। क्योंकि तुम समर्पण नहीं कर सकते, इसलिए तुमको कुछ करना पड़ेगा। और उसको करने से वही घटना एक लंबी प्रक्रिया में घटेगी जो कि समर्पण में इसी क्षण घट सकती है।

समर्पण का अर्थ होता है कि तुम्हें ऐसी प्रतीति होती है कि तुम कुछ भी नहीं कर सकते, इसलिए तुम सब कुछ छोड़ देते हो। यह एक समग्ररूपेण असहाय भाव है। तुम कहते हो कि मैं नहीं जानता। तुम कहते हो कि मैं कुछ भी करने में समर्थ नहीं हूं इसलिए मैं समर्पण करता हूं। अत: आप ही ले चलो जहां कहीं भी आप ले जाना चाहते हो। और स्मरण रहे कि यह बात समग्ररूपेण हो। मेरे पीछे दो—तीन कदम चलने के बाद तुम यह नहीं पूछ सकते कि "आप मुझे कहौ ले जा रहे हो? "तुम नहीं कह सकते कि "आप मुझे गलत मार्ग पर ले जा रहे हो, "क्योंकि तुमने तो समर्पण कर दिया है। अब तुम तो हो ही नहीं।

समर्पण की अपनी सुंदरता है, लेकिन बहुत कम आत्माएं, बहुत मजबूत आत्माएं ही समर्पण कर सकती हैं। स्मरण रहे, साधारणत: ऐसा समझा जाता है कि केवल कमजोर लोग ही समर्पण करते हैं। यह बात पूरी तरह गलत है। समर्पण करने के लिए तुम्हें बहुत ही शक्तिशाली व्यक्ति होना चाहिए, क्योंकि यह एक समग्र निर्णय होने वाला है। और तुम पीछे नहीं लौट सकते। तुम उसे वापस नहीं ले सकते। तुम यह नहीं कह सकते कि अब मैं अपना समर्पण वापस लेता हूं। यह बेशर्त है। समर्पण सशर्त नहीं हो सकता है! तुम यह नहीं कह सकते कि यदि ऐसा होगा तो ही मैं तुम्हारे पीछे चलूंगा। अगर मैं नर्क भी जाऊं तो भी तुम मेरे पीछे आओगे, क्योंकि वह होता ही बिना किसी शर्त के है। तुमने अपने निर्णय लेने छोड़ दिये हैं। अब तुम कुछ निर्णय लेने वाले नहीं।

समर्पण के लिए अत्यंत मजबूत, परम शक्तिशाली आत्माएं चाहिए। यदि गुरु कहे कि यह दिन है और तुम्हें रात दिखाई पड़ती हो... लेकिन तुमने तो समर्पण कर दिया है, अब तुम अपनी आंखों से तो देखते नहीं हो, तुम तो गुरु की आंखों से देखते हो। वह कहता है कि यह दिन है तो तुम भी कहते हो हा श्रीमान, यह दिन ही है। तुम अपने अहंकार को बीच में नहीं आने देते, तुम अपनी बौद्धिकता को बीच में नहीं आने देते। तुम सब कुछ एक तरफ रख देते हो।

यदि तुम यह कर सको—याद रखो फिर 'कैसे' नहीं है—यह घटता है।

समर्पण कोई करने की बात नहीं है। करने की बात ही विरोधी है। तुम इसे कर नहीं सकते। करना समर्पण के विपरीत है। समर्पण एक घटना है। तुम पूछ सकते हो कि वह घटना कैसे घटती है! यह मुझसे मत पूछना कि समर्पण कैसे किया जाये। तुम मुझसे यह पूछ सकते हो कि वह घटना कैसे घटती है। जब तुम प्रयास करते हो, और करते चले जाते हो और असफल पर असफल होते जाते हो, जब तुमने प्रत्येक मार्ग आजमा लिया है और कहीं भी नहीं पहुंचे हो। जब तुमने अपनी बुद्धि को खूब चलाकर देख लिया और पाया कि वह भी तुम्हें गोल घेरे में घुमाती रही। जब तुमने वह सब करके देख लिया जो कि तुम्हारे हाथ में था और कुछ भी घटित नहीं हुआ, और तुम इस नतीजे पर पहुंचे कि तुम पर्याप्त नहीं हो—कि तुम असहाय हो। जब तुम इस परिणाम पर पहुंचते हो कि तुम असहाय हो। इस असहाय अवस्था में ही समर्पण घटित होता है। तब तुम समर्पण कर सकते हो।

अत: पहली बात, समर्पण में 'कैसे' की बात नहीं होती। नहीं, उसकी कोई विधि नहीं है। यह स्वयं ही एक विधि है, इसकी कोई और विधि नहीं है। यदि तुम कर सकते हो तो कर सकते हो। यदि तुम नहीं कर सकते हो तो भूल जाओ इस बात को, यह तुम्हारे लिए नहीं है। लेकिन चिंता की कोई बात नहीं है। निराश होने की कोई बात नहीं है, क्योंकि बहुत—सी विधियां है। तुम उनको आजमा सकते हो। और यदि तुम उनको आजमाओगे तो दो संभावनाएं हैं—या तो तुम सफल हो जाओगे या फिर तुम असफल हो जाओगे। यदि तुम सफल हो जाते हो तो फिर समर्पण की कोई जरूरत नहीं है। या तुम असफल हो जाते हो तो उससे तुम्हें समर्पण में सहायता मिलेगी।

बुद्ध ने छह वर्ष तक साधना की। उन्होंने सारी विधियों को किया। उनके एक समसामयिक, महावीर भी प्रयास कर रहे थे—उन्हीं दिनों, उसी समय में, उसी भूखंड में—बिहार में। ये दो महान आत्माएं अपने आत्मज्ञान के लिए प्रयासरत थीं उसी समय में। महावीर एक प्रकार की विधि का प्रयोग कर रहे थे बारह वर्ष तक। बुद्ध भी वैसी ही विधियों पर छह वर्ष तक प्रयास करते रहे। छह वर्ष के बाद बुद्ध इस नतीजे पर पहुंचे कि कोई विधि काम नहीं आ रही है। सभी कुछ असफल हो गया है, अत: उन्होंने समर्पण कर दिया। उन्होंने अस्तित्व के प्रति समर्पण कर दिया। उन्होंने कहा, " अब मुझे कहीं भी नहीं जाना है। अब मुझे कुछ भी प्राप्त नहीं करना है। अब मैं अपनी खोज समाप्त करता हूं। जो भी हो, अब मैं भविष्य में उत्सुक नहीं हूं। न मैं अब जीवन के विरुद्ध हूं और न पक्ष में हूं। "

वह एक ऐसी परिपूर्ण विषाद की स्थिति में थे कि तुम यह भी नहीं कह सकते कि वे निराश हो गये थे, क्योंकि निराश भी तुम तभी हो सकते हो जब कि तनिक सी आशा कहीं गहरे में छिपी हो। तुम निराशा का अनुभव कर सकते हो क्योंकि तुम अभी भी आशा किये हो। वे निराश भी नहीं थे। आशा तो चली ही गई थी, निराशा भी खो गई थी। वे सिर्फ बिना आशा के हो गये थे। भविष्य मिट गया था। वे पूर्णत: विफल हो गये थे। छह वर्ष के बाद बुद्ध पूरी तरह विफल हो चुके थे और उसी पूर्ण विफलता में समर्पण घटित हुआ था। वे उस रात बोधिवृक्ष के नीचे विश्राम में चले गये बिना किसी इच्छा के—निर्वाण, समाधि, आनंद, परमात्मा की कामना भी नहीं—जरा सी भी कोई वासना नहीं।

क्योंकि वासना का अर्थ है कि अभी तुम पूरी तरह विफल नहीं हुए। तुम अभी भी कामना करते हो। तुम अभी भी आशा रखते हो। तुम्हें अभी भी लगता है कि कुछ संभव है। लेकिन बुद्ध इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कुछ भी संभव नहीं है। वे बोधिवृक्ष के नीचे आराम से सो गये, क्योंकि अब कोई तनाव बाकी नहीं था। क्योंकि जब तुम वस्तुत: ही विफल हो चुके हो तो फिर कौन—सा तनाव बचा?

एक आदमी जो कि सफल हो गया है, वह तनावपूर्ण हो सकता है। एक आदमी जो अभी भी सफलता के लिए प्रयास कर रहा है, वह भी तनावपूर्ण हो सकता है। एक आदमी जो कि विफल हो गया है, किंतु अभी भी आशा करता है, वह भी तनावपूर्ण हो सकता है। लेकिन एक ऐसा आदमी जो कि इतनी पूरी तरह विफल हो चुका है कि कोई उम्मीद ही नहीं बची, जो कि अब विषादपूर्ण भी नहीं है, जिसने अब सारा खेल ही छोड़ दिया है, वह तनावपूर्ण नहीं हो सकता। कोई चिंता शेष नहीं बची। चिंता बच भी कैसे सकती थी? कोई अहंकार ही नहीं बचा था, क्योंकि अहंकार बचता ही तभी है जब तुम अभी भी सफलता के लिए प्रयास कर रहे हो।

अचानक, सुबह जब वे जागे. उस रात कोई सपना नहीं था, कोई कामना, कल का कोई विचार शेष नहीं था। सुबह जब उन्होंने अपनी आंखें खोलीं तो उनकी आंखें बिलकुल खाली थीं। उनमें कामनाओं तथा सपनों के बादल नहीं थे। उन्होंने आखिरी तारे को डूबते हुए देखा—और जैसे—जैसे तारा डूबा, वे भी खो गये। और जब क्षितिज पर कोई तारा नहीं था, तो वे भी नहीं थे।

ऐसा कहते हैं कि वे हंसने लगे। वे अपने भीतर हंसे क्योंकि उन्होंने इतना प्रयास किया और कुछ भी नहीं हुआ। और अब वे कुछ भी प्रयास नहीं कर रहे थे और सब कुछ घट गया था। वे आनंद से भर गये। वे इतने आनंद में थे कि कहते हैं उन्होंने कहा, "निर्वाण घटित हो गया है, बुद्धत्व घट गया है, और ऐसा बुद्धत्व जो पहले कभी भी नहीं घटा था।"

तब उन्होंने प्रयास न करने का उपदेश देना शुरू किया, लेकिन कोई उनकी नहीं सुनता था। कौन मानेगा कि कुछ भी करने की जरूरत नहीं है और सब कुछ हो जाता है? और वास्तव में, वह बिना प्रयास के हुआ भी नहीं था। प्रयास तो किया गया था। प्रयास से विफलता मिली थी और उस विफलता से यह आत्यंतिक चेतना की स्थिति उपलब्ध हुई थी।

महावीर सफल हो गए थे—उसी भूखंड में वे दूसरे साधक थे। वे कुछ निश्चित विधियों से प्रयास कर रहे थे और वे सफल हो गए। विधियों से वे अपने अहंकार को मिटाने में सफल हो गए। इसीलिए जैन और बौद्ध जन्मजात शत्रु हैं। उनमें कोई संगति नहीं बैठ सकती है; वे दोनों किसी समझौते पर नहीं पहुंच सकते, क्योंकि वे बिलकुल विपरीत हैं।

महावीर विधियों से सफल हुए, इसलिए महावीर की सारी शिक्षा विधियों की है। बुद्ध असफलता के कारण सफल हुए, इसलिए उनकी सारी शिक्षा प्रयास—रहितता की है :

"कुछ भी नहीं करो। "

ये दो आयाम हैं। दोनों अच्छे हैं, लेकिन मेरा सुझाव है कि पहले विधियों पर चलने का प्रयास करो। यदि तुम सफल हो जाते हो तो ठीक है। यदि तुम विफल हो जाते हो, तो फिर समर्पण संभव हो जायेगा। तब वह भी ठीक है। मैं दोनों के पक्ष में हूं। इसलिए मैं विरोधाभासी प्रतीत होता हूं।

एक युवक आज मेरे पास आया और उसने कहा, " आप इतने विरोधाभासी हैं कि आपका अनुगमन करना असंभव है। और आप अपनी ही बात का इतना खंडन कर देते हैं कि आप मुझे भ्रमित कर देते हैं। " तो मैंने उससे कहा कि वह मुझे नहीं सुने, "सिर्फ अपनी आंखें बंद कर लो और मुझे नहीं सुनो, सिर्फ ध्यान करो। " क्योंकि अगर तुम्हें लगता है कि जो कुछ भी मैं कहता हूं वह विरोधाभासी है... और तुम अनुभव करोगे! तुम्हारी बुद्धि यह अनुभव करेगी—यह विरोधाभासी है ही।

जब तक तुम्हें यह नहीं पता चलता कि सारे विरोधी मार्ग भी उसी बिंदु पर ले जाते हैं, तब तक तुम्हें भीतर की उस संगति का पता नहीं चलेगा जो कि सब विरोधों के बीच होती है।

वे विरोधी हैं भी, और नहीं भी हैं। ऐसा है, क्योंकि जो भी बुद्ध कहते हैं वह संगत है, और जो भी महावीर कहते हैं वह भी संगत है, लेकिन मैं दोनों बातें एक साथ कह रहा हूं। ऐसा पहले कभी नहीं किया गया, इसलिए यह विरोधाभासी लगता है। लेकिन तुम्हें इस बात पर विचार करने की जरूरत नहीं है, तुम सिर्फ एक बात का अनुगमन करो।

यदि तुम समर्पण कर सकते हो, समर्पण करो—कैसे मत पूछो। यी द तुम 'कैसे' पूछते हो तो तुम अभी समर्पण करने के योग्य नहीं हो। तुम अभी विधि की बात पूछ रहे हो, अत: विधि के अनुसार चलो। या तो तुम सफल हो जाओगे, या तुम विफल हो जाओगे। दोनों ही ठीक हैं। दोनों से ही तुम पहुंच जाओगे।

दसवां प्रवचन

अस्तित्व का शाश्वत खेल

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।

अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्।।३।।

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्व हि विदन्ते।

आत्मना विदन्ते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्।।४।।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।

भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।।५।।

केनोपनिषद

द्वितीय अध्याय

3

वही उसे जानता है जो उसे नहीं जानता है और वह उसे नहीं जानता है।

जो उसे जानता है सच में जानने वाले व्यक्ति के लिए वह अज्ञात है।

जबकि अज्ञानी के लिए वह ज्ञात है।

4

वस्तुतः वही अमरत्व को उपलब्ध होता है जो उसे पूरी तरह बोधपूर्वक जानता है।

आत्मा के द्वारा वह शक्ति तथा तेज को प्राप्त करता है।

और उसके ज्ञान से अमरत्व को?

5

उसके लिए जो कि उसे यही इसी संसार में जान लेता है। सत्य जीवन है,

वह जो कि उसे नहीं जान पाता बहुत बड़ी हानि को उपलब्ध होता है।

प्रत्येक प्राणीमात्र में आत्मा को जानकर

ज्ञानीजन इंद्रियों के अनुभव वाले

इस संसार के प्रति मर कर

अमर हो जाते हैं।

बह्म का ज्ञान असंभव है, लेकिन उसकी अनुभूति संभव है। ज्ञान तथा अनुभूति बुनियादी रूप से भिन्न बातें है। एक बहुत ही बारीक—से भेद को समझ लेना है। अनुभूति सदैव वर्तमान में है, ज्ञान सदा अतीत की बात हो गई। वह तुम्हारी स्मृति का हिस्सा हो गया। जब तुम कहते हो कि मैं अनुभूति की प्रेक्रिया में हूं, तो अनुभव अभी जारी है। तुम अभी भी अनुभव कर रहे हो। वह कोई स्मृति का हिस्सा नहीं बना। तुम्हारा अस्तित्व उसमें अभी भी लगा है।

संसार के विषय में अनुभूति रूक जाती है—यह ज्ञान बन जाती है। इस संग्रहीत ज्ञान को विज्ञान कहते है। जो भी मनुष्य जानता है वह विज्ञान हो जाता है। विज्ञान ज्ञान है। धर्म कभी विज्ञान नहीं बन पाता। वह सदा

वर्तमान ही रहता है। उस परम को अतीत में नहीं बदला जा सकता है, उसे ज्ञान में नहीं बदला जा सकता है। वह सदा अनुभूति की बहती हुई सरिता की भांति है।

अंत: तुम नहीं कह सकते कि तुमने परमात्मा का अनुभव कर लिया है। क्योंकि: उसका तो अर्थ होता है कि अब वह अतीत की बात हो गई। और उसका तो अर्थ हुआ कि 'तुम' उसके पार चले गये। तुम पहले से अनुभव कर चुकें और उसके पार—चलें गए हो। तुम परमात्मा के पार कभी भी नहीं जा सकते, इसलिए तुम कभी पूरे अर्थों में ऐसा नहीं कह सकते कि तुमने जान लिया कि तुमने अनुभव 'कर लिया। तुम उसे कभी भी अतीत में नहीं रख सकते। उसे तुम्हारी स्मृति का हिस्सा कभी भी नहीं बनाया जा सकता। तुम अनुभूति की प्रक्रिया में हो सकते हो, लेकिन वह कभी अनुभव नहीं बन सकता। वह सदा ही अनुभूति है—एक जीवंत प्रक्रिया, एक मृत स्मृति कभी नहीं।

गद्य ऐसे ही है जैसे कि तुम यह नहीं कह सकते कि मैंने श्वास ले ली है। तुम श्वास ले रहे हो। श्वास अतीत की बात नहीं बन सकती। यदि वह अतीत की बात बन जाये तो तुम नहीं रहोगे। कोई कहने वाला ही नहीं बचेगा कि उसने श्वास ले ली है। श्वास लेना एक सतत प्रक्रिया है। तुम सदा श्वास ले रहे हो। नष्ट वह सदा वर्तमान की बात है। तुम नहीं कह सकते कि मैं जी लिया क्योंकि तब फिर तुम कौन हो? तुम जीवन हो, लेकिन तुम यह नहीं कह सकते कि मैं जी चुका हूं। जीवन एक सतत प्रक्रिया है। वह सदा यहां ओर अभी में, इसी क्षण में है। परम का अर्थ है आत्यंतिक जीवन, आत्यंतिक श्वास की प्रक्रिया, उस आत्यंतिक का अनुभव, वह परम अनुभूति।

अत: पहली बात समझने की यह है कि ब्रह्म को शान में नहीं बदला जा सकता है। इसलिए जो भी कहता है कि मैंने जान लिया है, उपनिषद कहते हैं कि वह अभी अज्ञानी है। वह जीवन के उस महान रहस्य के प्रति असंवेदनशील है। और जो भी कहता है कि उसने जान लिया है, उसने अभी नहीं जाना है। उसने शास्त्रों से जान लिया होगा, उसने दूसरों से जान लिया होगा, उसने सूचनाएं इकट्ठी कर ली होंगी, लेकिन उसने जाना नहीं है। क्योंकि जो भी जानता है वह यह भी जानता है कि परमात्मा को ज्ञान में नहीं बदला जा सकता है। वह सदा प्रक्रिया बना रहता है।

परमात्मा कोई वस्तु नहीं है। वस्तु को जाना जा सकता है। परमात्मा एक प्रक्रिया है। वस्तु का अर्थ होता है कुछ जो रुक गया है। प्रक्रिया का अर्थ होता है कि वह चलती जाती है, चलती ही जाती है। साधारण बुद्धि से हम परमात्मा को भी एक वस्तु की भांति ही सोचते हैं। परमात्मा कोई वस्तु नहीं है। वह एक प्रवाह है, एक सातत्य है। वह शाश्वत रूप से चलता चला जाता है। वह कभी रुकता नहीं, वह कभी रुक नहीं सकता। न रुकना ही उसकी प्रकृति है। अत: तुम एक प्रक्रिया को कैसे जान सकते हो? जैसे ही तुम कहते हो कि मैंने जान लिया, तुम रुक गये—और प्रक्रिया चलती चली जाती है। तुम अपने ज्ञान में रुक गये और प्रक्रिया चलती चली जाती है। फिर तुम खो जाते हो, तुम्हारा संपर्क छूट जाता है। अब तुम्हारा उस प्रक्रिया से कोई संपर्क नहीं रहा।

प्रक्रिया के साथ तुम्हें चलना होगा। तुम रुक नहीं सकते। परमात्मा के साथ रुकना संभव नहीं है। तुम रुक सकते हो, लेकिन परमात्मा नहीं रुक सकता। और जब तुम रुक जाते हो और सरिता बहती चली जाती है, तो तुम्हारा उससे संबंध छूट गया। अब तुम उससे जीवंत रूप से संबंधित नहीं हो।

इसलिए जो लोग कहते हैं कि उन्होंने जान लिया है, वे संबंध खो चुके हैं। वास्तव में, उन्होंने उसे जाना ही नहीं है। उन्होंने सूचनाएं संगृहीत कर ली हैं। बौद्धिक रूप से उन्होंने कुछ समझ लिया है, लेकिन उसे उन्होंने जीया नहीं है। क्योंकि जो उसे जीता है, वह जानता है कि यह तो एक नदी है, जो कि शाश्वत रूप से बहती ही

जाती है। तुम्हें उसके साथ—साथ बहते जाना है। एक क्षण को भी रुके और संबंध छूटा। तुम कदापि यह नहीं कह सकते कि मैंने जान लिया। तुम सिर्फ इतना ही कह सकते हो कि मैं जान रहा हूं।

अनुभूति एक खुली बात है, शान एक बंद चीज है। ज्ञान में पूर्ण विराम आ गया। अनुभूति एक विकासमान घटना है, यह विकसित होती जाती है। इसलिए शान मृत है। वह पहले ही रुक गया है। अब उसकी श्वास नहीं चल रही है। उसमें खून नहीं बह रहा है, हृदय ने धड़कना बंद कर दिया है। यह मुर्दा है। शान एक लाश है। और यदि तुम ज्ञान को ढो रहे हो तो तुम एक लाश को, एक मृत शरीर को ढो रहे हो। इसीलिए पंडित, ज्ञानी लोग जो कि यह सोचते हैं कि वे जानते हैं, सब मरे हुए लोग हैं। पापी भी परमात्मा तक पहुंच जाते हैं, लेकिन ऐसा कभी नहीं सुना गया कि कभी कोई पंडित परमात्मा तक पहुंच गया हो। एक पापी को प्रवेश मिल सकता है, लेकिन एक व्यक्ति जो कि ज्ञानी है, जो सोचता है कि वह जानता है, प्रवेश नहीं कर सकता।

उपनिषदों की दृष्टि में वास्तविक पाप एक ही है—शान, क्योंकि वही एकमात्र बाधा है। लेकिन यह बड़ा ही सूक्ष्म है, और तुम्हें इसका अर्थ समझना पड़ेगा। अनुभूति तो मना नहीं है, लेकिन ज्ञान मना है। परमात्मा के साथ क्षण— क्षण चलना है—जीवंत, संस्पर्शित, खुले हुए। मत कहो कि मैंने जान लिया है। सिर्फ इतना ही कहो कि मैं सजग हूं कि मैं अनुभव कर रहा हूं कि मैं जान रहा हूं। सभी कुछ खुला है,

और मुझे कुछ भी पता नहीं है कि अगले क्षण क्या होने वाला है। अत: मैं बंद नहीं कर सकता, मैं नहीं कह सकता कि वह समाप्त हो गया और उसका अंत आ गया। कोई आखिरी अध्याय नहीं है, अंतिम पृष्ठ नहीं है। शास्त्र अंतहीन है। तुम उसे बंद नहीं कर सकते, और हर क्षण कुछ नया प्रकट हो रहा है क्योंकि परमात्मा या ब्रह्म प्रतिक्षण नया है, ताजा है और युवा है। केवल हम ही के होते हैं और हम ज्ञान के कारण ही के होते हैं।

सिर्फ शरीर ही बूढ़ा नहीं होता। शरीर तो का होगा ही, लेकिन तुम्हारी चेतना को का होने की जरूरत नहीं है। यदि वह भी बूढ़ी होती है तो उसका अर्थ होता है तुमने ज्ञान संग्रह कर लिया है। तब ज्ञान का बोझ तुम्हें का कर देता है। अन्यथा तुम्हारी आंखें भोली तथा कुंवारी होतीं, तुम खुले हुए होते और वह खुलापन ही कुंआरापन है। तुम खोज रहे होते और ढूंढ रहे होते। तुम पूछ रहे होते और ध्यान कर रहे होते, मनन कर रहे होते और तुम हमेशा ही तैयार होते कि नया घट सके। क्योंकि वह तो हर क्षण घट रहा है। परमात्मा कभी भी का नहीं होता। यदि वह भी का होता तो किसी न किसी दिन उसे भी मरना पड़ता, क्योंकि बुढ़ापा मृत्यु में ले जाता है।

ब्रह्म सदा युवा है, सदाबहार है। वहा बुढ़ापा नहीं घटता। इसीलिए तो उसकी मृत्यु नहीं होती। अस्तित्व सदाबहार है, जीवंत है, धड़कता रहता है।

ज्ञान के कारण तुम बूढ़े होते हो। जिस क्षण तुम कहते हो कि मैंने जान लिया, तुम जानने से रुक गये। तुम सोचते हो कि तुमने अनुभव कर लिया, उसी क्षण अनुभव होना रुक गया। इस क्षण से ही तुम विकसित होने से रुक गये। तुम एक मृत बीज ही रह गये।

उपनिषद अनुभूति में विश्वास करते हैं, न कि शान में। यह अनुभूति क्या है और अनुभूति की प्रक्रिया। क्या है? जान से तुम अतीत को इकट्ठा करते हो। अनुभूति में तुम उसे विसर्जित कर देते हो। जो भी जान लिया उसे फेंक देना है ताकि तुम फिर से खुल जाओ नया जानने के लिए। तुम्हें अतीत के प्रति मर जाना है केवल तभी तुम वर्तमान के प्रति जीवंत हो सकोगे।

हम सब अतीत में जीते हैं—वह जो कि अब नहीं है, वह जो कि चला गया है, वह जो कि मृत है। हम अतीत में जीते हैं, इसीलिए हम इतने मुर्दा हैं। जीवन सदा वर्तमान में है, और मन सदा अतीत में है। इसलिए

मन कभी भी जीवन को नहीं जान सकता। उनका कोई मिलन स्थल नहीं हो सकता है। ऐसी कोई भी जगह नहीं हो सकती जहां कि मन, जीवन से मिल सके। इसीलिए उपनिषद मन के विरुद्ध हैं।

मन सदा उसकी स्मृति ही है जो कि तुम जी चुके, उसकी जो कि गुजर चुका, उसकी जो कि अब नहीं है। कुछ और नहीं, बस तुम्हारे ऊपर अतीत की जमी हुई धूल है। उसे दूर फेंक दो। उसे धो डालो ताकि, तुम ताजा और युवा हो सको, और वर्तमान से, शाश्वत युवा ब्रह्म से मिल सको।

जानने की प्रक्रिया में अतीत को सदा पीछे छोड़ते जाना है। यही बुनियादी त्याग है। अतीत के प्रति मर जाओ ताकि तुम वर्तमान के प्रति जीवंत हो सको। तुम दोनों नहीं कर सकते। यदि तुम अतीत के प्रति जीवित हो तो तुम वर्तमान में मृत होओगे। यदि तुम वर्तमान में जीना चाहते हो तो अतीत के प्रति मर जाओ हर क्षण अतीत की धूल को झाड़ू कर फेंकते जाओ। उसे इकट्ठा मत होने दो, उसे त्यागते जाओ, उसे दूर फेंकते जाओ। उसका कोई उपयोग नहीं है। तुमने उसका उपयोग कर लिया है, अब वह सिर्फ मुर्दा खोल है। पक्षी उसके बाहर उड़ गये हैं। मृत खोलों को संगृहीत मत करो। वे कारागृह हो जायेंगे, वे तुम्हे रो लेंगे। वे इतने भारी हो जायेंगे कि वे तुम्हें हिलने भी नहीं देंगे।

मेरे लिए संन्यासी वह नहीं है जिसने घर—बार छोड़ दिया है, धन छोड़ दिया है, परिवार छोड़ दिया है, बल्कि वह है जिसने अतीत को छोड़ दिया है—क्योंकि वही तो बुनियादी संपदा है। वही तुम्हारा परिवार है। तुम मृत के साथ जीते चले जाते हो।

मैंने सुना है.

जीसस एक बार एक राह से गुजर रहे थे। सुबह का समय था, और सूरज निकलने को था, और उन्होंने एक मछुए को झील में जाल फेंकते हुए देखा। उन्होंने उस मछुए से बात की। वे उसके निकट आये और बोले—क्यों तुम अपना जीवन मछलियां पकड़ने में ही व्यर्थ गंवा रहे हो? मेरे पीछे आओ और मैं तुम्हें बताऊंगा कि कैसे परमात्मा के साम्राज्य को अपने जाल में फंसाया जाता है।

मछुए ने पीछे मुड़ कर देखा। जीसस की आंखों में कोई अलग ही रोशनी थी। वह आदमी तो सम्मोहित हो गया। उसने अपना जाल एक ओर फेंका और वह जीसस के पीछे चल दिया। लेकिन वे गांव के बाहर निकल ही रहे थे कि एक आदमी भागा हुआ आया और उसने मछुए से कहा, "तुम कहा जा रहे हो? तुम्हारे पिता मर गये हैं। " उसके पिता बीमार थे, बहुत के थे। किसी भी क्षण उम्मीद थी कि मर सकते हैं।

तो मछुए ने जीसस से कहा, "जीसस! मुझे कुछ दिन के लिए जाने दो ताकि मैं मृत पिता के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित कर सकुं और वह सब कर सकूं जो कि एक बेटे को करना चाहिए।"

जीसस ने कहा, "तुम्हें जाने की जरूरत नहीं है। मुर्दे मुर्दे को दफना देंगे।"

जीसस के लिए वह सारा गांव ही मुर्दा था। इसलिए उन्होंने कहा कि और मुर्दे हैं जो मुर्दे को दफना देंगे; उसके लिए तुम्हें चिंता करने की आवश्यकता नहीं है।

क्यों कहा जीसस ने कि मुर्दे मुर्दे को दफना देंगे? क्योंकि जो लोग भी अतीत में जीते हैं वे सब मुर्दे ही हैं। केवल वही जिंदा हैं जो कि वर्तमान में जीते हैं। जीवन का अर्थ होता है वर्तमान, यहीं और अभी। यह पल बड़ा क्षणिक है। तुम उसे पकड़ ही तब सकते हो जबकि तुम अतीत से जरा भी बोझिल नहीं हो, वरना तुम चूक जाओगे। यदि तुम्हारा मन अतीत की ओर भाग रहा है तो जीवन का वह क्षणिक पल चूक जाओगे। वह इतना क्षणिक है कि यदि तुम अतीत से जुड़े रहे तो तुम उसे चूकते ही जाओगे।

और यही हो रहा है। जब तुम अतीत की नहीं भी सोच रहे हो तब भी तुम उस अतीत की सोच रहे हो जो भविष्य में झलक रहा है। लेकिन तुम वर्तमान में कभी भी नहीं हो, इतना पक्का है। या तो तुम अतीत में हो जो

कि अब नहीं है, अथवा भविष्य में हो जो अभी होने को है। दोनों ही नहीं हैं। दोनों का अस्तित्व नहीं है। एक मुर्दा है, और एक अभी पैदा नहीं हुआ है। और जो भी तुम भविष्य की सोचते हो वह अतीत की ही परछाईं है, अतीत का ही प्रक्षेपण है। क्योंकि तुम भविष्य की सोच भी क्या सकते हो, तुम आने वाले कल के संबंध में बीते हुए कल की भाषा में ही तो सोच सकते हो, क्योंकि दूसरी तो कोई भाषा तुम्हें आती नहीं है।

तुमने कल किसी को प्यार किया था, अब तुम उसको कल फिर प्रेम करने की सोचते हो। वह सिर्फ अतीत को पुनरुक्त करना होगा—थोड़े—बहुत परिवर्तन के साथ। और वे परिवर्तन भी अतीत के अनुभवों से ही आते हैं। कुछ भी नया भविष्य में प्रक्षेपित नहीं होने वाला है। केवल अतीत ही प्रक्षेपित होगा। अत: तुम एक पेंडुलम की तरह अतीत तथा भविष्य के बीच डोलते रहते हो, और उस डोलने में ही वर्तमान की वह क्षणिक घड़ी चूक जाती है जो कि वास्तविक जीवन है। और केवल जीवन के द्वारा ही तुम ब्रह्म में प्रवेश कर सकते हो।

उपनिषद कहते हैं कि ज्ञान से मत जुड़े रहो, स्मृति से ही मत जुड़े रहो, अतीत से ही मत जुड़े रहो। उसके प्रति मर जाओ ताकि तुम सदा युवा, ताजा तथा कुंआरे रहो। पुन: —पुन: खुले रहो। कोई अतीत तुम्हारे चारों ओर कारागृह न बन पाये। तुम सदा आगे बढ़ जाओ और अतीत के मृत खोलों को पीछे ही। छोड़ दो।

यह सूत्र कहता है :

वही उसे जानता है जो उसे नहीं जानता है...

वही जिसने कि उसे ज्ञान नहीं बना लिया है। केवल वही उसे जानता है जो कि अभी भी उसे जानने की प्रक्रिया में है, जो कि अभी भी खोज रहा है और पूछ रहा है, जो कि अभी बंद नहीं हुआ है, जो कि अभी भी आगे बढ़ता जा रहा है, अभी भी प्रवाहमान है। और ऐसा शाश्वत रूप से होता रहेगा। कोई भी कभी लक्ष्य तक नहीं पहुंचता; कोई पहुंच भी नहीं सकता। जीवन का वस्तुत: कोई लक्ष्य नहीं है। यह बस एक शाश्वत खेल है—अनादि, अंनत। मनुष्य लक्ष्य बनाता है। क्यों? मनुष्य लक्ष्य निर्मित करता है ताकि वह निश्चित हो सके। लक्ष्य उपलब्ध हो गया और अब तुम विश्राम कर सकते हो। अब तुम मर सकते लते हो, अब तुम्हारी कोई भी जरूरत नहीं है। जीवन का तो कोई भी लक्ष्य नहीं है। वह बहुत—से लक्ष्य निर्मित करता है, लेकिन वे सब लक्ष्य अस्थायी होते हैं। प्रत्येक लक्ष्य आगे के लक्ष्य के लिए साधन होता है, और अंत में कोई लक्ष्य नहीं होता। अन्यथा ब्रह्म किसी भी समय रुक गया होता, क्योंकि अपने लक्ष्य तक पहुंच गया होता।

अस्तित्व अनादि रूप से अस्तित्व में है। नहीं तो कभी भी ऐसा हो सकता था कि लक्ष्य पर पहुंचना हो जाता और अस्तित्व रुक जाता। लेकिन ऐसा कभी हुआ नहीं, ऐसा कभी होगा नहीं। लक्ष्य मनुष्य निर्मित है। जीवन लक्ष्यहीन है, इसलिए वह शाश्वत है। यदि कोई लक्ष्य हो तो वह शाश्वत नहीं हो सकता, क्योंकि जब लक्ष्य पर पहुंचना हो जाये तो जीवन समाप्त हो जाये। सारे लक्ष्य बस अस्थायी हैं। जब तुम इस बात को जान लोगे तो ब्रह्म को भी जान लोगे कि वह एक उद्देश्यहीन, बिना किसी लक्ष्य की और गतिमान ऊर्जा है, जो कि सब ओर जा रही है, लेकिन किसी विशेष की ओर नहीं जा रही है, बल्कि कहीं नहीं जा रही है। गति अपने आप में बड़ी सुंदर है; वह अपने आप में आनंदपूर्ण है। आनंद किसी लक्ष्य में नहीं है, वह अभी और यहीं है। इसी क्षण में, जीने की धड़कन में है।

जब कभी तुम बुद्ध को बोधिवृक्ष के नीचे बैठे देखो, अथवा जीसस को क्रास पर लटके देखो, अथवा महावीर को आकाश के नीचे खड़े देखो तो तुम्हारे मन में एक सवाल जरूर उठता होगा कि ये लोग कर क्या रहे हैं? यह बात कल्पना के ही बाहर है कि बुद्ध किसी धंधे के बारे में सोच रहे हैं। उनके पास कोई धंधा नहीं है; अपने परिवार के विषय में सोच रहे हैं, वहां कोई परिवार नहीं है; भविष्य के विषय में सोच रहे हैं—क्या सोच सकते हैं वे भविष्य के लिए? क्या कर रहे हैं बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे? वे कुछ भी नहीं कर रहे हैं। वे सिर्फ हैं।

जीवन का होना ही, श्वास का भीतर—बाहर होना, जीवित होना ही आनंदपूर्ण है। वे कुछ और नहीं कर रहे हैं। वे सिर्फ आनंदित हैं।

लेकिन जब भी तुम आनंद की बात सोचते हो तो तुम सदा इस तरह सोचते हो जैसे आनंद उनके हाथ में कोई वस्तु हो। आनंद कोई वस्तु नहीं है। आनंद होने का ढंग है—होने का सम्यक ढंग। कोई अतीत नहीं है, कोई भविष्य नहीं है। बस बोधिवृक्ष के नीचे इस क्षण बुद्ध जीवंत हैं। हृदय धड़क रहा है, श्वास भीतर —बाहर आ—जा रही है, खून दौड़ रहा है, और सब कुछ जीवंत है, स्पंदित हो रहा है। वे कहीं भी नहीं जा रहे हैं, वे सिर्फ हैं। इस होने में ही आनंद है।

इसीलिए सदा जोर इस बात पर है कि जब तुम कुछ भी कामना नहीं कर रहे हो तो तुम आनंद में हो। क्यों? क्योंकि कामना तुम्हें कहीं ले जायेगी। कामना कहेगी कि चलो, कहीं और चलो, लक्ष्य कहीं भविष्य में है। कामना ही भविष्य का निर्माण करती है, और तुम्हें भविष्य की ओर ले जाती है। जब तुम कामना शून्य होते हो, जब कोई इच्छा नहीं होती, तो तुम यहीं और अभी में होते हो। तो तुम बोधिवृक्ष के नीचे होते हो, तुम बुद्ध हो गये होते हो।

बुद्ध का अर्थ होता है चैतन्य की एक अवस्था—चैतन्य की वह अवस्था जब चेतना कुछ पाने के लिए कहीं जा नहीं रही है। इस बोध के कारण ही बुद्ध ने कहा था कि कोई परमात्मा नहीं है। क्योंकि वे तुम्हारे प्रति अत्यंत करुणा से भरे थे इसलिए उन्होंने कहा कि कोई परमात्मा नहीं है। क्योंकि यदि उन्होंने कहा होता कि परमात्मा है तो तुम उसकी भी वासना बना लेते। तुम उसे पाना चाहोगे। तुम परमात्मा तक पहुंचना चाहोगे, तुम परमात्मा को जानना चाहोगे—तुम एक इच्छा बना लोगे।

इसलिए बुद्ध कहते हैं कि कोई परमात्मा नहीं है, छोड़ो सारी आध्यात्मिक कामनाओं को। ऐसा नहीं है कि परमात्मा नहीं है, बल्कि ऐसा उन्होंने इसलिए कहा ताकि तुम सारी कामनाएं तथा सारे भविष्य को छोड़ सको। वरना तुम भविष्य को बदलते जाओगे। कभी कामना संसार की होती है, तो कभी वह आध्यात्मिक हो जाती है, लेकिन कामना वहीं की वहीं होती है।

बुद्ध कहते हैं कि कोई मोक्ष नहीं है। स्वर्ग में परम मुक्ति जैसी कोई अवस्था नहीं है। वे कहते हैं कि कोई मोक्ष नहीं है। ऐसा नहीं है कि मोक्ष नहीं है, लेकिन वे ऐसा छोड़ने में तुम्हारी सहायता करने के लिए कहते हैं, वरना तुम मोक्ष की मुक्त अवस्था की कामना करने लग जाओगे। और कामना करना ही बंधन है। अत: जब तुम मोक्ष की, मुक्ति की भी कामना करते हो तो तुम बंधन में होते हो। वे तुम्हारी मदद करने के लिए ही ऐसा कहते हैं कि कोई मोक्ष नहीं है। ताकि तुम समस्त कामनाएं छोड़ सको, ताकि तुम अभी और यहीं पर हो सको।

लोग बुद्ध के पास जाते और उनसे बार—बार पूछते, "जब हम मर जायेंगे तब क्या होगा?"

बुद्ध कहते, "कुछ भी नहीं होगा, सिर्फ तुम मर जाओगे। "

वे बुद्ध से मृत्यु के बाद भी भविष्य निर्मित करने के लिए कह रहे थे। वे इस भविष्य से संतुष्ट नहीं थे। वे मृत्यु के बाद भी भविष्य चाहते थे ताकि वे अपना मन आगे भी प्रक्षेपित कर सकें, ताकि वे मृत्यु के बाद की भी योजना बना सकें। बार—बार जहां भी बुद्ध जाते वहा के लोग एक ही बात पर जोर देते, "आप जैसे बुद्ध पुरुष का मरने के बाद क्या होगा?"

बुद्ध कहते, "कुछ भी नहीं होगा। मैं सिर्फ मर जाऊंगा। जैसे दीये की ज्योति बुझ जाती है वैसे ही मैं 'भी बुझ जाऊंगा।"

वे लोग इस बात से संतुष्ट नहीं होते। उन्हें बड़ी बेचैनी होती। वे कहते, "आखिर ज्योति कहा जाएगी? क्या वह ब्रह्म में मिल जाएगी? क्या वह समष्टि में खो जाती है? क्या होता है एक प्रबुद्ध आत्मा का?

"बुद्ध सख्त आदमी थे। वे कहते, "कुछ भी नहीं होता; जैसे दीये की लौ बुझ जाती है, तब क्या तुम पूछते हो कि वह कहां चली गयी। कोई भी नहीं पूछता कि वह कहां गयी, क्योंकि सभी जानते है कि वह बुझ गई है। "

निर्वाण शब्द का अर्थ ही होता है लौ का बुझ जाना। इसलिए वे कभी 'मोक्ष' शब्द का उपयोग नहीं करते हैं, वे कभी भी 'स्वर्ग' नहीं कहते हैं, वे कभी स्वर्ग के विषय में नहीं बोलते हैं—उन्होंने ऐसे किसी भी शब्द का उपयोग नहीं किया जिससे भविष्य निर्मित होता हो। वे सिर्फ कहते हैं, निर्वाण। निर्वाण का अर्थ होता है.. दीये का बुझ जाना। वे कहते कि यह बात ही मत पूछो कि क्या होता है। क्यों? क्या सच।। लौ मिट जाती है। वह कभी भी नहीं मिटती, परंतु फिर भी वे कहते हैं करुणावश कि वह बुझ जाती है। सच वे असत्य कह रहे हैं क्योंकि सत्य तुम्हारे मन में कामना को पैदा कर देगा।

यदि वे कहें कि आनंद होगा, सच्चिदानंद होगा, वहां सत, चित, आनंद होगा; अथवा वे कहें कि प्रभु का राज्य होगा, तो फिर कामना निर्मित हो जायेगी। और यदि कामना निर्मित हो गई तो फिर प्रभु का राज्य नहीं होगा। कामना का मिट जाना ही तुम्हें अभी और यहीं में ला देगा। भविष्य में गति करने की कोई संभावना नहीं रहेगी। तुम वर्तमान में फेंक दिये जाओगे। और एक बार तुम वर्तमान में आ जाओ तो तुम स्वर्ग में होओगे। तुम परमात्मा में ही होओगे, तुम ब्रह्म के साथ एक हो जाओगे।

उपनिषद कहते हैं.

वही उसे जानता है जो उसे नहीं जानता है..

कोई स्मृति न बनाओ; अतीत का सृजन करने में सहयोग मत करो। उसे तो गिराते जाओ। उसका उपयोग तुमने कर लिया। अब उसे ढोने से क्या मतलब? उसे ज्ञान मत बनाओ।

लोग मेरे पास आते हैं और वे मुझसे कहते हैं कि कल का ध्यान बहुत अदभुत था। कल के ध्यान के कारण तुम्हारा आज का ध्यान गड़बडा गया। अब वह आदमी कल जैसे ध्यान को आज पुन: दोहराना चाहेगा। वह उसकी प्रतीक्षा करेगा। वह ध्यान नहीं कर रहा होगा, वह उसमें पूरी तरह नहीं डूबेगा। उसके मन का एक हिस्सा पीछे देखता रहेगा कि वही बात फिर कब होती है। और वह बात अब नहीं होगी। कल वह पीछे नहीं देख रहा था इसलिए ऐसा हुआ। उसका मन पूरी तरह उस क्षण में डूबा था। अब नहीं डूबा है!, अब वह पीछे की ओर देख रहा है, अब उसमें एक नई बात आ गई। अब वही स्थिति नहीं है। वह समग्र उसमें नहीं है, वह परिणाम की प्रतीक्षा कर रहा है। अब वह नहीं घटेगा। और तब वह मेरे पास आयेगा और कहेगा, क्या गलत हो गया है? कल तो हुआ था, लेकिन आज कुछ भी नहीं हुआ और मुझे बड़ी निराशा हो रही है।

इसकी क्रियाविधि बड़ी सीधी और साफ है। कल घटना घट सकी क्योंकि तुम्हारे पास उसका कोई अतीत नहीं था। स्मरण रहे, कल उसका कोई अतीत तुम्हारे पास नहीं था, इसकी कोई अपेक्षा भी नहीं थी। तुम कोई भविष्य का प्रक्षेपण नहीं कर सकते थे, क्योंकि तुम्हें कुछ भी पता नहीं था। तुम अनजान थे, इसलिए हुआ था। तुम सरल थे, निर्दोष थे, उस क्षण में जी रहे थे। तुम सिर्फ कर रहे थे बिना किसी अपेक्षा के, क्योंकि परिणाम का कुछ पता नहीं था।

अब वह ज्ञात है। अब वह हो गया है। अब वह अतीत हो गया। अब वह तुम्हारा ज्ञान हो गया। अब यह ज्ञान ही बाधा बन जायेगा। अब तुम जो चाहो कुछ भी कर लो, किंतु वह नहीं होने वाला। ज्ञान ही बाधा बन जाता है। अतीत ही वर्तमान के रास्ते में बाधा बन जाता है। अत: यदि वह कल हुआ था तो भूलो; उस कल को गिरा दो।

और एक और बात याद रहे—तुम निराश हो जाओगे यदि वह फिर से न हुआ तो। और यदि वह हुआ तो भी तुम निराश ही होओगे 'क्योंकि वह एक पुनरुक्ति ही होगा। तुम उससे थक जाओगे। तुम अपने ध्यान से भी

थक जाओगे, यदि वह पुनरुक्त होने लगे—वही का वही रोज हो। अतीत को गिरा दो क्योंकि यदि अतीत वहां होगा तो कुछ भी नहीं हो सकता। और यदि कभी होता भी है तो भी वह अतीत की पुनरुक्ति ही होगा, और तुम ऊब जाओगे। दोनों तरह से ही, अतीत वर्तमान के रास्ते में बाधा डालता चला जाता है।

क्यों तुम्हें ऐसा लगता है कि यह पुनरुक्ति है? ऐसा तुम्हें इसलिए लगता है क्योंकि तुम उसी अतीत से तुलना करते चले जाते हो। यदि तुम अतीत को गिरा दो तो वह सदा नया होगा; वह कभी भी पुनरुक्ति नहीं होगा। पुनरुक्ति का अर्थ होता है कि तुम लगातार उसकी अतीत के अनुभव से तुलना करते जाते हो। अतीत को पूरी तरह गिरा दो, और तुम वर्तमान के प्रति खुल जाओगे। तब जो भी होगा नया होगा, और तुम कभी भी नहीं ऊबोगे।

इसी नासमझी के कारण प्रत्येक आदमी ऊबा हुआ है। क्योंकि वह बार—बार अतीत को बीच में ले आता है। तुमने तुम्हारी प्रेमिका को कल चूमा था, और आज फिर तुम चूमते हो और तुलना करते हो। तब चुंबन का सारा सौंदर्य खो जाता है क्योंकि तब वह सिर्फ पुनरुक्ति हो जाता है। देर अबेर तुम उससे ऊब जाओगे। आज नहीं कल तुम अपनी प्रेमिका से बचकर भागना चाहोगे। वह तुम्हें शत्रु जैसी लगेगी क्योंकि वह अब एक स्थिति के समान हो गई है जहां हर बात एक पुनरुक्ति जैसी लगती है। अतीत को भूल जाओ। वह तुम्हें मार डाल रहा है। वह तुम्हारे प्रेम को नष्ट कर रहा है, वह तुम्हारे जीवन को समाप्त कर रहा है, वह सारी संभावनाओं को ही मिटा डाल रहा है। गिरा दो अतीत को। उसे ज्ञान मत बनाओ। पुन: —पुन: ताजा हो जाओ। प्रत्येक क्षण चलो र और अतीत को साथ मत ढोओ।

वही उसे जानता है जो उसे नहीं जानता है; और वह उसे नहीं जानता है जो उसे जानता है।

जो कहता है कि मैं जानता हूं। यह इस बात का संकेत है कि उसने जानना बंद कर दिया है। ज्ञान पूरा हो गया है, किताब बंद हो गई। यह आदमी मुर्दा हो गया। एक मृत व्यक्ति एक जीवंत शक्ति से संबंधित नहीं रह सकता।

सच में जानने वाले व्यक्ति के लिए वह अज्ञात है; जबकि अज्ञानी के लिए वह ज्ञात, है।

इस पृथ्वी पर चलो; गिरजे हैं, मंदिर हैं, गुरुद्वारे हैं, मस्जिदें हैं। प्रत्येक वहां पर पूजा कर रहा है। सारी पृथ्वी धार्मिक मालूम पड़ती है। प्रत्येक आदमी परमात्मा के बारे में जानता है, और फिर भी जीवन इतना दुखपूर्ण है, इतनी पीड़ा से भरा है। और प्रत्येक परमात्मा के बारे में जानता है—औr केवल जानता ही नहीं है, बल्कि उसके लिए तर्क करता है।

दो प्रकार के अज्ञानी लोग हैं—एक तो वे जो कि कहते हैं कि परमात्मा है और उसके लिए तर्क करते हैं। और दूसरे वे लोग हैं जो कि कहते हैं कि परमात्मा नहीं है और तर्क करते हैं कि नहीं है। लेकिन दोनों का विश्वास है कि वे जानते हैं। आस्तिक और नास्तिक, दोनों विश्वास करते हैं कि वे जानते हैं। एक बात में वे दोनों सहमत हैं कि उनके पास ज्ञान है। इतना ही नहीं बल्कि वे तर्क करते हैं कि उनके पास सच्चा ज्ञान है।

उपनिषद कहते हैं कि केवल अज्ञानी लोग ही दावा कर सकते हैं कि वे जानते हैं; कि परमात्मा को जान लिया गया है; कि रहस्य उदघाटित हो गया है; कि अब कोई रहस्य बाकी नहीं है, बस केवल सिद्धात बचा है, एक दर्शन, एक शास्त्र, अब कोई रहस्य शेष नहीं है, सभी कुछ जान लिया गया है।

केवल अज्ञानी ही ऐसा कर सकते हैं। परम को जान लिया गया है, ऐसा दावा करने के कारण वे रहस्य की हत्या कर सकते हैं। जो बुद्धिमान हैं वे तो जोर देंगे कि रहस्य तो रहस्य ही है, तुम चाहे उसके आमने—सामने ही क्यों न आ जाओ, चाहे तो तुम उससे मिल ही क्यों न लो, साक्षात्कार कर लो, फिर भी रहस्य का उदघाटन नहीं होता है। बल्कि इसके विपरीत, वह तो और गहरा होता जाता है, और ज्यादा रहस्यपूर्ण होता जाता है।

यह और— और रहस्यपूर्ण होता जाता है। जितना तुम उसे जानते हो, वह उतना ही ज्यादा अज्ञात होता जाता है।

धार्मिक अनुभूति का यही रहस्य है : जितना ही अधिक तुम इसे जानते हो उतना ही अधिक यह अज्ञात रह जाता है; उतना ही अधिक तुम्हें अनुभव होता है कि इसे जानना कितना असंभव है, कितना कठिन है। जितना ही अधिक तुम इसे जानते हो उतना ही अधिक तुमको अपनी अक्षमताओं, अपनी असहाय अवस्था, अपने अज्ञान का बोध होता है। जितना ही अधिक परमात्मा तुमको अज्ञात लगता है उतना ही अधिक तुम परमात्मा के निकट होते हो। और जब कोई सच में परमात्मा में प्रवेश कर जाता है तो उसे पता चलता है कि वह न केवल अज्ञात है बल्कि अज्ञेय है। तब पता चलता है कि उसे जानने की कोई संभावना ही नहीं है। इसका क्या अर्थ हुआ? इसका इतना ही अर्थ हुआ कि ऐसी कोई संभावना नहीं है कि जहा उसका जानना समाप्त होता हो। यह तो शाश्वत रूप से चलेगा। तुम उसे समाप्त नहीं कर सकते; तुम यह नहीं कह सकते कि मैं अब यह धार्मिक खोज छोड़ सकता हूं। अब मैं यह धार्मिकता छोड़ सकता हूं बात खतम हो गई। नहीं, वह खतम नहीं हो सकती।

लोग मेरे पास आते हैं और वे मुझसे पूछते रहते हैं, "ऐसा कब होगा कि खोज समाप्त हो जायेगी, कि हम पहुंच जायेंगे और वह अंतिम बात घट जायेगी? "

वे लोग इतनी जल्दी में हैं। याद रखो यह कहीं खतम होने वाली बात नहीं है। यह खोज शाश्वत है। तुम बढ़ते ही चले जाओगे। तुम और गहरी चेतना में विकसित होते जाओगे, गहरे आनंद में उतरते चले जाओगे। लेकिन फिर भी कुछ सदा शेष रहेगा छिपा हुआ, और तुम अनावृत करते ही चले जाओगे। लेकिन वह पूरा कभी भी अनावृत नहीं होता। ऐसा हो ही नहीं सकता। ऐसा ही उस परम सत्ता का स्वभाव है।

लेकिन गुरु कहे चले जाते हैं, चिंता मत करो। देर— अबेर तुम पहुंच ही जाओगे। मैं स्वयं कहता रहता हूं। लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं कि हम इतने समय से ध्यान कर रहे हैं, वह घटना कब घटेगी? मैं उनसे कहता हूं प्रतीक्षा करो। जल्दी ही घटना घटेगी। लेकिन ये सब बातें झूठ हैं। यदि मैं कहूं कि घटना कभी घटने वाली नहीं है, तो तुम सारा प्रयास ही छोड़ दोगे। तुम निराश हो जाओगे। इसलिए मैं कहता ही चला जाऊंगा कि बस होने ही वाली है।

घटना तो घट ही रही है, लेकिन वह इस तरह से कभी भी नहीं होने वाली कि यात्रा समाप्त हो जाये। और एक दिन तुम स्वयं इस कभी समाप्त न होने वाली यात्रा के सौंदर्य को जान सकोगे और तब तुम यह महसूस करोगे कि तुम कितना भद्दा प्रश्न पूछ रहे थे! तुम पूछ रहे थे कि इसे कैसे समाप्त करें। यह सवाल ही बड़ा कुरूप और अर्थहीन है। तुम्हें पता नहीं, बल्कि जो तुम पूछ रहे हो वह तुम्हारे ही विरुद्ध है। क्योंकि यदि यह समाप्त हो गया तो तुम भी समाप्त हो जाओगे। यदि कोई खोज नहीं है, यदि कुछ भी जानने को नहीं है, कुछ भी प्रेम करने को नहीं है, कुछ भी प्रवेश करने को नहीं है, तो फिर तुम कैसे हो सकोगे? यदि तुम ऐसी स्थिति में होते, तो तुम आत्मघात करना चाहते।

बर्ट्रेण्ड रसल ने कहीं पर मजाक की है। उसने कहा है कि मैं हिंदुओं की जो मुक्ति की धारणा है—मोक्ष की—उसमें विश्वास नहीं कर सकता। क्योंकि वह कहता है, हिंदुओं की धारणा के अनुसार मोक्ष में तुम सब बातों से मुक्त हो जाते हो। न कुछ करना है और न कुछ घटेगा, तुम सिर्फ बैठे रहते हो, बैठे ही रहते हो बोधिवृक्ष के नीचे और कुछ भी नहीं होगा, क्योंकि सभी कुछ समाप्त हो गया है। इसलिए रसल कहता है, यह तो बहुत ज्यादा हो गया। यह तो बहुत बड़ा बोझ हो जायेगा। हर एक आदमी तंग आ जायेगा, हर एक आदमी प्रार्थना करने लगेगा कि हमें पृथ्वी पर वापस भेज दो, अथवा नर्क में भेज दो। नर्क भी बेहतर होगा क्योंकि वहां पर कुछ

तो करने के लिए होगा, कुछ तो समाचार आदि वहां होगा। मोक्ष में तो कोई समाचार ही नहीं होगा, कोई घटना ही नहीं घटेगी। सोचो जरा—शाश्वत रूप से कोई घटना ही नहीं घटती, कोई आंदोलन नहीं। किस तरह का यह मोक्ष होगा?

असल में, जब हिंदू अथवा जैन मोक्ष की बात करते हैं तो इसका यह अर्थ नहीं है कि ऐसा कोई मोक्ष मौजूद है, अथवा कोई ऐसी स्थिति मौजूद है। यह तो सिर्फ तुम्हारी सहायता करने के लिए है, क्योंकि तुम उस शाश्वत प्रक्रिया को नहीं समझ सकते। इसलिए वे कहते हैं कि ही, चिंता मत करो। देर—अबेर सभी कुछ संभव हो जायेगा, और तब तुम्हें कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। किंतु तुम नहीं जानते कि यह किस प्रकार का दुख होगा। यह पृथ्वी से भी ज्यादा बड़ा दुख होगा।

मोक्ष कोई रुकी हुई स्थिति नहीं है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है। और मोक्ष कोई भौगोलिक स्थान भी नहीं है। यह सिर्फ चीजों की ओर देखने का ढंग है, यह एक रुख है। यदि तुम क्षण— क्षण जीवंत हो तो तुम कभी भी नहीं पूछोगे कि यह सब कब समाप्त होने वाला है। यह प्रश्न ही बताता है कि तुम जीवित नहीं हो और तुम जीवन का आनंद नहीं ले रहे हो, जैसा भी वह है। यदि तुम जीवन का आनंद ले रहे हो तो तुम कभी भी नहीं पूछोगे कि यह कब समाप्त होने वाला है। तुम नहीं पूछोगे कि इस जीवन से कब मुक्ति मिलेगी। तब तुम पहले से ही मुक्त हो। उस आनंद में ही मुक्ति भी आ गई। चाहे वह समाप्त हो, चाहे न हो, अब उसकी कोई चिंता नहीं है। यदि यह खतम हो जाये तो भी अच्छा है, यदि यह कभी समाप्त न हो तो भी अच्छा है। तब तुम समग्रता से स्वीकार करते हो।

यह सूत्र कहता है :

सच में जानने वाले व्यक्ति के लिए वह अज्ञात है.

यह बात बड़ी विरोधाभासी लगती है।

सच में जानने वाले व्यक्ति के लिए वह अज्ञात है जबकि अज्ञानी के लिए वह ज्ञात है।

केवल अज्ञान ही उसका ऐसा दावा कर सकता है। और जितना अधिक मूर्ख मस्तिष्क होगा, उतना ही अहंकारपूर्ण दावा होगा, उतना ही कट्टर दावा भी होगा।

मतांधतापूर्ण दावा हो तो तुम प्रभावित हो सकते हो। सारे संसार में धर्मांध लोग हैं जो कि दावा करते हैं और उनका दावा लोगों को प्रभावित करता है। क्योंकि उनकी आक्रामकता से, उनकी मतांधता से उनकी परिपूर्ण निश्चयात्मकता से तुम पराजित हो जाते हो। तुम सोचते हो कि इस आदमी ने जरूर पा लिया होगा, क्योंकि कितने साहस से दावा करता है। तुम स्वयं अपने बारे में इतने अनिश्चित हो कि कोई भी मूढ़ अपनी निश्चितता से दावा करके तुम्हें प्रभावित कर सकता है। लेकिन इसे स्मरण रखना? केवल अज्ञान के लिए ही ऐसी निश्चितता होती है। एक समझदार आदमी कभी भी मतांधतापूर्ण ढंग से निश्चित नहीं होता। वह सर्वथा निश्चयपूर्वक कोई भी बात नहीं कह सकता; वह किसी भी बात को आदेशात्मक ढंग से नहीं कह सकता।

उदाहरण के लिए—महावीर—यदि तुम उनसे कोई भी बात पूछो तो वे बड़े अनिश्चित दिखाई पड़ेंगे। वे हैं नहीं, लेकिन वे समझदार हैं। यदि तुम उनसे पूछो कि क्या परमात्मा है? तो वे कहेंगे कि शायद है, शायद नहीं है। यह ऐसा चित्त है जो कि दावा नहीं करता। क्योंकि यदि वे कहें कि वह है तो यह एक दावा हो जाता है, और यदि वे कहें कि वह नहीं है तो यह भी एक दावा हो जाता है। वे कहते हैं—हो सकता है, शायद। उनका शब्द है. स्यात—शायद, हो सकता है।

तुम उनसे प्रभावित नहीं होओगे। इसीलिए इतना बड़ा आदमी पैदा हुआ और इतने कम उसके अनुयायी हैं। तीस लाख से ज्यादा जैन नहीं हैं। पच्चीस सौ साल हो गये। यदि एक अदम और ईव भी महावीर के द्वारा

धर्म—परिवर्तन करते तो वे भी इतनी संख्या तो पैदा कर देते। पच्चीस सौ सालों में केवल तीस लाख लोग। और वे भी सिर्फ जन्म से ही जैन हैं। क्योंकि जैन का अर्थ होता है जिसका दृष्टिकोण है : शायद, संभवत:।

क्यों महावीर लगातार 'शायद' कहे चले जाते हैं चाहे तुम उनसे कुछ भी पूछो? तुम उनसे पूछो कि क्या आत्मा है? तो वे कहेंगे—शायद है, शायद नहीं है। क्यों इतना शायद पर जोर है? क्योंकि कभी उन्होंने ज्ञान का दावा नहीं किया और उन्होंने हर बात को अज्ञात ही रहने दिया। इसलिए शायद पर इतना जोर है। क्योंकि तब बात अज्ञात ही रहती है; अनिश्चित, अस्पष्ट ही रहती है; और तुम खोज कर सकते हो। जब सभी कुछ निश्चित हो जाता है तो खोज समाप्त हो जाती है। यदि उन्होंने कहा होता—हा, परमात्मा है या आत्मा है या आनंद है तो खोज रुक जाती।

अब तुम क्या कर सकते हो? चाहे तुम उनका अनुकरण करो या न करो, लेकिन वे कहते हैं कि 'शायद'। वे हर बात खुली छोड़ देते हैं। यही अर्थ होता है स्वात का—कि हर बात खुली है। वे तुम पर कुछ भी आरोपित नहीं करते। वे मतांधतापूर्वक 'हौ' भी नहीं कहते, वे मतांधतापूर्वक 'न' भी नहीं कहते हैं; क्योंकि उनका आक्रामक ढंग तुम्हें प्रभावित कर सकता है। यह तुम्हारे लिए घातक हो सकता है। सिर्फ उनको सुनना ही.. 'न' भी नहीं कहते। और महावीर ऐसे आदमी हैं कि तुम उनके प्रभाव में आ जाओगे। तुम सम्मोहित हो जाओगे। यदि वे कहते हैं कि परमात्मा है तो यह तुम्हारे लिए ज्ञान हो जायेगा। तुम विश्वास करते चले जाओगे कि परमात्मा है, और वह विनाशकारी सिद्ध होगा। ज्ञान निर्मित करना विध्वंसात्मक है।

लेकिन जो बहुत संवेदनशील लोग हैं वे ही महावीर को समझ सकते हैं। जो लोग असंवेदनशील हैं, अज्ञानी हैं, मूर्ख हैं, वे सोचेंगे कि यह आदमी' नहीं जानता है। हमारे गांव' का पंडित इससे बेहतर है। कम—से —कम वह कहता है कि ही, परमात्मा है, और मैं साबित कर सकता हूं। मैं तुम्हें शास्त्रों से सबूत दे सकता हूं वेद, उपनिषदों से साबित कर सकता हूं। मैं तर्क कर सकता हूं कि परमात्मा है और मैं तुम्हें आश्वस्त कर सकता हूं। और यह आदमी कहता है शायद। क्या मतलब है इसका? इसने जाना भी है या नहीं? लोग महावीर से पूछते रहे हैं, "यदि आपने जाना हो तो फिर ही क्यों नहीं कहते? और यदि आपने जाना हो कि परमात्मा नहीं है तो ना क्यों नहीं कह देते? स्पष्ट बात कह दें। "

क्यों तुम स्पष्टता के लिए कहते हो? तुम स्पष्टता के लिए कहते हो ताकि तुम अंधे होकर अनुगमन कर सको। तुम स्पष्टता के लिए जोर देते हो ताकि तुम्हारे लिए खोज—खबर करने के लिए कुछ भी न बचे। तुम आलसी हो इसलिए तुम स्पष्टता चाहते हो। महावीर तुम्हें स्पष्टता नहीं देंगे। वास्तव में, जब भी तुम महावीर जैसे आदमी से मिलोगे तो वह तुम्हारे भीतर और भी ज्यादा उलझन पैदा कर देगा, क्योंकि उलझन से खोज पैदा होती है, सुनिश्चितता से केवल अज्ञान।

यह सूत्र कहता है : वह परम ज्ञानियों को अज्ञात ही बना रहता है, उन्हें जो कि जानते हैं, उनके लिए अज्ञात ही रहता है, जबकि अज्ञानियों के लिए वह ज्ञात है

बहुत ज्यादा सुनिश्चित मत होओ। अनिश्चित रहो। अनिश्चितता का अर्थ होता है बहाव; अनिश्चितता का अर्थ होता है कि प्रत्येक विकल्प संभव है। तुम कोई स्थिर इकाई नहीं हो। भविष्य केवल अतीत की पुनरुक्ति नहीं होने वाला है। कुछ न कुछ नया प्रतिक्षण संभव है। अस्पष्ट रही। संगत होने पर जोर मत दो। ऊपरी तौर से विरोधाभास दिखाई दे तब भी जल्दी में चुनाव मत करो। प्रतीक्षा करो, तौलों, और विरोधों में भी किसी ऐसी चीज को खोजो जो कि दो विरोधों को जोड़ रही हो। तीसरी चीज सत्य के ज्यादा निकट होगी बजाय विरोधों के।

सारा जोर ग्राहकता की स्थिति में रहने पर है, ताकि अज्ञात तुम पर घटित हो सके। संवेदनशील, तरल तथा उपलब्ध रहो; जैसे कि कोई अतिथि आने को है और तुम उसकी प्रतीक्षा कर रहे हो। द्वार खुला है। यदि हवायें वृक्षों से गुजर रही हैं अथवा सूखी पत्तियों से सरसरा रही हैं तो भी तुम द्वार की ओर लपकते हो। हो सकता है अतिथि आया हो! तुम सजग हो।

अतिथि अभी आया नहीं है। तुम सिर्फ उसकी प्रतीक्षा कर रहे हो। इसी सजगता में कोई सत्य के आत्यंतिक केंद्र को जान पाता है। वस्तुत: अतिथि कभी भी नहीं आता। वह सदा आ ही रहा है। वह आ ही रहा है सदा—सदा। वह सदा निकट है, और निकटतर और निकटतर, और पास और पास, लेकिन वह कभी आता नहीं। तुम सदैव प्रतीक्षा में रहते हो। यह प्रतीक्षा सुंदर है। यह आनदपूर्ण है... यदि तुम प्रतीक्षा कर सको। लेकिन तुम्हारे पास एक अति संवेदनशील चित्त होना चाहिए। वहां निम्न श्रेणी का मूढ़ मन कुछ भी काम का न होगा। मूड मन कहेगा, अब आ भी जाओ; वरना मैं द्वार बंद करने वाला हूं और विश्राम करने जा रहा हूं। मैंने बहुत प्रतीक्षा कर ली है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक कविता है, अब तक लिखी गई सर्वाधिक सुंदर कविताओं में से एक है। कविता का शीर्षक है—'दि किंग ऑफ द नाइट।'

एक मंदिर है, एक बड़ा मंदिर जिसमें सौ पुजारी हैं, जो कि मंदिर के देवता की सेवा में हैं। एक रात वहां के मुख्य पुजारी को एक सपना आया। उसने सपने में देखा कि सम्राट, मंदिर का देवता प्रकट हुआ और उसको बोला कि आज रात मैं आने वाला हूं। वह तो हड़बड़ा कर उठ बैठा। उसे बड़ी चिंता होने लगी कि क्या यह सपना बस एक सपना है या अतींद्रिय दर्शन। यह बस सपना ही है, मेरा मन सपना देख रहा है? या सच में मुझे सूचना दी गई है? क्या देवता, मंदिर का परमात्मा सच में आने वाला है? या यह मेरी ही कल्पना मात्र है?

उसे दूसरों से भी यह बात कहने में भय लगा, कहीं ये लोग उसे पागल न समझें। वे लोग कहेंगे, "देवता यहां कभी भी नहीं आया। हम मंदिर के देवता की मूर्ति को जब से यह मंदिर बना है तब से पूजते आ रहे हैं, लेकिन वह कभी भी नहीं आया। तुम सपना देख रहे हो। तुम अपनी ही कल्पना के शिकार हो रहे हो।"

लेकिन तब उसे यह भी डर लगा कि यदि उसने यह बात नहीं बताई और सचमुच ही देवता आ गया तो ये लोग उसका स्वागत करने के लिए तैयार नहीं होंगे। तब फिर क्या होगा? अत: उसने सोचा कि मूर्ख सिद्ध होने में हर्जा नहीं है, कह देना ज्यादा उचित है।

अत: उसने सबेरे सब पुजारियों को बुलाया और कहा कि रात मंदिर का देवता उसके सपने में प्रकट हुआ था और उसने कहा है कि मैं आज रात आ रहा हूं। अत: मेरी प्रतीक्षा करो, मेरे स्वागत की तैयारी करो। उन सबने हंसना शुरू कर दिया और कहने लगे—यह सपना है, सपनों पर विश्वास मत करो। पागल हुए हो? यदि यह खबर फैल गई और यदि देवता नहीं आया तो लोग हंसेंगे।

अत: उन सबने फैसला किया कि वे किसी को कुछ भी नहीं कहेंगे, लेकिन वे तैयार रहेंगे। कहीं आ ही जाये! अत: उन्होंने सारे मंदिर की सफाई की, सारी तैयारी की। लेकिन वे जानते थे कि यह केवल सपना है, इसलिए आधे मन से सब किया। यह भी इसलिए कि कहीं वह आ ही जाए। उन्होंने सब किया लेकिन प्रेम से नहीं किया, प्रतीक्षारत होकर नहीं किया। वे पहले से ही जानते थे कि यह सिर्फ सपना है। सपने ने उन्हें उन्मुख नहीं किया। वे जानने वाले लोग थे, और उन्हें इतिहास का पता था कि पहले ऐसा कभी नहीं हुआ। वे शास्त्र जानते थे, और प्रकाण्ड पंडित थे। इसलिए उन्होंने कहा कि ऐसा पहले कभी नहीं हुआ और यh अभी भी होने को नहीं है।

पंडित सदैव सोचते हैं कि भविष्य अतीत की पुनरुक्ति है बार—बार; वह कभी भी नया नहीं होता। लेकिन फिर भी वे खतरा मोल लेना नहीं चाहते इसलिए तैयारी भी करते हैं। वे सफाई करते हैं, वे सजावट करते हैं, बहुत—सा भोजन तैयार किया जाता है आने वाले देवता के लिए। लेकिन वे जानते हैं कि यह उनके स्वयं के लिए ही है। यह सब उनके लिए ही है, देवता आदि कुछ आने वाला नहीं है। अत: उनके हृदय तैयार नहीं हैं, केवल मंदिर तैयार है। और जब हृदय तैयार नहीं हो तो मंदिर क्या कर सकता है? अत: वे प्रतीक्षा करते हैं। रात्रि उतर आती है, अंधेरा छा जाता है। रास्ता सुनसान हो गया है, उस पर कोई आता—जाता नहीं है। आस—पास के सब लोग सोने चले गए हैं।

तब वे कहते हैं, बहुत हो गया। केवल एक सपने के लिए हमने बहुत देर इंतजाम कर लिया है। हम बड़े मूर्ख हैं। अब हमें भोजन कर लेना चाहिए जो कि हमने बनाया है। सारा दिन बेकार में ही हम उपवास करते रहे। अत: उन्होंने भोजन कर लिया ओर आनंद मनाते रहे। और उसके बाद वे सो गये। वे थके हुए थे सारे दिन सफाई की थी, सजावट आदि की थी—अत: वे गहरी नींद सो गये।

ठीक आधी रात को उन्होंने अपनी नींद में सुना कि एक रथ उनके मंदिर के पास आ रहा है। उसकी आवाज आ रही है। एक पुजारी सुनता है। उसने कहा, "लगता है कि सम्राट, देवता आ गया है। मुझे रथ के पहियों की आवाज आ रही है। "किसी और ने कहा, "बेवकूफ मत बनो और हमारी नींद खराब मत करो। हमने बहुत प्रतीक्षा कर ली है, बहुत हो गया। अब परेशान मत करो। " अत: वे लोग फिर से सो गये। तब किसी ने पैरों की आहट सुनी। कोई मंदिर की सीढ़ियों से ऊपर आ रहा है—मंदिर की बहुत—सी सीढ़िया हैं।

फिर कोई आधी नींद में कहता है, "लगता है, सम्राट आ गया है। कोई दरवाजे तक आ पहुंचा है। और पैरों की आहट ऐसी है कि किसी मनुष्य की नहीं हो सकती।"

तब मुख्य पुजारी स्वयं कहता है, "मूर्खता की बातें मत करो। सारी रात हमें तंग मत करो। हम लोग सारा दिन काम करते रहे हैं। यदि उसे आना ही होता तो वह शाम तक आ गया होता। कोई आवश्यकता नहीं—ऐसा कभी नहीं सुना गया कि वह आधी रात को आया हो।"

तब कोई द्वार पर दस्तक देता है, और फिर किसी को सुनाई पड़ता है कि द्वार पर दस्तक दी जा रही है। तब तो पुजारी एकदम पागल हो जाता है और कहता है, "बंद करो यह बकवास। कुछ नहीं है बल्कि दरवाजे पर हवा धक्का दे रही है।"

अत: वे फिर सो जाते हैं। सुबह उठ कर वे सब रोते—चिल्लाते हैं और छाती पीटते हैं, क्योंकि रथ आया था। उसके निशान मार्ग पर हैं और देवता मंदिर तक आया था। सीढ़ियों पर उसके पैरों के निशान हैं। लेकिन अब तो कुछ भी नहीं किया जा सकता। वह क्षण, वह अवसर तो चला गया।

यही सारी स्थिति है। वास्तव में, वह तो सदैव ही आ रहा है, उसका रथ तो सदा ही द्वार पर है। वह सदा ही द्वार पर दस्तक दे रहा है, लेकिन तुम बंद हो। खुले रहो—यही उपनिषद की आधारभूत देशना है। ज्ञानी मत बनो। अतीत से, इतिहास से, स्मृति से मत चिपको। खुले रहो और अज्ञात के घटित होने के लिए प्रतीक्षा करो। और जब भी वह घटता है उसे ज्ञात बनाने की कोशिश मत करो। जो भी हो उसे फेंक दो और फिर से तैयार हो जाओ। कुछ फिर से नया होगा। ब्रह्म सदा ही अज्ञात रहता है।

वस्तुत: वही अमरत्व को उपलब्ध होता जो उसे पूरी तरह बोधपूर्वक जानता है

कोई भी ज्ञान आत्यंतिक नहीं है। प्रत्येक ज्ञान सिर्फ एक स्पंदन की भांति है—बस एक स्पंदन, एक कंपन। किसी भी कंपन को आत्यंतिक मत बनाओ। गहरे ध्यान में तुम्हें एक विराट मौन का अनुभव होगा। वह सिर्फ एक

स्पंदन है। इसे ब्रह्म मत समझ लेना। ब्रह्म इससे बहुत बड़ा है। जो भी घटित होता है ब्रह्म उससे बहुत बड़ा है। किसी भी घटना को ब्रह्म के साथ एक मत करो, वरना तुम रुक जाओगे।

ध्यान में तुम्हें कई बार गहरे आनंद की अनुभूति होगी। तुम बह जाओगे। लेकिन नहीं कहो कि यह ब्रह्म है, क्योंकि जैसे ही तुम कहते हो कि यह ब्रह्म है, तुम बंद हो जाते हो। यह सिर्फ बोध का स्पंदन है, सिर्फ अनुभूति का स्पंदन है। सिर्फ चेतना का स्पंदन है, सिर्फ एक तरंग है। लेकिन कभी किसी तरंग को सागर मत समझ लेना। स्मरण रहे कि जब भी तुम किसी लहर को सागर बना देते हो तो वह ज्ञान हो जाता है। तब तुम बंद हो जाते हो। प्रत्येक लहर को एक लहर ही रहने दो, और सागर की प्रतीक्षा करो।

और यह भी स्मरण रहे कि सागर कभी भी नहीं आता, सदा लहरें ही आती हैं। सागर लहरों के द्वारा ही आता है, ये लहरें ही हैं जो कि आती हैं। सागर तो कभी भी नहीं आता। इसलिए स्वयं को एक जगह न रोको और यह मत कहो कि यह लहर सागर ही है। जैसे ही ऐसा तुम कहते हो, तुम बंद हो जाते हो।

बहुत से लोग उस गहरे आनंद को उपलब्ध हुए हैं, और फिर वे रुक गये हैं। क्योंकि वे कहते हैं कि यही ब्रह्म है, उस आत्यंतिक को उपलब्ध कर लिया गया। स्मरण रहे कि उसे कभी उपलब्ध नहीं किया जा सकता। वह प्राप्य है, लेकिन प्राप्त कभी नहीं बन सकता। पहुंचा जा सकता है लेकिन कभी कोई पहुंचा नहीं। यात्रा बाकी ही रहती है। और यह बड़ी सुंदर बात है कि यात्रा बाकी ही रहती है। इसलिए तुमको जो भी अनुभूति होती है, उपनिषद कहते हैं कि वह सिर्फ ज्ञान और सजगता की तरंग है। और यदि तुम इस ज्ञान तथा सजगता की तरंग को अनुभव कर सको तो तुम अमरत्व को उपलब्ध हो जाओगे। क्यों? तुम मरणधर्मा हो, तुम मृत्यु के शिकार होते हो क्योंकि तुम मृत को पकड़ते हो, मृत अतीत को। यदि तुम मृत अतीत से नहीं चिपके तो फिर तुम्हारी कोई मृत्यु नहीं होने वाली है, वह हो ही नहीं सकती। शरीर विलीन हो जायेगा, लेकिन वह कोई मृत्यु नहीं है। वह तुम्हें मृत्यु लगती है क्योंकि तुम शरीर से इतने ग्रसित हो क्योंकि अतीत में तुम शरीर में जीए हो।

एक व्यक्ति सौ वर्षों तक अपने शरीर में रहता है। उस सौ साल के शरीर में रहने के अनुभव के कारण वह शरीर से ग्रसित हो जाता है। अब वह सोचता है कि वह शरीर ही है। वह सौ साल तक शरीर में रहने के कम से, उसकी आदत से उसे गलत खयाल पकड़ जाता है कि वह शरीर ही है। इसीलिए उसे ऐसा लगता है कि मृत्यु आ रही है।

बूढ़ों की अपेक्षा बच्चे मृत्यु से कम डरे हुए होते हैं। क्यों? क्योंकि वे शरीर में अभी नये हैं। वह उनका अभी अनुभव और ज्ञान नहीं हुआ है। वे ताजा हैं। बच्चे सांप के साथ खेल सकते हैं बिना किसी भय के। वे जहर से खेल सकते हैं। वे किसी भी खतरे में उतर सकते हैं। वे भयभीत नहीं हैं। क्यों? क्योंकि वे इस घर में नये हैं। वे इससे इतने नहीं चिपके हुए हैं। यह उनके लिए अतीत नहीं हुआ है। लेकिन देर—अबेर जब वे भी इसमें बहुत साल रह चुके होंगे, वे भी इससे चिपकेंगे। तब वे भी डरे होंगे। तब वे भी मृत्यु से डरने लगेंगे। क्योंकि मृत्यु में शरीर मर जायेगा, और उन्हें अब ऐसा लग रहा है कि वे शरीर ही हैं।

एक आदमी जो कि क्षण— क्षण जीता है, और जो अतीत के प्रति मरता चला जाता है, वह कभी भी किसी चीज से आसक्त नहीं होता। आसक्ति आती है अतीत के इकट्ठे होने के कारण।

यदि तुम अतीत से हर क्षण अलग होते चले जाओ, तो तुम सदा ताजा, युवा तथा नवजात रहोगे। तुम जीवन के साथ धड़कोगे, वह धड़कना ही तुम्हें अमरत्व प्रदान करेगा। तुम अमर हो ही, सिर्फ तुम्हें इस बात का पता नहीं है।

वस्तुत: वही अमरत्व को उपलब्ध होता है जो उसे पूरी तरह बोधपूर्वक जानता है। आत्मा के द्वारा वह शक्ति तथा तेज को प्राप्त करता है और उसके ज्ञान से अमरत्व को।

जितना अधिक तुम जीवन को जानते हो, आंतरिक जीवन को, आत्मा को, उतना ही अधिक तुम जानते हो कि तुम अमर हो। कोई मृत्यु नहीं है; तुम अमर हो।

उसके लिए जो कि उसे यही इसी संसार में जान लेता है सत्य जीवन है

इसलिए किसी अन्य जीवन के लिए मत परेशान होओ। मत परेशान होओ कि मृत्यु के बाद कुछ होगा। यदि यह यहां नहीं हो सकता तो फिर कभी नहीं हो सकता। यदि यह हो सकता है तो केवल यहीं और अभी हो सकता है। यह पृथ्वी, यह जीवन, अभी है। इसे अन्य किसी जीवन के लिए मत गंवाओ। और कोई जीवन नहीं है। जीवन हमेशा यहां है, जीवन हमेशा इस क्षण में है। इसे टालो मत, क्योंकि इसे टालने से तुम यह अवसर चूक सकते हो।

उसके लिए जो कि उसे यही इसी संसार में जान लेता है सत्य जीवन है। वह जो कि उसे नहीं जान पाता बहुत बड़ी हानि को उपलब्ध होता है प्रत्येक प्राणी— मात्र में आत्मा को जानकर ज्ञानीजन इंद्रियों के अनुभव वाले इस संसार के प्रति मर कर अमर हो जाते हैं

अतीत के प्रति मरते चले जाओ, और तुम्हारे चारों ओर कोई संसार नहीं होगा जिससे कि तुम जुड़ सको, ग्रसित हो सको। अतीत के प्रति मर कर तुम इस संसार के प्रति मर जाते हो। स्मरण रहे कि यह संसार तुम्हारे ही अनुभवों से निर्मित होता है, यह तुम्हारा ही अनुभव है। इस अनुभव के प्रति मर कर तुम इतने युवा हो जाते हो कि तुम अपने चारों ओर कोई संसार निर्मित नहीं करते। वास्तविक संसार कोई समस्या नहीं है— तुम्हारे मन के चारों ओर जो संसार है वही समस्या हैं।

मैंने सुना है :

एक बार ऐसा हुआ कि एक घर में आग लग गई। घर का मालिक रोने, चीखने, चिल्लाने लगा और अपनी छाती पीटने लगा। उसका सारा जीवन बर्बाद हो गया। तभी अचानक एक आदमी आया और बोला, "तुम क्यों रो रहे हो? क्या तुम्हें पता है? तुम्हारे बेटे ने कल तय कर लिया था, मकान बेचा जा चुका है। " आंसू गायब हो गये, और वह आदमी मुस्कुराने लगा। वह बोला, "ऐसा है क्या? " घर अभी भी जल रहा था, लेकिन अब उसका आंतरिक घर नहीं जल रहा था। घर कोई समस्या नहीं था, वह जो भीतर आसक्ति थी वही समस्या थी।

थोड़ी देर बाद उसका बेटा आया और बोला, "ही, हम तय करने ही वाले थे, लेकिन अभी कोई मामला तय नहीं हुआ था।"

उस आदमी के आंसू फिर से बहने लगे। फिर से वह छाती पीटने लगा, मगर उस घर को कुछ पता नहीं था कि उस आदमी को क्या हो रहा था। कुछ ही मिनटों में सभी कुछ बदल जाता है—आंतरिक संसार बदल जाता है। यदि घर उसका न होता तो उसको कोई समस्या नहीं थी। वह घर कोई समस्या नहीं थी, लेकिन घर मेरा है—यह 'मेरा' ही सारे भीतर के संसार को निर्मित करता है।

यदि तुम अतीत को उठा कर फेंकते जाओ, तो फिर तुम्हारा कुछ भी नहीं है। तब तुम्हारी मालकियत किसी चीज पर भी नहीं है, तुम सदा बिना किसी मालकियत के होते हो। यही संन्यास है। ऐसा नहीं है कि तुम घर का उपयोग नहीं करोगे, नहीं कि तुम कपड़े नहीं पहनोगे, नहीं कि तुम इस संसार में नहीं रहोगे, लेकिन तुम्हारी मालकियत किसी भी चीज पर नहीं होगी।

मन का भीतरी संसार विलीन हो जाता है बस। तब जो यह वास्तविक जगत है, सुंदर है। सारी कुरूपता तुम्हारे मन के द्वारा प्रक्षेपित की जा रही है, मृत अतीत के द्वारा थोपी जा रही है। तब जीवन कुरूप हो जाता है। जीवंत वर्तमान के साथ जीवन बस सुंदर है और आंनदपूर्ण है।

ग्यारहवां प्रवचन

सत्य या युक्ति

पहला प्रश्न :

आपने कहा कि क्षण—क्षण जीने के लिए व्यक्ति को अपने मृत अतीत तथा स्मृतियों को फेंक देना चाहिए। क्या इसका यह अर्थ है कि मन का अतिक्रमण करने के लिए सारी स्मृतियों को विलीन तथा नष्ट कर देना होगा? लेकिन इस संसार में व्यवहार करने केलिए तेज और कार्यकुशल स्मृतियों का संचय होना भी तो जरूरी है।

अतीत के प्रति मर जाने का यह अर्थ नहीं होता कि तुम उसकी याद नहीं रख सकोगे। इसका यह अर्थ नहीं होता कि तुम्हारी सारी स्मृतियां विलीन हो जायेंगे। अथवा नष्ट हो जायेंगी। इसका अर्थ सिर्फ इतना ही है कि तुम इस स्मृतियों में नहीं जीते। तुम्हारा इन स्मृतियों सेकोई तादात्म्य नहीं है। तुम उनसे मुक्त हो गये। वे रहेंगी, लेकिन अब वे सिर्फ तुम्हारे मस्तिष्क का एक हिस्सा होंगी। न कि तुम्हारी चेतना का हिस्सा।

मस्तिष्क एक यंत्रिक बात है। जैसे कि टेप——रिकार्डिंग मशीन होतीहै। मस्तिष्क प्रत्येक बात को रिकार्ड करता चला जाता है। मस्तिष्क भोतिक अंग है। यह रिकार्ड करता चला जाएगा। और तुम्हारी स्मृति नष्ट नहीं हो सकती। जब तक कि मस्तिष्क को नष्ट नहीं कर दिया जाये। लेकिन वह कोई समस्या नहीं है। समस्या यह है कि तुम्हारी चेतना स्मृतियों से भरी है। तुम्हारी चेतना लगातार मस्तिष्क से तादात्म्य बनाये हुए हे। और मस्तिष्क सदा तुम्हारी चेतना से उद्वेलित है। और तुम्हारे भीतर स्मृतियों की बाढ़ आती रहती हे।

जब तुमसे कहा जाता हैं कि अतीत के प्रति मर जाओ, तो उसका अर्थ होता है कि मन लें अपना तादात्म्य मत करो। तुम मन का उपयोग कर सकते हो; तब तुम्हारा मन सिर्फ एक यंत्र है; जब भी तुम्हें इसकी जरूरत होगी, तुम इसका उपयोग कर लोगे। और तुम्हें इसकी जरूरत पड़ेगी। तुम्हें लौटकर घर जाना पड़ेगा, तुम्हें याद रखना पड़ेगा कि तुम कहौ रहते हो, कि तुम्हारा घर कहां है, तुम्हारा नाम क्या है। तुम इन स्मृतियों का उपयोग कर सकते हो। मगर तुम उनका उपयोग करो, उन्हें तुम्हारा उपयोग नहीं करने दो बस यही समस्या है।

जब तुम यहां पर हो तो तुम्हें अपने घर के विषय में सोचने की जरूरत नहीं है, जहां तुम रहते हो तुम्हारे गांव में, लेकिन तुम लगातार उसके बारे में सोचते रहते हो। तुम्हें अपनी पत्नी को याद करने की जरूरत नहीं है जब तक तुम यहां हो। लेकिन तुम उससे बात करते रहते हो, जबकि वह यहां उपस्थित नहीं है। जब तुम घर वापस लौटोगे तब तुम्हें उसे पहचानना चाहिए कि वह तुम्हारी पत्नी है, लेकिन अभी उसकी चिंता करने की क्या जरूरत है? उसे तुम्हारे मन में आने की जरूरत नहीं है। मन को अनावश्यक कार्य करने की जरूरत नहीं है। उस अतीत को बीच में लाने की जरूरत नहीं है; उस वर्तमान को अतीत से भरने की जरूरत नहीं है।

स्मृति तो रहती है। वह कोई नष्ट नहीं की जा सकती है। ध्यान में मन को नष्ट नहीं किया जाता। तुम सिर्फ उसका अतिक्रमण करने लगते हो। वह एक भंडारघर की भांति रहता है। तुम्हें उसमें रहने की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम उसमें रहते हो तो तुम पागल हो। तुम्हें भंडारघर में रहने की जरूरत नहीं है। जब तुम्हें किसी चीज

की आवश्यकता होती है तो तुम उसमें जाते हो और उस वस्तु को निकाल कर उसका उपयोग कर लेते हो। लेकिन एक भंडारघर कोई रहने का कमरा नहीं है।

लेकिन तुमने उसे रहने का कमरा बना लिया है। तुम्हारा स्मृतियों का भंडारघर ही तुम्हारा रहने का कमरा बन गया है। तुम वहां रहते हो। वहां मत रहो; बस इतना ही अर्थ है। वर्तमान में रहो, और जब भी अतीत की जरूरत हो उसका उपयोग करो। मगर व्यर्थ में ही उसे लगातार तुम्हारे ऊपर मत छाने दो। वह जो अतीत की बाढ़ लगातार आती रहती है, वही चेतना को धीमी और धुंधली कर देती है। तब तुम स्पष्ट आंखों से नहीं देख सकते, तुम स्पष्ट हृदय से अनुभव नहीं कर सकते। तब कुछ भी स्पष्ट नहीं होता। सभी बातें उलझी हो जाती हैं।

इसके विपरीत, जब तुम मन से तादात्म्य नहीं बनाते तो तुम्हारी स्मृति बड़ी स्पष्ट होगी। तुम्हारी स्मृति अच्छी नहीं है क्योंकि तुम अपने मालिक नहीं हो। तुम्हारा मन एक विक्षिप्त यांत्रिकता है। जब तुम कुछ याद करना चाहते हो तो तुम उसे याद नहीं कर पाते, और जब तुम उसे याद नहीं करना चाहते तो वही—वही याद आता है। और तुम मालिक नहीं हो सकते यदि तुम गुलाम से तादाक्य बना लो। यदि तुम गुलाम से बहुत ज्यादा आसक्त हो जाओ, तो गुलाम तुम पर हुक्म चलाने लगेगा।

अत: यदि तुम अतीत के प्रति मर जाओ तो तुम उस कारण अपने मन से कार्य लेने में कुछ कम कुशल नहीं हो जाओगे, बल्कि तुम ज्यादा ही कुशल हो जाओगे। एक मालिक सदा ज्यादा कुशल होता है। जब वह याद करना चाहता है तो वह याद कर लेता है, और जब याद नहीं करना चाहता तो वह याद नहीं करता। जब वह मन से कहता है कि कार्य करो, तो वह कार्‌य करता है। और जब कहता है कि रुको तो मन रुक जाता है।

मुझे भी स्मृतियों का उपयोग करना पडता है। मुझे तुमसे बात करनी होती है, मुझे शब्दों का उपयोग करना पडता है, मुझे भाषा का उपयोग करना पड़ता है। लेकिन जब मैं तुमसे बात कर रहा हूं केवल तभी मैं उनका उपयोग करता हूं। जिस क्षण भी मैं नहीं बोल रहा हूं मन रुक जाता है। फिर परिपूर्ण रिक्तता है—शून्य। तब कोई बादल नहीं है।

यह तुम्हारे पांवों की तरह है, जब तुम चलना चाहते हो तो तुम अपने पैरों का उपयोग करते हो। लेकिन तुम उन्हें तब भी हिलाते ही जाओ, जब तुम बैठे या खड़े हो तो लोग समझेंगे कि तुम पागल हो गये हो। तब तुम कह सकते हो कि मैं क्या कर सकता हूं? मेरे पैर हिलते ही जाते हैं, मैं इसमें कुछ भी नहीं कर सकता। तब तुम्हें यदि कोई कहे कि रोको इसे, तो तुम कहोगे कि यदि मैं रुक जाऊं तो जब मुझे चलना होगा तब मैं क्या करूंगा। मैं कम कुशल हो जाऊंगा। यदि मैं रुक जाऊं तो मेरी चलने की सामर्थ्य ही खो जायेगी, इसलिए मुझे इन्हें सतत चलाते रहना पडता है। याद रहे, यदि तुम उन्हें लगातार चलाते रहे तो जब चलने का समय आयेगा तो तुम्हें थकान महसूस होगी। तुम पहले से ही थके हुए हो।

जब बैठे हो, पैरों का उपयोग करने की कोई भी जरूरत नहीं है। जब बोल नहीं रहे हो तब शब्दों को उपयोग करने की कोई भी जरूरत नहीं है। अपने भीतर शब्द न निर्मित करो। जब अतीत का उपयोग नहीं कर रहे हो तो इसकी बाढ़ को तुम पर न आने दो। अतीत के प्रति मरने का अर्थ होता है, अपने मन के मालिक होना। तब तुम ज्यादा कुशल होओगे। लेकिन वह कुशलता एक दूसरा ही गुणधर्म लिए होगी—एक बिलकुल ही भिन्न प्रकार का गुणधर्म होगा। उसमें कोई प्रयास नहीं होगा।

अभी, जब कभी तुम कुछ याद करना चाहते हो तुम्हें प्रयास करना पड़ता है क्योंकि तुम इतने ज्यादा थके हुए हो। तुम्हारा मस्तिष्क लगातार काम करने में इतना ज्यादा थका हुआ है। उसके लिए कोई रुकना नहीं है, कोई विश्राम नहीं है। यहां तक कि जब तुम सो रहे हो तब भी शरीर तो विश्राम कर रहा है लेकिन मन कार्य करता ही चला जाता है। सपनों में वह सक्रिय है—सतत कार्य में लगा है। चमत्कार है कि तुम अभी तक पागल

कैसे नहीं हुए। हो सकता है कि तुम पागल हो ही चुके हो, लेकिन तुम्हें पता नहीं है। अथवा, यह भी हो सकता है कि प्रत्येक तुम्हारी ही तरह पागल है, इसलिए तुम तुलना नहीं कर सकते, और तुम नहीं जान सकते कि तुम्हें क्या हो रहा है।

डरो मत। तुम्हारी कुशलता बढ़ जायेगी। और उसका गुणधर्म भिन्न ही होगा क्योंकि उसमें कोई भी प्रयास नहीं होगा। जब भी तुम्हें जरूरत होगी तुम मन का उपयोग कर सकोगे। वह सिर्फ एक यंत्र की भांति है, जैसे कि तुम्हारे हाथ हैं, पैर हैं, वह तुम्हारे शरीर का एक अंग है। स्मृति एक शारीरिक बात है, याद रहे। इसलिए यदि तुम्हारा मस्तिष्क क्षतिग्रस्त हो जाए तब भी तुम जीवित और होश में रह सकते हो लेकिन तुम अपनी स्मृति गंवा दोगे। इसलिए यदि तुम्हारे मस्तिष्क का एक खास हिस्सा नष्ट कर दिया जाये तो एक विशेष प्रकार की स्मृति खो जायेगी।

मेरा एक मित्र जो कि डॉक्टर है, ट्रेन से गिर पड़ा। वह सिर के बल गिरा था, कुछ अंदर टूट गया। तीन वर्ष तक उसकी सारी स्मृति खो गई। वह अपने माता—पिता को भी नहीं पहचान सका। वह जिंदा था, पूरी तरह जिंदा था, चेतन था, लेकिन वह लिख—पढ़ नहीं सकता था क्योंकि उसकी समस्त स्मृति खो गई थी। उसने पुन: अ, ब, स से शुरू किया। तीन वर्ष बाद ही वह फिर से अपने मस्तिष्क का उपयोग कर सका। लेकिन वह सिर्फ तीन वर्ष का बच्चा था। सारे चिकित्सा शास्त्र का ज्ञान, सारी डिग्रियां खो गई थीं, क्योंकि उसके मस्तिष्क के कुछ विशेष तंतु—नाड़ियां आदि नष्ट हो गए थे, और उनके साथ उसकी सारी स्मृतियां भी नष्ट हो गई थीं।

अब चीन में वे ब्रेन वाशिंग करते हैं। मस्तिष्क के किन्हीं खास हिस्सों पर वे बिजली के झटके देते हैं। केवल बिजली के उन झटकों से वे भीतरी सारी स्मृति को नष्ट कर देते हैं। अत: यदि तुम धार्मिक आदमी हो तो मस्तिष्क में वे तुम्हें शॉकट्रीटमेंट देंगे और तुम्हारी सारी समृतिया—कि तुम धार्मिक हो, कि तुम इस चर्च को जाते हो, कि तुम वह बाइबिल पढ़ते हो, या तुम उस संप्रदाय से संबंध रखते हों—सब नष्ट हो जायेंगी। तब तुम्हें आसानी से एक कम्युनिस्ट में बदल दिया जाएगा, क्योंकि तुम्हें पता नहीं है कि तुम कौन हो।

और अब ये तरकीबें सारे संसार को पता हो चुकी हैं। अब सभी सरकारों के पास रहस्य मौजूद हैं। और सारी दुनिया में जो सबसे खतरनाक बात घटित होने वाली है वह यह है कि अब शारीरिक हिंसा के स्थान पर मानसिक हिंसा शुरू होने वाली है। तुम्हें किसी आदमी को मारने की जरूरत नहीं है, तुम सिर्फ उसकी किसी खास स्मृति को नष्ट कर दो। एक बार उसकी ब्रेन—वाशिंग हो जाए, तो उसे फिर से अ, व, स, से पढ़ना पड़ेगा। फिर वह तुमसे नहीं लड़ सकता।

यदि तुम उसे कम्मुनिस्ट अथवा कम्मुनिस्ट—विरोधी बनाना चाहते हो तो पहले स्मृति को नष्ट कर दो। तब फिर वह एक बच्चे की भांति हो जाएगा—असहाय। तब फिर से उसका प्रशिक्षण शुरू करो। अब एक नई स्मृति शुरू होगी, एक नई शिक्षा, एक नया संस्कार प्रारंभ होगा।

अणु—बम भी इतना खतरनाक नहीं है जितने ये रहस्य हैं, क्योंकि इनके द्वारा आदमी की आत्मा को भी गुलाम बनाया जा सकता है। यदि जीसस का पुन: रूस में या चीन में जन्म हो तो वे उन्हें क्रास पर नहीं लटकायेंगे। सर्वप्रथम वे उनकी स्मृति को नष्ट करने का प्रयास करेंगे। वे जीसस के साथ सफल नहीं हो सकेंगे, लेकिन वे तुम्हारे साथ सफल हो सकते हैं। वे जीसस के साथ सफल नहीं हो सकते क्योंकि जीसस का पहले ही अपनी स्मृति से कोई तादाक्य नहीं है। तुम यदि समृति को नष्ट कर दो तो वास्तव में उनका कुछ भी नहीं खोता क्योंकि वे अपनी चेतना में जीते हैं, न कि स्मृति में।

तुम्हारे पास अलग से कोई चेतना नहीं है जो कि तुम्हारी स्मृति से अलग हो। अत: यदि तुम्हारी स्मृति को नष्ट कर दिया जाए तो तुम्हारी चेतना भी नष्ट हो जाती है। तुम्हें पता ही नहीं है कि बिना स्मृति के किस तरह

कार्य किया जाता है। इसलिए नई पीढ़ी के लिए, आने वाले संसार के लिए, ध्यान की बडी जरूरत है, क्योंकि केवल ध्यान ही तुम्हें राजनीतिक तानाशाही से बचा सकता है—और कुछ भी नहीं। वे तुम्हें साइबेरिया अथवा जेल में नहीं भेजेंगे। नहीं, वे सब बातें बहुत पुरानी हो गईं। वे तुम्हारी खोपड़ी के चारों ओर एक बिजली का यंत्र लगा देंगे और वे तुम्हारे मस्तिष्क को एक विशेष प्रकार के बिजली के झटके देंगे, और तुम बच्चे की तरह हो जाओगे। वे तुम्हारी स्मृतियों को वैसे ही पोंछ डालेंगे, जैसे कि तुम किसी टेप को साफ कर देते हो। जो किया जाता है वह इतना ही है कि कुछ बिजली के झटके, और जो भी रिकार्ड है वह सब साफ हो जाता है। तब तुम पुन: रिकार्ड कर सकते हो। यही बात मस्तिष्क के साथ भी संभव है, क्योंकि मस्तिष्क एक यांत्रिक घटना है।

अत: जब मैं तुमसे कहता हूं कि अतीत के प्रति मर जाओ तो मेरा मतलब है कि मन के साथ इतने मत जुड़ो कि तुम्हें पता ही नहीं चले कि तुम बिना मन के भी हो सकते हो। इस बात को जानकर, इस बात को अनुभव करने के बाद कि मैं बिना मन के भी हो सकता हूं कि मैं चेतना हूं न कि स्मृतियां; कि स्मृतियां सिर्फ मेरी साधन मात्र हैं; यह सब जान कर तुम अपने मन से मुक्त हो सकते हो। और एक बार तुम अपने मन से मुक्त हो जाओ, तो फिर कोई तुम्हें गुलाम नहीं बना सकता।

अन्यथा प्रत्येक छलपूर्वक इस कोशिश में लगा है कि कैसे तुम्हें गुलाम बनाया जाये। धर्मों, तथाकथित धर्मों ने यही किया है। वे तुम्हारे मस्तिष्क को बहकाए चले जाते हैं। जब तुम बच्चे थे तो वे तुम्हें सिखा रहे थे कि तुम हिंदू हो, ईसाई हो, कैथोलिक हो अथवा प्रोटेस्टेंट हो। वे तुम्हें बचपन से सिखाते चले आ रहे हैं जबकि तुम्हें कुछ भी पता नहीं था, जबकि तुम जरा भी सावधान नहीं थे, सजग नहीं थे, तब तुम यह भी नहीं पहचान सकते थे कि क्या सच है और क्या झूठ है। जब तुम सोच भी नहीं सकते थे, तबसे ही उन्होंने तुम्हें सिखाना शुरू कर दिया, संस्कार देना शुरू कर दिया था। उन्होंने तुम्हें हिंदू मुसलमान, ईसाई, जैन आदि न जाने क्या—क्या बना दिया। ये ही गुलामिया हैं।

अब बच्चों को पकड़ने की जरूरत नहीं है, एक बूढ़े को भी फिर से बच्चा बनाया जा सकता है, सिर्फ ब्रेनवाश की जरूरत है। तब उसे अ, ब, स, से सीखना पड़ेगा। और जब तुम अ, ब, स, से शुरू करते हो तो तुम विवाद नहीं कर सकते। जब तुम अ, ब, स, से ही सीख रहे हो तो तुम अविश्वास भी नहीं कर सकते। इसीलिए प्रत्येक धर्म बच्चों को पकड़ना चाहता है और प्रत्येक धर्म कुछ धार्मिक शिक्षा बच्चों पर आरोपित करना चाहता है। क्योंकि केवल बचपन में ही...।

वस्तुत: यदि तुम सात वर्ष के पहले बच्चे को नहीं पकड़ पाते हो तो फिर बाद में उसे नहीं पकड़ा जा सकता। सात वर्ष के पहले उसे ग्गुलाम बनाया जा सकता है। और तब उसे कभी पता नहीं चलेगा कि वह गुलाम है, क्योंकि दासता उसकी सजगता से भी गहरी चली जायेगी।

तुम कभी भी नहीं सोच सकते कि ईसाई होने से तुम एक दास हो गये अथवा हिंदू होने से तुम एक दास हो गये। या कि तुम सोच सकते हो पू

समाज ने तुम्हारे साथ एक चालाकी की है। जब तुम पूरी तरह सजग नहीं थे तभी उसने तुम्हारे मन को संस्कारित कर दिया। अब जब तुम सोचते हो तो तुम्हारे संस्कार तुम्हारे विचार से भी गहरे जा चुके हैं। जो कुछ भी तुम सोचते हो, वे संस्कार उसको रंगते जाते हैं। यहा तक कि यदि तुम ईसाइयत विरोधी भी हो जाओ और तुम्हें ईसाई होना सिखाया गया था तो तुम्हारे ईसाइयत के विरोध में भी ईसाइयत मौजूद होगी। तुम्हारा ईसाइयत विरोध भी ईसाइयत के ही संस्कारों से प्रभावित होगा। तुम उसी बात से ग्रसित होओगे सिर्फ उसका रुख उल्टा होगा।

फ्रेडरिक नीत्शे ईसाइयत के विरोध में था, विशेष कर जीसस के। लेकिन उसे एक ईसाई की तरह पाला—पोसा गया था। वह अपनी सारी जिंदगी भर संघर्ष करता रहा। अपनी सारी जिंदगी वह क्राइस्ट के विरोध में लिखता रहा।

लेकिन वह क्राइस्ट से इतना ग्रसित था कि वह पागल हो गया। और अपने अंतिम दिनों में जबकि वह पागल हो गया तो वह अपने हस्ताक्षर 'क्राइस्ट—विरोधी फ्रेडरिक नीत्शे' करता था। उसका वह संस्कार इतना गहरे चला गया था! तुम विरोधी बन सकते हो लेकिन तुम तटस्थ नहीं रह सकते।

मरो अतीत के प्रति, जीयो वर्तमान में जिस क्षण में तुम हो—इससे तुम्हारा मन नष्ट नहीं हो जायेगा। वास्तव में उससे तुम्हारे बेचैन मन को विश्राम मिलेगा। तुम्हारी कुशलता बढ़ जायेगी, और कोई प्रयत्न अथवा प्रयास नहीं करना पड़ेगा। तुम्हें स्मरण करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। तुम्हें स्मरण रहेगा ही। क्योंकि यह मन का कार्य है उसके लिए तुम्हें कोई प्रयास करने की जरूरत नहीं है।

मैं इस देश में पंद्रह साल तक घूमता रहा और हजारों लोगों से मेरा परिचय हुआ। और दस साल के बाद भी मैं दुबारा उस शहर में जाता तो मैं वे चेहरे पहचानता, उनके नाम भी मुझे याद रहते। मैं स्वयं आश्चर्यचकित होता। आखिर बात क्या है और इसके लिए मैंने कोई प्रयास नहीं किया था। लेकिन बात इतनी ही है कि मुझे लोगों में रुचि है। अगर तुम्हें किसी बात में सचमुच ही रुचि है तो वह तुम्हें स्मरण रहेगी। उसके लिए किसी प्रयास की जरूरत न पड़ेगी।

स्मरण रखना स्मृति की एक यांत्रिक प्रक्रिया है। यदि तुम किसी आदमी में वस्तुत: रुचि रखते हो तो तुम्हें उसका चेहरा कितने ही जन्मों तक याद रहेगा। मुझे कई जन्मों के बाद भी बहुत—से चेहरे याद हैं। तुम उन्हें भूल नहीं सकते क्योंकि मूलने का प्रश्न ही नहीं है। तुम्हारे मस्तिष्क का यांत्रिक हिस्सा प्रत्येक बात को रिकार्ड करता जाता है, केवल तुम्हारी रुचि की जरूरत है।

जब तुम रुचि लेते हो तो तुम्हारी यांत्रिकता उस व्यक्ति पर केंद्रित हो जाती है; वह कैमरे के लेंस की तरह रिकार्ड करती है। यदि तुम्हारा किसी चेहरे में रस है, तो कैमरा गति करता है और रिकार्ड कर लेता है। यदि जो भी तुम कह रहे हो उसमें मेरा रस है तो मेरा मन केंद्रित हो जाता है। वह रिकार्ड करता जाता है। उसके लिए किसी प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम्हारा रस नहीं है तो वह रिकार्ड नहीं करेगा, क्योंकि वह केंद्रित ही नहीं हुआ।

अत: यदि तुम चीजों को भूल जाते हो तो उसका कारण इतना ही है कि तुम्हें उनमें कोई रस नहीं है। यदि तुम चीजों को भूल जाते हो तो इसका मतलब है कि तुम्हारा मन उलझा हुआ है। यदि तुम चीजों को भूल जाते हो, और उन्हें याद नहीं रख सकते और कुशल नहीं हो तो इसका अर्थ है कि जब तुम एक चेहरे को देखते हो, तो तुम्हारे भीतर बहुत—सी स्मृतियां चल रही होती हैं। तुम्हारा दर्पण खाली नहीं है। तुम्हारा लेंस पहले से ही भीड़ से भरा हुआ है।

कोई कहता है कि मेरा नाम राम है, और तुम अपना सिर हिलाते हो कि ही; जैसे कि तुमने सुन लिया हो। लेकिन तुम्हारा मन बहुत—सी बातों से भरा हुआ है, तुमने सुना ही नहीं है। और फिर तुम कहते हो कि मैं नाम क्यों भूल गया? वास्तव में तुमने नाम सुना ही नहीं। तुम्हें उस व्यक्ति में कोई दिलचस्पी नहीं थी, इतना रस नहीं था कि तुम्हारा मन मौन हो जाता। जब भी कभी तुम किसी बात में रुचि रखते हो तो मन शात हो जाता है और तुम्हारा सारा अस्तित्व खुल जाता है।

घटनाओं की स्मृतियां अंकित होती जाती हैं और जब भी तुम्हें किसी बात की आवश्यकता होगी तो वे ऊपर आ जायेंगी। लेकिन यह बात तुम्हारे लिए इतनी सरल नहीं है, क्योंकि तुम्हारा मन इतना भरा हुआ है कि

जब भी तुम्हें किसी चीज की जरूरत पड़ती है तो प्रत्येक चीज उसके साथ उलझ जाती है। कुछ भी स्पष्ट नहीं है। प्रत्येक चीज एक—दूसरी से उलझी हुई है, एक—दूसरी में अतिक्रमण कर गई है। कुछ भी स्पष्ट नहीं है। स्पष्टता नहीं है, केवल उलझाव है। उसी उलझाव के कारण तुम कुशल नहीं हो, तुम बिना किसी प्रयत्न के कुशल हो सकते हो। यदि तुम इस क्षण के प्रति सजग हो जाओ और अपने को अतीत के बोझ से बोझिल न होने दो।

दूसरा प्रश्न :

मुझे इच्छाओं की व्यर्थता महसूस होती है और समझ में आती है। ऐसा लगता है कि मेरे भीतर कोई महत्वाकांक्षा नहीं है। लेकिन फिर भी कोई प्यास है अभीप्सा है और एक आतरिक अतृप्ति का भाव है कृपया समझाएं कि क्या यह भी इच्छाओं का ही एक हिस्सा है?

ही, यह भी वासनाओं का ही एक हिस्सा है—नकारात्मक हिस्सा। प्रत्येक चीज के दो भाग होते हैं—विधायक तथा नकारात्मक। वासना का विधायक भाग होता है कि चीजों की वासना करे, महत्वाकाक्षा करे। जब किसी को वासना के विषय का पता होता है, तो वह विधायक वासना होती है। और जब वासना के विषय का पता नहीं होता तो वासना नकारात्मक होती है, लेकिन तब वासना की प्यास का—उसकी लालसा का—पता चलता है।

ये दो भाग हैं। अतृप्ति का अनुभव—यह महत्वाकांक्षा का नकारात्मक हिस्सा है। और किसी वस्तु की वासना से ग्रसित होना—यह महत्वाकांक्षा का विधायक हिस्सा है। दोनों ही वासनाएं हैं। और यदि तुम सिर्फ बुद्धि से समझ लेते हो कि वासना बेकार है तो नकारात्मक हिस्सा तुम्हारे साथ रहेगा—यदि तुमने सिर्फ बुद्धि से समझ लिया है कि वासना व्यर्थ है और यह कोई अस्तित्वगत अनुभव नहीं है।

तुम बातें सुनते रहे हो। तुम सुनते रहे हो और तुम पढ़ते रहे हो। और बुद्ध और क्राइस्ट जैसे लोग जगत से बोलते रहते हैं और वे कहते रहते हैं कि तुम दुख में हो क्योंकि वासना है, तुम दुख में हो क्योंकि इच्छा है। और वे कहते हैं कि वे बड़े आनंद में हैं, क्योंकि कोई इच्छा नहीं है। तुमने उन्हें देखा है; तुमने उनकी आंखों में झांका है; तुमने उनके चेहरे देखे हैं, और तुमने उनकी आभा, उनका आनंद भी देखा है जो कि उनके चारों ओर नाचता रहता है। उनकी छाया में भी आनंद है, नृत्य है। तुमने उन्हें देखा है, तुमने उन्हें सुना है और वे कहते हैं कि यदि तुम इच्छा करोगे तो तुम पीड़ा पाओगे, और यदिं तुम इच्छा नहीं करोगे तो तुम आनंद में रहोगे।

अब यह बात बौद्धिक रूप से तुम्हारी समझ में आ जाती है। क्योंकि वासना तनाव पैदा करती है, क्योंकि वासना भविष्य निर्मित करती है, क्योंकि वासना अपेक्षा को जन्म देती है, और जब वह पूरी नहीं होती तो तुम पीड़ा पाते हो। अथवा, जब वह पूरी भी हो जाती है तो भी तुम आनंद में नहीं होते। जब वह पूरी हो जाती है तो तुम्हें लगता है कि यह तो कुछ भी नहीं है; कि यह तुम्हारे सपनों की तुलना में, तुम्हारी अपेक्षा की तुलना में कुछ भी नहीं है। तुम किसी व्यक्ति के प्रेम में पड़ जाते हो, किसी लड़की या लड़के के प्रेम में पड़ जाते हो, या तुम कोई घर चाहने लगते हो, या तुम किसी कार को प्रेम करने लगते हो, और तुम सोचते हो कि यदि यह स्त्री मुझे मिल जाये तो मैं बड़े आनंद में होऊंगा। लेकिन यह तुम्हारा सपना है, कोई भी स्त्री इसे पूरा नहीं कर सकती।

यह सिर्फ कल्पना है जिसे कोई भी वास्तविक स्त्री पूरा नहीं कर सकती। हर स्त्री इस सपने की तुलना में फीकी पड़ जायेगी। लेकिन यह किसी स्त्री का कसूर नहीं है। यह तुम्हारा ही मन है जो कि सपने संजोता रहता है। तुम एक सपना, एक कल्पना खड़ी कर लेते हो और आकाश में उड़ने लगते हो। फिर तुम एक स्त्री से मिलते हो। यदि तुम उसे नहीं पा सके, उस पर मालकियत नहीं जमा सके तो तुम पीड़ा पाओगे; क्योंकि तुमने एक सपना देखा था और तुम्हारा सपना पूरा नहीं हुआ। तुम सदा अपने दिल में एक पीड़ा का अनुभव करोगे।

लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि यदि तुमको वह मिल भी जाती तो तुम और भी ज्यादा पीड़ा पाते! क्योंकि यदि तुम उससे नहीं मिल पाये तो कम से कम तुम्हारा सपना बना रहता है। तुम सपना देखते रह सकते हो। लेकिन यदि वह तुम्हें मिल गई तो तुम पाओगे कि कोई भी स्त्री स्वर्ग में नहीं रहती। जैसे तुम पृथ्वी पर रहते हो, वह भी पृथ्वी पर ही रहती है। वह भी उतनी ही इस पृथ्वी की है जितने कि तुम हो, बल्कि स्त्री पुरुष से ज्यादा ही पार्थिव होती है। वह तुम्हारे सारे सपनों को बिखेर देगी। और जब तुम अपने सपनों से जागोगे तो तुम और भी ज्यादा दुख में होओगे। चाहे तुम्हारा सपना पूरा हो जाये या न हो पाये, दुख ही होगा। सपनों से सिर्फ दुख ही फलित होता है।

यह बात तुम समझ सकते हो। तुम्हारा अनुभव भी सहायक होगा। बौद्धिक रूप से तुम इसे समझ सकते हो, और फिर तुम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हो कि कामना व्यर्थ है। वासना करना ही व्यर्थ है; यह हमें सिर्फ दुख में तथा नर्क में ले जाती है। लेकिन इससे वासना का विधायक हिस्सा ही रुकेगा, नकारात्मक तो वैसा ही रहेगा।

वस्तुत: तुम अभी भी कामना कर रहे हो। तुम अब निर्वासना की स्थिति की कामना कर रहे हो। अब तुम निर्वासना की वासना कर रहे हो। अब निर्वासना तुम्हारी इच्छा की विषय—वस्तु बन गई है। तुम्हें एक प्रकार की अभीप्सा होगी, खोज होगी, प्यास होगी, और एक अतृप्ति होगी।

अब क्या किया जाये? क्या किया जा सकता है? बौद्धिक समझ से तुम्हें कुछ भी नहीं होगा। तुम वासना की वस्तु बदलते रहोगे। और वह नकारात्मक हिस्सा तुम्हें नई—नई वासनाओं की ओर धकेलता रहेगा। उसे जीयो। बुद्ध पर विश्वास मत करो, जीसस पर विश्वास —मत करो, मुझ पर विश्वास मत करो—उसे जीयो। वासना करो और उसे जीयो, और वासना को उसकी परिपूर्णता में अनुभव करो। और कोई जल्दी मत करो, निर्णय लेने की इतनी जल्दी मत करो। तुम्हारी सारी पीड़ा ही इसलिए है क्योंकि तुम निष्कर्ष पर पहुंचने की जल्दी करते हो।

तुम किसी भी बात में विश्वास करने को इतने आतुर हो क्योंकि तुम अनुभव में नहीं जाना चाहते। अनुभव पीड़ादायी हो सकता है, लेकिन उसे होने दो। केवल अनुभव ही तुम्हारी मदद कर सकता है। अपरिपक्व निष्कर्ष, कच्चे विश्वास तुम्हारे किसी भी काम के नहीं होंगे। तुम सिर्फ अवसर को खो रहे हो। वासना करो और तीव्रता से वासना करो। मैं कहता हूं कि तीव्रता से वासना करो और पीड़ा झेलो।

बुद्ध अपने निष्कर्ष पर किन्हीं पूर्ववर्ती बुद्धों के कारण से नहीं पहुंचते हैं। उपनिषद तब उपलब्ध थे वे उन्हें पढ़ सकते थे। वे पढ़े—लिखे थे, सुसंस्कृत थे, उन्हें सारे शास्त्रों का ज्ञान था। लेकिन उनसे कुछ भी लाभ न हुआ। वे वासना के द्वारा ही चले, वे अनुभव से गुजरे। उन्होंने पीड़ा को झेला, वे आग से गुजरे। और केवल अपने ही अनुभव से वे इस नतीजे पर पहुंचे कि वासना व्यर्थ है।

तुम्हारा निष्कर्ष तुम्हारा अपना नहीं है; यही समस्या है। तुम्हारा निष्कर्ष उधार है। वस्तुत: तुम पीड़ा से गजरने में डरते हो, अत: पीड़ा से गुजरने के पहले ही तुम विश्वास करना शुरू कर देते हो।

लेकिन पीड़ा एक साधना है। पीडा ही एकमात्र साधना है। बिना उसके कुछ भी वास्तविक नहीं पाया जा सकता है।

और तुम छोटे बच्चों के समान आचरण कर रहे हो उनकी किताबों में सवालों के जवाब पीछे दिये रहते हैं। छोटे बच्चे उन उत्तरों को देख लेते हैं। उन्हें उत्तर तो मिल जाते हैं लेकिन उन्हें प्रक्रिया का पता नहीं होता। सवाल दिया हुआ है, और आखिर में उत्तर दिया है। वे उत्तर को देख लेते हैं, अब उन्हें उत्तर का पता है, लेकिन यह

उनका उत्तर नहीं है। वे समस्या को भी जानते हैं, और वे उसका उत्तर भी जानते हैं लेकिन वे उस प्रक्रिया को नहीं जानते—जिससे कि उत्तर प्राप्त किया जाता है।

तुम भी बिना प्रक्रिया से गुजरे ही उत्तर की तलाश में हो। उत्तर मौजूद हैं। बुद्धपुरुष हुए हैं; उन्होंने वह सब कह दिया है जो कहा जा सकता है, और तुम उत्तरों को कंठस्थ कर सकते हो। किंतु बिना प्रक्रिया के तम रूपांतरित नहीं होओगे। अत: उत्तरों को भूलो। यही तो उपनिषद कहते हैं ज्ञान ही बाधा है। भूलो शान को। यदि तुम अज्ञानी हो तो तुम अज्ञानी हो। तुम अपने अज्ञान से ही शुरू करो; किसी और के ज्ञान से शरू मत करो।

ज्यादा अच्छा है कि तुम अपने अज्ञान से प्रारंभ करो, क्योंकि वह तुम्हें ज्ञान की ओर ले जायेगा। प्रेकिन तुम सदा किसी और के ज्ञान से प्रारंभ करते हो। तब तुम एक झूठे संसार में पहुंच जाते हो। तब तम निष्कर्षों को इकट्ठा करना प्रारंभ कर देते हो। और तुम बिना कुछ भी जाने सभी कुछ जानने लगते हो। तम इतनी जल्दी में होते हो, कि तुम कहते हो कि मैं किसी प्रक्रिया से नहीं गुजरना चाहता, मुझे तो उत्तर चाहिए।

उत्तर तुम्हें दिये जा सकते हैं—लेकिन जब तक तुम प्रक्रिया से नहीं गुजरो, वे उत्तर तुम्हारे जीये हुए उत्तर नहीं —होंगे। और जब तक जीये हुए न हों, बेकार होंगे। तुम जानते हो कि वासना करना व्यर्थ है, तुम जानते हो कि क्रोध जहर है, तुम जानते हो कि लोभ दुख में ले जाता है—तुम सब कुछ जानते हो। लेकिन यह सारा ज्ञान किसी काम का नहीं है। इसे फेंको। यह कचरा है।

सिर्फ अपनी मनःस्थिति के प्रति सजग होओ—वहां इच्छा है, प्यास है, अतृप्ति है। इसका अर्थ होता है कि तुम इच्छा करने के लिऐ तैयार हो। अब इच्छा करो, और बुद्धों की मत सुनो, वे खतरनाक हैं। वासना करो। और चलो। तुम्हें अपनी ही राह पर चलना पड़ेगा। तुम्हें अपनी ही राह पर यातना सहनी पड़ेगी। कोई भी पीड़ा से बच नहीं सकता। यह सार्वभौमिक नियम है। कोई भी सुगम मार्ग से नहीं चल सकता—ऐसे सुगम मार्ग हैं भी नहीं। तुम्हें अपनी राह पर ही चलना पड़ेगा; तुम्हें अपने नर्कों से गुजरना ही पड़ेगा।

जब तुम उनसे गुजर जाओगे, उनका अतिक्रमण कर लोगे, ज्यादा समृद्ध हो जाओगे, उनका अनुभव ले लिया होगा और तुममें एक प्रौढ़ता आ गई होगी, केवल तभी वासना गिरेगी। वासना तब विलीन हो जायेगी। और तब उसका कोई निषेधात्मक हिस्सा नहीं होगा। तब समग्र रूप से वासना विलीन हो जायेगी, क्योंकि तुम्हें पता चलेगा कि यह तो मूढ़ता है "मैं ही अपने लिए नर्क निर्मित करता रहा! " और अब यह बात बौद्धिक नहीं होगी, यह सिर्फ मन की बात नहीं होगी। तुम्हारा सारा अस्तित्व, तुम्हारा सारा होना ही इस निष्कर्ष पर पहुंच जायेगा। और यह निष्कर्ष तुम्हारे अनुभव से आयेगा, न कि किसी और के अनुभव से।

तब वासना विलीन हो जाती है और यह वासना अन्य किसी भी वेश में फिर उद्‌भूत नहीं होती। वरना तुम वासना की वस्तु बदलते रहोगे। कभी तुम धन की वासना करोगे और तुम्हें पीड़ा का अनुभव होगा, तब तुम निर्णय लोगे कि वासना दुख है। तो तुम परमात्मा की वासना करने लगोगे, या तुम स्वर्ग की कामना करने लगोगे, अथवा मोक्ष की वासना करोगे, अथवा ध्यान की चाह करोगे, आनंद की कामना करोगे, लेकिन तुम वासना करते ही रहोगे। और यदि तुम वासना करते ही रहे तो सिर्फ तुम वासना की सूरत बदल लोगे, कामना की वस्तु बदल लोगे। किंतु वासना तो वही की वही रहेगी। तुम नहीं बदले, तुम वही हो। तुम एक ढांचे में, एक वर्तुल में घूम रहे हो। तुम कहीं भी नहीं जा रहे हो।

इसलिए मैं बार—बार कहता रहता हूं कि सावधान रहो बुद्धों से, क्राइस्टों से, कृष्णों से। मुझसे भी सावधान रहो, क्योंकि मैं भी ऐसी बातें कहता रहता हूं जिनमें तुम आसानी से विश्वास कर लोगे, और तब बात खतरनाक हो जाती है। जब मैं कुछ कहता हूं तो उसे समझने की कोशिश करो, उसके द्वारा निष्कर्ष मत

निकालो। निष्कर्ष तो तुम्हारे अपने जीवन से ही आने चाहिए; तभी केवल रूपांतरण होगा। और किसी जल्दी में मत पड़ो। कोई जल्दी नहीं है, समय शाश्वत है।

अनुभव में उतरो। बनो अपने अनुभव के प्रति प्रामाणिक, और निष्कर्षों को अपनी विशिष्ट एवं व्यक्तिगत खोज से आने दो। सत्य तुम पर घटित होगा, लेकिन यदि तुम दूसरों से उधार लेते रहे तो वह कभी भी घटित नहीं होगा। वह सत्य का परिपूरक बन जाता है। वैसा सत्य समस्याएं ज्यादा खड़ी कर देता है, सुलझाता कम है।

तुम्हारी समस्याएं, जहा तक मैं देखता हूं नब्बे प्रतिशत तुम्हारे उधार शान के कारण हैं। केवल दस प्रतिशत समस्याएं ही सही हैं। नब्बे प्रतिशत तो झूठी हैं क्योंकि वे तुम्हारी अपनी नहीं हैं। पहले तुम किसी बात में विश्वास करना शुरू कर च्छै हो, और फिर उस विश्वास में से समस्याएं पैदा होने लगती हैं। अब यह समस्या उधार है क्योंकि तुमने 'विश्वास कर लिया है, क्योंकि तुमने बौद्धिक रूप से निष्कर्ष ले लिया है, तर्क से इस नतीजे पर पहुंच गये हो कि वासना व्यर्थ है। यदि सचमुच ही यह तुम्हारा अपना निष्कर्ष है तो फिर अतृप्ति कैसे हो सकती है? अतृप्ति वासना का ही बीज है 1

जब तुम अतृप्त होते हो तो उसका अर्थ है, कहीं तृप्ति की खोज करो, वासना करो। जब तुम अतृप्त हो तो इसका अर्थ होता है कि तुम वही नहीं हो जो कि तुम होने चाहिए थे; तुम वहां नहीं हो जहा तुम्हें होना चाहिए था। अत: चाहो, खोजो, चलो! अतृप्ति का अर्थ होता है—स्वयं से असंतोष। तृप्ति का अर्थ होता है कि मैं जो भी हूं सो हूं मैं जहा हूं वहीं मुझे होना चाहिए था। अथवा जहां भी मैं हूं स्वयं से पूर्ण रूप से संतुष्ट हूं तृप्त हूं। तब वासना की कोई गति नहीं होती।

गति तो होती है, लेकिन वह गति जीवन की होती है, न कि वासना की। मैं चलता चला जाऊंगा, और हर गति मेरे जीवन की ऊर्जा से आयेगी, न कि मेरी वासना से। वासना मन से होती है। जीवन चलता चला जाता है, किंतु मैं सरिता के समान बहता चला जाऊंगा। वह ऊर्जा ही गति पैदा करेगी, लेकिन वह गति किसी वासना के कारण नहीं होगी। नहीं कि पहले मैं वासना करूंगा और फिर चलूंगा। इस भेद को समझने का प्रयत्न करो।

मैं तुमसे बोल रहा हूं। यह बोलना दो तरह से हो सकता है : यह सिर्फ जीवन—ऊर्जा की गति के फलस्वरूप हो सकता है, अथवा यह किसी कामना के कारण हो सकता है। यदि मैं इसकी कामना करूं तो मुझे पहले इसकी पूर्व तैयारी करनी पड़ेगी। तब यहां आने के पहले मेरे मन में तुम सब मेरे सामने उपस्थित होने चाहिए। तब मैं मेरे मन में विचार करूंगा कि मुझे क्या कहना है, क्या नहीं कहना है, किस तरह कहना है, और किस तरह नहीं कहना है। तब मैं योजना बनाऊंगा, और इस तरह मैं भविष्य में उतर जाऊंगा। तब मैं इसे दोहराऊंगा, और यदि यह ठीक स्तर का नहीं हुआ जैसा कि मैंने चाहा था तो मेरे मन में विषाद पैदा होगा।

मैंने सुना है :

एक बार मार्क—ट्वेन एक प्रवचन—स्थल से प्रवचन देकर वापस आ रहा था। जब वह वापस लौटा तो उसकी पत्नी ने पूछा कि प्रवचन कैसा रहा? मार्क—ट्वेन ने पूछा, "कौन से प्रवचन की बात कर रही हो? —उसकी जो कि मैंने पहले से तैयार किया था, अथवा उसकी जो मैंने वास्तव में दिया, अथवा उसकी जो मैं देना चाहता था और मैंने लौटते समय कार में दिया?"

यदि मैं उसके बारे में पहले से विचार करूं तो फिर यह वासना है। यदि मैं सिर्फ तुम्हारे पास आ जाऊं और मेरे भीतर से जो भी प्रति—संवेदन हो, अनियोजित, पहले से बिना सोचे—विचारे, मात्र जीवन—ऊर्जा की गति हो, उसके लिए पहले से कोई योजना नहीं हो, तो ही वह जीवन ऊर्जा की गति है। यदि वह सुनियोजित हो तो फिर यह मन की वासना है।

गति तो होगी, लेकिन वह अनियोजित होगी, स्वतःस्फूर्त होगी। वासना गति को पंगु कर जाती है। वह जीवन—ऊर्जा को गति ही नहीं करने देती। यह योजना बनाती है, चुनाव करती है, पहले से निर्णय करती है। वास्तविक स्थिति के पहले ही तुम निर्णय कर चुके होते हो। तुम सदा ही मुश्किल में रहोगे, क्योंकि कभी भी यह सही प्रति—संवेदन नहीं होगा, क्योंकि तुम पहले से ही वास्तविक स्थिति की कल्पना नहीं कर सकते। वह सदा अज्ञात रहती है। तुम विषाद का अनुभव करोगे।

जो मन इच्छा करता है, वह सदा ही विषाद में होता है। सिर्फ वही मन जो कि कुछ वासना नहीं, करता, जो जहा परमात्मा ले जाये, जीवन ले जाये, वहीं जाता है—चाहे सही, चाहे गलत, चाहे स्वर्ग, चाहे नर्क.. जो कि चलता जाता है जहां जीवन की ऊर्जा ले जाये। ऐसा व्यक्ति कभी विषाद से नहीं भर सकता। कैसे तुम उसे निराश करोगे? और कुछ भी तुम्हें तृप्त नहीं कर सकता। कैसे कोई तुम्हें तृप्त कर सकता है?

वासना के साथ तृप्ति का कभी मिलन नहीं होता।

निर्वासना के साथ विषाद का कभी मिलन नहीं होता।

स्वयं के प्रति सच्चे तथा प्रामाणिक बनो। और यदि तुम वासना के पार नहीं गये हो तो मत मान लो कि तुम उसके पार चले गये तो; उससे कुछ भी नहीं होगा। जानो कि इच्छा, आकाक्षा है। जानो कि जैसे तुम अभी हो, तुम अतृप्त हो। तुम्हें किसी और चीज की जरूरत है। वह जरूरत चाहे धुंधली ही हो, चाहे तुम उसे जानो चाहे न जानो, इससे कुछ भी अंतर नहीं पड़ता। तुम अभी इसी क्षण पूरे तथा समग्र नहीं हो, स्वयं के साथ सुखी नहीं हो। तुम अपने घर में नहीं हो, तुम्हारा घर कहीं और है, तुम उसी को खोज रहे हो।

इसे ठीक से जानो, क्योंकि यह जानना तुम्हारे लिए अच्छा तथा सहायक होगा। इसे जानो, और वासना में उतरी। उसकी यातना को, पीड़ा को सहो। उसका दुख भोगो, उसके विषाद का स्वाद चखो और जीवन को अपने आप निष्कर्ष पर पहुंचने दो। कृपा कर तुम निष्कर्ष मत निकालो। जीवन को स्वयं निष्कर्ष पर आने दो।

और जब जीवन स्वयं निष्कर्ष पर पहुंचता है तो वासना अपने से ही गिर जाती है, बिना किसी और वासना को अपनी जगह पैदा किये। वह सिर्फ गिर जाती है। जैसे कि सूखे पत्ते वृक्षों से झर जाते हैं, ऐसे ही वासना भी गिर जाती है—समग्र वासना। तब उसके पीछे कोई उसका निषेधात्मक हिस्सा बचा हुआ नहीं रहता। और जब तुम निर्वासना की ऐसी स्थिति में होते हो, तो वह जो कि आनदपूर्ण है तुम पर घटता है, वह जो अतिसुखदायी है, वह तुम पर बरसता है। तुम पहली बार खिलते हो। पहली बार तुम पुष्पित होते हो। और तब कुछ भी अतृप्ति नहीं होती, तुम जैसे हो वैसे ही तृप्त होते हो।

लेकिन इसके पहले कि वह हो, यदि तुम उधार लेते चले गये तो फिर मामला कठिन होगा। तुम व्यर्थ ही अपने लिए बाधाएं पैदा कर रहे हो। निष्कर्ष तुम्हें अच्छे लगेंगे, लेकिन उनका अच्छा लगना कोई माने नहीं रखता। मैं तुम्हें किसी भी चीज के बारे में राजी कर सकता हूं लेकिन वह राजी होना किसी अर्थ का नहीं है, क्योंकि वह मेरे द्वारा लादा गया है। मैं तर्क कर सकता हूं मैं तुम्हें समझा सकता हूं और तुम्हें लग सकता है कि बात बिलकुल ठीक है, किंतु वैसा लगना कुछ भी सहायता नहीं करेगा, जब तक कि तुम्हारी स्वयं की जीवन—ऊर्जा ही उस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे, जब तक कि यह आतरिक समझ नही बन जाये कि तुम्हारे भीतर से ही आये, न कि बाहर से थोपी जाये।

इसलिए मैं कहता हूं कि बुद्धपुरुष खतरनाक हैं—क्योंकि वे इतने अधिक आश्वस्त करने वाले होते है। तुम उनके साथ चलते हो तो बहुत अधिक संभावना है कि तुम उनकी बातों से प्रभावित हो जाओ उनका होना ही बड़ा आश्वस्त करने वाला होता है। इसलिए बहुत—से धर्म निर्मित हो जाते हैं, इतने सारे संप्रदाय खड़े हो जाते हैं क्योंकि जहां कहीं भी एक बुद्ध पैदा होता है, तुम अनिवार्य रूप से उससे प्रभावित हो जाते हो। तुम सम्मोहित

हो जाते हो, और तुम निष्कर्षों को उधार लेने लगते हो। और फिर तुम जन्मों तक उन उधार निष्कर्षों को ढोते रहते हो। वे एक बोझ बन जाते हैं।

इस बोझ के प्रति मर जाओ। स्वयं के प्रति प्रामाणिक बनो और पता लगाओ कि तुम कहां खड़े हो। यदि वह नर्क भी हो तो भी स्वीकार करो कि "मैं नर्क में हूं। " इस बात की स्वीकृति कि तुम नर्क में हो एक परिस्थिति निर्मित करेगी ताकि तुम इसमें से बाहर निकल सको। किंतु तुम रहते तो नर्क में हो, लेकिन तुम यह मानते रहते हो कि तुम स्वर्ग में हो। यह बात बड़ी मूढ़ता की है, और इससे कुछ भी हल नहीं होता।

अंतिम प्रश्न :

कल रात आपने कहा कि कभी— कभी आप असत्य बोलते हैं और हमारे विषाद के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं ऐसी हालत में कब हम आपमें विश्वास करें और कैसे जानें कि आप हमसे सत्य बात कर रहे हैं या कोई युक्ति कर रहे हैं?

मेरा कभी विश्वास मत करो। कभी भूल कर भी मेरा विश्वास मत करो। सावधान रहो! मैं जो भी कहता हूं सब झूठ हो सकता है। हो सकता है कि वह सिर्फ तुम्हें सांत्वना देने के लिए, सिर्फ तुम्हें एक कदम और आगे चलाने के लिए एक युक्ति हो। मेरा विश्वास न करो। और फिर तुम्हारे लिए यह पता लगाना बड़ा मुश्किल है कि मैं कब झूठ बोल रहा हूं और कब सच बोल रहा हूं। इसीलिए मैं इकट्ठा ही कहे दे रहा हूं : मेरा विश्वास मत करो—क्योंकि तुम तय कैसे करोगे? तुम्हें पता नहीं है कि सत्य क्या है, फिर तुम कैसे तय करोगे?

यदि तुम पहले से ही जानते हो कि सत्य क्या है, तो फिर मेरे झूठ बोलने में भी कोई अर्थ नहीं है। लेकिन तुम्हें कुछ भी पता नहीं है; और तुम सत्य की भाषा भी नहीं समझ सकते। वह भाषा तुम्हारे लिए बेबूझ होगी। तुम सिर्फ असत्य की भाषा ही समझ सकते हो।

लेकिन झूठ भी दो प्रकार के होते हैं, ऐसे झूठ जिनसे और भी झूठ की ओर जाना पड़ता है, और ऐसे झूठ जो तुम्हें अपने पार ले जाएं।

उदाहरण के लिए, हम यहां बैठे हैं। यदि तुमने बाहर क्या है, कभी नहीं जाना है तो तुम्हें पता नहीं कि बाहर फूल हैं, वृक्ष हैं, और आकाश में चांद निकला है। और मैं तुम्हें कहता हूं "बाहर आ जाओ, बाहर चांद निकला है, पूर्णिमा की रात है, बाहर आ जाओ, " तुम मुझमें विश्वास नहीं करोगे। तुम पूछोगे, "रात क्या होती है? चांद क्या होता है? पूर्णिमा क्या होती है? "

और इस कमरे में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे मैं तुम्हें बता सकूं कि चांद ऐसा होता है। और मैंने चांद को जाना है, और मैंने फूलों को जाना है, और खुले आकाश को देखा है, और मैं अपने आनंद को तुम्हारे साथ बांटना चाहता हूं। और मैं चाहता हूं कि तुम भी बाहर आ जाओ, इसलिए मैं एक तरकीब निकालता हूं। मैं एक झूठ का उपयोग करता हूं। मैं कहता हूं कि घर में आग लगी है। तुम यह बात समझ सकते हो। तुम डर जाते हो, तुम कापने लगते हो। और मैं तुम्हारे भीतर ऐसा विश्वास पैदा कर देता हूं कि घर में आग लगी है, और तुम घर के बाहर भागने लगते हो।

हां, बाहर आ जाने पर तुम मुझे समझ लोगे। तुम नहीं कहोगे कि मैंने झूठ बोला था। तुम कृतज्ञ होओगे, तुम हसोगे। तुम कहोगे, "कोई आग नहीं लगी है, लेकिन अब हम समझ सकते हैं। "केवल आग ही तुम्हें बाहर निकाल सकती थी—और कुछ भी नहीं—क्योंकि वही भाषा तुम समझ सकते हो। दुख ही तुम समझ सकते हो, आनंद तुम नहीं समझ सकते।

इसलिए बुद्धपुरुष सदा कहते हैं कि जीवन दुख है। ऐसा है नहीं। फिर भी वे कहे चले जाते है कि जीवन दुख है, संताप है, पीड़ा है। वे कह रहे हैं कि जीवन के मकान में आग लगी है, इससे बाहर निकलो। और वे तुम्हें

अवश्य अपनी बात से कायल कर देते हैं, क्योंकि उनमें ऐसी ताजगी है जैसी बाहर आ गये लोगों में होती है। उनमें वह सुगंध है जो उन लोगों में होती है जो कि खुले आकाश में आ गये हैं। वे एक खुशबू लिए होते हैं।

तुम्हें भरोसा आ जाता है क्योंकि तुम देखते हो कि जो भी वे कहते हैं वह सच है। और उन्होंने कुछ पा लिया है, और उनकी वह उपलब्धि भरोसा पैदा कर देती है। और जब वे कहते हैं कि घर में, जीवन में आग लगी है, तो तुम इस घर से बाहर निकलने के लिए प्रयत्न करते हो।

जब तुम बाहर आ जाते हो तो तुम देखते हो कि यह पूर्णिमा की रात है, और जीवन कोई दुख नती था। जीवन दुख लग रहा था क्योंकि तुमने अपने को पिंजरे में कैद कर रखा था।

जीवन विराट है, इसलिए तुम नहीं जान सकते कि मैं कब झूठ बोल रहा हूं और कब सत्य बोल रहा हूं। और यदि तुम मुझसे पूछते हो कि मैं तुम्हें कह दूं कि मैं कब सच बोल रहा हूं और कब झूठ बोल रहा हूं तो सारा अर्थ ही खो जायेगा। और यदि मैं कह भी दूं कि यह बात झूठ है और यह बात सच है, तो भी तुम मुझ पर विश्वास कैसे कर सकते हो? कि मैं तब भी सच ही बोल रहा हूं अथवा झूठ बोल रहा हुं?

इसलिए तुम्हारे लिए यही आसान होगा कि यदि तुम मुझमें विश्वास कर सकते हो तो पूरा विश्वास करो, और यदि तुम मुझमें विश्वास नहीं कर सकते हो तो बिलकुल भी विश्वास मत करो। यह आसा न होगा; या तो सोचो कि जो भी मैं कह रहा हूं सच है, या फिर जो भी मैं कह रहा हूं झूठ है। ये तो सारी संभावनायें हैं। दोनों तरह से ही तुम्हारी मदद हो जायेगी। मैं कहता हूं कि दोनों ही तरह से तुम्हारी मदद है। जायेगी। तुम किसी उलझन में नहीं पड़ोगे।

यदि तुम मुझमें पूरा—पूरा विश्वास करो कि यह व्यक्ति जो भी कहता है सच है, तो इससे तुम सहायता मिलेगी। नहीं कि जो भी मैं कहता हूं वह सही ही होगा, लेकिन अंततः तुम पाओगे कि वही एक बात थी जो कि तुम्हारे लिए सहायक सिद्ध हो सकती थी। लेकिन वह तुम बाद में ही जान सकोगे।

यदि तुम मुझमें बिलकुल भी विश्वास नहीं करते तो वह भी अच्छी बात होगी। वह भी आसान नहीं है। सबसे सरल रास्ता तो यही है कि कुछ बातों पर विश्वास कर लेना और कुछ बातों पर विश्वास नहीं करना। यदि तुम मुझमें पूरा ही विश्वास कर लो, या फिर पूरा ही न करो, तो दोनों ही हालत में तुम समग्र हो जाते हो।

पहले ढंग में तुम मेरे प्रति समर्पित हो जाते हो और कहते हो कि आप चाहे सच बोलो चाहे झूठ बोलो, इसकी आप जानो, मैं तो विश्वास करता हूं तो तुम समग्र हो जाते हो, तुम विभाजित नहीं रहते अथवा तुम कहो कि चाहे आप सच कहते हो चाहे झूठ कहते हो, मैं विश्वास नहीं करता, आप झूठे हैं, तो भी तुम समग्र हो जाते हो। और समग्रता सहायक होती है।

लेकिन सरल मार्ग तो यह है कि कुछ बातों में विश्वास कर लेना और कुछ में नहीं करना। यह सरल क्यों है? यह सरल है क्योंकि जो भी तुम विश्वास करना चाहते हो उसके बारे में तुम सोचोगे कि यह आदमी सच है; और जो भी तुम विश्वास करना नहीं चाहते उसके बारे में तुम सोचोगे कि यह आदमी झूठ कह रहा है। इससे तुम्हें कुछ अधिक लाभ नहीं होगा। वस्तुत: इससे कुछ भी लाभ नहीं होगा। अत: चुनाव न करो।

मेरी सलाह है कि मुझमें जरा भी विश्वास मत करो। लेकिन यदि तुम सोचते हो कि दूसरी बात बेहतर है, तो पूर्णतया विश्वास करो।

बारहवां प्रवचन

ब्रह्म का विराट चक्र

तृतीयखंड

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयंत त

ऐक्षंतास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति।।१।।

तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति।।२।।

तेऽग्निमब्रुव जातवेद एतद्विजानीहि किमिदं यक्षमिति तथेति।।३।।

तदभ्यद्रवत तमभ्यवदत्कोऽसीत्यग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति।।४।।

तस्मित्त्वयि किंवीर्यमिति। अपीद सर्व दहेयम् यदिदं पृथिव्यामिति।।५।।

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति। तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तंन्न शशाक दग्धु स तत एव

निववृते, नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति।।६।।

अथ वायुमब्रुवन् वायवेतद्विजानीहि किमेतद यक्षमिति तथेति।।७।।

तदभ्यद्रवत् तमभ्यवदत्कोऽसीति। वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रबीन्मातरिश्वावा अहमस्मीति।।८।।

तस्मिन्स्पयिकिवीर्यमिति? अपीदं सर्वमाददीयम् यदिदं पृथिव्यामिति।।९।।

तस्मै तृणं निदधावेतदादक्लेति। तदुपप्रेयायसर्वजवेनतन्नशशकादातुं सततएव

निववृते, नैतदशकविज्ञातु यदेतद् यक्षमिति।।१०।।

अथेन्द्रमब्रुवत् मघवन्नेतद् विजानीहि किमेतद् यक्षमितीं।

तथेति। तदभ्यद्रवत्। तस्मात्तिरोदधे।।११।।

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमान्हैमवतीं

तान्होवाच किमेतद् यक्षमिति।।१२।।

केनोपनिषद

तृतीय अध्याय

1

कहानी है कि ब्रह्म ने देवताओं के लिए विजय प्राप्त की।

यद्यपि विजय ब्रह्म के कारण हुई थी। परंतु देवता गर्व से भर गये और उन्होने सोचा :

"यह विजय हमारे ही कारण हुई है इस गौरव के केवल हम ही मालिक हैं।"

2

ब्रह्म को उनके इस गर्व का पता चला?। वह स्वयं उनके सामने प्रकट हुआ,

किंतु उनकी समझ में नहीं आया कि यह यक्ष हौन है?

3

उन्होंने अग्नि से कहा : "ओ जातवेद, पता लगाओ कि यह यक्ष कौन है?"

अग्नि ने कहा ”अच्छा।

4

अग्नि शीघ्रता से यक्ष के पास गया? यक्ष ने उससे पूछा कि तुम कौन हो?

अग्नि ने उत्तर दिया:”वस्तुत: मैं अग्नि हूं। मैं जातवेद के नाम से भी जाना जाता हूं।“

5

यक्ष ने पूछा ”तुम किस ऊर्जा के स्वामी हो जो कि इतने प्रसिद्ध हो?”

अग्नि ने उत्तर दिया ”मैं जो कुछ भी इस पृथ्वी पर है उसे जला सकता हूं।”

6

यक्ष ने उसके सामने एक तिनका रख? दिया और कहा ”इसे जलाओ।”

अग्नि ने अपनी पूरी शक्ति से उस पर हमला किया

लेकिन वह उसे नहीं जला सका।

अत: वह वहां से लौटकर देवताओं के पास आ गया और कहा

”मैं पता नहीं लगा सका कि यह यक्ष कौन है”

7

तब उन्होने वायु से कहा ”ओ वायु कृपंया पता लगाओ

कि यह यक्ष कौन है।” वायु ने कहा ”अच्छा।

8

वायु शीघ्रता से यक्ष के पास गया। यक्ष ने उससे पूछा

कि तुम कौन हो।

वायु ने उतर दिया ”मैं वस्तुत वायु हूं।

मैं मातरिश्व के नाम से भी जाना जाता हूं।”

9

यक्ष ने पूछा ”तुम किस ऊर्जा केस्वामी हो? जो कि इतने प्रसिद्ध हो?”

वायु ने कहा ”मैं जो कुछ भी इस पृथ्वी पर है उसे वास्तव में ही उड़ा सकता हूं।”

10

यक्ष ने उसके समक्ष एक तिनका रख दिया और कहा? ”इसे उड़ा दो।”

वायु ने पूरी शक्ति से उसे उड़ाने की कोशिश की लेकिन वह उसे नहीं उड़ा सका।

इसलिए वह वहाँ से लौटकर देवताओं के पास आ गया और कहा

”मैं पता नहीं लगा सका कि यह यक्ष कौन है।”

11

तब देवताओं ने इंद्र से कहा ”ओमाघवन! कृपया पता लगाओ कि यह यक्ष कौन है।

इंद्र ने कहा ”अच्छा ” और वह शीघ्रता से यक्ष के पास गया।

किंतु यक्ष उसकी दृष्टि से ओझल हो गया।

12

और उसी स्थान पर इंद्र ने एक बहुशोभामान स्त्री,

हिमाचल कुमारी उमा को देखा और उससे पूछा ”यह यक्ष कौन था?”

गहरी शंति में कोई अहंकार नहीं होता। यह तभी होता है, जब तुम अशांत होते हो। वह रूग्णता का हिस्सा है। जब तुम गहरे शांत होते हो, तब तुम होते हो, किंतु, ''मैं'' का कोई अहसास नहीं होता। वह शांति में नहीं हो सकता। जब तुम पूरी तरह शांत और मौन हो तो 'मैं' नहीं होता। लेकिन जितने ज्यादा तुम अशांत होते हो, उतनी ही ज्यादा तुम्हें अहंकार की अनुभूति होगी।

अहंकार एक अशांत, रूग्ण चित की दशा है। अहंकार स्वास्थ्य नहीं है, वह एक रूग्णता हे। जब तुम समग्र रूप से समस्वर नहीं होते तो तुम्हें उसका पता चलता है। जब तुम समस्वरता को प्राप्त होते हो, तब तुम तो होते हो, लेकिन कोई अहंकार नहीं होता। कोई 'मैं' की प्रतीति होती। 'हूं' तो होता है, होना तो होता है, लेकिन कोई उसका केंद्र नहीं होता।

यह एक बहुत महत्वपूर्ण बात है जो कि समझ लेनी है। उदाहरण के लिए, तुम्हें अपने शरीर का पता ही तब चलता है जब तुम बीमार होते हो। यदि तुम वास्तव में स्वास्थ हो तो तुम्हारे पास कोई शरीर नहीं होता। एक स्वास्थ शरीर शरीरहीन होता है; कोई प्रतीति नहीं होती कि शरीर भी मौजूदहै। तुम्हारा सिर तभी होता है जब सिर में दर्द होता है। यदि सिरदर्द नहीं हो तो सर का पता नहीं चले।क्या तुम अपने सर को महसूस कर सकते हो। यदि तुम्हें उसका अनुभव होता है तो समझो की भारी पन है। कुछ अशांति है, कुछ बीमारी है। जब वह गड़बड़ होता है।"

यही स्वास्थ्य की परिभाषा है कि यदि शरीर का पता ही न चले तो तुम स्वस्थ हो, यदि शरीर का पता चलता है तो तुम अस्वस्थ हो, क्योंकि सिर्फ दर्द का ही पता चलता है। जब कभी भी दर्द होता है तो तुम्हें उसका अनुभव होता है। दर्द की जरूरत है शरीर का पता चलने के लिए, और दर्द की जरूरत है तुम्हें अपना पता होने के लिए। और वह दर्द ही 'मैं' को निर्मित करता है। दर्द, पीड़ा, संताप, चिंता—यें ही 'मैं' को निर्मित करते हैं।

अत: यदि तुम अहंकारी हो तो स्मरण रहे, यह बतंलाता है कि तुम्हारे अंतर की समस्वरता खो गई है। तुम सीधे अहंकार के साथ कुछ भी नहीं कर सकते—जब तक कि तुम अपनी आतरिक समस्वरता को वापस नहीं प्राप्त कर लो। यदि सीधे तुम अहंकार के लिए कुछ भी करोगे तो उससे कुछ भी नहीं होगा। उल्टे, तुम ज्यादा परेशान व अशात भी हो सकते हो। सारे धर्म कहते हैं कि निरहकारी हो जाओ। उनका आशय है कि समस्वरता को उपलब्ध हो जाओ। उनका निरहकारिता पर जोर भीतर की अशांति को मिटा देने के लिए है ताकि तुम एकस्वर हो जाओ, ताकि तुम भीतर एक शाति को पा लो। उनका जोर स्वास्थ्य पर है।

संस्कृत का शब्द स्वास्थ्य बड़ा सुंदर है। इसका अर्थ होता है : स्वयं में स्थित होना। जब तुम स्वयं में स्थित होते हो तो अहंकार नहीं होता।

अंग्रेजी का शब्द हेल्थ भी सुंदर है। वह उसी मूल से आता है जिससे 'होल' आता है। जब तुम 'होल' होते हो, पूरे होते हो तो तुम 'हेल्दी' होते हो। जब तुम खंड—खंड में टूटे हुए, विभाजित, बंटे हुए होते हो तो तुम अस्वस्थ होते हो। जब तुम्हारे भीतर पूरे होने की प्रतीति हो, जब तुम खंड—खंड में बंटे हुए नहीं होते हो, जब तुम अविभाजित होते हो तो तुम स्वस्थ होते हो। अंग्रेजी का 'होली' शब्द भी 'होल' से ही आया है। यदि तुम अविभाजित हो, 'होल' हो, तो तुम 'होली' हो, पवित्र हो, निर्दोष हो।

अहंकार तभी होता है जब तुम विभाजित होते हो, खंड—खंड, टूटे हुए होते हो; जब तुम एक नहीं होते। जब तुम्हारे खंड एक—दूसरे से द्वंद्व में होते हो, और भीतर की लयबद्धता छिन्न—भिन्न हो जाती है, और भीतर एक शोरगुल, संताप होता है, तो अहंकार होता है। जितना अधिक संताप होता है, उतना ही बड़ा अहंकार होता है। यदि तुम अपने अहंकार को भरने की कोशिश करोगे तो तुम और भी ज्यादा अशात हो जाओगे—और

अहंकार की आखिरी अवस्था पागलपन है। यदि तुम वस्तुत: ही अहंकार को भरने की कोशिश करते हो तो तुम पागल हो जाओगे।

पूर्व में विक्षिप्तता इतनी बड़ी समस्या नहीं है जितनी कि वह पश्चिम में है, क्योंकि सारा पश्चिमी चित्त अहंकार को भरने की महत्वाकाक्षा में लगा है। अमेरिका के मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि चार में से तीन लोग मानसिक रोगी हैं। यह तो बहुत ज्यादा हो गया—विश्वास नहीं होता। और यदि यह बात सही है तो वह चौथा भी सीमा पर ही खड़ा होगा, क्योंकि चौथा भी उन तीन का हिस्सा है। वह भी उन तीन के साथ ही रहता है। वह वास्तव में स्वस्थ नहीं हो सकता—बस कामचलाऊ, सीमा पर खड़ा है। कभी भी वह पागलपन में गिर सकता है।

बहुत—से आधुनिक मनोविश्लेषकों का कहना है कि पूरी मनुष्यता ही विक्षिप्त है और अंतर सिर्फ मात्राओं का है। यदि तुम पागल नहीं हो तो इसका इतना ही अर्थ है कि तुम अभी सामान्य पागल हो, असामान्य पागल नहीं हो। तुम अभी सीमा में हो, सीमा में विक्षिप्त हो। तुम अभी काम कर सकते हो, बस इतना ही। लेकिन किसी भी क्षण तुम सीमा रेखा पार कर सकते हो। कोई भी घटना, कोई भी दुर्घटना—तुम्हारी पत्नी मर जाये, तुम्हारा धन खो जाये, तुम्हारे बैंक का दिवाला निकल जाये, तुम्हारे घर में आग लग जाये—और तुम एक क्षण में सीमा रेखा पार कर सकते हो। ज्यादा दूरी तय नहीं करनी है, और तुम विक्षिप्त हो सकते हो। तुम पहले से विक्षिप्त तो थे ही, बस केवल पानी के उबलने की प्रतीक्षा कर रहे थे। वह कभी भी हो सकता है।

ऐसा पश्चिम में क्यों इतना अधिक हो रहा है? वहा हर कोई मनोविश्लेषकों के पास क्यों जा रहा है? वस्तुत: जो भी मनोविश्लेषण के लिए नहीं जाता, उसे अब गरीब समझा जाता है। जो लोग समृद्ध हैं, जो खर्चा कर सकते हैं, वे जरूरत की भांति मनोविश्लेषण के लिए जाते हैं। यह एक महंगा मामला है। यह एक विलासिता है, क्योंकि मनोविश्लेषण में वर्षों लगते हैं—दो साल, तीन साल, कभी—कभी पांच साल, और बड़ा महंगा इलाज है। केवल बहुत धनवान लोग ही खर्चा उठा पाते हैं। लेकिन यह धंधा बढ़ रहा है, और मनोचिकित्सक बड़े अमीर हो गये हैं। वे रोज—रोज अमीर होते जा रहे हैं।

यदि तुम अहंकार को भरने का प्रयत्न करते हो तो मनुष्य का मन और—और अशांत होता जाता है, क्योंकि बड़े अहंकार के लिए और बड़ी अशांति, और बड़ी बीमारी, ज्यादा विभाजन, ज्यादा खंडितता चाहिए। जब तुम्हारे अस्तित्व के खंड बहुत गहरे द्वंद्व में होते हैं तो वे तनाव पैदा करते हैं। उस तनाव में अहंकार हो सकता है। अहंकार के लिए संघर्ष चाहिए, एक युद्ध भूमि चाहिए, तुम्हारा सारा अस्तित्व एक युद्ध—स्थल हो जाये।

ऐसा दो तरीके से हो सकता है—या तो तुम दूसरों से लडो, या फिर तुम स्वयं से ही लड़ो। तुम इस प्रतिस्पर्धा के जगत में दूसरों से लड़ सकते हो। तुम महत्वाकांक्षी हो, दूसरे भी महत्वाकांक्षी हैं। तुम अपने अहंकार को भरना चाहते हो, दूसरे भी इसी राह पर चल रहे हैं। तुम उनसे लड़ते हो। यह सांसारिक रास्ता है अहंकार को प्राप्त करने का—राजनैतिक रास्ता अथवा आर्थिक रास्ता।

लेकिन धार्मिक रास्ते भी हैं। तुम दूसरों से लड़ना बंद कर देते हो। तुम अपने को ही बांट लेते हो और स्वयं से लड़ना शुरू कर देते हो। तुम काम से लड़ते हो, तुम क्रोध से लड़ते हो, तुम शरीर से लड़ते हो, तुम इस संसार से लड़ते हो, जो कि पापों से भरा है। तुम अपने को विभाजित कर लेते हो। तुम अपने को मन और शरीर में बांट लेते हो, शरीर और आत्मा में विभाजित कर लेते हो। इतना ही नहीं, तुम अपने शरीर के भी दो टुकड़े कर लेते हो—एक नीचे का हिस्सा, एक ऊपर का हिस्सा। इस विभाजन के द्वारा तुम अपने ही साथ मजे से लड़ सकते हो।

अत: याद रहे कि सांसारिक अहंकार होते हैं और आध्यात्मिक अहंकार होते हैं। एक आदमी धन कमा लेता है, सम्मान पा लेता है, शक्ति अर्जित कर लेता है, उसके पास एक अहंकार होता है, लेकिन ऐसा मत सोचना कि जो आध्यात्मिक साधना कर रहा है उसके पास अहंकार नहीं होता। उसके पास हो सकता है और भी ज्यादा सूक्ष्म अहंकार हो—एक गहरा, शुद्ध अहंकार, लेकिन उसके पास भी अहंकार होता है। तुम्हारे तथाकथित साधु बड़े अहंकारी हैं। वे अपने अहंकार को तप के द्वारा, तपश्चर्या के द्वारा प्राप्त करते हैं। वे अपने ही ऊपर विजय पाते हैं। उनके बाहर कोई शत्रु नहीं होते। उन्होंने भीतर ही शत्रु निर्मित कर लिये होते हैं और फिर वे लड़ते रहते हैं। और जब वे जीत जाते हैं तो उनको एक बड़ी अहंकारी प्रतीति होती है। उन्हें एक शक्ति का अनुभव होता है।

इसलिए दूसरी बात जो समझ लेनी है—जब भी तुम्हें शक्ति का अहसास हो तो स्मरण रहे, तूमने अहंकार का सूक्ष्म व सघन रूप प्राप्त कर लिया है। और जब भी तुम शक्तिशाली हो तो तुम परमात्मा से नहीं मिल सकते, तुम सत्य को नहीं पा सकते, क्योंकि शक्ति होती ही द्वंद्व में है, शक्ति होती ही युद्ध में है। शक्ति का निर्माण ही युद्ध के द्वारा, हिंसा के द्वारा, आक्रमण के द्वारा होता है। शक्ति प्रेम के खिलाफ है, शक्ति मौन के विपक्ष में है, शक्ति सर्व के विरोध में है।

तुम ब्रह्म से नहीं मिल सकते, यदि तुम स्वयं को शक्तिशाली महसूस करते हो। तुम परमात्मा से तभी मिल सकते हो यदि तुम अपने को बिलकुल ही शक्तिहीन महसूस करते हो, ना —कुछ, असहाय पाते हो। यदि तुम किसी भी तरह से शक्तिशाली महसूस करते हो तो तुम एक बाधा उत्पन्न कर रहे हो। जब तुम शक्तिशाली होते हो तो तुम सर्व के प्रति अंधे होते हो। और तुम अपनी शक्ति से इतने परेशान होते हो, भीतर इतने अशांत होते हो कि तुम्हारे भीतर वह मौन नहीं हो सकता जो कि उससे मिलने के लिए चाहिए, जो उस सर्व से संवाद के लिए जरूरी है। इसलिए सभी धर्मों का अहंकार को मिटाने पर इतना जोर है, कि केवल तभी तुम परमात्मा में प्रवेश कर सकते हो।

जीसस कहते हैं, "केवल वे ही जो बच्चों की भांति हैं, मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकते हैं। " क्यों बच्चों जैसे ही? बच्चे असहाय होते हैं, वे शक्तिशाली नहीं होते। बच्चे अभी भी इस समष्टि के हिस्से होते हैं। वे अभी अहंकार नहीं हो गए हैं। अभी उनके अहंकार का केंद्र सघन नहीं है; वे अभी भी अविभाजित हैं। इसलिए बच्चे इतने सुंदर होते हैं। एक कुरूप बच्चा खोजना मुश्किल है, और एक सुंदर वृद्ध आदमी खोजना मुश्किल है। क्यों? यदि प्रत्येक बच्चा इतना सुंदर पैदा होता है तो फिर क्यों प्रत्येक वृद्ध इतना कुरूप हो जाता है? जरूर कहीं कुछ गड़बड़ हो जाती है। प्रत्येक बच्चा सुंदर होता है। सुंदरता समग्रता से आती है। बच्चा समग्र होता है, अविभाजित होता है। उसमें विभाजन नहीं होते। वह खंड—खंड नहीं होता; वह कहीं भी संघर्ष में नहीं होता। वह सिर्फ जी रहा होता है, श्वास ले रहा होता है बिना किसी द्वंद्व के। जीवन उसके लिए संघर्ष नहीं हुआ है अभी। और वह स्वयं से भी नहीं लड़ रहा है—वह अभी धार्मिक नहीं हुआ है। वह सिर्फ प्राकृतिक प्राणी है जैसे कि दूसरे पशु हैं, वृक्ष हैं, चट्टानें हैं। वह इस समष्टि का एक हिस्सा है।

वह उसमें से बाहर आ जायेगा। हम उसको उसमें से बाहर खींच लेंगे; हम उसे वैसा ही नहीं छोड़ सकते। और यदि हम छोड भी दें तो भी वह बाहर आ जायेगा, क्योंकि उसके पास विभाजित होने की संभावना है, उसके पास अहंकार होने की संभावना है। और यह शिक्षा का अंतिम हिस्सा है कि वह अहंकार बने, क्योंकि जब तक तुम्हारे पास अहंकार नहीं होगा, तब तक तुम उसे छोड़ भी नहीं सकते।

बच्चा अहंकार के पहले की अवस्था है। उसकी निर्दोषता स्वाभाविक है, किंतु उसकी यह स्वाभाविक निर्दोषता कभी भी गडबडा सकती है। जब भी वह एक मन होगा, वह चालाक हो जायेगा। जब भी वह अपनी वैयक्तिकता के प्रति सजग होगा, वह अहंकारी हो जायेगा।

यही अर्थ है बाइबिल की कहानी का कि अदम और ईव ईदन के बाग में बड़े भोले— भाले थे और परमात्मा ने उन्हें ज्ञान के वृक्ष से फल खाने से मना कर दिया था। क्यों ज्ञान का फल खाने को मना किया गया था? क्योंकि जैसे ही तुम जानते हो वैसे ही तुम अलग हो जाते हो। ज्ञान अलग कर देता है।

बच्चा निर्दोष होता है क्योंकि वह अभी अज्ञानी है। वह नहीं जानता कि वह कहां समाप्त होता है और तुम कहौ शुरू होते हो।

बच्चों के मनोचिकित्सक कहते हैं कि प्रारंभ में बच्चे को कुछ भी पता नहीं होता कि कहां वह समाप्त होता है और कहां उसकी मां शुरू होती है। उसे सभी कुछ एक लगता है। नौ महीने गर्भ में वह मां के साथ एक होकर जीता है। वह श्वास भी अपनी मां के द्वारा ही लेता है, वह जीता भी अपनी मां के द्वारा ही है। पैदा होने के बाद भी बहुत समय तक बहुत गहरे में वह अपनी मां के साथ एक होकर ही जीता है। उसके पास अपना कोई अहंकार नहीं होता और उसे पता ही नहीं चलता कि वह मां से अलग है। धीरे—धीरे उसे पता चलेगा कि वह मां से अलग है, धीरे—धीरे वह जानेगा कि तुम अलग हो।

स्मरण रहे कि बच्चे को 'तुम' का पता पहले चलता है और बाद में उसे 'मैं' का पता चलता है। जब उसे प्रतीत होने लगता है कि तुम अलग हो तब धीरे— धीरे उसे पता चलने लगता है कि वह तुमसे अलग है और वह तुम नहीं है। मां चली जाती है और वह फिर भी होता है। अब वह दूरी को अनुभव करने लगता है और अब उसे मैं की प्रतीति होने लगती है। लेकिन वह 'मैं' भी ठोस नहीं होता। शुरू में बच्चे अपने को सदा तीसरे व्यक्ति की तरह बोलते हैं। यदि बच्चे का नाम राम है तो वह कहेगा कि राम को प्यास लगी है। वह तीसरे व्यक्ति की भांति बोलता है। वह यह नहीं कहेगा कि मुझे प्यास लगी है। 'मैं' अभी ठोस नहीं हुआ है, वह दावेदार नहीं बना है। उसे अभी भी लगता है कि राम को प्यास लगी है—जैसे कि रहा कोई दूसरा व्यक्ति है, न कि मैं स्वयं हूं।

बच्चे सदैव अपने को अन्य पुरुष में संबोधित करते हैं। वे कहते हैं, "राम को नींद आ रही है। ऐसा करो, राम को अच्छा लगेगा। वैसा मत करो, राम को बुरा लगेगा। " वे अपने को ऐसे संबोधित करते हैं जैसे वे किसी और से बोल रहे हों। मैं अभी ठोस नहीं हुआ है। जितना अधिक उन्हें दूसरों की प्रतीति होने लगती है उतनी उन्हें अपनी भी प्रतीति होने लगती है। पहले दूसरा होता है, और फिर बाद में तुम होते हने। यह एक परछाईं है। 'मैं' प्रतिबिंब है 'तुम' का।

अदम और ईव को मना कर दिया गया था कि वे ज्ञान के वृक्ष के फल नहीं खायें, लेकिन उन्हें वह खाना ही था। वह उनकी प्रौढ़ता का हिस्सा है। वे भोले— भाले थे। जैसे ही उन्हौंने फल को खाया वे सगा और सावधान हो गये। अचानक वे अपने शरीरों को ढांकने लगे। अब ईव अदम के होने के प्रति सजग थी और अदम ईव के होने के प्रति। कपड़े अहं के द्वारा अस्तित्व में आये। वे जान गये कि वे पृथक हैं। इसके पहले वे दोनों एक दूसरे के हिस्से थे; उन्हें पता ही नहीं था कि वे पृथक हैं। वे पृथक हो गये। और यही बात प्रत्येक अदम और ईव के साथ होती है। यह सिर्फ एक बार ही नहीं हुआ। जब भी कोई बना पैदा होता है, वह ईदन के बाग से बाहर आता है।

मां के गर्भ में वह ईदन के बगीचे में होता है, अस्तित्व के साथ एक होता है। कोई जिम्मेवारी नहीं होती, कोई चिंता नहीं होती, कोई अहकार नहीं होता। बच्चा होता है किंतु बिना किसी केंद्र के। फिर वह पैदा होता है। वस्तुत: बाइबिल की यह अदम और ईव की कहानी प्रत्येक बच्चे की कहानी है। उसे मा ये? बाहर

निकाल दिया जाता है, और अदम और ईव ईदन के बाग से बाहर निकाल दिये जाते हैं। और प्रत्येक बच्चे को बाहर निकाला ही जाता है। फिर अहंकार बढ़ता है, बढ़ता ही जाता है। और उसके साथ ही साथ दुख बढ़ता जाता है।

इसीलिए प्रत्येक वृद्ध सोचता है कि बचपन स्वर्ग था। वह था! इस अर्थ में वह स्वर्ग था, क्योंकि तुम अभी भी अहंकार नहीं हुए थे। तुमने ज्ञान का फल नहीं चखा था; तुमने अपने को पृथक नहीं जाना था। पृथकता के साथ ही समस्या खड़ी होती है, तुम चिंतित हो जाते हो। पृथकता के साथ ही; मृत्यु पैदा होती है।

बाइबिल की कहानी में यह भी कहा गया है कि मृत्यु पहले नहीं होती थी। जब अदम और ईव ने वह फल खाया तो मृत्यु भी अस्तित्व में आई। उसके पहले वे लोग अमर थे। प्रत्येक बच्चा अमर है। उसे फृत्यु का कुछ भी पता नहीं है, क्योंकि मृत्यु अर्थपूर्ण ही 'मैं' के लिए हो सकती है, अहंकार के लिए हो सकती है। जब तुम्हारी यह धारणा हो कि तुम पृथक हो तो एकदम समस्या खड़ी हो जाती है कि तुम सदा —सदा यहं। रहने वाले हो या कि तुम मरोगे? वृक्ष. अमर हैं। ऐसा नहीं है कि वे मरते नहीं हैं, वे भी मरते हैं, र्लोकैन उन्हें मृत्यु का कुछ पता नहीं है। पशु अमर हैं, ऐसा नहीं कि मृत्यु उनके लिए नहीं होती, मृत्यु तो होगी लेकिन उन्हें उसका पता नहीं होता। उनके पास कोई अहंकार नहीं है, अत: वे कैसे जानें कि वे मरने वाले हैं? मैं का होना जरूरी है इसके पूर्व कि मुझे प्रतीति हो कि मैं मरूंगा। मृत्यु अहंकार का हिस्सा है।

अत: मैं तुमसे कहना चाहूंगा कि मृत्यु बीमारी से, रुग्णता से आती है। और मृत्यु आखिरी बात है, पराकाष्ठा है, जहा अहंकार समाप्त होता है। अहंकार ही तुम्हारे चारों ओर मृत्यु और भय उत्पन्न करता है। और यही विरोधाभास है कि जितने अधिक तुम मृत्यु से भयभीत होते हो, उतने ही ज्यादा तुम शक्तिशाली होने की कोशिश करते हो, क्योंकि तुम सोचते हो कि यदि तुम शक्तिशाली हो जाओ तो तुम मृत्यु के साथ कुछ कर सकते हो। कम से कम तुम उसे स्थगित कर सकते हो। तुम उसे थोड़ा आगे सरका सकते हो।

लेकिन जितने शक्तिशाली तुम बन जाते हो उतनी ही मृत्यु अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। जितने शक्तिशाली तुम हो जाते हो उतने ही तुम मृत्यु से भयभीत हो जाते हो, क्योंकि शक्ति के साथ ही अहंकार बढ़ता जाता है। यदि तुम धनवान हो, राजनैतिक दृष्टि से शक्तिशाली हो तो तुम मृत्यु से ज्यादा भयभीत होओगे। यदि तुम गरीब हो, कोई शक्ति नहीं है, तो तुम मृत्यु से इतने भयभीत नहीं होओगे।

पश्चिम से जब लोग पूर्व आते हैं तो उन्हें एक बात समझ में नहीं आती कि यहां पर लोग मृत्यु के प्रति इतने उदासीन क्यों हैं। वे इतने शक्तिहीन हैं! उनके पास कोई ठोस और मजबूत अहंकार नहीं है जिसके कारण कि वे मृत्यु से भयभीत हों। तुम ज्यादा भयभीत हो। तुम उसी अनुपात में भयभीत होते हो जिस अनुपात में मृत्यु तुमसे कुछ छीन लेगी। यदि तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है तो मृत्यु तुमसे ले क्या लेगी? एक गरीब आदमी मृत्यु से नहीं डरता। वास्तव में मृत्यु उससे कुछ भी छीन नहीं सकती। वह मृत्यु से कुछ पा ही सकता है, खोने को उसके पास कुछ भी नहीं है।

जितने ज्यादा तुम अमीर होते हो, उतने ही भयभीत होते हो, क्योंकि तुम्हारा सारा धन छीन लिया जायेगा। और जो भी तुमने प्राप्त किया वह भी ले लिया जायेगा। जितनी शक्ति तुम्हारे पास है उतने ही शक्तिहीन तुम मृत्यु के समक्ष अनुभव करोगे, क्योंकि वह तुम्हें पुन: नपुंसक बना देगी। सारी शान तथा सारी शक्ति चली जायेगी और तुम भिखारी के समान मरोगे।

मृत्यु पूर्णरूप से साम्यवादी है, वह सबको समान कर देती है। जो सबसे नीचे है, स्वभावत: अधिक डरा हुआ नहीं हो सकता। जो सबसे बड़ा है वही सबसे ज्यादा भयभीत होगा क्योंकि उसे भीं नीचे खींच लिया जायेगा। मृत्यु तुम्हारा राष्ट्रपति का पद छीन लेगी, तुम्हारा प्रधानमंत्री का पद छीन लेगी और भिखारी से मृत्यु

उसका भिखारीपन छीन लेगी! निश्चित ही राष्ट्रपति ज्यादा भयभीत होगा, उसे भिखारी की तुलना में अधिक गहरा भय होगा।

पश्चिम मृत्यु से बहुत भयभीत हो गया है। मृत्यु एक आतंक हो गई है। मन ग्रसित हो गया है निरंतर मृत्यु के विचार से। ऐसा होगा ही क्योंकि आज पश्चिम इतना अधिक शक्तिशाली हो गया है; उनके पास खोने को कुछ है। और जब वे पूर्व में मृत्यु के प्रति इतनी उदासीनता देखते हैं तो उनकी समझ में नहीं आता कि इतनी उदासीनता क्यों है? यही एक कारण है : उनके पास खोने को कुछ नहीं है। वे अंतिम तल पर जी रहे हैं, मृत्यु उनको और नीचे नहीं गिरा सकती। वे पहले से ही गिरे हुए हैं, वे पहले से ही कब्र में सोये हैं। मेरा कहने का मतलब यह है कि शक्ति तुम्हें अहंकार प्रदान करती है, अहंकार और अधिक शक्ति की लालसा पैदा करता है, और यह एक दुश्चक्र बन जाता है। और जब तुम शक्तिशाली हो जाते हो तो तुम मृत्यु से भय खाने लगते हो। और जब तुम मृत्यु से भय खाने लगते हो तो तुम प्रभु के मंदिर में प्रवेश नहीं कर सकते, क्योंकि परमात्मा एक प्रकार से मृत्यु है। वस्तुत: प्रभु में प्रवेश करने का, समग्र में प्रवेश करने का मतलब ही है कि स्वयं को खो देना एक व्यक्ति की भांति, ताकि फिर से बच्चे हो जाओ।

लेकिन यह जो बचपन होगा, यह जो दूसरा बचपन होगा, यह गुणात्मक रूप से पहले से भिन्न होगा। पहला बचपन पशुवत था, दूसरा बचपन परमात्मा जैसा होगा। पहले बचपन को अस्तव्यस्त होना ही था; दूसरे बचपन को अस्तव्यस्त करने का सवाल ही पैदा नहीं होता है। दूसरे बचपन से मेरा मतलब है—वह स्थिति जिसमें तुमने होशपूर्वक, समझ से, ध्यान के द्वारा, समर्पण के द्वारा अपने को समग्र में खो दिया है। वर्तुल पूरा हो गया है, तुम पुन: बच्चे हो गये। हिंदुओं ने इस दूसरे बचपन की अवस्था के व्यक्ति को द्विज कहा है। यह नया जन्म है। पुराना मर गया है और व्यक्ति फिर से बच्चा हो गया है।

एक संत, यदि वह सच में संत है तो वह पुन: बच्चा हो जायेगा। और जीसस कहते हैं कि केवल न बच्चे ही प्रभु में, मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकते हैं। जब तक तुम अदम और ईव जैसे फिर से नहीं हो जाते, जब तक कि तुम अपने ज्ञान का फल पुन: अपने रग—रेशे में से निकाल कर नहीं फेंक देते, तब तक तुम बगीचे में प्रवेश नहीं कर सकते। यदि तुम यह बात समझ लो, तो फिर यह जो कहानी है तुमारि। समझ में आ जायेगी।

यह एक बोधकथा है—सर्वाधिक प्रीतिकर बोधकथाओं में से एक। यह कहानी बडी सरल है, लेकिन इसका तात्पर्य बड़ा जटिल है। पहले मैं इस कहानी को पढूंगा, और फिर हम इस पर चर्चा करेंगे।

कहानी है कि ब्रह्म ने देवताओं के लिए विजय प्राप्त की। यद्यपि विजय ब्रह्म के कारण हुई थी. पर देवता गर्व से भर गये और उन्होने सोचा: "यह विजय हमारे ही कारण हुई है; इस गौरव के केवल हम ही मालिक हैं। "

ऐसा सदा होता है। जो भी तुम उपलब्ध करते हो वह तुम्हारी आतरिक आत्मा के द्वारा पाया जाता से, न कि तुम्हारे अहंकार के द्वारा। लेकिन अहंकार सदा सारी विजय का फायदा उठाता है। वह कहता है कि यह मैंने किया है। और वास्तव में, अहंकार के द्वारा कुछ भी नहीं किया जाता। अहंकार शोषक है। आला—दरजे का शोषक। जन्म जैसी बातें भी अहंकार के द्वारा शोषित की जाती हैं। तुम कहते हो, ''यह मेरा जन्मदिन है "—जैसे कि तुमने अपने जन्म के लिए कुछ किया हो। तुम कहते हो, "मेरा जन्मदिन! 'मैं इस दिन पैदा हुआ था, " जैसे कि 'मैं' ने उस दिन कुछ किया था। जन्म घटित हुआ था। यह एक घटना शे न कि कृत्य। लेकिन तुम्हारा अहंकार उसका भी फायदा उठाता है।

तुम कहते हो, "मैं श्वास लेता हूं। " यह बात पूर्णतया गलत है। श्वास घटित होती है, तुम श्वास नहीं लेते। श्वास बिना तुम्हारे भी चालू रहती है। तुम दखल दे सकते हो, लेकिन तुम श्वास ले नहीं सकते। श्वास एक

प्राकृतिक घटना है। ब्रह्म ही तुम्हारे में श्वास लेता है। यदि वैसा ही हो जैसा कि हम कहते हैं कि मैं श्वास लेता हूं तो फिर मृत्यु असंभव हो जायेगी, क्योंकि अगर तुम श्वास लेते ही जाओ तो मृत्यु तुम्हारा क्या कर लेगी?

लेकिन तुम श्वास लेते ही नहीं रह सकते। यदि श्वास बाहर चली जाये और वापस न आये, तो तुम—क्या कर सकते हो? तुम कुछ भी नहीं कर सकते, क्योंकि यदि श्वास बाहर चली गई है और वापस नही आ रही है, तो तुम वहां पर हो ही नहीं जो कि कुछ भी कर सको। तुम जिंदा ही नहीं रहे, तुम अस्तित्व से ही बाहर हो गये। श्वास लेना कुछ ऐसा नहीं है जो कि तुम करते हो। यह कुछ ऐसा है जो कि तुम्हारे पर घटित हो रहा है—एक विराट ऊर्जा, चाहे कहो जीवन। उपनिषद उसे ब्रह्म कहते हैं, जिसे बर्गसन "एलन वाइटल" कहता है, या जो भी नाम तुम देना चाहो।

जीवन तुम्हारे द्वारा श्वास लेता है, किंतु अहंकार हर चीज का शोषण करता रहता है, और कतत। रहता है, "मैं श्वास ले रहा हूं।" तुम प्रेम में पड़ जाते हो और कहते हो, "मैं प्रेम करता हूं। " वस्तुत: यह कभी भी तुम नहीं करते। क्या तुम प्रेम कर सकते हो? यदि मैं तुमसे कहूं "इस स्त्री से प्रेम करो, "तो तुम कहोगे, "मैं इससे कैसे प्रेम कर सकता हूं यदि मैं इसके प्रेम में नहीं हूं?" तुम करोगे भी क्या? तुम प्रेम करने का नाटक कर सकते हो, लेकिन तुम उसमें डूबे नहीं होओगे जब तक कि जीवन—ऊर्जा ही तुम्हें प्रेम में न डाले दे। जब तक कि जीवन—ऊर्जा के साथ ही यह घटना न घटे कि तुम प्रेम में पड़ जाओ, तुम कुछ भी नहीं कर सकते।

वस्तुत: सारा जीवन ही एक घटना है। जन्म, मृत्यु, प्रेम सब जो भी महत्वपूर्ण है वह घटता है। और यदि तुम थोड़े गहरे उतरो तो छोटी—छोटी बातें भी घटित होती हैं। तुम कहते हो कि यह मकान मैंने बनाया है, लेकिन पक्षी भी घोंसले बना रहे हैं। वास्तव में, यह कुछ ऐसा है जो जीवन—ऊर्जा कर रही है, न कि तुम। अपने आपको बहुत बुद्धिमान मत समझो, बहुत शक्तिशाली, बहुत चतुर मत समझो, क्योंकि तुमने यह मकान बनाया है। पक्षी भी सुंदर घोंसले बना रहे हैं—और बिना किसी प्रशिक्षण के, बिना किसी शान के, बिना किसी कालेज गये बना रहे हैं। यह सहज प्रवृत्ति से होता है। जीवन अपना घर बनाता है।

तुम धन इकट्ठा करते रहते हो और तुम सोचते हो कि तुम यह कर रहे हो। नहीं, जीवन—ऊर्जा इकट्ठा करती है। जानवर भी इकट्ठा करते हैं। वे भी संचय करने की कोशिश करते हैं। वे भी वर्षाकाल के लिए प्रबंध करते हैं। अगर तुम गहरे देखो तो अपने भीतर एक सूक्ष्म घटना घटते देखोगे. प्रत्येक बात जीवन—ऊर्जा के द्वारा की जाती है, और प्रत्येक बात जो कि जीवन—ऊर्जा के द्वारा की जाती है, उसे अहंकार शोषित करता है। अहंकार कहता है, "मैं यह कर रहा हूं " और तब उसे बड़ा गर्व लगता है।

कथा यह है :

कहानी है कि ब्रह्म ने देवताओं के लिए विजय प्राप्त की।

हिंदू पुराणों में जितनी भी प्राकृतिक शक्तियां हैं वे देवता हैं। अग्नि एक देवता है—एक प्राकृतिक शक्ति है। वायु भी एक देवता है—एक प्राकृतिक शक्ति है। प्रत्येक प्राकृतिक शक्ति को एक देवता माना गया है।

ब्रह्म ने देवताओं के लिए विजय प्राप्त की यद्यपि विजय ब्रह्म के कारण हुई थी परंतु देवता गर्व से भर गये और उन्होने सोचा. "यह विजय हमारे ही कारण हुई है; इस गौरव के केवल हम ही मालिक हैं "और यह कहानी सतत चलती रहती है—यह कहानी तुम्हारे साथ रोज घटती रहती है।

वायु, अग्नि, प्रकृति की सारी शक्तियां काम कर रही हैं ब्रह्म के गहरे मूल स्रोत के कारण। अन्यथा वे काम नहीं कर सकतीं। कुछ भी जीवित नहीं रह सकता, कुछ भी सक्रिय नहीं हो सकता, जब तक कि 'एलन वाइटल', ब्रह्म, वह मूल स्रोत उसमें सक्रिय नहीं होता। लेकिन तुम्हें उसका पता नहीं चलता।

सतह पर तुम काम करते रहते हो, और तुम सोचते रहते हो कि तुम उन्हें कर रहे हो, ”मैं ही इसका कारण हूं मैं ही इसका स्रोत हूं। ” तुम उसके स्रोत नहीं हो। यह ऐसा ही है कि जैसे गंगा सागर की ओर बह रही है। गंगा जरूर सोचती होगी कि वह सागर की ओर बह रही है। क्या वह सचमुच ही बह रही है, अथवा वह सिर्फ एक बड़े वर्तुल का हिस्सा है? वह सागर की ओर बहेगी, और फिर सूरज की किरणों से पानी भाप बनेगा और बादल का रूप ले लेगा। और हवा उन बादलों को उड़ा कर हिमालय पर ले जायेगी और फिर वे गंगोत्री पर बरस जायेंगे, और फिर नदी बनेगी और बहेगी, और वह बहती जायेगी। वह सागर में जाकर गिरेगी क्योंकि पानी के लिए यह प्राकृतिक है कि वह नीचे की ओर बहे।

यह गंगा नहीं है जो कि सागर की ओर बह रही है। यह सिर्फ प्रकृति का एक नियम है—दिव्य का हिस्सा है—कि पानी नीचे की ओर बहता है। इसलिए हिमालय से पानी नीचे की तरफ बहता है। नहीं कि गंगा बह रही है। गंगा का कोई अहंकार नहीं हो सकता, उसको अहंकार होने की सुविधा नहीं है। यह एक बड़े वर्तुल का हिस्सा है। फिर से पानी सागर में गिरेगा, और फिर से बादल आयेंगे, और फिर वे गंगोत्री पर बरसेंगे, और गंगा बहती रहेगी। यह एक महान वर्तुल है। बादल, गंगोत्री, गंगा, सागर... बादल, गंगोत्री, गंगा और सागर। यह एक महान वर्तुल है।

तुम भी ऐसे ही एक महान वर्तुल के हिस्से हो। ऊर्जा के इस महान वर्तुल को ही ब्रह्म कहते हैं। किंतु हिस्सा सोचता रहता है कि मैं कर रहा हूं। अत: देवता गर्व से भर गये और उन्होंने सोचा:

”यह विजय हमारे ही कारण हुई है इस गौरव के केवल हम ही मालिक हैं ”

और एक बात और—कि जब भी तुम पराजित होते हो, तुम कभी भी नहीं कहते, ”यह पराजय हमारे ही कारण हुई है। ”जब कभी तुम्हारा अपमान होता है, तुम कभी नहीं कहते, ”यह अपमान मेरा है, मैं इसका अधिकारी हूं। ” यह बड़ी अजीब बात है। यदि गौरव तुम्हारा है, तो फिर अगौरव क्यों नहीं? यदि विजय तुम्हारी है, तो फिर पराजय क्यों नहीं? जब भी तुम पराजित हो जाते हो तो तुम कहते हो,
” परिस्थितिवश, स्थिति के कारण, चीजें इस तरह से हुईं कि, नियति, परमात्मा, ये तुम्हारे खिलाफ थे। ”

जब तुम हारते हो, तो तुम जिम्मेवारी किसी और पर क्यों डाल देते हो? क्योंकि पराजय से अहंकार की तृप्ति नहीं होती। केवल जीत से उसकी तृप्ति होती है। इसलिए पराजय को ब्रह्म पर डाल देते हो। यदि देवता हार जाते तो वे अवश्य कहते, ”ब्रह्म हमारे विरुद्ध है, भाग्य हमारे खिलाफ है, नियति हमारे विरोध में है, और इसी कारण हम हार गये हैं। ”

यदि तुम जीत जाते हो तो तुम कहते हो कि जीत तुम्हारे कारण हुई है।

अहंकार की तरकीब तो देखो! या तो दोनों ही तुम्हारे कारण नहीं होते, या फिर दोनों तुम्हारे कारण होते हैं। निश्चय करो, और अहंकार मर जायेगा। यदि तुम कहते हो, ”दोनों मेरे कारण नहीं होते हैं, एक विराट शक्ति काम कर रही है और मैं तो एक छोटा —सा कण हूं एक आणविक वस्तु हूं—एक कोष, जो कि असहाय है। चीजें मुझ पर घट रही हैं, और मैं उनका करने वाला नहीं हूं अत: चाहे जीत हो, चाहे हार हो दोनों परम के हैं, ” तो अहंकार नहीं बच सकता। अथवा कहो ”दोनों का कारण मैं ही हूं—विजय और पराजय, मान और अपमान, दोनों का कारण मैं हूं ” तब भी तुम्हारा अहंकार विलीन हो जायेगा, क्योंकि दोनो एक—दूसरे के विरोधी हैं, वे एक—दूसरे को काट देते हैं। विजय से थोड़ा—सा तुम्हारा अहंकार बढ़ेगा, और पराजय से वह कम हो जायेगा, और तुम बिना अहंकार के हो जाओगे।

ये ही दो रास्ते हैं। हिंदुओं ने पहले मार्ग का अनुसरण किया। उन्होंने कहा जीत और हार और सब कुछ परमात्मा का है, इस समष्टि का है, परम सत्ता का है। जैनों और बौद्धों ने दूसरे मार्ग का अनुसरण। उन्होंने कहा,

"कोई परमात्मा नहीं है; सभी कुछ हमारा है—पराजय हो चाहे विजय हो, हानि हो अथवा लाभ हो, मृत्यु हो चाहे जन्म हो, सभी कुछ हमारा है। " तब ये दोनों विरोधी बातें एक —दूसरे को जट देती हैं, और अहंकार मिट जाता है।

दोनों ही तरह से घटना वही घटती है। अहंकार तभी तक बच सकता है जब तक कि तुम सारी विजय के मुकुट उसे ही पहनाते जाओ और पराजयों के लिए जगत को, नियति को, ब्रह्म को दोष देते जाओ। तब फिर अहंकार जीता रहता है। इसी तरह से अहंकार जीवित रहता है।

कहानी कहती है :

ब्रह्म को उनके इस गर्व का पता चला।

उसे उनके अहंकारों का पता चला, कि वे बड़े गर्व से फूले हुए हैं, कि वे कह रहे हैं कि विजय उनकी है, उनके कारण हुई है।

वह स्वयं उनके सामने प्रकट हुआ किंतु उनकी समझ में नहीं आया कि यह यक्ष कौन है।

इस कहानी का दूसरा पहलू : जब कभी परम सत्ता को, समष्टि के स्रोत को पता चलता है कि तुम गर्व से फूल रहे हो, कि तुम अहंकार से भरे जा रहे हो, तो वह तुम्हारे सामने प्रकट होता है, लेकिन तुम उसे नहीं पहचान सकते। अहंकार तुम्हें उसे पहचानने नहीं देगा। वह तुम्हारी आंखें बद कर देगा। वह तुम्हारे पास भी आता है, ऐसा नहीं है कि वह देवताओं के पास ही आये। यह एक मानवीय कहानी है, एक बहुत ही मनोवैज्ञानिक कहानी है। जब भी तुम गर्व से फूलते हो, तुम्हारे चारों ओर कुछ ऐसी बातें घटित होती हैं जो कि तुम्हें वापस जमीन पर ला देती हैं यदि तुम उन्हें पहचान सको। लेकिन तुम उन्हें कभी भी पहचान नहीं पाते। तुम पहचान ही नहीं सकते! तुम्हारी आंखें इस समय वास्तविकता पर नहीं होतीं। अभी तुम कल्पना की दुनिया में होते हो।

इसलिए देवता नहीं पहचान पाये कि यह यक्ष कौन है। ब्रह्म उनके समक्ष खड़ा हुआ था, परम सत्ता उनके सामने खड़ी थी, लेकिन वे लोग बंद थे। वे अपने सिरों में बंद थे। वे अपने अहंकारों में बंद थे। वे नहीं देख सके, वे नहीं समझ सके। जब कभी तुम अपनी अहंकारी स्थिति में होते हो, तुम उस समय कुछ भी नहीं देख पाते, तुम अंधे होते हो। जब भी तुम विजयी होते हो, तुम कुछ नहीं देख सकते, तुम कुछ भी नहीं समझ सकते। तुम्हारी ज्ञानेंद्रिया खो जाती हैं। तुम्हारी सामान्य समझ भी जाती रहती है। तुम अपनी विजय में, अपनी सफलता में पागल हो जाते हो।

उन्होंने अग्नि को संबोधित करके कहा— देवताओं ने अग्नि से कहा— "कृपया पता लगाओ कि यह दिव्यात्मा कौन है—कौन इस रूप में प्रकट हुआ है—कौन है यह यक्ष?"

अग्नि ने कहा " हां, मैं पता लगाने का प्रयत्न करूंगा। "

अग्नि शीघ्रता से यक्ष के पास गया। यक्ष एक आकृति है, एक रूप है—जिस रूप में ब्रह्म प्रकट हुआ था.. यक्ष ने उससे पूछा कि तुम कौन हो। अग्नि ने उत्तर दिया "वस्तुत: मैं उग्निन हूं। मुझे जातवेद के नाम से भी जाना जाता है।"

यक्ष ने पूछा "तुम किस ऊर्जा के स्वामी हो जो कि इतने प्रसिद्ध हो?"

अग्नि बहुत महत्वपूर्ण रही है। पुराने दिनों में अग्नि देवता सर्वोच्च थे, क्योंकि आदमी अंधकार में जी रहा था, वह गुफाओं में रहता था, जंगलों में रहता था, और बड़ा खतरनाक मामला था। पशु थे, और अंधेरे में वे हमला कर देते थे, और रात्रि बड़ी भयानक थी। और तब ऐसे में अग्नि ने सहायता की थी, उसको अंधकार से

बाहर निकाला था। रात्रि भी इतनी भयानक नहीं रह गयी। इसलिए एक जमाने में अग्नि को सर्वोपरि रेवता माना जाता था। अग्नि की सारी दुनिया में पूजा होती थी। अग्नि परमात्मा का चिह्न हो गई थी।

इसलिए देवताओं ने सर्वप्रथम अग्नि से कहा कि जाओ और पता लगाओ कि वह यक्ष कौन है जो कि उस दिव्य रूप में प्रकट हुआ है। और यक्ष ने पूछा :

"तुम किस ऊर्जा के स्वामी हो? "—जोर 'तुम' पर है— "तुम किस ऊर्जा के स्वामी हो जो कि इतने प्रसिद्ध हो? "

"मैं जो कुछ भी इस पृथ्वी पर है उसे जला सकता हूं "अग्नि ने उत्तर दिया।

जोर इस बात पर है कि "मैं सब कुछ जला सकता हूं।"

यक्ष ने उसके सामने एक तिनका रख दिया और कहा "इसे जला दो "ब्रह्म ने एक तिनका उसके सामने रख दिया और कहा कि इस तिनके को जला दो। अग्नि ने पूरी शक्ति से उस पर हमला किया... पूरी समग्रता से वार किया... लेकिन वह उसे नहीं जला सका

क्योंकि यह अग्नि नहीं है जो कि जलाती है। यह तो समष्टि की शक्ति है जो अग्नि के द्वारा जलाती है। बिना उस समष्टि की महान शक्ति के, अग्नि जला नहीं सकती। और जब ब्रह्म उसके समक्ष ही वहां खडा था, अग्नि नपुंसक हो गई थी, क्योंकि स्रोत तो उसके पीछे नहीं था। अब सिर्फ अहंकार ही बचा था, स्रोत तो विलीन हो गया था। केवल शोषक बचा था—जो कभी भी कुछ नहीं करता परंतु जो सोचता रहता है कि मैं यह कर सकता हूं मैं वह कर सकता हूं।

अग्नि उस तिनके को नहीं जला सका अत: वह वहां से चला गया और उसने लौटकर देवताओं से :
कहा " मैं पता नहीं लगा सका कि यह यक्ष कौन है "

उसने ऐसा नहीं कहा कि वह असफल रहा, कि वह एक तिनके को भी नहीं जला सका। उसने सिर्फ इतना ही कहा कि मैं पता नहीं लगा सका कि यह यक्ष कौन है।

इस भांति अहंकार काम करता है। परमात्मा भी तुम्हारे समक्ष चाहे क्यों न खड़ा हो, तुम यही कहते चले जाओगे कि मैं पता नहीं लगा सका कि यह यक्ष कौन है। जीवन इस बात को प्रकट भी कर दे कि तुम्हारा अहंकार नपुंसक है, फिर भी तुम्हें प्रतीति नहीं होगी। जीवन बार—बार इस बात को बताये चला जाता है कि तुम्हारा अहंकार नपुंसक है—क्या नहीं बताता? हर क्षण जीवन तुम्हें कहे चला जाता है, ''दावा मत करो। तुम करने वाले, कर्ता नहीं हो। " लेकिन तुम इस तथ्य को नहीं देखते।

तब उन्होने वायु से कहा "ओ वायु कृपया पता लगाओ कि यह यक्ष कौन है " वायु ने कहा, "अच्छा।"

वायु शीघ्रता से यक्ष के पास गया यक्ष ने उससे पूछा कि तुम कौन हो वायु ने उत्तर दिया " मै वस्तुत: वायु हूं। मैं मातरिश्व के नाम से भी जाना जाता हूं। "

यक्ष ने पूछा "तुम किस ऊर्जा के स्वामी हो जो कि इतने प्रसिद्ध हो? "

वायु ने कहा "मैं जो कुछ भी इस पृथ्वी पर है उसे वास्तव में ही उड़ा सकता हूं।"

यक्ष ने उसके समक्ष एक तिनका रख दिया और कहा "इसे उड़ा दो "वायु ने पूरी शक्ति से उसे उडाने की कोशिश की लेकिन वह उसे नहीं उड़ा सका।

" पूरी शक्ति से "—तुम्हारा अहंकार पूरी शक्ति से कुछ भी प्रयास कर सकता है, लेकिन उससे कुछ भी नहीं होगा। तुम्हारा अहंकार पूरे जोर से, पूरे प्रयत्न से कुछ भी कर सकता है, परंतु उससे कुछ भी नहीं होने वाला। इसे स्मरण रखो, यह बात बहुत सहायक सिद्ध होगी।

लोग मेरे पास आते हैं और वे कहते हैं, "मैं इतनी मेहनत कर रहा हूं ध्यान करने की, लेकिन कुछ भी नहीं हो रहा है। " कुछ भी नहीं होगा क्योंकि 'मैं' श्रम कर रहा है। तुम दिव्य को भीतर नहीं घटने दे रहे हो।

तुम स्वयं कुछ करने की कैँग़शश कर रहे हो।

तुम नपुंसक हो। जो भी शक्ति तुममें है वह मौलिक स्रोत से आती है, समष्टि से आती है, ब्रह्म से आती है। वह तुम्हारी नहीं है। तुम तो सिर्फ वाहन हो। इसलिए जब 'मैं' कुछ करने की कोशिश करता है तो कुछ भी नहीं होता।

झेन आश्रमों मैँ वे अपने साधकी को एक गुप्त रहस्‌य सिखाते हैं, और वह रहस्य यह है कि कुछ ऐसा काम करो जिसके करने में 'मैं' नहीं आये। यदि तुम बिना अहंकार को बीच में लाये कुछ भी करोगे तो घटना घट जायेगी।

हेरीगल नामक एक जर्मन विचारक जापान में एक झेन आश्रम में था। वह वहां धनुर्विद्या सीख रहा था, और गुरु ने कहा, "जीवन—ऊर्जा को निशाना लगाने दो, और जीवन—ऊर्जा को तीर छोड़ने दो, तुम कुछ भी न करो। " यह बात बड़ी कठिन थी, वस्तुत: असभव थी—और विशेष कर एक जर्मन चित्त के लिए जो कि बुनियादी रूप से बुद्धि केंद्रित होता है। इसीलिए जर्मनी का अनुभव इतना खतरनाक साबित हुआ। बहुत अधिक बुद्धि, बहुत अधिक अहंकार, बहुत अधिक प्रयत्न। ओर तब वह अहंकार इस चरम सीमा पर पहुंच गया कि उसने जर्मन लौगों से कह दिया, " अब तुम सारे संसार पर विजय प्राप्त कर सकते हौ। " हिटलर तो सारे अहंकार—केंद्रित लोगों के मनों की एक अभिव्यक्ति मात्र था।

हेरीगल नहीं समझ सका : "यदि मैं तीर को नहीं छोड़ूं तो तीर छूटेगा कैसे? यदि मैं कोई प्रयत्न नहीं करूं तो फिर प्रयत्न होगा कैसे? " और ऐसा ही हम भी महसूस करेंगे। तीन वर्ष तक वह वहां गुरु के पास रहा। उसने उस कला को पूरी तरह सीख लिया, जितना भी संभव हो सकता था उतना सीख लिया। उसके तीर सौ प्रतिशत निशाने पर लगते थे। तीर सदा निशाने पर ही लगते थे। लेकिन गुरु था कि सिर हिला देता। वह कहता, "यह कुछ भी नहीं है। "

सौ प्रतिशत परिणाम, फिर भी गुरु कहता, "कुछ नहीं है यह, तुमने अभी तक कुछ भी नहीं सीखा। अभी भी तुम ही तीर चला रहे हो। और हम निशाने में दिलचस्पी नहीं रखते, हमारा तो रस तुममें है। हमारा उस दूसरे छोर में दिलचस्पी नहीं है, हमारा सारा रस तुममें है। तुम ही निशाना हौ। निशाना लक्ष्य नहीं है। जब तीर तुम्हारे बिना चले, जब जीवन—ऊर्जा तुम पर अधिकार कर ले, तभी केवल कुछ हुआ..? " क्योंकि धनुर्विद्या मुख्य बात नहीं है, ध्यान मुख्य बात है।

गुरु ने कहा, "यदि तुम निशाना चूक भी जाओ, यदि तुम निशाना बिलकुल ही चूक जाओ तो भी कोई बात नहीं। लेकिन तुम्हें जो मौलिक स्रोत है उसे नहीं चूकना है। "

हेरीगल तौ निराश हो गया। और वह जितना निराश हुआ उतना ही श्रम उसने किया। और वह जितना अधिक प्रयत्न करता उतना ही गुरु उससे कहता, "तुमने मुझे निराश कर दिया। "

फिर एक दिन ऐसा आया कि हेरीगल ने सोचा, "यह असंभव है, यह नहीं हो सकता। तीन साल रोज मेहनत करना काफी समय होता है। " इतनी मेहनत करने के बाद उसे बड़ी हताशा हुई। तो उसने गुरु से कहा, " अब मुझे जाने दें। मैं सोचता हूं यह मेरे लिए नहीं है। यह मुझे असंभव जान पड़ता है। और जो भी मुझसे हो सकता था वह मैंने करके देख लिया, लेकिन कुछ भी नहीं हुआ। "

गुरु ने कहा, "क्योंकि जो भी तुम कर सकते थे, तुम करते थे, और तुम जीवन—ऊर्जा को कुछ भी नहीं करने दे रहे थे। तुम ही बाधा हो। "

हेरीगल ने वहा से जाने का निश्चय कर लिया। जिस दिन वह जा रहा था, वह गुरु से विदा लेने आया। गुरु एक दूसरे शिष्य को सिखा रहा था। हेरीगल वहा सिर्फ बैठा था। पहली बार वह तटस्थ भाव से बैठा था, क्योंकि अब वह जा रहा था और उसने सारी कोशिश छोड दी थी, और उसमें कुछ भी अर्थ नहीं था। इसलिए वह चुपचाप बैठा था और वह गुरु को देख रहा था तटस्थ भाव से, बिना किसी चाह के, आकांक्षा के, उपलब्धि के। उसने गुरु को सिर्फ देखा, और पहली बार इन तीन वर्षों में उसे लगा कि गुरु तीर नहीं चला रहा है, जीवन—ऊर्जा तीर चला रही है। तीर अहंकार के द्वारा नहीं बल्कि किसी और ही स्रोत से छोड़ा गया। वह गहरी ऊर्जा से आया था।

वह तो सम्मोहित—सा खड़ा रह गया। वह गुरु के निकट आया, धनुष को उसने उसके हाथ से ले लिया, और तीर चला दिया... और गुरु ने कहा, ”ठीक। तुमने आज कर दिया! ” और हेरीगल लिखता है, ”अब मैंने दोनों के बीच अंतर जाना कि जब जीवन—ऊर्जा तीर छोड़ती है और जब तुम तीर छोड़ते हो।”

यक्ष ने पूछा ”तुम किस ऊर्जा के स्वामी हो जो कि इतने प्रसिद्ध हो?”

वायु ने अपनी शक्ति दिखानी चाही।

वायु ने पूरी शक्ति से उसे उड़ाने की कोशिश की लेकिन वह उसे नहीं उड़ा सका अत: वह वहां से चला गया और देवताओं के पास जाकर बोला ”मैं पता नहीं लगा सका कि यह यक्ष कौन है।”

और बात इतनी स्पष्ट थी। पता लगाने की कोई जरूरत नहीं थी। सारी बात ही इतनी साफ थी। वायु ने उस तिनके को उड़ाने की कोशिश की और वह उसे नहीं उड़ा सका। और अग्नि ने उस तिनके को जलाने की कोशिश की और वह सारी पृथ्वी को जला सकता था, परंतु वह उस तिनके को नहीं जला सका। सारी बात स्पष्ट थी कि वह यक्ष ही सारी मूल—ऊर्जा का स्रोत था।

लेकिन वे इतनी—सी बात नहीं जान सके कि ऊर्जा उनसे निकाल ली गई थी, और अब वे सिर्फ खाली वाहन थे। अग्नि एक तिनके को नहीं जला सका, वायु एक तिनके को नहीं उड़ा सका। बात इतनी स्पष्ट थी कि ऊर्जा का मूल स्रोत हटा लिया गया है। लेकिन वे इस बात को पहचान नहीं सके।

अहंकार वस्तुत: इतना अंधा होता है कि वह अपनी नपुंसकता को नहीं पहचान पाता। जबकि स्रोत हट गया है तब भी वह उसी पुरानी भाषा में सोचता रहता है। जबकि सभी कुछ पराजित हो चुका है, और सभी कुछ असफल हो गया है, तब भी वह पुरानी भाषा में ही सोचता रहता है।

तब देवताओं ने इंद्र से कहा।

भारतीय पुराण—कथाओं में इंद्र को देवताओं का मुख्य देवता कहा गया है। उन्होंने इंद्र से कहा:

”ओ इंद्र! कृपया पता लगाओ कि यह यक्ष कौन है? ”इंद्र ने कहा ”अच्छा! ” और वह शीघ्रता से यक्ष के पास गया लेकिन यक्ष उसकी दृष्टि से ओझल हो गया

जब इंद्र यक्ष के निकट पहुंचा तो यक्ष उसकी दृष्टि से ओझल हो गया।

इंद्र शब्द बहुत अर्थपूर्ण है। यह शब्द उसी धातु से आता हैं जिससे ‘इंद्रिय’ शब्द आता है। इंद्रियों का अर्थ होता है ‘सेंसेस’। और इंद्र इंद्रियों का मुखिया है। इंद्रियों का मुखिया कौन है? मन। सारी इंद्रियां.. तुम्हारी आंखें, तुम्हारे कान, तुम्हारे हाथ... ये सब मन के अनुचर हैं। वस्तुत: मन ही शरीर में इंद्र है, इसलिए मन मुख्य देवता है।

आंखें अग्नि से संबंधित हैं। और तुम्हारी सारी इंद्रियां किसी न किसी देवता से जुड़ी हैं, लेकिन तुम्हारा मन इंद्र से जुड़ा है। इंद्र का अर्थ होता है, इंद्रियों का मुखिया। अत: जब सारी इंद्रियां, सारे देवता असफल हो गये, तो उन्होंने मुखिया से, सरदार से कहा—मन से, मस्तिष्क से कहा। लेकिन तब क्या हुआ? यह बड़ा सुंदर है, यह

कहानी बड़ी अनूठी है। जब इंद्रियां उस परम सत्ता के पास, उस ब्रह्म के पास पहुंचीं तो वह वहां मौजूद था। लेकिन जब मन पहुंचा तो वह विलीन हो गया।

मन से तुम उसे नहीं देख सकते, मन के द्वारा उस तक नहीं पहुंचा जा सकता। जब मन जानने की कोशिश करता है कि यह परम स्रोत क्या है तो वह ओझल हो जाता है। वह मन को दिखाई नहीं देने वाला है। बुद्धि के लिए वह ओझल है। इसीलिए विज्ञान को कुछ भी दिव्य तत्व पता नहीं चल पाता है। विज्ञान उस दिव्य को कभी नहीं खोज सकता, क्योंकि विज्ञान इंद्र है.. मन, बुद्धि, तर्क।

वह दिव्यात्मा इंद्र की दृष्टि से ओझल हो गई। यदि तुम अपने मन को बीच में ले आये तो फिर कुछ भी खोजने से नहीं मिलेगा! वह ओझल हो जाता है! एक बात और समझ: लेनी है : तुम परमात्मा का अनुभव शरीर से कर सकते हो, तुम परमात्मा का अनुभव स्वाद से कर सकते हो, तुम उसे गंध से जान सकते हो, लेकिन तुम उसे बुद्धि से नहीं जान सकते, तर्क से नहीं जान सकते। इंद्रियों से भी उस तक पहुंचा जा सकता है। यदि तुम बहुत संवेदनशील हो जाओ तो तुम उसे छू सकते हो। लेकिन बुद्धि से तुम कदापि उस तक नहीं पहुंच सकते। बुद्धि उसके लिए जरा भी द्वार नहीं है।

यदि तुम्हारे पास एक संवेदनशील शरीर है तो तुम परमात्मा में जी सकते हो, तुम उसमें श्वास ले सकते हो। लेकिन चाहे तुम्हारे पास कितनी ही तीव्र बुद्धि क्यों न हो, तुम उसे छू नहीं सकते, तुम उसके निकट नहीं आ सकते। यदि तुम बुद्धि को बीच में ले आये तो फिर वह वहा नहीं होगा। वह सिर्फ ओझल हो जाता है।

और उसी स्थान पर इंद्र ने एक बहुशोभामान स्त्री हिमाचल कुमारी उमा को देखा और उससे पूछा "यह यक्ष कौन था? "

मन के द्वारा, यदि तुम मन को बीच में लाये, यदि तुम तर्क को बीच में लाये तो वह परम ओझल हो जाता है। और फिर क्या होता है? यह कहानी बहुत—से संकेत देती है, बहुत से आयाम बतलाती है। जब परम ओझल हो जाता है, तब सिर्फ काम ही बचता है सभी कुछ का स्रोत। तब तुम्हें लगता है कि काम ही, सेक्स ही, सब ऊर्जा का स्रोत है। जब तुम्हें परमात्मा स्रोत नहीं मालूम पड़ता है तो फिर काम ही सब ऊर्जा का स्रोत मालूम होने लगता है।

विज्ञान ने सिद्ध किया कि परमात्मा नहीं है, और फिर आया सिग्मंड फ्रायड, जिसने कहा कि सिर्फ स्त्री ही है। अथवा तुम कह सकते हो कि सिर्फ पुरुष है, यदि तुम स्त्री हो तो। विज्ञान ने भूमि साफ कर दी : परमात्मा अदृश्य हो गया। जब भी परमात्मा अदृश्य हो जाता है तो केवल काम ही परमात्मा रह जाता है। और तब तुम्हें लगता है कि सभी कुछ काम के कारण है; फ्रायड भी ऐसा ही कहता है। यदि फ्रायड को इस कहानी का पता होता, तो उसे बात समझ में आ सकती थी। यह कहानी एक आलोचना है—एक गहरी आलोचना है उसकी सारी फिलासफी की, उसके सारे सिद्धात की। जब कोई परमात्मा नहीं होता, तो काम ही परमात्मा हो जाता है।

एक अपूर्व सुंदरी इंद्र के समक्ष प्रकट होती है और उसने उस स्त्री से पूछा, "उमा, यह कौन था जो कि ओझल हो गया है? "

अभी मनोवैज्ञानिक काम से पूछ रहे हैं : "जीवन का स्रोत क्या है? "वे काम ऊर्जा के भीतर प्रवेश कर रहे हैं और उस मौलिक स्रोत के बारे में, काम के द्वारा जानने की कोशिश कर रहे हैं, काम के द्वार से जानने का प्रयत्न कर रहे हैं।

बुद्धि के साथ तुम सेक्स से ज्यादा गहरे नहीं जा सकते। काम निश्चित ही उस विराट ऊर्जा का ही एक हिस्सा है, लेकिन मन के द्वारा तुम सिर्फ उस हिस्से से परिचित हो सकोगे, न कि उस मौलिक स्त्रोत से। और मन काम में उलझ जाता है। सारा पश्चिमी चित्त इस समय सेक्स में उलझा है। यह एक भूल— भुलैया हो गई है।

कोई भी उसमें से बाहर नहीं निकल सकता है। कोई चाहे कितना ही चले, वापस लौट—लौटकर वहीं आ जाता है।

प्रत्येक बात काम मैं सिकुड़ गई है। फ्रायड कहता है, "यदि एक मां अपने बच्चे को प्यार करती है तो वह भी काम है। यदि एक पिता अपने बच्चे को प्रेम करता है तो वह भी काम है। यदि पिता अपनी बेटी को प्यार करता है तो वह विपरीत—लिंगी है और यदि पिता अपने बेटे को अधिक प्यार करे तो —वह सम—लिंगी है। "

अभी थोड़े दिन पहले मैं एक किताब पढ़ रहा था। यह किताब एक मनोविश्लेषक के द्वारा लिखी गई है और वह कहता है, "यह संभव है कि जीसस समलैंगिक थे। क्योंकि वे सदा अपने बारह शिष्यों वे? साथ, लड़कों के साथ घूमते थे। " हमेशा लड़कों के साथ घूमने का अर्थ होता है समलैंगिकता! कहीं मैंने एक अन्य मनोविश्लेषक को पढ़ा है जो लिखता है कि बौद्ध भिक्षु जरूर समलैंगिक होने चाहिए क्योंकि —को सदा पुरुषों के संग—साथ रह रहे थे।

यदि मन के द्वारा जानने का प्रयत्न किया जाये तो प्रत्येक बात काम के तल पर सिमट जाती है।

इंद्र के सामने, मन के समक्ष, वह परम अदृश्य हो गया।

और उसी स्थान पर उसने एक बहुशोभामान स्त्री हिमाचल कुमारी उमा को देखा और उससे पूछा "यह यक्ष कौन था?"

यही बात हम भी पूछ रहे हैं—काम से पूछ रहे हैं : यह जीवन क्या. है?

तेरहवां प्रवचन

मनुष्य का अतिक्रमण हो सकता है

पहला प्रश्न :

विषाद अंतर्द्वंद्व, खंडित व्यक्तितित्व, विक्षिप्तता आदि मनुष्य के अहंकार से उठने वाली समस्याओं को हल करनेहेतु पश्चिम में फ्रायड, एडगर, जुंग, विलहेम रैख आदि के द्वारा मनोविश्लेषण काफी विकसित किया गया है। अहंकार में जड़े जमाये इन मानवीय समस्याओं को हल करनेमे ध्यान—विधियों की तुलना में मनोविश्लेषण की पद्धति की देन, सीमाएं तथा उनके अधूरेपन पर कृप्या प्रकाश डालें।

पहली बात जो समझ लेनी है वह यह है कि कोई भी सुमस्या जो अहंकार से जड़ जमाए बैठी है, तब तक हल नहीं की जा सकती जब तक कि अहंकार का अतिक्रमण न किया जाये। तुम समस्या को स्थगित कर सकते हो।

तुम थोड़ी सामान्यता ला सकते हो। तुम थोड़ा सामान्य सुथिति उसके बारे में पैदा कर सकते हो। तुम मनोविश्लेषण से आदमी को समाज में कुश्लता से काम करने के लिए तैयार कर सकते हो, किंतु मनोविश्लेषण समस्या को कभी हल नहीं कर सकता। और जब भी कभी समस्या को स्थगित किया जाता है। आगे सरका दिया जाता है तो वह दूसरी समस्या पैदा करता है। इससे सिर्फ उसका स्थान बदल जाता है। लेकिन समस्या वहीं के वहीं रहती है। देर—अबेर एक नया विस्फोट होगा।और जब पुरानी समस्या का नया विस्फोट होगा तो उसको स्थगित करना या आगे सरकाना और कठिन होगा।

मनोविश्लेषण एक अस्थायी राहत है क्योंकि मनोविश्लेषण ऐसी कोई बात नहीं सोच सुकता जिससे कि अहंकार का अतिक्रमण होता हो। कोई समस्या तभी हल की जा सकती है, जब कि तुम उसके पार चले गये हो। यदि तुम उसके पार नहीं गभे हो तो तुम ही समस्या' हो। तब कौन उसको हल करेगा? तब कोई कैसे उसका समाधान करेगा? तब तुम्हीं समस्या हो; समस्या तुमसे पृथक चीज नहीं है।

योग, तंत्र तथा सारी ध्यान की विधियां, वे एक दूसरी ही भूमि पर आधारित हैं। वे कहती हैं कि समस्याएं हैं, तुम्हारे चारों ओर समस्याएं हैं, लेकिन तुम समस्या नहीं हो। तुम उनके पार जा सकते हो। तुम उनको एक द्रष्टा की भांति देख सकते हो जो कि पर्वत — शिखर से घाटी में देख रहा हो। यह सा शी समस्याओं को हल कर सकता है। वस्तुत: समस्या को साक्षी भाव से देखने से ही आधी समस्या हल हो जाती है, क्योंकि जब तुम किसी समस्या को साक्षीभाव से देखते हो, जब तुम उसे तटस्थता से देखते हो, जब तुम उसमें संलग्न नहीं होते, तो तुम अलग खड़े हो सकते हो और उसे देख सकते हो। इस तरह साक्षीभाव से देखने से ही तुम्हें एक स्पष्टता का बोध होता है, जिससे तुम्हें सूत्र मिल जाता है, गुप्त कुंजी मिल जाती है। और सारी समस्याएं हैं ही इसलिए क्योंकि उनको समझने के लिए तुम्हारे भीतर कोई सुस्पष्ट बोध नहीं है। तुम्हें समाधानों की आवश्यकता नहीं है, तुम्हें सुस्पष्टता की जरूरत है।

कोई भी समस्या हो, उसकी ठीक समझ से वह हल हो जाती है, क्योंकि समस्या खड़ी ही नासमझी भरे मन के कारण होती है। तुम समस्या ही इसलिए निर्मित करते हो क्योंकि तुम समझ नहीं पा रहे हो। इसलिए आधारभूत बात समस्या को हल करने की नहीं है, आधारभूत बात और अधिक समझ पैदा करने की है। और यदि और अधिक समझ, और अधिक स्पष्टता हो, और यदि समस्या को तटस्थता से देखा जाये, इस तरह कि जैसे

वह तुम्हारी नहीं है, जैसे कि वह किसी और की है; यदि तुम अपने और समस्या के बीच दूरी पैदा कर सको—केवल तभी वह हल हो सकती है।

ध्यान दूरी पैदा करता है, वह तुम्हें एक परिप्रेक्ष्य देता है। और तुम समस्या के पार चले जाते हो। चेतना का तल बदल जाता है।

मनोविश्लेषण से तुम उसी तल पर रहते हो। वह तल कभी नहीं बदलता, तुम उसी तल पर ठोक—पीट कर बिठा दिये जाते हो। तुम्हारी सजगता, तुम्हारी चेतना, तुम्हारी साक्षी होने की सामर्थ्य नहीं बदलती। जैसे—जैसे तुम ध्यान में गति करते हो, तुम ऊपर और ऊपर उठते जाते हो। तुम नीचे अपनी समस्याओं को देख सकते हो। वे अब नीचे घाटी में हैं, और तुम पहाड़ी पर आ गये हो। इस परिप्रेक्ष्य से, इस ऊंचाई से, सारी समस्याएं बहुत ही भिन्न दिखती हैं। और जितनी अधिक दूरी बढ़ती है, उतना ही तुम उन्हें इस भांति देखने में सक्षम होते हो, जैसे कि वे तुम्हारी नहीं हैं।

एक बात स्मरण रहे. यदि समस्या तुम्हारी नहीं है, तो तुम उसे हल करने की सदा अच्छी सलाह दे सकते हो। यदि वह किसी दूसरे की है, यदि कोई और दिक्कत में पड़ा है, तो तुम सदा विद्वान होते हो; तुम बड़ी अच्छी सलाह दे सकते हो। लेकिन यदि समस्या तुम्हारी अपनी है तो तुम्हें समझ में नहीं आता कि क्या करें। क्या हो गया? समस्या वही की वही है, लेकिन अब तुम उससे जुड़े हो। जब वह किसी और की समस्या थी तो एक दूरी थी और तुम बिना किसी पक्षपात के इसे देख सकते थे। हर आदमी दूसरे के लिए बड़ा अच्छा सलाहकार होता है, लेकिन जब खुद पर पड़ती है तो तुम्हारी सारी समझदारी खो जाती है, क्योंकि दूरी खो गई।

कोई मर गया है और सारा परिवार दुख में डूबा है; तुम अच्छी सलाह दे सकते हो। तुम कह सकते हो कि आत्मा तो अमर है; तुम कह सकते हो कि कुछ भी मरता नहीं है, कि जीवन शाश्वत है। लेकिन कोई मर गया है जिसे तुम प्रेम करते थे, जो कि तुम्हारे लिए कुछ था, जो कि निकट का था, घनिष्ठ था; अब तुम छाती पीट रहे हो, रो रहे हो, चिल्ला रहे हो। अब तुम वही सलाह स्वयं को नहीं दे सकते—कि जीवन अमर है, और कभी कोई मरता नहीं है। अब यह बात बड़ी बेहूदी लगती है।

इसलिए स्मरण रहे, कि दूसरों को सलाह देते समय तुम छ्र भी लग सकते हो। जब तुम किसी को कहो कि जीवन अमर है जबकि उसका प्यार मर गया है, तो वह तुम्हें मूढ़ ही समझेगा। तुम बड़ी स्थार्थ बकवास कर रहे हो। उसे पता है कि अपने प्यारे को खो देने पर कैसा लगता है। कोई तत्व—ज्ञान की बात उसे सांत्वना नहीं दे सकेती। और वह भी जानता है कि तुम उसे यह बात क्यों कह रहे हो, क्योंकि समस्या तुम्हारी नहीं है। तुम बुद्धिमान बन सकते हो, वह नहीं बन सकता।

ध्यान के द्वारा तुम अपने साधारण स्वरूप से ऊपर उठ जाते हो। तुम्हारे भीतर एक नया केंद्र खुल जाता है, जहां से तुम चीजों को एक नये ही ढंग से देखने लगते हो। एक दूरी निर्मित हो जाती है। समस्याएं तो हैं, लेकिन अब वे बहुत—बहुत दूर हैं—जैसे कि किसी और पर घट रही हों। अब तुम स्वयं को अच्छी सलाह दे सकते हो, लेकिन उसके देने की भी जरूरत नहीं है। दूरी से ही तुम बुद्धिमान हो जाते हो। इसलिए ध्यान की सारी विधि समस्याओं और तुम्हारे बीच दूरी पैदा करने की है। अभी जैसे तुम हो, तुम अपनी समस्याओं में इतने उलझे हो कि तुम सोच—विचार नहीं कर सकते, तुम मनन नहीं कर सकते, तुम उनके पार देख नहीं सकते, तुम उनके साक्षी नहीं हो सकते।

मनोविश्लेषण सिर्फ फिर से तालमेल बिठाने में मदद करता है। यह कोई रूपांतरण नहीं है—पहली बात। और दूसरी बात : मनोविश्लेषण में तुम परतंत्र हो जाते हो। तुम्हें किसी कुशल मनोविश्लेषक की आवश्यकता होती है और वही सब कुछ करेगा। उसमें तीन वर्ष लगेंगे, चार वर्ष लगेंगे, या पांच वर्ष भी लग सकते हैं यदि समस्या

बहुत गहरी है, और तुम सिर्फ निर्भर होते जाओगे; तुम विकसित नहीं हो रहे। बल्कि उल्टे तुम और और निर्भर होते जा रहे हो। तुम्हें हर रोज या सप्ताह में दो बार या तीन बार मनोवश्लेषक की आवश्यकता पड़ेगी। और एक बार भी तुम उसको चूक गये तो तुम्हें लगेगा कि तुम गये। यदि तुम मनोविश्लेषण बंद कर दो तो तुम्हें लगेगा कि तुम गये। यह नशे जैसा हो जाता है, और तुम उसके आदी हो जाते हो।

तुम किसी पर निर्भर होने लगते हो, जो कि तुम्हें लगता है कि कुशल जानकार है। तुम उसे अपनी समस्या कह सकते हो, और वह उसे हल करेगा। वह उस पर चर्चा करेगा, और वह अचेतन में पड़ी जड़ों को बाहर ले लायेगा। लेकिन यह सब 'वह' करेगा। समस्या को हल करने का यह सारा प्रयत्न किसी और के द्वारा किया जायेगा!

स्मरण रहे, दूसरे के द्वारा हल की गई समस्या तुम्हें प्रौढता प्रदान नहीं कर सकती। समस्या को हल करने में दूसरे को भले ही कुछ प्रौढ़ता मिलती हो, लेकिन उससे तुम्हारी प्रौढ़ता नहीं बढ़ती। तुम शायद पहले से भी ज्यादा अप्रौढ़ हो जाओ। फिर जब भी कोई समस्या खड़ी होगी तो तुम्हें किसी दूसरे की सलाह कि आवश्यकता पड़ेगी, किसी कुशल आदमी की सलाह लेनी पड़ेगी। और मुझे नहीं लगता कि मनोविश्लेषक भी तुम्हारी समस्याओं को हल करने से कुछ प्रौढ़ होते हों, क्योंकि वे भी अपना मनोविश्लेषण कराने किसी दूसरे मनोविश्लेषक के पास जाते हैं। उनकी अपनी समस्याएं हैं। वे तुम्हारी समस्याएं हल करते हैं, लेकिन वे अपनी समस्याएं हल नहीं कर पाते—फिर सवाल वही दूरी का है।

विलहेम रैख स्वयं बार—बार अपना मनोविश्लेषण कराने सिगमंड फ्रायड के पास जाता था। फ्रायड ने उसका मनोविश्लेषण करने से इंकार कर दिया, और सारे जीवन उसे इस बात की पीड़ा रही कि फ्रायड ने उस मना कर दिया। और फ्रायड के पीछे चलने वाले लोगों ने, फ्रायड के कट्टर शिष्यों ने उसे कभी भी एक कुशल मनोविश्लेषक नहीं माना, क्योंकि उसका स्वयं का मनोविश्लेषण कभी नहीं हुआ था।

प्रत्येक मनोविश्लेषक किसी न किसी और के पास अपनी समस्याओं को लेकर जाता है। यह चिकित्सा व्यवसाय की तरह ही है। यदि डाक्टर खुद बीमार है तो वह स्वयं अपना निदान नहीं कर सकता। वह अपने इतने निकट होता है कि वह किसी और के पास जाता है। यदि तुम एक सर्जन हो तो तुम अपने शरीर का आपरेशन नहीं कर सकते हो—या कि कर सकते हो? दूरी नहीं है। अपने ही शरीर पर शल्य—चिकित्सा करना कठिन है, लेकिन यह तब भी कठिन है, यदि तुम्हारी पत्नी बहुत बीमार है और कोई गंभीर आपरेशन करना पड़े—तुम आपरेशन नहीं कर सकते क्योंकि तुम्हारा हाथ कंपेगा। निकटता इतनी है कि तुम डर जाओगे। तुम तब अच्छे सर्जन नहीं हो सकते। तुम्हें सलाह लेनी पड़ेगी। तुम्हें किसी और सर्जन को तुम्हारी पत्नी का आपरेशन करने के लिए बुलाना पड़ेगा।

क्या हो रहा है? तुमने बहुत—से आपरेशन किये हैं। अभी क्या हो रहा है? तुम अपने ही बच्चे अथवा पत्नी का आपरेशन नहीं कर सकते, क्योंकि दूरी इतनी कम है। जैसे कि दूरी है ही नहीं। बिना दूरी के तुम तटस्थ नहीं रह सकते। इसलिए मनोविश्लेषक दूसरों की सहायता कर सकता है, लेकिन जब वह स्वयं तकलीफ में पड़ा हो तो उसे किसी और के पास जाना पड़ेगा, किसी अन्य मनोविश्लेषक से अपना मनोविश्लेषण. कराना पड़ेगा। और यह बड़ा विचित्र है कि विलहेम रैख जैसा व्यक्ति भी अंत में विक्षिप्त हो जाता है।

हम किसी बुद्ध के पागल हो जाने की कल्पना भी नहीं कर सकते—क्या तुम ऐसी कल्पना कर सकते हो? और यदि एक बुद्ध भी विक्षिप्त हो सकते हैं, तो फिर इस दुख से मुक्त होने का कोई रास्ता नहीं है। यह बात ही कल्पना के बाहर है कि बुद्ध विक्षिप्त हो जायें।

सिगमंड फ्रायड के जीवन को देखो। वह मनोविश्लेषण का जन्मदाता तथा उसका प्रवर्तक है। वह समस्याओं के बारे में बहुत गहरी बातें कहता रहा। लेकिन जहां तक उसका अपना सवाल है एक भी समस्या हल न हुई। एक भी समस्या हल न हो सकी! भय उसके लिए भी उतनी ही समस्या था, जितना किसी और के लिए। वह इतना भयभीत और नर्वस था। क्रोध उसके लिए उतना ही समस्या था जितना किसी अन्य के लिए। वह इतना ज्यादा क्रोध में आ जाता था कि वह क्रोध में बेहोश होकर गिर पड़ता था। और यही आदमी मनुष्य के मन के बारे में इतना कुछ जानता था, लेकिन यह ज्ञान स्वयं उसके लिए किसी काम का नहीं था।

यूं। भी जब गहरी चिंता में होता तो बेहोश हो जाता था, उसे दौरा पड़ जाता था।

बात क्या है? दूरी समस्या है। वे समस्याओं के बारे में चिंतन करते थे, लेकिन वे चेतना के तल पर विकसित नहीं हो रहे थे। वे बुद्धिगत विचार करते थे, गहराई से, तार्किक ढंग से और फिर कोई निष्पत्ति निकालते थे। कभी—कभी वे निष्पत्तिया सही भी होती थीं, लेकिन असली सवाल यह नहीं है। वे अपनी चेतना में विकसित नहीं हुए थे, वे किसी भी भांति अतिमानव नहीं हो पाये थे। और जब तक तुम मानवता का अतिक्रमण नहीं करते, समस्याएं हल नहीं हो सकती। उन्हें सिर्फ थोड़ा—बहुत व्यवस्थित किया जा सकता है।

फ्रायड ने अपने अंतिम दिनों में कहा है, " आदमी असाध्य है। ज्यादा से ज्यादा हम इतनी ही उम्मीद कर सकते हैं कि वह एक समायोजित व्यक्ति की तरह जी ले, इससे ज्यादा की कोई आशा नहीं है। बस, अधिक से अधिक इतना उम्मीद की जा सकती है। आदमी सुखी नहीं हो सकता, " फ्रायड कहता है, "ज्यादा से ज्यादा हम इतना इंतजाम कर सकते हैं कि वह बहुत अधिक दुखी न हो। बस इतना ही। लेकिन वह सुखी नहीं हो सकता—वह असाध्य है। "अब ऐसे दृष्टिकोण से किस तरह का समाधान आ सकता है? और मनुष्यों पर चालीस साल के प्रयोग के अनुभव के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आदमी की कुछ सहायता नहीं की जा सकती है, कि मनुष्य प्रकृति से ही, प्राकृतिक तौर से ही दुखी है, कि वह सदा दुख में ही रहेगा।

लेकिन योग कहता है कि मनुष्य का अतिक्रमण किया जा सकता है। ऐसा नहीं है कि आदमी असाध्य है : यह सिर्फ उसकी न्यूनतम चेतना है जो कि समस्या पैदा करती है। चेतना में विकसित होओ, चेतना को बढ़ाओ और समस्याएं कम हो जाती हैं। वे उसी अनुपात में होती हैं. यदि चेतना अपने न्यूनतम पर है, तो समस्याएं अपने अधिकतम पर हैं; यदि चेतना अपने अधिकतम पर है तो समस्याएं न्यूनतम होंगी। समग्र चेतना के साथ समस्याएं बिलकुल ही विलीन हो जाती हैं—वैसे ही जैसे सुबह सुरज निकलता है और ओस की बूंदें विलीन हो जाती हैं। समग्ररूपेण चेतना हो तो समस्याएं होती ही नहीं क्योंकि समग्ररूपेण चैतन्य में समस्याएं पैदा ही नहीं हो सकतीं। ज्यादा से ज्यादा मनोविश्लेषण एक उपचार हो सकता है, लेकिन समस्याएं तो आती रहेंगी, वह कोई निवारक नहीं है।

योग, ध्यान, बड़े गहरे जाते हैं। वे तुम्हें परिवर्तित करेंगे ताकि समस्याएं खड़ी ही नहीं हों। मनोविश्लेषण का संबंध समस्याओं से है, ध्यान का सीधा संबंध तुम से है। उसका संबंध समस्याओं से बिलकुल नहीं है। इसीलिए पूर्वी मनोविज्ञान के मनीषी—बुद्ध, महावीर या कृष्ण—समस्याओं के बारे में बात नहीं करते। इसी कारण, पश्चिमी मनोविशान सोचता है कि मनोविज्ञान कुछ नई घटना है। ऐसा नहीं है।

यह तो सिर्फ इस सदी में, इस सदी के प्रारंभ में, फ्रायड वैज्ञानिक रूप से यह सिद्ध कर सका कि अचेतन भी कोई चीज है। बुद्ध ने उसकी बात पच्चीस सौ वर्ष पहले की थी। लेकिन बुद्ध ने किसी भी समस्या को नहीं लिया, क्योंकि बुद्ध कहते हैं कि समस्याएं तो अनंत हैं। यदि तुम समस्याओं को ही हल करते रहे तो तुम उनसे कभी भी निपट नहीं पाओगे—आदमी से ही निपटो। समस्याओं को भूलो। व्यक्ति से ही निपटो और विकसित

होने में उसकी मदद करो। जैसे—जैसे आदमी विकसित होता है, वह जितना अधिक चेतन होता जाता है, समस्याएं उतनी ही गिरती चली जाती हैं। तुम्हें उनकी चिंता करने की जरूरत नहीं है।

उदाहरण के लिए, एक आदमी खंडित है, विभाजित है। मनोविश्लेषक अब इस खंड—खंड व्यक्ति के साथ काम करेगा कि कैसे इसे समाज में काम करने योग्य बना दे, कि यह आदमी समाज में शाति से रहने लायक हो जाये। मनोविश्लेषण इसकी समस्या को, खंडित व्यक्तित्व को, ठीक करने का प्रयत्न करेगा। यदि यही आदमी बुद्ध के पास जाये तो बुद्ध इसके खंडित व्यक्तित्व के बारे में बात ही नहीं करेंगे। वे कहेंगे, "ध्यान करो! ताकि तुम्हारा भीतरी स्वरूप अखंड हो जाये। जब भीतरी स्वरूप अखंड हो जायेगा, तो खंडित रूप बाहर परिधि पर से भी विदा हो जायेगा। " व्यक्ति खंड—खंड में बंटा है, लेकिन यह कारण नहीं है, यह सिर्फ परिणाम है। क्योंकि कहीं भीतर गहरे में द्वैत है, और उसी द्वैत ने बाहरी परिधि पर भी दरार पैदा कर दी है।

तुम दरार को सीमेंट लगाते जाओ, लेकिन भीतर का द्वैत बना रहेगा। तब वह दरार कहीं दूसरी जगह प्रकट होगी। फिर तुम उस दरार को भरना; तब फिर कहीं और दरार नजर आयेगी। अत: तुम यदि एक मनोवैज्ञानिक समस्या को ठीक करते हो, तो दूसरी समस्या तुरंत खड़ी हो जाती है। और फिर तुम उसे ठीक करते हो तो तीसरी खड़ी हो जाती है।

जहां तक विशेषज्ञों का सवाल है, उनके लिए यह बात फायदे की है, क्योंकि वे इसी पर जीते हैं। लेकिन यह कोई सहायता नहीं है। पश्चिम को मनोविश्लेषण से आगे जाना पड़ेगा। और जब तक पश्चिम चेतना को विकसित करने की विधियों तक नहीं आता, कि कैसे भीतरी चेतना को विकसित करें और टसको और बढ़ाए तब तक मनोविश्लेषण अधिक सहायता नहीं कर सकता है।

अब यह हो ही रहा है : मनोविश्लेषण पुराना हो ही चुका है। पश्चिम के गहरे चिंतक सोचने लगे हैं कि कैसे चेतना को विकसित करें, न कि कैसे समस्याओं को हल करें। वे सोचने लगे हैं कि कैसे आदमी को और अधिक होशपूर्ण तथा सजग करें। यह बात आ गई है; इसके बीज फूटने लगे हैं। यह बात खयाल में रखने जैसी है।

मुझे तुम्हारी समस्याओं से कुछ लेना—देना नहीं है। वे लाखों हैं और उन्हें हल करना व्यर्थ है—क्योंकि तुम्हीं तो उनके बनाने वाले हो, और तुम ही अछूते छूट जाते हो। मैं एक समस्या को हल करूं, तुम दस खड़ी कर लोगे। तुम्हें हराया नहीं जा सकता, क्योंकि उनका बनाने वाला तो पीछे छुपा है। और मैं उन्हें हल करता ही जाऊं... मैं अपनी शक्ति ही नष्ट कर रहा हूं।

मैं तुम्हारी समस्याओं को अलग ही हटा देता हूं मैं सिर्फ तुम्हारे भीतर झांकता हूं। वह जो बनाने वाला है, उसे ही बदलना है। और एक बार वह सर्जक बदल जाये तो बाहर परिधि पर समस्याएं गिर जाती हैं। क्योंकि अब कोई उनके साथ सहयोग करने वाला नहीं है, कोई उन्हें पैदा करने वाला नहीं है, कोई उनका आनंद लेने वाला नहीं है। तुम्हें यह शब्द विचित्र मालूम पड़ेगा, लेकिन यह बात ठीक से स्मरण रहे कि तुम अपनी समस्याओं का आनंद लेते हो—इसीलिए तुम उन्हें निर्मित करते हो। तुम कई कारणों से उनका आनंद लेते हो।

सारी मनुष्यता रुग्ण है, क्योंकि कुछ बुनियादी कारण हैं, जिन्हें हम देखने से चूक जाते हैं। जब भी कोई बच्चा बीमार होता है तो उसे ध्यान मिलता है, जब भी वह स्वस्थ होता है तो उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देता। जब भी बच्चा बीमार होता है तो माता—पिता उसे प्रेम करते हैं—कम से कम दिखावा तो करते ही हैं। लेकिन जब वह ठीक—ठाक होता है तो कोई उसकी फिकर नहीं करता। कोई उसका प्रेम से चुंबन नहीं लेता, कोई उसे प्रेम से छाती से नहीं लगाता। बच्चा तरकीब सीख जाता है। और प्रेम बुनियादी आवश्यकता है, और ध्यान बुनियादी भोजन है। बच्चे के लिए भोजन से भी ज्यादा, दूध से भी ज्यादा, ध्यान जरूरी है। बिना ध्यान के उसके भीतर कुछ मर जायेगा।

तुमने इंग्लैंड की डिलाबार प्रयोगशाला में किए जाने वाले प्रयोगों के बारे में सुना होगा, जहां वे पौधों पर प्रयोग कर रहे हैं। पौधे भी तेजी से बढ़ते हैं यदि तुम उन पर ध्यान दों—केवल उनकी ओर प्रेम से देखने भर से ही। दो पौधों को प्रयोग के लिए काम में लाया जाता है। एक पौधे को ध्यान दो, मुस्कुराओ, प्रेम से उसके निकट जाओ, और दूसरे पौधे को कुछ भी ध्यान मत दो। बाकी सब चीजें जो जरूरी हैं दे दों—पानी, धूप, खाद। दोनों को बाकी सब चीजें बराबर—बराबर दो, लेकिन एक को खूब ध्यान दो और एक को बिलकुल ध्यान मत दो, जब भी तुम पास से गुजरो तो उसकी ओर देखो ही नहीं। और तुम देखोगे कि पहला पौधा जल्दी बढ़ता है, इसमें ज्यादा बड़े—बड़े फूल आते हैं। दूसरा देर से बढ़ता है और उसमें छोटे फूल आते हैं।

ध्यान ऊर्जा है। जब कोई तुम्हारी ओर प्यार से देखता होता है तो वह तुम्हें भोजन दे रहा है—एक बहुत ही सूक्ष्म भोजन। तो प्रत्येक बच्चे को ध्यान की आवश्यकता होती है, और तुम उसकी ओर ध्यान तभी देते हो जब वह रुग्ण होता है, जब कोई समस्या होती है। इसलिए यदि बच्चे को ध्यान की जरूरत है तो वह समस्याएं खड़ी करेगा, वह समस्याओं का निर्माता हो जायेगा।

प्रेम एक बुनियादी आवश्यकता है। तुम्हारा शरीर भोजन से बढ़ता है, तुम्हारी आत्मा प्रेम से बढ़ती है। लेकिन तुम्हें प्रेम तभी मिलता है जब तुम रुग्ण होते हो, जब तुम्हारी कोई समस्या होती है; वरना कोई तुम्हें प्रेम देने वाला नहीं है।

बच्चा तुम्हारे ही तरीके सीख जाता है, तब वह समस्याएं खड़ी करना सीख जाता है। जब भी वह बीमार होता है, या कोई समस्या लिये होता है तब हर कोई उसकी ओर ध्यान देता है।

तुमने कभी देखा? बच्चे शांति से चुपचाप घर में खेल रहे हैं लेकिन यदि कोई मेहमान आ जातें है तो वे शोरगुल मचाना शुरू कर देते हैं। क्योंकि अब तुम्हारा ध्यान मेहमानों की तरफ चला गया, और बच्चे— अब ध्यान के लिए तड़प रहे हैं। वे चाहते हैं कि तुम्हारा, तुम्हारे मेहमान का, सबका ध्यान उनकी तरफ हो। तो वे कुछ करेंगे, वे कोई न कोई ऊधम मचायेंगे। यह सब अचेतन बात है, लेकिन फिर यह एक ढंग बन जाता है। और फिर तुम बड़े हो जाने पर भी ऐसा ही करते रहते हो...।

स्त्रियों के लिए, यह बात नब्बे प्रतिशत सही है कि उनकी बीमारियां, उनकी मानसिक समस्याएं, मूलत: उनकी प्रेम की भूख है। जब भी तुम किसी स्त्री को प्रेम करते हो तो उसे कोई बीमारी नहीं होती। जब भी प्रेम में कोई समस्या खड़ी हो जाती है तो बहुत—सी समस्याएं पैदा हो जाती हैं। अब वह ध्यान के लिए तड़प रही है। और मनोविश्लेषक इस ध्यान की आवश्यकता का ही शोषण कर रहे हैं। क्योर्कि मनोविश्लेषक एक व्यावसायिक ध्यान देने वाला आदमी होता है। तुम उसके पास जाते हो —उसका तो यह धंधा है—एक घंटे तक वह ध्यानपूर्वक तुम्हारी ओर देखता है। जो भी तुम कहते हो, कैसी भी बकवास, वह उसे बड़े गौर से सुनता है—जैसे कि वेद पढ़े जा रहे हों। और वह तुम्हें फुसलाको। कि तुम और बोलो, कुछ भी बोलो—संगत, असंगत—तुम्हारे मस्तिष्क में जो भरा है उसको बाहर निकाल दो। तुम्हें बड़ा अच्छा लगता है।

तुम्हें पता है? निन्यानबे प्रतिशत बीमार अपने मनोविश्लेषक के प्रेम में पड़ जाते हैं। और कैसे इस चकित्सक—रोगी संबंध को बचाया जाये यह समस्या बन गई है, क्योंकि देर— अबेर यह एक प्रेम —संबंध बन जाता है। क्यों? क्यों एक स्त्री रोगी एक पुरुष मनोविश्लेषक के प्रेम में पड़ जाती है? या फिर इस से उल्टा एक पुरुष रोगी क्यों एक स्त्री मनोविश्लेषक के प्रेम में पड़ जाता है? इसका कारण इतना ही हे कि पहली बार कोई इतना ध्यान देता है। प्रेम की आवश्यकता की पूर्ति होती है।

जब तक कि तुम्हारा बुनियादी अस्तित्व ही नहीं बदला जाता, तब तक समस्याओं को हल कर ने सें कुछ नहीं होगा। तुम्हारे भीतर अनंत संभावना है नई समस्याएं निर्मित करने की। ध्यान इस बात का प्रयल है कि

तुम्हें स्वतंत्र बनाया जाये—पहली बात, और दूसरे : तुम्हारे होने के ढंग को और तुम्हारी चेतना के गुण को बदला जाये। चेतना की नयी गुणवत्ता के साथ पुरानी समस्याएं नहीं जी सकतीं। वे बस विलीन हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, तुम कभी बच्चे थे, तब तुम्हारी दूसरी ही समस्याएं थीं। फिर जब तम जवान हुए, तो वे समस्याएं विलीन हो गईं। वे कहां चली गईं? तुमने कभी उन्हें हल नहीं किया। बस वे विलीन हो गईं। तुम्हें स्मरण भी नहीं है कि तुम्हारे बचपन की क्या समस्याएं थीं। लेकिन तुम बड़े हुए, और वे समस्याएं विलीन हो गईं।

फिर तुम जवान थे तो एक दूसरे ही प्रकार की समस्याएं थीं। जब तुम के हो जाओगे तो वें समस्याएं नहीं रहेंगी। नहीं कि तुम उनका समाधान खोज लोगे—कोई भी किसी समस्या को हल नहीं कर सकता —बस कोई विकसित होकर उनसे बाहर हो सकता है। जब तुम वृद्ध हो जाओगे तो तुम अपनी स्नमस्याओं पर खुद ही हंसोगे, जो कि इतनी जरूरी थीं, और इतनी विध्वंसात्मक थीं कि कई बार तुमने उनके ही कारण आत्मघात करने का भी विचार किया था। और तब जब तुम वृद्ध हो गये होओगे तो तम्हें सिर्फ हंसी आयेगी कि आखिर वे समस्याएं कहां गईं? क्या तुमने उनको हल किया? नहीं—सिर्फ तुम विकसित हो गये। वे समस्याएं विकास की एक विशिष्ट स्थिति से संबंधित थीं।

वैसा ही मामला है : जैसे—जैसे तुम अपनी चेतना में गहरे विकसित होते हो, वैसे—वैसे समस्याएं विलीन होती चली जाती हैं। एक क्षण आता है जब कि तुम इतने सजग होते हो कि समस्याएं खड़ी ही नहीं होतीं। ध्यान विश्लेषण नहीं है, ध्यान विकास है। उसका संबंध समस्याओं से नहीं है, उसका संबंध तुम्हारे अस्तित्व से है।

दूसरा प्रश्न :

कल रात आपने कहा कि या तो हम पूर्णरूप से आपमें विश्वास करें कि जो भी आप कहते हैं वह सत्य है या हम पूर्णरूप से आपमें अविश्वास करें और सोचें कि जो भी आप कहते हैं वह सब असत्य है और कि दोनों ही तरीकों से हमें सहायता मिलेगी लेकिन वे क्या करें जो कि दोनों ही तरीकों में पूर्ण नहीं हो सकते? क्या इस मामले में कोई तीसरा विकल्प भी संभव है?

अन्य कोई विकल्प न है, और न हो सकता है। तीसरी तो तुम्हारी अवस्था है ही—कोई जरूरत नहीं है... ये दो विकल्प उससे बाहर आने के लिए ही हैं। तीसरे तो तुम अभी हो ही—उलझन से भरे। इस उलझन से तुम किसी समग्र प्रयास से ही बाहर निकल सकते हो।

आखिर क्यों इतना कठिन है समग्र होना, चाहे विश्वास में अथवा अविश्वास में? क्यों सरल है बीच में रहना? क्योंकि यदि तुम बीच में हो, तो फिर किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है, तुम वहां पहले से ही हो। और यदि तुम सोचते ही रहते हो कि किस बात में विश्वास करें और किस बात में विश्वास नहीं करें, तो तुम्हारा मन वही का वही रहता है। क्योंकि यह तुम्हारा मन ही तो है जो कि चुनाव करता है कि क्या विश्वास करने योग्य है, और क्या विश्वास करने योग्य नहीं है। तुम अपने मन के ही अनुसार चुन लेते हो।

तब फिर यह मन कैसे बदल सकता है? यदि तुम्हारा मन ही चुनने वाला है तो यह वही चुनेगा जो कि इसके लिए भोजन बने। और यह उस सबको अलग हटाता जायेगा जो इसे मिटाये, या जिससे इसे बदलना पड़े। मन चाहता है कि स्थिति जैसी है वैसी ही रहे—'स्टेटस—को' बना रहे। यह स्थिर रहना चाहता है, क्योंकि बदलाहट में कष्ट है, असुरक्षा है। तुम्हें फिर से सब कुछ जमाना पड़ेगा, सारा इंतजाम फिर नये सिरे से करना पड़ेगा। यह कठिन होगा।

इसलिए मन मूलत: रूढ़िवादी है; उनका मन भी, जो अपने को क्रातिकारी समझते हैं। मन बड़ा रूढ़िवादी है, इसीलिए हर क्राति अंत में एक रूढ़ि बन जाती है। सारे क्रातिकारी आखिर में बड़े कट्टर—पंथी बन जाते हैं। प्रत्येक क्राति एक गतिहीन समाज में समाप्त होती है। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि मन की प्रकृति ही रूढ़िवादी होने की है—अतीत से चिपके रहने की है।

तो जब मैं कुछ कहता हूं तो तुम चुनाव कर सकते हो. तुम उसे चुन सकते हो जो कि तुम्हें जैसे का तैसा रहने में मदद दे। तुम कहोगे, "यही सत्य है। " जो तुम्हें रूपांतरण की ओर ले जाता हो, किसी नई अज्ञात जगह, किसी असुरक्षा में, किसी अनजान मार्ग, पर किसी अज्ञात यात्रा पर ले जाता हों—उसे तुम कहोगे, "यह सत्य नहीं है। "

तो तुम चुनाव करते रह सकते हो। यही तो तुम करते रहे हो। और मैं तुम्हें कहता हूं " समग्र हो जाओ। "तब बदलाहट होगी ही। क्राति अनिवार्य है। जब मैं कहता हूं "मुझमें पूरी तरह विश्वास करो, "या, "बिलकुल भी विश्वास मत करो, " तो मैं नहीं कहता, "मुझमें विश्वास करो। " मैं कहता हूं " समग्र हो जाओ। " आधे—अधूरे तुम कहीं भी नहीं पहुंचोगे। और कैसे तुम निर्णय कर सकते हो कि क्या सच द्रे और क्या झूठ है? ज्यादा संभावना यही है कि जिसे तुम सोचोगे कि सच है वह झूठ होगा, या इससे उल्टा होगा। क्योंकि यदि तुम पहले से ही जानते हो कि सच क्या है तो फिर कोई जरूरत नहीं है—फिर मेरे पास आने की या किसी और के पास जाने की कोई जरूरत नहीं है। बिलकुल भी जरूरत नहीं है। लेकिन मन तरकीबें निकालता रहता है।

आज ही एक युवक मुझसे मिलने आया। मैंने उससे कहा, "संन्यास में छलांग लो।"

उसने कहा, "मैं जे कृध्यर्ग्रित को सुनता रहा हूं और मैं किसी चीज के प्रति प्रतिबद्ध नहीं हो सकता। " लेकिन उसे पता नहीं है कि वह जे. कृष्णमुर्ति के साथ प्रतिबद्ध हो गया है।

जे. कृष्णमूर्ति कहते हैं, "प्रतिबद्ध मत होओ, " इसलिए वह अपने को प्रतिबद्ध नहीं कर रहा है। लेकिन उसने सलाह मान ली है, वह पहले से ही अनुयायी बन गया है। उसका मन तरकीब निकाल रहा है। वह सोच रहा है कि अब किसी का अनुयायी बनने की आवश्यकता नहीं है।

तुम पहले ही अनुयायी बन चुके हो, लेकिन यह अचेतन है। तुम्हें पता नहीं है कि तुम्हें क्या घट चुका है। और इससे कुछ ज्यादा लाभ नहीं होगा, क्योंकि यह अचेतन है। जब तक वह चेतन न हो जाये......।

मैं कहता हूं यदि तुम्हें लगता है कि कृष्णमूर्ति सही हैं तो उनके प्रति प्रतिबद्ध हो जाओ, सचेतन रूप से तथा समग्रता से। लेकिन उसे सचेतन कर लो, क्योंकि जो भी सचेतन है वही रूपांतरण में मदद कर सकता है। जो अचेतन है वह मदद नहीं कर सकता और अगर तुम सोचते हो कि तुम्हें किसी से भी प्रतिबद्ध नहीं होना है, तब फिर तुम्हें अपनी स्वतंत्रता को बहुत तरह से सुरक्षित रखना पड़ेगा। तब फिर जे कृष्णमूर्ति के पास या मेरे पास या किसी के भी पास जाने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि किसी के भी पास जाने की कोशिश ही बतलाती है कि तुम्हें सहायता की जरूरत है—कि कोई और चाहिए।

लेकिन तुम अपने को बहलाये रख सकते हो। तुम सोच सकते हो, "मैं तो सिर्फ सुन रहा हूं। मैं चुनाव करूंगा कि क्या ठीक है। मैं उसी में विश्वास करूंगा जो सही है और उसमें विश्वास नहीं करूंगा जो सही नहीं है। " जैसे कि तुम्हारे पास कोई कसौटी है तौलने की कि क्या सही है और क्या सही नहीं है! तुम कैसे तौलोगे? या तो तुम जानते हो, तो फिर किसी के पास जाने की जरूरत नहीं है। या तुम नहीं जानते हो, तब तुम तौल नहीं सकते।

बुद्ध कहा करते थे, "मुझसे प्रश्न मत पूछो, बल्कि जो मैं कहता हूं वह करो, और एक वर्ष तक वैसा करने के बाद मैं तुम्हें प्रश्न पूछने की आज्ञा दूंगा। लेकिन एक वर्ष तक मैं जो भी कहूं वह करो। इस एक वर्ष के लिए चुनाव मत करो; पूरी तरह से मेरी मानकर चलो और एक वर्ष के बाद जब तुम सजग हो जाओ, स्पष्ट हो जाओ, तब तुम पूछ सकते हो, और तब तुम चुनाव कर सकते हो, क्योंकि तब ताला। पास एक कसौटी होगी जिससे तुम जांच कर सको। " लेकिन लगभग हमेशा ऐसा हुआ कि एक वर्ष कृऐंए। गहरे ध्यान के बाद जब बुद्ध कहते, "अब तुम पूछ सकते हो, और अब मैं तुम्हें चुनाव करने की इजाजत देता हूं " तो वह व्यक्ति कहता, " अब मेरे पास कुछ भी पूछने के लिए नहीं है, और अब कुछ भी चुनाव करने को नहीं है।"

जब मैं तुम्हें संन्यास में छलांग लगाने को कहता हूं तो मेरा मतलब है कि फिलहाल चुनाव मत करो। यह तुम्हारी जिंदगी भर के लिए नहीं है, लेकिन फिलहाल चुनाव मत करो, ताकि तुम्हारा मन बीच में न आये। वही करो जो मैं तुमसे कहता हूं। एक वर्ष की सच्ची मेहनत के बाद, मैं तुम्हें चुनाव करने की स्वीकृति दूंगा, तब तुम चुन सकते हो! तब तुम सोच—विचार कर सकते हो। तब तुम्हारे पास कुछ होगा जिससे तुम जांच कर सकोगे। अभी तुम जांच नहीं कर सकते, लेकिन फिर भी तुम निर्णय लेते रहते हो।

मैं दोनों प्रकार के लोगों के साथ प्रसन्न हूं : जो कह सकें, "मैं समग्रता से विश्वास करता हूं "—मैं उनके साथ काम कर सकता हूं—या जो कहते हैं, "मैं बिलकुल भी विश्वास नहीं करता, "—मैं उन्हें उन पर छोड़ सकता हूं। लेकिन इन उलझे हुए लोगों के साथ, जो कहते हैं, "कुछ चीजों में हम विश्वास करते हैं और कुछ चीजों में हम विश्वास नहीं कर सकते, " कुछ भी नहीं किया जा सकता। और वे मेरे इर्द—गिर्द घूमते रहते हैं, लेकिन मैं उनकी कुछ भी मदद नहीं कर सकता। वे व्यर्थ ही अपना समय बर्बाद कर रहे हैं, क्योंकि मैं उनकी कुछ भी मदद नहीं कर सकता। वे मुझे मदद करने ही नहीं देंगे। वे समय बर्बाद कर रहे हैं; वे एक अवसर को चूक रहे हैं। बहुत आसानी से कुछ संभव हो सकता था यदि वे लेने को तैयार होते, लेकिन वे लेने को तैयार ही नहीं हैं। और वे कहते हैं कि वे जांच—परख करेंगे। वे सोचते रह सकते हैं... लेकिन वे किसी नतीजे पर नहीं पहुंचेंगे।

तुम किसी नतीजे पर नहीं पहुंच सकते क्योंकि तुम्हारा मन उलझा हुआ है। और यदि तुम इस उलझन से कुछ भी चुनोगे तो तुम और ज्यादा उलझ जाओगे। उलझन में लिया गया कोई भी निर्णय तुम्हें और उलझन में ले जायेगा। एक उलझन से भरा हुआ चित्त कुछ भी चुनाव नहीं कर सकता। समर्पण का यही अर्थ है। तो जब तुम्हें लगता है कि तुम उलझन में हो तो तुम किसी के पास जाते हो... तुम्हें लगता है कि उसके पास स्पष्टता है। मैं कहता हूं "तुम्हें ऐसा लगता है " —ऐसा नहीं है कि तुम सोचते हो। यदि तुम्हें प्रतीत होता है कि किसी के पास एक स्पष्टता है जो कि तुम्हारे पास नहीं है, तो समर्पण करो। इसमें जोखिम है, खतरा है, लेकिन खतरा तो लेना ही होगा, क्योंकि बिना खतरे के कोई संभावना नहीं है।

यदि तुम बहुत होशियार हो, चतुर हो और कोई खतरा लेने को तैयार नहीं हो, तो तुम अपने सारे जीवन चूकते ही जाओगे, तुम किसी भी बोध तक नहीं पहुंचोगे। खतरा बुनियादी बात है। यह खतरनाक है! क्योंकि तुम नहीं जानते, तुम्हें कुछ भी पक्का पता नहीं है कि जिस व्यक्ति को तुम समर्पण कर रहे हो वह वास्तव में सच्चा है या नहीं। यह खतरे से भरा है, लेकिन प्रयोग करो। यदि वह सच्चा नहीं है तो भी तुम लाभ में ही रहोगे, क्योंकि वह तुम्हें कहीं भी नहीं ले जा सकेगा। यदि वह सच्चा नहीं है और तुम अपना सब कुछ समर्पित कर देते हो तो तुम्हें मालूम हो जायेगा कि एक झूठा गुरु कैसा होता है। और तुम इस जाल में फिर कभी नहीं पड़ोगे। लेकिन यदि वह सच्चा हुआ तो तुम अपने स्वरूप के एक नये ही आयाम को उपलब्ध हो जाओगे। कुछ भी खोता नहीं है, खतरा लेने जैसा है।

लेकिन तुम चालाक हो—तुम्हारी चालाकी ही बाधा है। थोड़े नासमझ बनो और छलता लगाओ, इतने चालाक मत बनो। तुम पहले ही बहुत कुछ खो चुके हो चालाक बन कर। कुछ बातें हैं जहा केवल नासमझ, पागल, प्रेमी ही प्रवेश पा सकते हैं, कुछ ऐसे द्वार हैं। होशियार लोग वहां कभी नहीं जाते। ऐसा होता है कि थोड़ा—सा खतरा लेकर नासमझ बुद्धिमान साटि.. होते हैं और बुद्धिमान नासमझ साबित होते हैं, क्योंकि नासमझ खतरा उठा सकते हैं, और तथाकथित बुद्धिमान खतरा नहीं उठा सकते।

कोई और विकल्प नहीं है। तीसरा कोई विकल्प नहीं है। ये ही दो विकल्प हैं। तीसरा विकल्प जो है वह तुम अभी हो ही। इसलिए यदि तुम सोचते हो कि तीसरा ठीक है तो जैसे हो वैसे बने रहो, किसी परिवर्तन की मत सोचो। यदि तुम सोचते हो कि तुम जैसे हो वैसे बड़े दुख में हो, महानर्क में हो, तो उस नर्क से बाहर छलांग लगा लो। और छलांग सदा अज्ञात में है, इसलिए खतरा है, वह होगा ही। अत: थोड़े साहसी बनो, थोड़े नासमझ बनो।

जब बुद्ध ने अपना महल छोड़ा तो वह नासमझ थे। उनके सारथी ने भी, जो उन्हें राज्य की सीमा पर छोड़ने आया था, उनसे कहा—उस सारथी का नाम चन्ना था—चन्ना ने बुद्ध से कहा, " आप एक बहुत ही नासमझी का काम कर रहे हैं। यह जोखिम बहुत अधिक है : साम्राज्य खो रहे हैं, सिंहासन छोड़ रहे हैं, उसके लिए जिसका कुछ भी पता नहीं। कोई नहीं जानता कि आत्मा होती भी है या नहीं। जो आपके पास है उसे उसके लिए ल्ट्रोड्ना जो कि अनिश्चित है बड़ी नासमझी है। "

बुद्ध ने उसकी बात नहीं सुनी। वह आदमी का था, और बुद्ध से ज्यादा होशियार था, अत: उसने बुद्ध से कहा, " आप अभी युवा हैं, और युवा होने के कारण आप अभी इतने प्रौढ़ नहीं हैं कि आप समझ सकें कि आप क्या कर रहे हैं। वापस लौट चलें! हर आदमी इस महल को पाना चाहता है जिसे आप छोड़ कर जा रहे हैं। और आप जा कहां रहे हैं? भिखारी होने? यदि भिखारी ही प्राप्त कर सकते होते तो सारा संसार ही भिखारी हो जाता। और इतने भिखारी सड़क पर पड़े हुए हैं, और इनको कुछ भी तो नहीं मिला है। कहां जा रहे हैं आप इतना दाव पर लगाकर? शात को अज्ञात के लिए छोड़ना हमेशा एक जोखिम है। "

तो बुद्ध ने कहा, "मैं ज्ञात से बहुत तंग आ चुका हूं। मैंने उसको जान लिया है और अब कुछ भी और जानने को नहीं है। इसलिए मुझे खतरा मोल लेने दो। यदि मैं खो देता हूं तो भी मेरा कुछ भी खोता नहीं, क्योंकि मेरे पास कुछ है ही नहीं। यदि मैं पाता हूं तो सभी कुछ पा लेता हूं इसलिए खतरा उठाने 'जैसा है। मैं कुछ भी खोने को नहीं हूं क्योंकि मेरे पास कुछ भी नहीं है। वे महल और वे सुंदर स्त्रियां, मैं उनके साथ जी लिया हूं मैं उन्हें जान चुका हूं। अब वहां जानने को कुछ नहीं बचा है। अब कोई रहस्य नहीं बचा है। अब वह सब एक पुनरुक्ति, एक आदत—सा, उबाऊ हो गया है। मैं एक यंत्र की भांति हो गया हूं। अब वापस लौटने जैसा वहा कुछ भी नहीं है। मैं खतरा लूंगा। यदि मैं खोता हूं तो भी मैं कुछ नहीं खोता, क्योंकि मेरे पास कुछ है ही नहीं। "

क्या है तुम्हारे पास जिसके कारण तुम समर्पण करने से इतने डरे हुए हो? क्या है तुम्हारे पास? तुम्हारी दशा उसे नंगे आदमी जैसी है जो नदी में नहाने से डरता है, क्योंकि वह सोचता है, "मैं अपने कपड़े कहां सुखाऊंगा? " और वह नंगा है। उसके पास कपडे हैं ही नहीं। लेकिन वह नहाने को नदी में नहीं उतर रहा है क्योंकि उसे डर है कि कपड़े कहां सुखाऊंगा त्र: क्या है तुम्हारे पास खोने को? और पाने की बड़ी संभावना है। लेकिन मैं कहता हूं 'संभावना' और यही खतरा है।

धर्म कमजोरों के लिए नहीं है। यह उनके लिए ही है जिनके पास बड़ा मजबूत संकल्प है अज्ञात में प्रवेश करने का। कमजोर सदा दो नावों पर सवार होते हैं और इसीलिए संभ्रमित रहते हैं। और नावें सदा दो दिशाओं में जा रही होती हैं। वे एक नाव में यात्रा नहीं कर सकते क्योंकि उन्हें डर लगता है। और वे बड़े चालाक

हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि यदि एक गलत दिशा में गई तो दूसरी तो है ही। तो वे दो नावों में यात्रा करते हैं... वे कभी कहीं नहीं पहुंचते, क्योंकि तुम दो नावों में यात्रा नहीं कर सकते।

तीसरा कोई विकल्प नहीं है। तुम्हें 'यह' या 'वह' में से ही चुनना होगा। केवल तभी कोई क्राति घटित हो सकती है। पुराने को मरना होगा ताकि नया जन्म सके, और कोई समझौता नहीं हो सकता। पुराना किसी भी रूप में नये के साथ बना नहीं रह सकता। उसे तो पूरा का पूरा ही उतार कर फेंक देना है। धर्म दोनों है, मृत्यु भी और पुनर्जन्म भी। और जब मैं तुम्हें कहता हूं : एक को चुनो, अपने चुनाव में समग्र हो जाओ, तो यह मृत्यु ही होने वाली है, और यही डर है। लेकिन जब तक तुम मरो नहीं, तुम्हारा पुनर्जन्म नहीं हो सकता।

अंतिम प्रश्न :

मैं हर चीज के बारे में पूरी तरह असहाय अनुभव करता हूं— जीवन स्वास्थ्य ध्यान और यहां तक कि समग्र समर्पण के लिए भी मैं असहाय अनुभव करता हूं। जो भी मैं करता हूं हमेशा अधूरा आंशिक ही होता है अचेतन कारण बहुत कुछ नियंत्रित करते हैं। और मेरे सारे प्रयास व अप्रयास की कोशिशें उनके सामने शक्तिहीन हैं। मुझे लगता है कि यह सब मैं आप पर छोड़ देना चाहता हूं लेकिन वह भी वहीं तक संभव है जहां तक मैं सजग रूप से समर्थ हूं। और फिर मुझे यह भी खयाल है कि आत्यंतिक घटना इस जीवन में शायद घटे और शायद न भी घटे और मैं यह भी आपसे नहीं पूछ सकता हूं कि यह कब —घटेगी यदि इसे मैं आप पर छोड़ता हूं क्या मैं आप पर सब छोड़ सकता हूं यद्यपि मुझे खयाल है कि वह घटना घटने में कई— कई जीवन भी लग सकते हैं? यदि इस समर्पण से कुछ भी फलित नहीं होता तब भी क्या यह समर्पण ही है?

तीन बातें : पहली, समग्र से मेरा मल्लब है जो प्री संभव है, मेरा मतलब संपूर्ण से नहीं है। तुम अभी संपूर्ण समर्पण नहीं कर सकते, क्योंकि तुम स्वयं ही संपूर्ण नहीं हो, फिर तुम कैसे संपूर्ण समर्पण कर सकते हो? समग्र से मेरा मतलब है जो भी तुम कर सकते हो, कुछ भी बचाओ मत। जो भी तुम कर सकते हो, तुम्हारी सारी सामर्थ्य—न कि तुम्हारा पूरा अस्तित्व, क्योंकि तुम अभी वह हो ही नहीं, अत: तुम उसे समर्पित करोगे भी कैसे? लेकिन जो भी तुम कर सकते हो उस सबको अपने समर्पण में समाहित कर लो।

यह आशिक ही होगा—आशिक इन अर्थों में कि तुम्हारा सारा अस्तित्व उसमें समाहित नहीं होगा। तुम्हारा एक अचेतन भाग है। तुम उसे इसमें नहीं ला सकते, यह तुम्हारे लिए असंभव है। तुम जानते भी नहीं हो कि वह क्या है, वह कहां है, वह कैसे काम करता है और उसे समर्पण में कैसे लाया जा सकता है। तुम यह नहीं कर सकते। जो भी तुम कर सकते हो—उसमें से कुछ भी अनकिया मत छोड़ो। समर्पण से मेरा मतलब है : तुम्हारी सारी चेतन सामर्थ्य से समर्पण। इस समर्पण से धीरे— धीरे भीतर का अस्तित्व ऊपर आने लगेगा, और उसमें समाहित होने लगेगा।

प्रारंभ में तो यह ऐसे ही हो सकता है। इसलिए जब तक तुम अपना पूर्ण अस्तित्व ही समर्पित न कर सको, तब तक ठहरने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तब समर्पण की आवश्यकता ही नहीं होगी—क्योंकि जब तुम भीतर समग्र हो ही गये हो तो फिर समर्पण की आवश्यकता ही नहीं है। समर्पण तो एक विधि है समग्र होने की। इसलिए तुम जैसे हो और जितना तुम कर सकते हो वैसे ही छलांग लगाओ। बस इतना ही।

दूसरी बात, इस बात की चिंता मत करो कि यह कब घटेगा। यह अगले क्षण भी घट सकता है, और यह शायद कई—कई जीवन भी न घटे। यह निर्भर करता है। यह अगले क्षण भी घटित हो सकता है। यदि तुम्हारी छलांग तीव्र है, समग्र है, यदि तुमने उसमें अपनी सामर्थ्य भर सब कुछ लगा दिया है, तो यह अगले क्षण भी घटित हो सकता है। लेकिन यदि तुमने थोड़ा पीछे बचा लिया तो उसमें समय लगेगा। वह कई जीवन ले सकता

है। लेकिन यदि यह कई जीवनों में भी घटित हो तो भी जल्दी ही है, क्योंकि तुम लोखों वर्षों से जी रहे हो, और अभी तक यह नहीं घटा।

अत: यदि इसमें कुछ जीवन भी लग जायें तो भी ज्यादा नहीं है, तो भी यह जल्दी ही है। इसके लिए चिंता मत करो, क्योंकि यह चिंता भी समग्र समर्पण के रास्ते में बाधा बन जायेगी, और यह चिंता एक भीतरी शर्त हो जायेगी। जाने— अनजाने तुम चाहने लगोगे कि यह जल्दी ही घट जाये, और यह अपेक्षा एक वासना बन जायेगी, और यही रुकावट हो जायेगी। इसलिए यह सोचो ही मत कि यह कब घटेगा, उसकी नई शर्त मत बनाओ। उसे बेशर्त ही घटित होने दो। अपने हृदय के अतंर्तम में कह दो, "यह कभी भी घटित हो.. मैं नहीं हूं। और यह घटे चाहे न घटे तो भी मैं समर्पण करने को तैयार हूं। " तब यह बहुत जल्दी घट जायेगा। यह उस समर्पण में ही घटित हो सकता है, शायद उसमें एक क्षण भी न लगे।

मैं तुमसे एक कहानी कहता हूं। एक बहुत पुरानी हिंदू कथा है :

दो संन्यासी दो वृक्षों के नीचे ध्यान कर रहे हैं, और नारद वहां से गुजरते हैं। नएद इन दो जगतों के बीच में संदेशवाहक हैं—इस और उस जगत के बीच। वे दोनों के बीच घूमते रहते हैं और वे यहा की खबरे वहां पहुंचाते रहते हैं और वहां की खबरें यहां पहुंचाते रहते हैं।

वे पहले साधु के पास से गुजरते हैं जो कि बहुत का हो गया है, जो गहन तपस्या में लगा है, और कई जीवनों से मोक्ष के लिए श्रम कर रहा है। वह साधु पूछता है, "नारद, क्या तुम उस दूसरे जगत में जा रहे हो? तो कृपया भगवान से पूछना कि मुझे अभी कितना वक्त और लगेगा, कि अभी मुझे इस शरीर में कितनी देर और जीना होगा। यह बहुत हो गया है! मैं कई जन्मों से श्रम कर रहा हूं। अभी कितना समय और बचा है अंतिम मोक्ष पाने में? कृपया यह बात पूछना। "

जिस तरह से वह साधु पूछ रहा था उससे लगता था कि वह बहुत तनाव से भरा है, लोभ से भरा है, शर्त लगा रहा है, जैसे कि वह शिकायत कर रहा हो। उसे लगता था कि वह पहले ही कई जन्मों से कठिन श्रम करता रहा है—जैसे कि उसके साथ बड़ा भारी अन्याय हो रहा हो। उसका स्वर, उसका ढंग शिकायत भरा है।

नारद दूसरे वृक्ष के पास से गुजरते हैं। एक नवयुवक वहां पर नाच रहा है, गा रहा है, आनंद मना रहा है। उसने नारद की तरफ देखा भी नहीं। नारद वहां पर खड़े हो जाते हैं। उस युवक ने उनको देखा लेकिन फिर भी वह नाचता ही रहा। तो नारद ने ही उससे पूछा, "क्या तुम्हें कुछ नहीं पूछना है? उस पड़ोस के दूसरे वृक्ष के नीचे वाले साधु ने पूछा है। क्या तुम चाहते हो कि मैं तुम्हारे बारे में भी खबर लाऊं कि तुम्हें मुक्ति कब मिलेगी? " वह आदमी तो नाचता ही रहा और उसने कुछ भी नहीं कहा।

नारद दूसरे जगत जाते हैं, वापस आते हैं। उन्होंने उस बूढ़े संन्यासी से कहा, "मैंने परमात्मा से पूछा था, और उन्होंने कहा है कि तीन जन्म और लगेंगे। "

वह साधु अपनी माला फेर रहा था, उसने माला फेंक दी और बोला, "तीन जन्म और! " वह बड़ा क्रोधित और निराश हुआ।

नारद दूसरे वृक्ष के पास पहुंचे। वह युवक अभी भी नाच रहा था। नारद ने कहा, "यद्यपि तुमने तो पूछने के लिए नहीं कहा था फिर भी मैंने पूछ लिया। लेकिन मुझे तुम्हें बताने में बड़ा डर लग रहा है, क्योंकिं उस साधु ने अपनी माला फेंक दी है और वह क्रोधित तथा निराश हो गया है। इसलिए तुम्हें कहने में मुझे डर लग रहा है। "

युवक ने कहा, "फिर भी तुम कह सकते हो क्योंकि जो भी है सब आनदपूर्ण है, जो भी होता है वह अच्छा ही है। तुम मुझे कह दो, चिंता करने की जरूरत नहीं है। "

तो नारद ने कहा, "मैंने परमात्मा से पूछा था, और उन्होंने कहा है कि तुम्हें अभी उतने ही जीवन और लगेंगे जितने इस वृक्ष में पत्ते हैं, जिसके नीचे तुम नाच रहे हो। "

वह युवक तो इतना हर्षोल्लास से भर गया। उसने कहा, "बस इतने ही पत्ते? इतने कम? क्योंकि यह पृथ्वी तो पत्तों से भरी है, अनंत पत्ते हैं। " वह तो फिर से नाचने लगा। और कहते हैं कि उसी क्षण वह इस पृथ्वी से अदृश्य हो गया।

यह है समर्पण। यह है समग्र स्वीकार—कोई शिकायत नहीं, कोई शर्त नहीं, कोई अपेक्षा नहीं। तत्क्षण उसकी मुक्ति हो गई, उसी क्षण वह मुक्त हो गया।

मुझे उस बूढ़े साधु का तो पता नहीं, उसके बारे में कुछ भी नहीं कहा गया। लेकिन मुझे नहीं लगता है कि तीन जन्म भी उसके लिए पर्याप्त होंगे। वह अभी भी यहीं कहीं होगा, अभी भी तपस्या कर रहा होगा।

चौदहवां प्रवचन

एक के द्वारा सर्व को जानना

चतुर्थ खंड

सा ब्रह्मेति होवाच। ब्रह्मणा वा एतद्विजये महीयध्वमिति,

ततो हैव विदाङचकार ब्रह्मेति।। 1।।

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान् देवान् यदिग्नर्वायुरिन्द्रस्ते

हेनन्नेदिष्ठ पस्पृशस्ते ह्येनत् प्रथमो विदाज्वकार ब्रह्मेति।। 2।।

तस्माद् वा इंद्रोऽतितरामिवान्यान् देवान् स ह्येनन्नेदिष्ठं

पस्पर्श, स हेनत् प्रथमो विदाङचकार ब्रह्मेति।। 3।।

तसौष आदेशो यदेतद् विद्युतो व्यद्युतदा इतोत्यमीमिषदा इत्यधिदैवतम्।। 4।।

अथाध्यात्मं यदेतद् गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्य भीक्ष्णं संकल्पः।। 5।।

केनोपनिषद

चतुर्थ अध्याय

1

"वह यक्ष ब्रह्म था " उमा ने कहा? "ब्रह्म की विजय के कारण ही

वस्तुतः, तुम यह गौरव प्राप्त कर सके हो।

"उमा के इन शब्दों से ही इंद्र समझ सका कि वह यक्ष ब्रह्म था।

2

इसलिए वास्तव में ये देवता—अग्नि वायु?

और इंद्र—दूसरे सब देवताओं से श्रेष्ठ हैं,

क्योंकि वे यक्ष के निकटतम पहुंचे।

वे पहले थे जिन्होंने उसे ब्रह्म की भांति जाना।

3

और इसीलिए इंद्र दूसरे सभी देवताओं से श्रेष्ठ?

है क्योंकि वह यक्ष के निकटतम पहुंचा

उसने सर्वप्रथम उसे ब्रह्म की भांति जाना।

4

उस ब्रह्म के बारे में यह उपदेश है। वेंह बिजली की चमक की भांति है

वह पलक के झपकने की भांति है। यह अधिदैवतम्—

उसकी वैश्विक अभिव्यक्ति— के संदर्भ में है।

5

अब अध्यात्म—उसकी मानुषिक अभिव्यक्ति—के संदर्भ में उसका वर्णन :

ब्रह्म की ओर मानो पूरी गति से जाता है।

मनुष्य के मन द्वारा भी,
इस ब्रह्म को ऐसे स्मरण किया जाता है
और उसकी ऐसी कल्पना की जाती है जैसे कि वह सदा निकट ही है।

मन अमूर्त है। वह स्पर्श नहीं कर सकता, वह देख. नहीं करता वह सुन नहीं सकता। वह सिर्फ सोच सकता है। सोचना अमूर्त है। विचार रिक्तता में चलते है। विचारों में ठोस कुछ भी नहीं होता। उन्हें स्पर्शनही किया जा सकता। सुना नहीं जा सकता, अनुभव किया जा सकता है। इसलिए मनुष्य के भीतर मन बड़ी ही अमूर्त चीज है। और जब वह अमूर्त क्षमता सत्य तक पहुंचने का प्रत्यन करती है, तो वह सिर्फ सत्य के बारे में विचार कर सकती हे। यह उसे देख नहीं सकती। यह उसे अनुभव नहीं कर सकती। यह सिर्फ उसके बारे में चिंतन—मनन कर सकती है।

इसका ढंग परोक्ष ही हो सकता है। इंद्रियां प्रत्यक्ष. हैं, मन परोक्ष है।

इंद्र मन का प्रतिनिधित्व करता है, अग्नि आंखों का प्रतिनिधित्व करता है, वायु कानों का प्रतिनिधित्य करता है। इसे समरन स्मरण रखना। कान वह हिस्सा है जो वायु के समष्टिगत अस्तित्व से संबंधित है। आंखें मनुष्य का वह हिस्सा है जो कि सूर्य के, अग्नि के समष्टिगत अस्तित्व से संबंधित है।

वायु के पास पहुंचा, अग्नि ब्रह्म के पास पहुंचा : वे देख सके, वे सुन सके। वे उस परम सत्ता से अधिक यथार्थ रूप से सबधित हो सके, लेकिन वे पहचान नहीं सके। ब्रह्म उपस्थित था, लेकिन इंद्रियां उसे पहचान सकीं कि वह कौन था। पहचान के लिए प्रत्यभिज्ञा के लिए मन की आवश्यकता होती उस ही पहचान सकता. है। लेकिन तब एक समस्या खड़ी होती है : मन सीधा नहीं जान सकता। मन परोक्ष रूप से जानता है। मन सत्य को सीधा नहीं देख सकता, क्योंकि मन एक अमूर्त इंद्रिय है। यह सिर्फ सोच—विचार कर सकता है। सोच—विचार के द्वारा यह पहचान सकता है, लेकिन तब सत्य अदृश्य हो जाता है। भीतर सिर्फ विचार होता है। इंद्र पहचान सका, लेकिन सीधा—सीधा नहीं, क्योंकि जब इंद्र पहुंचा तो ब्रह्मा अदृश्य हो गया।

इसलिए पहली बात जो कि हमें ठीक से समझ लेनी है वह यह कि मन एक परोक्ष ढंग है। इंद्रियां प्रत्यक्ष मैं तुम्हें अपने मन से छू नहीं सकता। मैं तुम्हें अपने हाथ से छू सकता हूं मैं तुम्हें अपनी आंखों से सकता हूं लेकिन मैं तुम्हें अपने मन से नहीं देख सकता। मन मेरे भीतर बंद है, और मेरे मन से सीधा सेतु नहीं है तुम तक पहुंचने का। यदि मन तुम तक पहुंचना चाहे तो किसी माध्यम की आवश्यकता पड़ेगी। यदि मन तुम्हें देखना चाहता हो तो वह आंखों के द्वारा देखेगा, यदि वह तुम्हें स्पर्श करना चाहता है तो वह हाथ के माध्यम से स्पर्श करेगा। एक माध्यम, एक बीच की एजेंसी, एक बिचौलिया चाहिए। मन को कोई माध्यम चाहिए।

इसलिए मन जो भी जानकारी देता है, वह एकदम सपईगई नहीं हो सकती। यह पूर्वी मनीषा की एक बड़ी से बड़ी खोज है, कि मन तुम्हें किसी भी चीज के बारे में कोई सीधा ज्ञान नहीं दे सकता। कोई मध्यस्थ वहा होगा ही। और तुम्हारे तक खबर उस माध्यम के द्वारा ही आयेगी। सत्य में सीधे मन से कोई प्रवेश नहीं हो सकता। इंद्रियां प्रत्यक्ष हैं, लेकिन वे पहचान नहीं सकतीं। मन पहचान सकता है, लेकिन वह प्रत्यक्ष नहीं है। इसलिए जब तक मन और इंद्रियां दोनों एक गहरी लयबद्धता में न हों, तब तक तुम सत्य को नहीं जान सकते।

अग्नि अकेला गया, वायु अकेला गया, इंद्र अकेला गया। वे सब असफल हो गये। ब्रह्म अग्नि के सामने भी उपस्थित था, लेकिन अग्नि के पास कोई मन नहीं था सोचने को, पहचानने को, स्मरण करने को; वह किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सका कि वह यक्ष कौन था। इंद्र पहचान सका, लेकिन उसके पास यह जानने की कोई प्रत्यक्ष संभावना नहीं थी कि वह कौन था। ब्रह्म मन के सामने अदृश्य हो गया।

तो पहली बात : यदि मन के द्वारा ही सत्य को जानना हो तो सत्य अदृश्य हो जायेगा। इसीलिए विज्ञान के लिए कोई ब्रह्म नहीं है। विज्ञान है इंद्र—काम में लगा हुआ मन। इसीलिए विज्ञान इनकार किये जाता है। विज्ञान कहे जाता है कि तुम्हारे भीतर कोई आत्मा नहीं है, और जगत में कोई ब्रह्म नहीं है, कोई ईश्वर नहीं है। यह एक मानसिक ढंग है, अमूर्त। किंतु इस कहानी में एक गहरी घटना घटती है। ब्रह्म अदृश्य हो जाता. है और एक स्त्री, एक सुंदरतम स्त्री, उमा प्रकट होती है।

जब भी मन जीवन के रहस्य को जानने का प्रयत्न करता है तो ब्रह्म अदृश्य हो जाता है, और काम प्रकट हो जाता है। मन के लिए ब्रह्म के सर्वाधिक निकट काम है, वही निकटतम संभावना है जीवन—ऊर्जा को जानने के लिए। क्यों? काम कई कारणों से मन के निकटतम है। पहला, ब्रह्म समष्टि की जीवन—ऊर्जा है, और काम तुम्हारी व्यक्तिगत जीवन—ऊर्जा है। ब्रह्म तुमसे बाहर है, काम तुम्हारे भीतर है। ब्रह्म को जानने के लिए तुम्हें इंद्रियों की जरूरत पड़ेगी। काम को समझने के लिए तुम अपनी आंखों को बंद कर सकते हो और समझ सकते हो। यह सत्य तुम्हारे भीतर ही मौजूद है। या तुम कह सकते हो कि ब्रह्म तुम्हारे भीतर काम के रूप में प्रवेश कर गया है। वह तुम्हारे भीतर काम—ऊर्जा बन गया है। यह व्यक्तिगत प्रतिरूप है उस महान समष्टिगत जीवन—ऊर्जा का।

तुम मन से ब्रह्म को केवल काम की भांति समझ सकते हो। इसलिए जब कभी अमूर्त चिंतन अपने शिखर पर पहुंचता है तो ब्रह्म अदृश्य हो जाता है और काम ही एकमात्र सत्य हो जाता है। ऐसा पहले भी कई बार हुआ है, और यह अभी भी समकालीन जगत में हो रहा है। ऐसा भारत में हुआ, और उसके कारण ही तंत्र का जन्म हुआ। तंत्र का अर्थ है : ब्रह्म को पूरी तरह भूल जाओ—केवल काम—ऊर्जा के भीतर गहरे प्रवेश करो, और तुम ब्रह्म तक पहुंच जाओगे।

तंत्र का जन्म हुआ क्योंकि भारत बौद्धिक रूप से शिखर पर पहुंच गया था, उसी शिखर पर जहां आज पश्चिमी देश पहुंच गये हैं। भारत ने वह शिखर जाना है—अमूर्त चिंतन का शिखर, वैज्ञानिक विचारों की ऊंचाई, दर्शनशास्त्र व तत्वज्ञान का शिखर। भारत मन की उस अति परिष्कृत स्थिति को पहुंच गया था जहां कि ब्रह्म अदृश्य हो गया, और जीवन—ऊर्जा काम—ऊर्जा हो गई, काम—ऊर्जा की भांति प्रकट हुई। तो तंत्र की देशना है कि वास्तव में परमात्मा जैसा कुछ भी नहीं है जिसके पास हमें सीधे पहुंचना है। जब तक तुम काम के रहस्य में प्रवेश नहीं करते, जब तक तुम उसमें गहरे नहीं उतरते, तुम ब्रह्म को नहीं जान सकते।

और यह भी सांकेतिक है, कि काम इंद्र के समक्ष उमा के वेश में प्रकट होता है। उमा शिव की अर्द्धांगिनी है, और शिव सबसे बड़े तांत्रिक हैं। उमा आधा अंग है। जीवन—ऊर्जा के उस गहरे अनुभव में शिव पुरुष हैं, और उमा स्त्री है। शिव के लिए उमा जीवन—ऊर्जा की स्रोत है, समष्टि की सत्ता का द्वार है। उमा के लिए शिव उस समष्टि की परम सत्ता का द्वार हैं। और जब उमा और शिव गहनतम संभोग में मिलते हैं, तो वे अपने को खो देते हैं, और केवल समष्टि की ऊर्जा आदोलित होने लगती है।

तुमने शिवलिंग देखा है—वह अकेला नहीं है, वह उमा की योनि के साथ है। शिवलिंग को उमा की योनि में रखा गया है। शिवलिंग जननेंद्रिय है, और उसके नीचे योनि है। शिवलिंग महासंभोग और मिलन का प्रतीक है। इस मिलन में व्यक्ति खो जाते हैं, और विराट प्रकट होता है।

इंद्र के समक्ष उमा प्रकट होती है, मन के समक्ष काम प्रकट होता है। इस भांति मैं इसका अर्थ करता हूं। और इंद्र ने उमा से पूछा, ”यह यक्ष कौन था, यह दिव्यात्मा कौन थी?” जब मन अपने परम शिखर पर पहुंचता है, तो वह सिर्फ काम—ऊर्जा से पूछ सकता है, ”यह जीवन—ऊर्जा कौन है?”

मनुष्य के भीतर मस्तिष्क, मन एक ध्रुव है और काम दूसरा ध्रुव है। तुम इन दो ध्रुवों के बीच जीते हो। तुम्हारे मस्तिष्क में सोचने की शक्ति है, तर्क है, विचार है। और दूसरे छोर पर काम है। तुम्हारी रीढ़ की हड्डी के ये दो छोर हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि तुम्हारा मस्तिष्क तुम्हारी रीढ़ की हड्डी का ही फैलाव है। एक छोर पर काम—ऊर्जा है, और दूसरे छोर पर विचार शक्ति है। ये तुम्हारी रीढ़ के दो छोर हैं, दो ध्रुव हैं और तुम्हारी रीढ़ ही तुम्हारा मस्तित्व है। तुम अपनी रीढ़ के कारण ही जीवित हो। जब तर्क अपने शिखर पर पहुंच जाता है तो तुम एकध्रुवी हो जाते हो। तुम एक अति पर चले गये, और वह पूरी तरह अमूर्त है। और काम पूर्णतया मूर्त है, वह जरा भी अमूर्त नहीं है।

आंखों से तुम देख सकते हो, हाथों से तुम छू सकते हो, कानों से तुम सुन सकते हो, किंतु काम—केंद्र के द्वारा तुम गहरे प्रवेश कर सकते हो। कोई भी आंखें इतनी गहरी नहीं जा सकतीं, कोई हाथ इतनी दूर तक स्पर्श नहीं कर सकते, कोई कान इतना नहीं सुन सकते। काम के द्वारा तुम दूसरे के रहस्य में बहुत दूर तक प्रवेश कर सकते हो। काम एक बहुत ही गहरे प्रवेश करने वाली शक्ति है। मन कभी किसी चीज में सीधा प्रवेश नहीं करता; काम सीधा ही प्रवेश करता है। काम के पास कोई अमूर्तता नहीं है, मन के पास कोई ठोस अस्तित्व नहीं है। इसलिए काम तुम्हारे भीतर पृथ्वी है, और मन आकाश है। काम जड़ है तम्हारे भीतर, मन फूल है।

इसलिए जब भी मन जानना चाहता है कि क्या है जीवन—ऊर्जा, कि क्या है ब्रह्म तो उसके पास एक्, ही उपाय है कि वह जड़ों पर लौट आये, क्योंकि वे जड़ें उस विराट में फैली हैं, वे जड़ें उस जीवन —ऊर्जा में गहरे गई हैं। काम के द्वारा, मन पुन: वापस पीछे उद्गम पर लौट सकता है। यदि तुम सोचते ही रही तो तुम गोल—गोल घूमते रहोगे और बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं है। तुम बड़े—बड़े दार्शनिक सिद्धात निर्मित कर सकते हो, बड़ी—बड़ी पद्धतियां बना सकते हो, लेकिन वे सिर्फ धारणाएं, कल्पनाएं, कोरे शब्द मात्र ही रहेंगे, वे कभी सत्य नहीं हो सकते। मन केवल तभी जान सकता है जब वह पुन: जड़ों पर उतर आये, उद्गम तक, स्रोत तक पहुंच जाये। और उस स्रोत से ब्रह्म को जाना जा सकता है।

अब फिर पश्चिमी खोजों के द्वारा संसार उस जगह आ गया है जहां कि मन सर्वोपरि हो गया है। इसी कारण काम के बारे में इतनी खोज, इतनी दिलचस्पी, इतना चिंतन पश्चिम में चलता है। ईश्वर को हटा दिया गया है। अभी पश्चिम में ईश्वर आधारभूत समस्या नहीं है. आधारभूत समस्या है काम। और यदि इस रहस्य में प्रवेश किया जा सके, केवल तभी ईश्वर एक प्रकार से पुन: एक जीवंत समस्या हो सकेगा। तो पश्चिमी विचारक लगातार काम के रहस्य के बारे में सोच रहे हैं कि यह क्या है?

उमा इंद्र के समक्ष प्रकट हुई और इंद्र ने उमा से पूछा, ”यह शक्ति कौन थी? यह दिव्यात्मा कौन थी? यह उपस्थिति किसकी थी जो मेरे सामने विलीन हो गई? ” यही सवाल मन भी काम—ऊर्जा से पूछता है. ”जीवन क्या है? ईश्वर क्या है? ब्रह्म क्या है? ” काम—केंद्र से पूछना, यही तंत्र है। तंत्र का अर्थ है, काम का योग। यह बात भविष्यवाणी की तरह कही जा सकती है कि आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए केवल तंत्र ही सहायक सिद्ध हो सकता है, क्योंकि तंत्र ही उस रहस्य को जानता है कि उमा से कैसे पूछा जाये, कि काम—केंद्र से, काम—ऊर्जा से कैसे पूछा जाये कि ऊर्जा का परम स्रोत क्या है।

और उमा ने उत्तर दिया।

”वह यक्ष ब्रह्म था ” उमा ने कहा

उमा ने उत्तर दिया कि वह उपस्थिति ब्रह्म ही थी। काम दो चीजों का उत्तर दे सकता है—पुरुष के लिए स्त्री उत्तर है, स्त्री के लिए पुरुष उत्तर है। यदि तुम सही तरीके से पूछ सको तो काम गहरे से गहरा उत्तर हो सकता है। लेकिन खतरे भी हैं।

यदि तुम सही ढंग से नहीं पूछ सके तो काम तुम्हारे लिए दुख का कारण बन जायेगा। तब काम तुम्हारे लिए बड़े से बड़ा पतन का कारण हो जायेगा। यदि तुम सही तरीके से पूछ सको, तो काम तुम्हारे लिए गहनतम रहस्य होगा जो कि जाना जा सकता है। लेकिन यदि तुम गलत ढंग से पूछो तो काम तुम्हारे लिए सबसे बड़ी खाई साबित हो सकता है। ऐसा होगा ही क्योंकि काम एक ऊंचाई है। यदि तुम उस ऊंचाई की ओर गलत ढंग से चले तो तुम गिरोगे।

ईसाइयत काम को सिर्फ पतन समझती है। और तंत्र काम को सही उत्तर समझता है। ईसाइयत और तंत्र दोनों एक—दूसरे के विपरीत हैं। केवल ईसाइयत ही नहीं, जैन धर्म, और भी दूसरे धर्म काम के बहुत विरोधी हैं। उनके विरोध का एक कारण है। कारण यह है कि पचास प्रतिशत तो गिरने की ही संभावना है। यह खतरनाक है। इसलिए किसी और रास्ते से चलो जहां यह पचास प्रतिशत गिरने की संभावना नहीं हो। और यह पचास प्रतिशत गणित के हिसाब से है। वास्तव में तो निन्यानबे प्रतिशत है, क्योंकि काम का इतना आकर्षण है और काम इतनी अचेतन शक्ति है कि इसके साथ प्रयोग के दौरान जागे हुए रहना, ध्यानपूर्ण रहना कठिन है। तुम मूर्च्छित हो जाओगे। और यदि तुम संभोग के उस चरम क्षण में मूर्च्छित हो जाते हो तो तुम कहीं नहीं पहुंचते।

निन्यानबे प्रतिशत तो संभावना है कि तुम काम वे द्वारा नीचे गिरोगे। केवल एक प्रतिशत संभावना है कि तुम ऊपर उठ सको। लेकिन तंत्र कहता है कि इस गिरने के प्रतिशत को सही विधियों के द्वारा कम किया जा सकता है। और किसी स्त्री या किसी पुरुष को प्रशिक्षित किया जा सकता है। तब संभोग एक कला हो जाता है—महानतम कला। और यदि तुम्हें वह कला— आती है तो तुम बहुत सजगता से, बड़ी संवेदनशीलता से उसमें उतरते हो। और तब यह केवल एक क्षणिक सुख, एक राहत नहीं होती। तब वह एक पवित्र पूजा हो जाती है।

अत: तंत्र पहले लोगों को काम—रहित होने का प्रशिक्षण देता है। तंत्र पहले उस बिंदु तक पहुंचना सिखाता है जहां काम तुम्हारे लिए एक विक्षिप्तता न रह जाये। तंत्र पहले तुम्हें पूर्णत: अनासक्त, निर्वासना होना सिखाता है। एक नग्न सुंदर स्त्री तांत्रिक, तंत्र—साधक के सामने बैठी होगी, और उसे उस स्त्री पर, उसकी सुंदरता पर ध्यान करना होगा, लेकिन ऐसे जैसे कि वह कोई दिव्य —शक्ति हो। और उस भीतर दखते रहना होगा कि कोई वासना तो नहीं उठ रही है। यदि वासना उठती है तो बात चूक गई।

यह सर्वाधिक कठिन बात है। महीनों तक साधक को वासना के ऊपर उठने का अभ्यास करना पड़ता है। और जब एक सुंदर स्त्री, एक सुंदर फूल की भांति प्रतीत होने लगे, और उसके मन में कोई वासना नहीं हो, केवल तब ही गुरु उस साधक को अनुमति देगा कि वह बिना किसी कामवासना के उस स्त्री के पास जाये, बिना किसी कामवासना के उस स्त्री में प्रवेश करे। तब यह एक ध्यान हो जाता है। तो फिर वह संभोग का मिलन जागतिक हो जाता है। तब वहा व्यक्ति नहीं बचते, क्योंकि व्यक्ति होते है वासना, कामना, लोलुपता के कारण। तब प्रेम घटित होता है, और यह प्रेम ही प्रार्थना है। और एक—दूसरे के माध्यम से वे उस विराट में प्रवेश कर जाते हैं जो हम सबको घेरे हुए है।

काम तुम्हें उत्तर दे सकता है, और यदि तुम अतिबुद्धिवादी हो गये हो, तो केवल काम ही तूम्हें उत्तर दे सकता है। किसी भी बुद्धिवादी युग को काम से पूछना पड़ेगा। यदि तुम अपने मस्तिष्क में बहुत ज्यादा केंद्रित हो गये हो तो तुम्हें पीछे दूसरे सिरे पर लौटना होगा। केवल तभी तुम्हारे भीतर दो विपरीप ध्रुव मिलते हैं, और तुम एक इकाई बनते हो।

उमा ने कहा " वह यक्ष ब्रह्म था! "

काम के गहरे अनुभव के बाद, ध्यानयुक्त संभोग के बाद ही तुम जानोगे कि यह काम—ऊर्जा और कुछ नहीं; बल्कि दिव्य—ऊर्जा है। तब संभोग ही समाधि हो जाता है।

उमा ने कहा "ब्रह्म की विजय के कारण ही वस्तुत:, तुम यह गौरव प्राप्त कर सके हो " उमा के इन शब्दों से ही इंद्र समझ सका कि वह यक्ष ब्रह्म था

मन सीधा नहीं समझ सकता। काम मध्यस्थ हो जाता है, उमा माध्यम हो जाती है। और उस माध्यम के द्वारा इंद्र समझ सका कि वह दिव्यात्मा कौन थी, वह दिव्य—उपस्थिति कौन थी। मन को माध्यम चाहिए, क्योंकि मन अमूर्त है, और सत्य अमूर्त नहीं है। मन किसी माध्यम के द्वारा ही, किसी रूपांतरणकर्ता के माध्यम से ही सत्य के संपर्क में आ सकता है।

यूनानी दर्शन इसी कारण रास्ता भटक गया, क्योंकि वे पूर्णत: मन पर ही निर्भर हो गये, तर्क पर ही ठहर गये, और उन्होंने सोचा कि किसी और चीज की जरूरत नहीं है—बस चिंतन—मनन किये जाओ और चिंतन से ही सत्य की उपलब्धि हो जायेगी। यह उपलब्धि अभी तक नहीं हुई। यूनानी दर्शन फैलता जाता है। उसने अपनी भूमि बदल ली है। उसने अपना घर बदल लिया है, उसने पश्चिमी विचार के पूरे इतिहास की यात्रा कर ली है।

एथेंस में जो सरिता पैदा हुई थी, वह बर्लिन से, पेरिस से, लंदन से, न्यूयार्क से होकर बही। वह बहती ही रही है, लेकिन सिर्फ और—और शब्द ही देती है। उसने हीगल और काट दिये, उसने बर्कले तथा ह्मुम दिये, उसने रसल तथा विटगिस्टीन दिये—लेकिन शब्द और शब्द और शब्द। वह एक भी बुद्ध पैदा नहीं कर सकती, वह एक भी जीसस पैदा नहीं कर सकती—वह अनुभव नहीं पैदा कर सकती। और अब पश्चिम तंत्र में रस लेने लगा है। यह एक नया मोड़ हो सकता है। मस्तिष्क फिर वापस जड़ों की ओर लौट रहा है।

उमा के द्वारा इंद्र ने जाना कि वह यक्ष ब्रह्म ही था, कि यह जो उपस्थिति थी जो विलीन हो गई — और उसके स्थान पर उमा, एक सुंदर स्त्री दिखलाई पड़ने लगी, एक काम का प्रतीक दिखलाई पड़ ने लगा—वह उपस्थिति ब्रह्म था। काम तुम्हें उत्तर दे सकता है कि जीवन की वास्तविकता क्या है, क्योंकि काम ही तुम्हारे भीतर सर्वाधिक जीवंत चीज है। मन तुम्हारे भीतर सबसे मृत चीज है, और काम तुम्हारे भीतर सबसे जीवंत शक्ति है। इसीलिए मन सदा काम के विरुद्ध होता है, और मन सदैव काम को दबाता है, उसका दमन करता है। वे शत्रु हैं। मन एक मृत चीज है, और काम जीवन—ऊर्जा है; वे दोनों एक दूसरे से लड़ते रहते हैं। और जब भी तुम काम में उतरते हो, मन विषाद से भर जाता है, और मन कहता है, "यह गलत है। इसमें फिर कभी नहीं जाना है।"

मन बड़ा नैतिकतावादी हो जाता है, मन बड़ा प्यूरिटन हो जाता है, मन बड़ा पंडित हो जाता है। मन सदैव निंदा करता रहता है। जो भी जीवंत है मन उसकी निंदा करता है और जो कुछ भी मर चुका है, मन उसकी पूजा करता है। और काम तुम्हारे भीतर सर्वाधिक जीवंत शक्ति है, जीवन उसी से आता है। तुम उसी से जन्मे हो, तुम उसी के द्वारा जन्म देते भी हो। जहा कहीं भी जीवन है, जीवंतता है, वहा काम ही उसका स्रोत है। मनुष्य में ही नहीं, ये वृक्ष भी कामुकता लिए हुए हैं। फूल क्या हैं, कुछ भी नहीं सिर्फ बीजों को पका रहे हैं। वे भी काम से भरे हैं। पशु भी काम—ऊर्जा से भरे हैं।

और अब तो वैशानिकों को लगने लगा है कि काम शायद पदार्थ में भी मौजूद है, क्योंकि वहां भी पुरुष और स्त्रैण का ध्रुवीकरण है। एक छोटे से छोटे परमाणु में भी एक धनात्मक शक्ति होती है, और एक ऋणात्मक शक्ति होती है। और वे ही दो शक्तियां सब कुछ निर्मित करती हैं। इन दोनों शक्तियों में जो सतत संघर्ष चलता है और जो सतत मिलन चलता है—संघर्ष और मिलन, आकर्षण और विकर्षण—यही ऊर्जा पैदा करता है।

सारा अस्तित्व दो विपरीत शक्तियों का सृजन है।

इसलिए जब भी तुम जीवन के निकटतम होते हो, तो तुम काम के निकटतम होते हो। या इससे उल्टा : जब भी तुम काम के निकटतम होते हो तो तुम जीवन के निकटतम होते हो। तुम जवान हो, जब काम—ऊर्जा जवान है; तुम के हो जब काम—ऊर्जा बूढ़ी है।

अभी वैज्ञानिक कहते हैं, जीवविज्ञानी कहते हैं कि यदि हम काम—ग्रंथियों को बदल सकें तो ही बुढ़ापा रोका जा सकता है—क्योंकि यदि काम—ग्रंथियां युवा हैं तो सारा शरीर युवा रहेगा। यदि काम—ग्रंथियां की हो गई हैं, तो फिर तुम शरीर को युवा रखने के लिए कुछ भी नहीं कर सकते।

इसके लिए हमेशा प्रयत्न किये गये हैं। सारे जगत में सारी मेडिकल खोज मनुष्य को ज्यादा समय तक जीवित, ज्यादा जवान रखने की कोशिश करती रही है, लेकिन अभी सही बिंदु पकड़ में आया है। काम—ग्रंथियां पहले बूढ़ी हो जाती हैं, और उसके पीछे सारा शरीर चलता है। तुम्हारी काम—ग्रंथिया ही पहले युवा होती हैं, उसके बाद उसके पीछे शरीर चलता है। अत: यह सारे शरीर का प्रश्न नहीं है, यह सिर्फ काम—केंद्र का ही प्रश्न है। यदि काम—केंद्र युवा है तो तुम जीवन के अधिक निकट हो, यदि काम —केंद्र का हो गया है, तो तुम मृत्यु के ज्यादा निकट हो।

किसी दिन—अब यह संभावना है—हम काम—ग्रंथियों को बदलने में सक्षम हो जायेंगे। एक बार हम काम—ग्रंथियों को बदल सकें तो फिर आदमी सदा युवा रह सकता है; शरीर उसके पीछे अनुसरण करेगा। शरीर तो सिर्फ अभिव्यक्ति है। तुमने यह शायद सोचा न होगा, लेकिन काम—केंद्र ही तुम्हारे सारे शरीर का केंद्र है। सारा शरीर सिर्फ उसके चारों ओर एक वर्तुल है। जीवविज्ञानी कहते हैं कि पूरा शरीर काम—केंद्र को जीवित रखने के लिए ही है। शरीर तो सिर्फ स्थिति है जिसमें सेक्स के हारमोन्स रह सकते है और सुरक्षित रहते हैं। काम—ग्रंथियां शरीर के लिए नहीं हैं, शरीर काम—ग्रंथियों के लिए है।

जैसे ही काम—ऊर्जा यात्रा आगे बढ़ गई और उसने जन्म दे दिया, उसके बाद शरीर बूढ़ा होता जाता है। एक बार काम—ऊर्जा समाप्त हो गई, तो उसके बाद शरीर व्यर्थ है। अब यह घर रहने लायक नहीं रहा। अब ऊर्जा नया घर ढूंढेगी अपने रहने के लिए। अब यह ऊर्जा रहने के लिए नया घर ढूंढेगी जो कि ज्यादा जीवंत होगा, ज्यादा युवा होगा, ताकि जीवन—ऊर्जा आगे, और आगे बढ़ सके।

तुम एक फल देखते हो; फल के गहरे में छिपे उसके बीज हैं। फल होता ही बीजों को बचाने के लिए है, उन्हें जीवन देने के लिए, उन्हें भोजन देने के लिए। बीज फल के लिए नहीं हैं। फल है बीजों की सुरक्षा के लिए, और जैसे ही बीज तैयार हो गया, फल बेकार हो जाता है। फल पकेगा, गिर जायेगा, क्योंकि सिर्फ बीजों के लिए ही उसकी आवश्यकता थी। जब बीज एक नये जीवन के लिए तैयार हो गये तो फल पक जायेगे और वृक्ष से गिर जायेगा। फल क्यों वृक्ष से नीचे गिर जाता है? क्योंकि बीज अब नीचे जमीन में पहुंचना चाहता है। अब वे तैयार हैं, अब वे नीचे जमीन में प्रवेश करना चाहते हैं, गर्भ में जाना चाहते तैं।

जब तुम काम से भरते हो तो तुम सोचते हो कि तुम विचार से उसे दबा सकते हो। लेकिन तुम उसे नहीं दबा सकते, क्योंकि अब बीज तैयार हो गये हैं किसी स्त्री के भीतर प्रवेश करने के लिए, और वे बीज संघर्ष कर रहे हैं गति करने के लिए। इसलिए तुम चाहे कुछ भी करो, सिर्फ मन से तुम कुछ भी नहीं कर सकते क्योंकि गहरे में तो मन बीजों के लिए ही है, न कि बीज मन के लिए हैं। वे संघर्ष करेंगे और वे तुम्हें हरा देंगे। वे तुम्हारे शरीर से बाहर निकल जायेंगे, क्योंकि तुम्हारा शरीर सिर्फ एक घर था उनके लिए—एक फल था। अब बीज तैयार हो गये हैं। वे तुम्हारे शरीर से बाहर आना चाहते हैं। वे किसी भी भांति यात्रा करेंगे। यदि तुम किसी स्त्री के साथ प्रेम नहीं करोगे तो वे सपने में निकल जायेंगे। लेकिन अब वे बाहर आना चाहते हैं, वे अब तैयार हैं—दूसरे शरीर में रहने के लिए, जीवन को एक कदम और आगे के लिए तैयार।

जब तक तुम इस काम—केंद्र को नहीं समझ लेते हो, और जब तक तुम भीतर गहरे में कुछ नहीं करते हो, तक तुम ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं हो सकते। तथाकथित ब्रह्मचारी सिर्फ तथाकथित ही हैं। वे भले ही किसी स्त्री से प्रेम नहीं कर रहे हों—वह इतना मुश्किल नहीं है—लेकिन वीर्य के बीज बाहर जा रहे है; उन्हें नहीं रोका जा सकता। वे ईमानदार नहीं हैं, इसलिए वे कहेंगे नहीं, लेकिन एक ईमानदार आदमी कह देगा।

माहात्मा गाधी ने कहा है—और वे बहुत ईमानदार व्यक्तियों में से एक थे—कि सत्तर वर्ष की उम्र में भी उन्हें स्वप्नदोष होता था। उन्होंने कहा है, "जहां तक चेतन मन का सवाल है मैंने काम पर नियंत्रण कर लिया है, लेकिन जिस क्षण मैं सो जाता हूं तब मैं कुछ भी नहीं कर सकता। सपने में काम की कल्पना जग जाती है, और वीर्य बाहर निकल जाता है। " वे एक ईमानदार व्यक्ति थे।

काम— ऊर्जा को केवल तभी रूपांतरित किया जा सकता है जब काम विराट के लिए द्वार बन जाये। और एक बार तुम इस रहस्य को जान लो कि काम विराट में प्रवेश का द्वार बन सकता है, तो फिर कुंजी तुम्हारे हाथ में है—और केवल वह कुंजी ही तुम्हें ब्रह्मचारी बना सकती है। क्यों? क्योंकि अब तुम उच्चतर जीवन को जन्म दे सकते हो। अब यही काम—ऊर्जा एक उच्चतर जीवन को जन्म दे सकती है, लेकिन से जन्म देना ही होगा। यदि कोई ऊर्ध्व गति न हो, तो यह नीचे के जगत की ओर बहेगी। लेकिन यह कहीं जाएगी ऊर्जा को गति।

तंत्र ने कुछ रहस्य खोजे हैं जिनसे काम द्वारा एक उच्चतर जीवन निर्मित किया जा सकता है—शरीर नहीं, बल्कि एक उच्चतर ऊर्जा। और एक बार तुम जान लेते हो कि उस ऊर्जा को कैसे निर्मित करते हैं तो काम, काम की तरह खो जाता है। वह एक ऊंचे आयाम की ओर गति करने लगता है।

तंत्र कहता है—और तंत्र के पास ऐसी विधियां हैं जो कि उन सब के लिए सही सिद्ध हुई हैं जिन्होंने उन पर प्रयोग किया है—कि जब एक स्त्री और एक पुरुष गहन संभोग के शिखर पर होते हैं... साधारणत: यह स्थलन में परिणत हो जाता है; आदमी स्खलित हो जाता है और अनुभूति समाप्त हो जाती है, लेकिन तात्रिक संभोग—शिखर बिना स्थलन के होते हैं। सिर्फ दो ऊर्जाएं मिलती हैं—शारीरिक तल पर नहीं, वे ऊर्जाएं अभौतिक तल पर मिलती हैं। और जब वे और गहरे तल पर मिलती हैं तो वे आध्यात्मिक तल पर मिलती हैं, और वह मिलन ही द्वार बन जाता है और ऊर्जा बहने लगती है। वह सृजनात्मक हो जाती है। वह तुम्हें एक नये तल पर जन्म देती है। काज—ऊर्जा जैसे—जैसे उच्चतर तलों पर गति करती है वैसे—वैसे तुम उच्चतर तलों पर जन्मने लगते हो, और तुम अतिमानव होने लगते हो।

काम उत्तर बन सकता है यही इस कहानी का संदेश है।

उमा ने कहा कि वह यक्ष स्वयं ब्रह्म ही था।

"बल की विजय के कारण ही वस्तुत:, तुम गौरव प्राप्त कर सके हो। "

इसलिए मनुष्य जो भी प्राप्त करता है, वह इस जीवन —ऊर्जा के कारण ही प्राप्त करता है। निम्नतम तल पर वही जीवन—ऊर्जा काम—ऊर्जा कहलाती है और उच्चतम शिखर पर वह ब्रह्म के नाम से जानी जाती है। और मन सदा निम्नतम पर ही पहुंच सकता है। इसीलिए उमा प्रकट हुई। और मन उस निम्नतम से ही धीरे—धीरे शिखर तक पहुंच सकता है। वह निम्नतम माध्यम बन जायेगा।

उमा के इन शब्दों से ही इंद्र समझ सका कि वह यक्ष ब्रह्म था।

इसलिए वास्तव में ये देवता—अग्नि, वायु और इंद्र— दूसरे सब देवताओं से श्रेष्ठ हैं क्योकि वे यक्ष के निकटतम पहुंचे वे पहले थे जिन्होंने उसे ब्रह्म की भांति जाना।

तीन देवता—अग्नि, वायु, इंद्र। तुम्हारे शरीर में तुम्हारी आंखें अग्नि का प्रतिनिधित्व करती हैं, तुम्हारे कान वायु का प्रतिनिधित्व करते हैं, और तुम्हारा मन इंद्र का प्रतिनिधित्व करता है। तुम्हारा शरीर एक लघु

ब्रह्मांड है। जो ब्रह्मांड में है वह तुम्हारे शरीर में भी है। तुम इस सारे ब्रह्मांडीय अस्तित्व के, इस सारे घटनाक्रम के एक छोटे—से प्रतिनिधि हो।

तो अब हम इन प्रतीकों को समझें। अग्नि, वायु तथा इंद्र सब देवताओं में श्रेष्ठ हैं। जो भी तुम ब्रह्म के विषय में जानते हो वह या तो कानों से या आंखों से या मन से जाना जाता है। तुमने उसके विषय में सुना है. यह कानों के द्वारा जानना हुआ—वायु। सारे शास्त्र कानों के लिए हैं—वायुदेव। सारी श्रुतियां, स्मृतियां, वह जो भी जाना गया है और लिखा गया है—वह सब तुम्हारे कानों के लिए है।

कान तुम्हें एक झलक दे सकते हैं, पहली झलक। किंतु यदि सारे शास्त्रों को नष्ट कर दिया जाये और कोई भी तुम्हें परमात्मा के बारे में कुछ नहीं कहे, तो भी तुम्हारी आंखें महसूस करेंगी। तुम्हारी आंखें उस अज्ञात की झलक पायेंगी जो कि सब जगह छिपा हुआ है। इसीलिए हम अपने ऋषियों को द्रष्टा कहते हैं, क्योंकि आंखों से ही उन्होंने उसकी पहली झलक देखी थी।

इसीलिए इस कहानी में अग्नि सबसे पहले ब्रह्म के निकट जाता है। अग्नि सर्वप्रथम ब्रह्म के पास जाता है, इसका मतलब है—आंखें तुम्हें पहली झलक देती हैं। तुम उसे नहीं पहचान सकते यह सही है, लेकिन फिर भी आंखें उसे छू लेती हैं। उन्हें ऐसा अनुभव होता है कि कुछ वहां पर जरूर है, अनजाना। जब तुम्हारी आंखों ने जाना हो, महसूस किया हो, वे संपर्क में आयी हों, केवल तभी जो कुछ भी सुना गया है वह अर्थपूर्ण होता है। इसलिए शास्त्र किसी काम के सिद्ध नहीं होंगे जब तक कि तुम्हारी आंखों ने तुम्हारे चारों तरफ जो सत्य फैला है उसे स्पर्श नहीं किया है। जब तुम कुछ देख सकते हो तभी शास्त्र भी सत्य होते हैं। केवल तुम्हारे देखने से ही शास्त्र सत्य हो पाते हैं।

इसीलिये उसके बाद वायु ब्रह्म के पास गया। लेकिन केवल आंखों से या कानों से तुम उसे पहचन नहीं सकते। तब तुम्हारा मन सहायक हो सकता है। लेकिन जब मन पहुंचता है तो वह पहुंच अमूर्त होती है, और ब्रह्म अदृश्य हो जाता है।

ऐसे दार्शनिक हुए हैं जिन्होंने सिर्फ आंखों पर ही विश्वास किया, जैसे चार्वाक। वे कहते हैं। कि प्रत्यक्ष—जो आंखों के सामने हो—वही केवल सत्य है। वे केवल आंखों पर विश्वास करते हैं, इर्सलाए " वे कहते हैं कि जो भी दिखाई पड़ता है केवल वही सत्य है, और चूंकि परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता सलिए वह सत्य नहीं है।

और ऐसे भी दार्शनिक हुए हैं जैसे कि मीमांसक, जो कहते हैं कि जो भी उसके बारे में सुना गया हे केवल वही सत्य है—वेद सही हैं—और उस ईश्वर को अन्यथा नहीं जाना जा सकता। वेद अंतिम प्रमाण है। वे वायु देवता में विश्वास करते हैं। और फिर तर्कवादी हैं जो कि कहते हैं कि केवल मन से, मस्तिष्क से ही तुम जान सकते हो, दूसरा कोई मार्ग जानने का नहीं है। तर्कवादी सारे जगत में हैं। वे कहते हैं कि केवल, तर्क से ही तुम सत्य को जान सकते हो।

ये तीन द्वार हैं; आंखों के द्वारा, कानों के द्वारा, मन के द्वारा। और फिर चौथा द्वार है तंत्र, जो कि कहता है कि मन को काम के द्वारा पहुंचना होगा—केवल तभी तुम सत्य को जान सकोगे।

यह सूत्र कहता है :

इसत्रिए वास्तव में ये देवता—अग्नि वायु और इंद्र— दूसरे सब देवताओं से श्रेष्ठ हैं क्योकि वे यक्ष के निकटतम पहुंचे। वे पहले थे जिन्होंने उसे ब्रह्म की भांति जाना ??

और इसीलिए इंद्र दूसरे सब देवताओं से श्रेष्ठ' है क्योकि वह यक्ष के निकटतम पहुंचा; उसने सर्वप्रथम उसे ब्रह्म की भांति जाना।

इसलिए मन निकटतम है, लेकिन किसी माध्यम के द्वारा ही। अकेला वह वर्तुल में घूमता रहता है और कहीं नहीं पहुंचता।

उस ब्रह्म के बारे में यह उपदेश है वह बिजली की चमक की भांति है वह पलक के झपकने की भांति है, यह अधिदैवतम्—उसकी वैश्विक अभिव्यक्ति— के संदर्भ में है।

अब अध्यात्म—उसकी मानुषिक अभिव्यक्ति— के संदर्भ में उसका वर्णन : मन ब्रह्म की ओर मानो पूरी गति से जाता है। मनुष्य के मन द्वारा भी इस ब्रह्म को ऐसे स्मरण किया जाता है और उसकी ऐसी कल्पना की जाती है जैसे कि वह सदा निकट ही है।

तो पूरी कहानी एक विशेष निष्कर्ष पर पहुंचती है। तुम परम सत्य तक इंद्रियों के द्वारा भी पहुंचने का प्रयास कर सकते हो; तुम उसे स्पर्श भी कर लोगे, लेकिन तुम उसे पहचान नहीं सकोगे। तुम उस परम सत्य तक मन के द्वारा भी पहुंच सकते हो, और अब तुम उसे पहचान भी सकते हो, लेकिन वह तुम्हारे समाने से विलीन हो जायेगा।

तुम्हारे भीतर जो जीवन—ऊर्जा है उसके साथ तुम्हारा तर्क जुड़ जाना चाहिए। तुम्हारा तर्क, तुम्हारा विचार, तुम्हारी जीवन—ऊर्जा के साथ समग्र हो जाये, वह अलग से कार्य नहीं करे। तुम्हारा मस्तिष्क इस तरह कार्य न करे जैसे तुम्हारी जीवन—ऊर्जा से पृथक हो, वह उसी में जड़ें जमाये हो। और तुम अपने सुस्पष्ट मन से विराट में गति करो और उसके साथ तुम्हारी जीवन—ऊर्जा भी जुड़ी हों—दोनों साथ हों। तुम्हारी जीवन—ऊर्जा माध्यम हो जायेगी। तुम्हारा मन इस तरफ होगा, तुम्हारे मन और ब्रह्म के बीच में तुम्हारी जीवन—ऊर्जा होगी, और केवल उस जीवन—ऊर्जा, उमा के द्वारा, तुम उसे जान सकोगे और पहचान सकोगे।

उस परम का अनुभव तुम्हारी अखंडता में होता है। तुम उसके पास हिस्सों में नहीं पहुंच सकते। सारे हिस्से असफल हो जायेंगे। तुम्हारे सारे हिस्से एक अखंड हो जाने चाहिए जब तुम उस परम के पास जाओ, केवल तभी तुम उसे जान सकोगे। यही कुंजी है, यही इस पूरी कहानी का तात्पर्य है। तुम उस परम के पास एक समग्र, अखंड की भांति जाओ, अपनी सारी इंद्रियों के साथ, अपने सारे तर्क के साथ, अपनी जीवन—ऊर्जा के साथ, काम के साथ—कुछ भी छोड़ नहीं देना है। तुम टुकड़ों में मत जाओ—तुम उस परम के पास एक ईकाई की भांति जाओ—अखंड, संपूर्ण।

तब दो घटनाएं घटेंगी : एक तो बिजली की भांति विराट तुम्हारे सामने प्रकट होगा। जैसे कि अचानक अंधेरा हट गया और बिजली चमक गई और उस चमक में सभी कुछ दिखलाई पड़ गया। जब भी तुम समग्र होते हो, अचानक बिजली चमकती है। तुम्हारे अस्तित्व की समग्रता से ही ऐसी स्थिति बन जाती है कि यह सारा अस्तित्व प्रकाशित हो जाता है। सारा अंधेरा विलीन हो जाता है। एक क्षण में सब उदघटित हो जाता है।

स्मरण रहे कि वह परम हिस्सों में प्रकट नहीं होता, इसीलिए बिजली चमकने का उपयोग किया गया है। यदि तुम किसी जंगल में एक लालटेन लेकर जाओ तो वह जंगल हिस्सों में प्रकट होगा। कभी तुम कुछ वृक्ष देखोगे, और फिर तुम आगे चलोगे, और तब तुम्हें और दूसरे वृक्ष दिखलाई पड़ेंगे। लेकिन जो वृक्ष पहले देखे थे वे विलीन हो जायेंगे। वे अंधेरे में चले जायेंगे। यदि तुम एक लालटेन लेकर किसी जंगल में जाओ तो अलग—अलग हिस्सों में जंगल प्रकट होगा। ब्रह्म कभी हिस्सों में प्रकट नहीं होता। लेकिन तुम एक घने जंगल में खड़े हो और तभी बादलों में बिजली चमक जाती है, और सारा जंगल उस एक कौंध में प्रकट हो जाता है।

इसलिए तुम यह नहीं कह सकते, ”मैंने ब्रह्म को पांच प्रतिशत, दस प्रतिशत, पंद्रह प्रतिशत जाना है। ” जब भी तुम उसे जानते हो, सौ प्रतिशत ही जानते हो। या तो तुम सौ प्रतिशत ही जानते हो या फिर तुम नहीं जानते हो। तुम उस परम को हिस्सों में नहीं जान सकते। वह अविभाज्य है। जैसे बिजली चमकती है, जब

तुम तैयार होते हो तो परम सत्य तुम्हारे समक्ष प्रकट हो जाता है। और वह इतने कम समय में प्रकट होता है कि उसे समय का हिस्सा भी नहीं कह सकते।

अत: दो बातें : स्थान की भांति ब्रह्म समग्ररूप से प्रकट होता है, और समय की भाति इसमें एक क्षण भी नहीं लगता। यह पलक के झपकने की तरह है—जैसे कि तुमने पलक झपकाई हों—इतना ही समय लगता है। वास्तव में तो इतना समय भी नहीं लगता है—एक कौंध, बिजली का कौंध जाना! सारा विस्तार, ब्रह्म की सारी घटना जान ली जाती है—और बिना एक क्षण भी बीते। वह विभाजित नहीं है, न तो स्थान में और न समय में।

तुम मुझे सुन रहे हो; मैं एक वाक्य बोलूंगा, फिर समय गुजरता है। फिर मैं दूसरा वाक्य बोलूंगा और फिर समय बीतेगा। तुम मुझे समग्ररूप से एक साथ नहीं सुन सकते, ऐसी कोई संभावना नहीं है। समय वहां होगा ही। तुम मुझे हिस्सों में सुनोगे। लेकिन ब्रह्म को बिना समय के सुना जाता है, ब्रह्म को बिना समय के जाना जाता है।

इसलिए, उपनिषद उसे शाश्वत कहते हैं, समयरहित, समयातीत, कालातीत, स्थानातीत कहते है। एक क्षण के मिलन में समय और स्थान दोनों विलीन हो जाते हैं। सब प्रकट हो जाता है। इसीलिए उपनिषद कहते हैं कि उस एक को जानने से सब जान लिया जाता है। एक को जानकर सभी कुछ जान लिया जाता है! वह एक ब्रह्म है। उसमें एक समग्र इकाई की भाति प्रवेश करो।

जे. कृष्णमूर्ति अमूर्त शब्दावली में बात करते रहते हैं। सारा दृष्टिकोण बौद्धिक मालूम पड़ता है। जैस कि सिर्फ बुद्धि का ही उपयोग करना है, शरीर की उसमें संलग्न होने की कोई भी जरूरत नहीं है, भावों के प्रवेश की कोई भी आवश्यकता नहीं है; केवल शुद्ध मस्तिष्क। जैसे कि ब्रह्म कोई गणित की समस्या हो। नहीं, ऐसा नहीं है। यह एक जीवंत प्रश्न है।

कृष्णमूर्ति को सुनते समय तुम सिर्फ मस्तिष्क को ही सुन रहे हो—शुद्धतम मस्तिष्क। तुम्हें अच्छा लगेगा। सुनकर तुम्हें लगेगा कि जैसे तुम सब समझ रहे हो। सुनकर तुम्हें लगेगा कि जैसे तुम कहीं पहूंच रहे हो। लेकिन तुम सिर्फ नए शब्द सीख रहे हो। तुम सीख लोगे 'सजगता'—केवल शब्द, न कि वास्तव में सजगता। तुम सीख लोगे 'चुनावरहितता' —कोरा शब्द, न कि चुनावरहितता। और वे शब्द तुम्हारे मस्तिष्क में चले जायेंगे, और वे तुम्हारे मस्तिष्क में घूमते रहेंगे और तुम सिर्फ मस्तिष्क रह जाओगे—एक बौद्धिक केंद्र। तुम्हारे भाव अस्पर्शित ही रह गये, तुम्हारा शरीर अनछुआ ही रह गया। केवल तुम्हारे मन को छुआ गया।

इसीलिए कृष्णमूर्ति असफल रहे। वे स्वयं तो ज्ञान को उपलब्ध हैं, लेकिन वे असफल रहे। अपनी सारी जंदगी भर वे मन से ही कोशिश करते रहे, और वे जो भी कहते हैं वह सही है, लेकिन वह काम में नहीं आ सकता क्योंकि तुम केवल मन ही नहीं हो। तुम उससे बहुत ज्यादा हो। और उस बहुत ज्यादा को मन के साथ —साथ रूपांतरित करना है। तुम्हें एक समग्रता की भाति रूपांतरित होना है।

तुम ईश्वर के बारे में सिर्फ सोचते ही मत रहो, बल्कि तुम्हें उसके साथ नृत्य भी करना है। तुम कोरी धारणाएं ही न बनाते रहो, बल्कि तुम्हारे पास उसके लिए भावनाएं भी होनी चाहिए। तुम उसे चखो, वह तुम्हारी श्वास बने, तुम उसके साथ चलो, तुम उसके साथ नाचो। तुम्हें एक समग्रता में आना है, एक जीवंत इकाई की भांति। और जब तुम एक जीवंत इकाई की भांति, बिना विभाजित हुए आते हो, तब ही वह अविभाज्य प्रकट होता है। यदि तुम बंटे—बंटे, टुकड़ों में आते हो तो वह अविभाज्य प्रकट नहीं हो सकता। जब तुम अनबंटे होते हो, तो तुम उस अविभाज्य के लिए दर्पण हो जाते हो। तुम उसे प्रतिबिंबित करने लगते हो, वह तुम्हारे भीतर से झांकता है। जब तुम बंटे हुए होते हो तो तुम जो भी देखते हो वह भी बंटा हुआ दिखलाई पड़ता है।

यह ऐसे ही है जैसे एक झील हो। झील पर लहरें हैं और उधर आकाश में पूरा चाद है। लेकिन चांद प्रतिबिंबित नहीं हो सकता—झील अशांत है। इसलिए झील चांद को टुकड़ों में जानेगी। वह सारी झील पर टुकड़ों में फैल जायेगा।

फिर झील शांत हो जाती है, लहरें विलीन हो जाती हैं। कोई हलचल नहीं होती। अब झील एक दर्पण हो जाती है—अविभाजित तथा शांत। अब चांद उसमें प्रतिबिंबित होने लगता है।

केवल एक बात आवश्यक है और वह यह कि तुम्हें अविभाजित बनाया जाये, बिना लहरों के, बिना तरंगों के, बिना टुकड़ों में बंटे हुए। तुम्हें एक इकाई बनाया जाये। तुम्हारा शरीर, तुम्हारे भाव, तुम्हारे विचार—सब एक हो जाने चाहिए, अखंड। तभी तुम उस दिव्य को प्रतिबिंबित कर सकोगे, बिजली की एक कौंध में, बिना समय को खोये। वह पूर्ण तुम्हारे सामने प्रकट हो जायेगा। और उस एक को जान कर सब जान लिया जाता।

पंद्रहवां प्रवचन

अब तुम जा सकते हो

पहला प्रश्न :

क्या हिंदू पौराणिक देवी— देबताओं, जैसे कि शिव उमा तथा इंद्र आदि का किसी तल पर वास्तय में आस्तित्व है या कि ये इसके प्रतीक हैं जैसा कि आपने पिछले दो प्रवचनों में बतलाया? और यदि वे सिर्फ प्रतीक ही हैं तो लोग ध्यान में उनके दर्शन कैसे करते हैं और ऐसे देवी—देवताओं के दर्शन का क्या अर्थ है?

पुराणों में प्रतीक है। वे कोई इतिहास नहीं हैं, उनका. वस्तुगत वास्तविकता से कोई संबंध नहीं है। लेकिन इसका यह भी नहीं है कि उनका वास्तविकता से कोई लेना—देना नहीं है। उनका आत्मगत वास्तविकता से संबंध है। देवी—देवता ये पौराणिक प्रतीक, इनका तुम्हारे बाहर कोई आस्‌तित्‌व नहीं है। लेकिन इनका मनोवैज्ञानिक अस्तिस्व है, उसका उपयोग किया जा सकता है। अस्तित्व सहायक हो सकता है। इसलिए.. पहली बात जो कि समझने योग्य है वह यह कि वे कोई वरस्तविक व्यक्ति नहीं हैं जो कि इस जगत में रहते हो, लेकिन मनुष्य के चित्त के वास्तविक प्रतीक हैं।

उदाहरण के लिए कार्ल गुस्ताव खुश इन. प्रतीकों के रहस्य. के उदधाटन के बहुत करीब पहुंच गया था। वह मानसिक रोगियों पर काम कर रहा ‘ था। वह अपने मरीजों से कहता था कि वे जायें और चित्र बनायें—जो भी उनके मन में आये। एक आदमी जो कि सीजोफ्रेनिक है, खंड—खंड बंटा है, टूटा हुआ है, वह कुछ विशेष चीजें बनायेगा, और वे चीजें एक विशेष ढांचा लिए हुए होंगी। सभी खंडित मानसिकता के लोग कुछ विशेष चीजें बनायेंगे, और उन सबका ढांचा वही होगा। और जब वे रोगमुक्त हो जायेंगे, स्‌वस्‌थ हो जायेंगे तो वे बिलकुल भिन्न चित्र बनायेंगे और यह बात प्रत्येक मरीज के साथ होगी। सिर्फ उनके चित्रों को देखकर ही तुम कह सकते हो कि मरीज बीमार है या नहीं।

तब जुंग को अनुभव में आया कि जब भी कोई व्यक्ति जो कि विभाजित व्यक्तित्व के रोग से ग्र्रासप था, जब वह वापस एक हो गया, ठीक हो गया, तब वह ऐसे चित्र बनाता है जैसे कि मंडल होता है, वर्तुल की तरह के चित्र बनाता है। वह वर्तुल, वह मंडल उसके भीतर के मंडल से गहरे में संबंधित है जो कि पुन: उपलब्ध कर लिया गया है। अब भीतर वह भी एक वर्तुल हो गया है, जुड़ गया है। वह एक हो गया है। तब उसके चित्रों में यकायक वर्तुल फूट पड़ते हैं। तो कं इस नतीजे पर पहुंचा कि तुम्हारा अंतर्मन किसी खास अवस्था में कुछ विशेष चीजें अभिव्यकृत करता है। यदि मन की स्थिति बदल जाती है तो तुम्हारे स्वप्न भी बदल जायेंगे, तुम्हारी अभिव्यक्तियां भी बदल जायेंगी।

हिंदू पौराणिक देवी—देवता एक विशेष मनोदशा के विशेष स्वप्न हैं। जब तुम उस मनोदशा में होते हो, तो तुमको वैसे स्वप्न दिखलाई पड़ने लगते हैं। उनमें एक प्रकार की समानता होगी। सारे संसार में उनमें एक प्रकार की समानता होगी। थोड़ी—बहुत भिन्नता संस्कृति, शिक्षा, प्रशिक्षण आदि के कारण होगी, लेकिन गहरे में उनमें समानता होगी।

उदाहरण के लिए मंडल एक पौराणिक प्रतीक है। सारे संसार में यह बार—बार आता रहा है। प्राचीन ईसाई चित्रों में भी यह है। पुराने तिब्बती चित्रों में भी यह है। चीनी, जापानी तथा भारतीय कला में भी मंडल का एक आकर्षण रहा है। किसी भी तरह जब तुम्हारी अंतर्दृष्टि वर्तुलाकार हो जाती है, जब एक धारा की तरह

हो जाती है, अखंड हो जाती है, अविभाजित हो जाती है, तो तुम अपने स्वप्न में वर्तुल देखने लगते हो। यह वर्तुल तुम्हारी वास्तविकता को बताता है।

इसी तरह सभी प्रतीक व्यक्तिगत सत्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। और यदि कोई समाज किसी देवता को कोई विशेष रूप देता है तो यह बहुत सहायक सिद्ध होता है। यह साधक के लिए बहुत सहायक सिद्ध होता है, क्योंकि अब वह बहुत से आतरिक स्वप्न—दर्शनों को समझ सकता है।

फ्रायड ने सपनों की व्याख्या करके पश्चिम में एक नये युग का प्रारंभ किया। फ्रायड के पहले पश्चिम में कोई भी सपनों में दिलचस्पी नहीं रखता था। किसी ने सोचा भी नहीं था कि सपनों का भी कुछ अर्थ हो सकता है या कि सपनों की भी अपनी कुछ वास्तविकता हो सकती है या कि उनके पास भी कोई गुप्त कुंजियां हो सकती हैं जो कि मनुष्य के व्यक्तित्व को खोल सकती हैं। लेकिन भारत में सदा से इसका शान था। हम सदा से सपनों की व्याख्या करते रहे हैं ' और केवल सपने ही नहीं, क्योंकि सपने तो साधारण हैं, हम दर्शनों की भी व्याख्या करते रहे हैं। दर्शन उन लोगों के सपने हैं जो कि ध्यान कर रहे हैं और अपनी चेतना को रूपांतरित कर रहे हैं। वे भी सपने ही हैं। सामान्य चेतना में सपने घटित होते हैं। और अब फ्रायड के मनोविज्ञान से यह निष्कर्ष निकला है कि विशेष प्रकार के सपने एक विशेष अर्थ रखते हैं।

उदाहरण के लिए, एक आदमी लगातार सपनों में देखता है कि वह आसमान में उड़ रहा है, कि वह पक्षी हो गया है। वह उड़ता रहता है पहाड़ों पर, नदियों पर, शहरों पर, वह उड़ता ही चला जाता है। फ्रायड कहता है कि इस प्रकार का सपना, उड़ने का सपना, ऐसे चित्त को आता है जो कि बहुत महत्वाकांक्षी है। महत्वाकाक्षा सपने में उड़ना बन जाती है। तुम सबके ऊपर उठ जाना चाहते हो—पहाड़ों से भी ऊपर, सबके ऊपर। यदि तुम उड़ सको तो तुम सबके ऊपर हो जाओगे। महत्वाकाक्षा सबके ऊपर उड़ने का प्रयत्न है। सपने में महत्वाकांक्षा उड़ने का एक चित्रमय रूप ले लेती है।

सारी दुनिया में कामवासना के सपनों का ढंग एक जैसा होता है। जब लड़के कामवासना की दृष्टि से परिपक्व हो जाते हैं तो वे छिद्रों के, सुरंगों के सपने देखने लगते हैं। वे छिद्र, वे सुरंगें स्त्री के काम—केंद्र की प्रतीक हैं, योनि की प्रतीक हैं। लड़कियां लिंग के समान वस्तुओं के सपने देखने लगती हैं जैसे कि स्तंभ हैं, मीनारें हैं।

और ऐसा पूरी दुनिया में होता है। पूरी दुनिया में इसमें कोई भी भेद नहीं है, ऐसा सब जगह होता है। स्तंभ के सपने लड़कियों को आयेंगे और छिद्रों की तरह के सपने लड़कों को आयेंगे।

यदि एक खास काम—स्थिति में कोई विशेष सपने आते हैं तो उनकी एक वास्तविकता है। यह वास्तविकता व्यक्तिगत है, सब्जेक्टिव है। ऐसा ही होता है जब तुम ध्यान में प्रवेश करते हो, तुम चेतना की भिन्न दशा में प्रवेश कर रहे हो—तुम्हें खास तरह के दर्शन होने लगेंगे। वे भी सपने ही हैं, लेकिन हम उन्हें दर्शन कहते हैं, क्योंकि वे सामान्य नहीं हैं। जब तक ध्यान में तुम एक विशेष दशा तक नहीं पहुंच जाते, वे घटित नहीं होंगे। वे बताते हैं कि भीतर कुछ घटित हो रहा है। वे तुम्हारी आंतरिक वास्तविकताओं को मन के पर्दे पर चित्रमय ढंग से प्रक्षेपित करते हैं।

स्मरण रहे कि तुम्हारा अचेतन मन कोई भाषा नहीं जानता। तुम्हारा अचेतन मन केवल अति प्राचीन भाषा जानता है—चित्रों की भाषा। तुम्हारे चेतन मन ने भाषा के संकेत सीख लिए हैं, लेकिन अचेतन अभी भी चित्रों की ही भाषा जानता है जैसे कि एक छोटे बच्चे का मन होता है। वह सभी चीजों को चित्रों में बदल लेता है।

उदाहरण के लिए शिवलिंग के बहुत—से अर्थ होते हैं। एक तो मैंने आज सुबह ही कहा, कि यह जीवन—ऊर्जा का मूल स्रोत है—काम—प्रतीक। लेकिन यह एक अर्थ हुआ। शिवलिंग अंडे के आकार का होता है—सफेद

व अंडाकार। ऐसा ध्यान की विशेष स्थिति में होता है कि यह तुम्हारे सामने प्रगट होता है—एक सफेद अंडाकार वस्तु प्रकाश से परिपूर्ण। प्रकाश उसमें से बाहर निकलता होता है, किरणें बाहर की ओर फूटती रहती हैं।

जब भी तुम भीतर गहरे में, शांत व शीतल हो जाते हो, और जब सारा स्वरूप उत्ताप खो देता है, तो यह प्रतीक प्रकट होता है। इसीलिए पौराणिक कथाओं में शिव हिमालय पर रहते हैं जो कि संसार की सर्वाधिक ठंडी जगह है, जहां सब शीतल है। शिवलिंग की ओर जरा देखो—एक संगमरमर के शिवलिंग की ओर—सिर्फ उसकी ओर देखने भर से तुम्हें अपने भीतर एक शीतलता मालूम होगी। इसीलिए शिवलिंग के ऊपर एक मटका रखा रहता है, और उस मटके से सतत पानी की बूंदें शिवलिंग पर पड़ती रहती हैं। यह सिर्फ उसे शीतल रखने के लिए है। ये सारे प्रतीक हैं तुम्हें शीतलता का भाव देने के लिए।

कश्मीर में एक शिवलिंग है, प्राकृतिक शिवलिंग, जो कि अपने— आप उभरता है जब बर्फ गिरती है। यह बर्फ का शिवलिंग है। एक गुफा में बर्फ पड़ने से यह शिवलिंग निर्मित हो जाता है। वह शिवलिंग ध्यान के लिए श्रेष्ठतम है—क्योंकि वह इतना ठंडा है चारों तरफ से कि वह उस आतरिक घटना की झलक देता है, जब तुम्हारे भीतर, तुम्हारी चेतना में शिवलिंग प्रकट होता है, जब वह एक चित्र, एक प्रतीक, एक दर्शन बनता है।

ये प्रतीक सदियों—सदियों की मेहनत और प्रयास से खोजे गये हैं। वे मन की एक विशेष दशा की ओर इशारा करते हैं। मेरे लिए, सभी पौराणिक देवी—देवता व्यक्तिगत रूप से अर्थपूर्ण हैं। बाहर वे कहीं भी नहीं पाये जाते। और यदि तुम उन्हें बाहर पाने का प्रयास करो तो तुम अपनी ही कल्पना के शिकार हो जाओगे। क्योंकि तुम उन्हें पा सकते हो, तुम इतनी त्वरा से उन्हें प्रक्षेपित कर— सकते हो कि तुम उन्हें पा भी सकते हो।

मनुष्य की कल्पना इतनी शक्तिशाली है, उसमें इतनी अधिक शक्ति है कि यदि तुम सतत किसी चीज की कल्पना करो तो तुम उसे अपने चारों ओर अनुभव कर सकते हो। तब तुम उसे देख भी सकते हो, तब तुम उसे पा भी सकते हो। वह एक वस्तु की तरह हो जायेगा। वह वस्तु की तरह है नहीं, लेकिन तुम उसे अपने बाहर अनुभव कर सकते हो। इसलिए कल्पना के साथ खेलना खतरनाक है, क्योंकि तब तुम अपनी ही कल्पना से सम्मोहित हो सकते हो, और तुम ऐसी चीजें देख और महसूस कर सकते हो जो कि वास्तव में नहीं हैं।

यह एक अपनी निजी कल्पना निर्मित करना है, एक सपनों का संसार बनाना है, यह एक तरह की विक्षिप्तता है। तुम कृष्ण को देख सकते हो, तुम क्राइस्ट को देख सकते हो, तुम बुद्ध को देख सकते हो, लेकिन यह सारी मेहनत बेकार है क्योंकि तुम सपने देख रहे हो न कि सत्य।

इसीलिए मेरा जोर सदा इस बात पर है कि ये पौराणिक आकृतियां सिर्फ प्रतीक हैं। वे अर्थपूर्ण हैं, वे काव्यात्मक हैं, उनकी अपनी एक भाषा है। वे कुछ कहती हैं, उनका कुछ अर्थ है, किंतु वे कोई वास्तविक व्यक्तित्व नहीं हैं। यदि तुम इस बात को स्मरण रख सको तो तुम उनका सुंदरता से उपयोग कर सकते हो। वे बहुत सहायक सिद्ध हो सकते हैं। किंतु यदि तुम उन्हें वास्तविक की तरह सोचते हो तो फिर वे हानिकारक सिद्ध होंगे, और धीरे— धीरे तुम एक स्वम्मलोक में चले जाओगे और तुम वास्तविकता से संबंध खो दोगे। और वास्तविकता से संबंध खोने का अर्थ है विक्षिप्त हो जाना। सदा वास्तविकता से संबंध बनाये रखो। फिर भी वस्तुगत वास्तविकता को भीतर की आत्मगत वास्तविकता को नष्ट मत करने दो। भीतर के जगत में सजग तथा सचेत रहो, लेकिन उन दोनों को मिलाओ मत।

यह हो रहा है. या तो हम बाहरी वस्तुगत सत्य को भीतर की आत्मगत वास्तविकता को नष्ट करने देते हैं, अथवा हम आत्मगत सत्य को वस्तुगत वास्तविकता पर प्रक्षेपित कर देते हैं, और तब वस्तुगत खो जाता है। ये दो अतियां हैं। विज्ञान वस्तुगत के बारे में सोचता रहता है और सब्जेक्टिव को, आत्मगत को इनकार करता रहता है, और धर्म आत्मगत की बात करता रहता है और वस्तुगत को इनकार करता रहता है।

मैं दोनों से बिलकुल भिन्न हूं। मेरा जोर इस बात पर है कि वस्तुगत वस्तुगत है और उसे वस्तुगत ही रहने दो, और आत्मगत आत्मगत है, उसे आत्मगत ही रहने दो। उन दोनों की शुद्धता बनाये रखो, और तुम ऐसा करके पहले से अधिक बुद्धिमान रहोगे। यदि तुम उन्हें मिला दोगे, यदि तुम उनमें भ्रम पैदा कर लोगे तो तुम विक्षिप्त हो जाओगे, तुम्हारा संतुलन डगमगा जायेगा।

दूसरा प्रश्न :

कल आपने मनोविश्लेषण तथा रोगियों के अपने मनोविश्लेषकों के प्रेम में पड़ जाने की चर्चा की। विश्लेषण इस घटना को ट्रांसफरन्स यानी हस्तांतरण कहता है और एक विशेष उद्देश्य से ऐसा घटे इसकी चेष्टा करता है। अपनी सारी प्रेम की भावना को अपने मनोविश्लेषक पर उड़ेलने से व्यक्ति विकसित होता है और एक स्वस्थ ढंग से प्रेम करना सीखता है। क्या यह धारणा पूर्वी परंपरा में समर्पण जैसी ही नहीं है? क्या यह संभव नहीं है कि किसी गुह्य स्रोत से यह कीमती रहस्य फ्रायड के पास आया हो?

हां, ट्रासफरन्स, हस्तातरण सहायक हो सकता है, लेकिन किसी मनोविश्लेषक के साथ नहीं। यह गुरु के साथ सहायक सिद्ध हो सकता है। यह केवल तभी सहायक हो सकता है यदि वह व्यक्ति जिसके प्रेम में तुम पड़ते हो वह स्वयं आसक्ति के पार जा चुका हो, उसके प्रेम की कोई समस्या न रही हो। यदि तुम किसी गुरु के प्रेम में पड़ते हो...। गुरु से मेरा अर्थ है ऐसा व्यक्ति जो कि सब संबंधों, सब आसक्तियो, प्रेम की सब समस्याओं के पार चला गया हो।

अन्यथा यह हस्तांतरण दोहरा हो जाता है। रोगी हस्तांतरण करता है, प्रक्षेपण करता है अपनी प्रेम की आवश्यकता अपने चिकित्सक पर, और चिकित्सक अपने प्रेम की आवश्यकता अपने रोगी पर प्रक्षेपित करता है। और ऐसा चिकित्सक जिसकी अपनी प्रेम की आवश्यकता बाकी हो, अधिक सहायता नहीं कर सकता। वस्तुत: वह स्वयं ही अभी रुग्ण है, और दो रुग्ण व्यकि स्वस्थ होने में एक—दूसरे की मदद नहीं कर सकते। यह पुन: एक विषाद ही पैदा करने वाला है, न कि प्रेम में विकास।

प्रेम तभी विकसित हो सकता है यदि दूसरा व्यक्ति साधारण समस्याओं के, प्रेम के सामान्य द्वंद्वों के ऊपर उठ गया हो। प्रेम की समस्या क्या है? एक तो समस्या यह है कि जैसे ही तुम किसी व्यक्ति के प्रेम में होते हो, उसी से तुम घृणा भी करते हो। यह पहली समस्या है, क्योंकि जिसे भी तुम प्रेम करते हो साथ—साथ तुम घृणा भी करते हो।

जिस व्यक्ति से तुम प्रेम करते हो उससे तुम घृणा क्यों करते हो? प्रेम एक जरूरत है, और प्रेम की ही भांति एक दूसरी भी जरूरत है, वह है स्वतंत्रता। जिस क्षण तुम किसी को प्रेम करते हो, तुम उस पर निर्भर महसूस करने लगते हो, तुम्हारी स्वतंत्रता खो गई। और जो र्व्याक्ते तुम्हारी स्वतंत्रता को नष्ट कर रहा है उसे तुम घृणा करोगे ही। और जो व्यक्ति तुम्हें निर्भर बना रहा है वह तुम्हें दुश्मन ही नहीं मालूम पड़ेगा बल्कि कट्टर दुश्मन मालूम पड़ेगा, क्योंकि वह तुम्हारी स्वतंत्रता, तुम्हारी आजादी, तुम्हारी निजता को नष्ट कर रहा है। लेकिन प्रेम एक जरूरत है, इसलिए तुम स्वतंत्रता की कीमत पर प्रेम को पूरा करते हो; इसीलिए तुम किसी व्यक्ति को प्रेम करते हो और तुम उसी से घृणा भी करते हो।

फिर दूसरी समस्या सामने आती है जिस क्षण तुम किसी के प्रेम में होते हो, तुम अपने होश में नहीं रहते। तुम पागल हो जाते हो। सचमुच तुम पागल हो जाते हो। तुम सजग नहीं रहते, तुम होश में नहीं रहते। तुम ऐसे चल रहे होते हो जैसे नींद में। और यदि दूसरा आदमी भी तुम्हारी ही तरह है—और मनोचिकित्सक वैसा ही है, कोई भी भेद नहीं है, उसकी चेतना तुम्हारी चेतना से ऊंची नहीं है—तब वह भी नींद में चल रहा है। नींद में चल रहे दो आदमी टकरायेंगे ही। वे द्वंद्व में पड़ेंगे, संघर्ष में पड़ेंगे।

हमने भारत में गुरु के प्रेम में पड़ने को दूसरा ही शब्द दिया है, केवल अंतर बतलाने के लिए। हम उसे श्रद्धा कहते हैं—एक प्रेमपूर्ण श्रद्धा। यदि तुम गुरु के प्रेम में पड़ते हो—और तुम पड़ोगे ही—तो उसमें बड़ा अंतर है। तुम नींद में हो, लेकिन गुरु नींद में नहीं है। तुम सब भांति प्रयास करोगे कि द्वंद्व खड़ा हो, हिंसा हो, आक्रमण हो, लेकिन वह तुम पर हंस सकता है। वह करुणावान हो सकता है, और वह चीजों को ऐसे व्यवस्थित कर सकता है कि कोई टकराव न हो। वह चीजों को ऐसा ढंग दे सकता है कि कोई घृणा अथवा हिंसा न हो।

लेकिन मनोचिकित्सक के पास, तुम तुम्हारी जैसी ही मनस्थिति वाले मनुष्य के साथ मिल रहे हो। मन की गुणवत्ता वैसी ही है, तुम दोनों एक—दूसरे के लिए समस्याएं खड़ी करोगे।

प्रेम में, प्रेमी एक—दूसरे के लिए समस्याएं खड़ी करते रहते हैं। वे अपनी समस्याएं एक—दूसरे पर डालते रहते हैं। और यदि दोनों एक—दूसरे पर अपनी— अपनी समस्याएं डाल रहे हैं, तो फिर कोई विकास नहीं हो सकता, उससे किसी स्वस्थ प्रौढ़ता तक नहीं पहुंचा जा सकता। यह असंभव है। यह फिर एक असफल अनुभव ही होने वाला है। और जितने अधिक तुम असफल होते हो, उतने ही तुम असफलता में अनुभवी होते जाते हो। तब तुम जानते हो कि असफल किस भाति हुआ जाता है। और प्रत्येक प्रेम के अनुभव तथा संबंध से यदि दुख ही निर्मित होता है, तो धीरे— धीरे तुम्हें ऐसा प्रतीत होने लगता है कि प्रेम एक प्रकार का रोग है।

ऐसे लोग हुए हैं... आस्कर वाइल्ड ने कहीं पर कहा है कि प्रेम एक ज्वर है, एक ज्वर की स्थिति है। यह कोई स्वास्थ्य नहीं है, क्योंकि जब भी तुम प्रेम में होते हो तो तुम एक ज्वर में होते हो। तुम ठीक से सो नहीं सकते, जब तुम प्रेम में हो, तुम चैन से नहीं रह सकते—बेचैन, भीतर एक तूफान है, एक ज्वर तुम्हें पकड़ लेता है।

तीसरी समस्या है कि जब भी तुम प्रेम में होते हो, तो तुम दूसरे के मालिक बनने का प्रयत्न करते हो, तुम दूसरे पर मालकियत करने की कोशिश करते हो। और यही दूसरा भी करता है, वह भी तुम पर मालकियत करने की कोशिश करता है। और इस मालकियत का अर्थ क्या है त्र: क्या है मालकियत? मालकियत का अर्थ होता है व्यक्ति को वस्तु में बदल देना, ताकि तुम उसका जो चाहो कर सको। तब उस व्यक्ति की कोई स्वतंत्रता नहीं बचती। और प्रत्येक प्रेमी इस कोशिश में लगा है कि वह दूसरे के व्यक्तित्व को पोंछ दे।

केवल गुरु के साथ यह नहीं होगा। गुरु के साथ शिष्य सब भांति प्रयास करेगा कि गुरु पर मालकियत हो जाए लेकिन तुम गुरु पर मालकियत नहीं कर सकते। यह बात बिलकुल असंभव है, क्योंकि तुम किसी व्यक्ति पर मालकियत तभी कर सकते हो जब वह भी गहरे में तुम्हारे साथ सहयोग कर रहा हो। वह भले ही कहता हो कि वह स्वतंत्रता चाहता है, लेकिन एक गहरी आवश्यकता मालकियत करने देने की भी है।

गुरु पर मालकियत नहीं की जा सकती, इसलिए तुम्हारा सारा प्रयास मालकियत करने का व्यर्थ चला जायेगा। और वह तुम पर मालकियत नहीं करेगा। बल्कि उल्टे वह तुम्हारी सहायता कर रहा है कि तुम और भी ज्यादा व्यक्ति हो जाओ, ज्यादा जीवंत हो जाओ, ज्यादा स्वतंत्र, ज्यादा सजग, ज्यादा सचेतन हो जाओ। उसकी सारी कोशिश तुम्हें बजाय एक वस्तु के ज्यादा से ज्यादा व्यक्ति बनाने की ओर होगी। लेकिन प्रेमी एक—दूसरे को वस्तु बनाने की कोशिश में लगे हैं। मनोविश्लेषक एक सामान्य मनुष्य है, थोड़ा वह कुशल है, लेकिन उसकी चेतना वैसी ही है।

कुछ मनोविश्लेषक, जैसे कि विलहेम रैख तथा उसके अनुयायी, कहते हैं कि यह ट्रासफरन्स, यह रोगी का चिकित्सक के प्रेम में पड़ जाना, अच्छा है। लेकिन मैं विलहेम रैख की पत्नी के संस्मरण पढ़ रहा था, और वह कहती है कि रैख प्रत्येक स्त्री रोगी के साथ प्रेम करता था, लेकिन वह अपनी पत्नी को किसी और पुरुष से बात भी नहीं करने देता था।

उसकी पत्नी किसी पहाडी स्थान पर दो माह के लिए गई हुई थी। जब वह लौटकर आई तो उसने एक—एक बात पूछी कि वह वहां क्या करती रही—वह किस—किस से मिली, क्या वह किसी के प्रेम में पड़ी... और उसकी पत्नी कहती है कि वह हर रोज नई स्त्री के साथ प्रेम करता था, फिर भी अपनी पत्नी के बाबत ईर्ष्यालु था, और उस पर मालकियत करता था। यह व्यक्ति कैसे सहायक हो सकता है? ऐसे व्यक्ति से क्या सहायता प्राप्त हो सकती है? वह स्वयं ही अपनी प्रेम—समस्याओं में पड़ा हुआ है। यह संभव है कि वह सिर्फ एक तर्क दे रहा हो। वह एक विक्षिप्त है, कुंठित है, और वह सारी बात पर एक फिलासफी का रंग दे रहा है, वह पूरी बात तर्कसम्मत बना रहा है।

मैं यह नहीं कहता कि प्रेम सहायक नहीं हो सकता—प्रेम सहायक हो सकता है—लेकिन यह तभी सहायक हो सकता है जब तुम अपने से ज्यादा ऊंचाई वाले व्यक्ति के प्रेम में पड़ते हो; अन्यथा यह सहायता नहीं कर सकता। और ऐसे प्रेम को हम श्रद्धा कहते हैं।

यदि तुम गुरु के प्रेम में हो, एक बुद्धपुरुष के प्रेम में हो—और निश्चित ही तुम होओगे; यदि तुम एक बुद्धपुरुष के निकट हो तो तुम उसके प्रेम में हो ही जाओगे—तो शुरू—शुरू में बुद्धपुरुष के प्रति तुम्हारे प्रेम में थोड़ा काम— भाव होगा; यह होना अनिवार्य है। इसीलिए बुद्ध के साथ या महावीर के साथ ऐसा होता है... ऐसा जाना गया है कि महावीर के चालीस हजार शिष्य थे। उन चालीस हजार शिष्यों में तीस हजार स्त्रियां थीं, केवल दस हजार पुरुष थे। तीन स्त्रिया और एक पुरुष का अनुपात था। चार शिष्यों में से तीन स्त्रियां थीं, और एक पुरुष था।

ये जो तीस हजार स्त्रिया थीं, ये जरूर महावीर के गहन प्रेम में, और शुरू में एक काम—आकर्षण में रही होंगी। ऐसा होना अनिवार्य है, यह स्वाभाविक ही है। लेकिन धीरे— धीरे महावीर की उपस्थिति उस कामुक हिस्से को बदल देगी। धीरे— धीरे उनके निकट रहते—रहते, कामुकता गिर जायेगी और प्रेम शुद्ध होगा—यह और भी ज्यादा आध्यात्मिक हो जायेगा।

और प्रारंभ में यह मालकियत करने वाला प्रेम होगा। मुझे भी यह महसूस होता है कि यह मालकियत करने वाला हो जाता है। मेरे चारों ओर बहुत—सी स्त्रियां हैं, और वे अनजाने ही मालिक बनना शुरू कर देती हैं। और उसमें कुछ भी गलत नहीं है; यह स्वाभाविक ही है। लेकिन यदि मैं भी उसी मनोदशा में हूं तो फिर मैं उनकी कोई सहायता नहीं कर सकता। तब बजाय कि मैं उनको चेतना के ऊंचे तल पर ले जाऊं, वे मुझे अपने तल पर नीचे खींच लेंगी। और समानता के लिए सतत संघर्ष चलता रहता है। स्मरण रहे, जैसे पानी अपने तल को खोज लेता है, वैसे ही जब भी तुम किसी व्यक्ति से मिलते हो तो तुम दोनों में एक संघर्ष चलता है तल निर्मित करने का। तुम ऊपर की ओर जाओ या वह नीचे की ओर आए, लेकिन देर— अबेर तुम्हें एक समान तल पर आना पड़ेगा। वरना मामला कठिन हो जायेगा, तुम दोनों में कोई संबंध नहीं बन सकता।

जैसे पानी तल खोजता है, वैसे ही संबंध भी तल खोजता है। यदि तुम मेरे प्रेम में पड़े हो तो फिर संघर्ष होने ही वाला है। चाहे वह लंबा चले, चाहे थोड़े दिन ही चले, यह इस बात पर निर्भर करता है कि तुम किस प्रकार के व्यक्ति हो, लेकिन संघर्ष तो होगा ही। तुम मुझे नीचे खींचने की कोशिश करोगे ताकि समानता बन जाए। प्रकृति को समानता पसंद है। लेकिन यदि तुम मुझे नीचे ला सकते हो तो मैं तुम्हारे किसी भी काम का नहीं हूं। तो जब तुम मुझे नीचे खींचने की कोशिश कर रहे हो, मुझे तुम्हें ऊपर एक उच्चतर तल पर उठाने का प्रयत्न करना है। और स्मरण रहे, नीचे उतरना बड़ा आसान है; किसी को ऊंचे तल पर लाना बड़ा मुश्किल है। यह एक कठिन संघर्ष है।

जब चिकित्सक और रोगी एक ही चेतना के तल पर हैं तो केवल उनका ज्ञान भिन्न है—उनका होना नहीं। एक ने मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण, मनोचिकित्सा का अध्ययन किया है; वह एक कुशल विशेषज्ञ है। दूसरे ने इन सबका अध्ययन नहीं किया है, केवल इतना ही भेद है। उनकी स्मृतिया भिन्न हैं, उनकी जानकारी भिन्न है। जहां तक उनके मन का प्रश्न है वे भिन्न—भिन्न हैं, लेकिन जहा तक उनकी चेतना का है दोनों एक जैसे हैं इसलिए मैं नहीं सोचता कि यह ट्रासफरन्स, यह प्रेम का प्रक्षेपण कुछ भी सहायक हो सकता है। यह नहीं हो सकता। यह तभी हो सकता है यदि मनोविश्लेषक एक गुरु भी हो, तभी यह सहायक हो सकता है। अन्यथा यह किसी काम का नहीं है। जिस व्यक्ति के तुम प्रेम में पड़ो वह ऐसी स्थिरता का व्यक्ति होना चाहिए कि तुम उसे नीचे न खींच सको, चाहे तुम कुछ भी करो। और तुम बहुत प्रयत्न करोगे, तुम जी—जान से प्रयत्न करोगे कि तुम उसे नीचे ले आओ। यह स्वाभाविक है, क्योंकि जो व्यक्ति तुमसे ऊंचा है तुम उसके साथ बड़ी बेचैनी अनुभव करणैं। या तो तुम ऊपर जाओ, जो कि मुश्किल काम है, या वह नीचे उग जाये—और तुम्हें यह सरल मालूम होता है कि उसे भी नीचे ले आया जाये।

यदि वह नीचे आ सकता है, अथवा यदि वह पहले से ही नीचे है और सिर्फ दिखावा कर रहा है कि वह नीचे नहीं है, तो वह सहायक सिद्ध नहीं होगा। लेकिन यदि वह तुमसे ऊपर ही बना रहता है, तो तुम्हारा प्रेम वस्तुत: एक विकास हो सकता है।

शिष्य और गुरु एक सतत संघर्ष में होते हैं, इसे स्मरण रखो, सतत संघर्ष में, क्योंकि शिष्य गुरु को नीचे लाने की कोशिश में लगे हैं; और गुरु शिष्यों को ऊपर ले जाने की कोशिश कर रहा है। यह एक बहुत ही गहरा संघर्ष है, और शिष्य कुछ भी करने को बाकी नहीं छोड़ेंगे। ऐसा नहीं है कि वे जानते हों, उन्हें पता भी नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं। वे मूर्च्छित हैं और उन्हें क्षमा किया जा सकता है। गुरु को क्षमा नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसे तो सजग होना चाहिए, जागरूक होना चाहिए, उसे तो पता होना चाहिए कि उसके चारों ओर क्या चल रहा है।

मनोविश्लेषक कोई गुरु नहीं है। इसीलिए मैंने कहा : पश्चिम में, मनोविश्लेषक और रोगी के बीच का संबंध कामुकता के लिये लाइसेंस हो गया है—इससें ज्यादा नहीं। वह किसी की भी सहायता नहीं कर रहा है।

और इसी प्रश्न का दूसरा हिस्सा है

क्या यह धारणा पूर्वीय परंपरा में समर्पण जैसी ही नहीं है? क्या यह संभव नहीं है कि किसी गुह्य स्रोत से यह कीमती रहस्य फ्रायड के पास आया हो?

नहीं, समर्पण प्रेम से भिन्न है। प्रेम में तुम तुम्हीं बने रहते हो। प्रेम एक संबंध है दो व्यक्तियों के बीच जो कि दो बने रहते हैं। यह एक संबंध है, यह एक सेतु है। समर्पण कोई संबंध नहीं है। तुम सिर्फ विलीन हो जाते हो, तुम बचते ही नहीं। जब तुम किसी गुरु को समर्पण करते हो, तो तुम कहते हो, "अब मैं नहीं रहा, अब तुम्हें जो करना हो सो करो; मैं हूं ही नहीं। "यह कोई संबंध नहीं है।

समर्पण कोई संबंध नहीं है, क्योंकि इसमें व्यक्ति बिलकुल ही मिट जाता है, और संबंध के लिए दो चाहिए। केवल गुरु ही बचता है।

वास्तव में, जब तुम समर्पण कर देते हो तो गुरु ही काम करता है, तुम वहा नहीं होते। तब बड़ा सरल होता है काम करना, कगेंकि जो संघर्ष शिष्य बीच में लाता है, वह जो प्रतिरोध खड़ा करता है, अब वहां नहीं होता। वह बिलकुल विश्राम में होता है, "लेट गो " की स्थिति में होता है। जब गुरु कहता है बायें जाओ तो वह बायें जाता है, जब गुरु कहता है दायें जाओ तो वह दायें जाता है। जो भी गुरु कहता है, वह सिर्फ उसका अनुसरण करता है। वह अपने अहंकार को खड़ा नहीं होने देता। यह कोई संबंध नहीं है।

प्रेम एक संबंध है। दोनों प्रेमी स्वयं बने रहने की कोशिश करते हैं; इसीलिए संघर्ष होता है। दोनों जुड़े भी रहना चाहते हैं और फिर स्वतंत्र भी रहना चाहते हैं।

यह विरोधाभासी है, क्योंकि संबंध के कारण ही और तुम्हें समझौता करना पड़ेगा और दूसरे के साथ तालमेल बिठाना पड़ेगा। और तुम फिर वही नहीं रहोगे।

एक आदमी जो कि अविवाहित है, वह शादी के बाद वैसा ही नहीं रहेगा। वह रह ही नहीं सकता। वैसा ही बने रहना असंभव है, क्योंकि अब एक नया समझौता प्रवेश कर गया है। अब एक नया व्यक्ति प्रवेश कर गया है, और एक संबंध निर्मित हो गया है। यह संबंध दोनों को बदलेगा। स्मरण रहे कि प्रेम में दोनों बदलते हैं; समर्पण में केवल जिसने समर्पण किया है, वही बदलता है—न कि गुरु। वह संबंधित ही नहीं है। वह दूर खड़ा रहता है, वह दूर ही बना रहता है, वह एक दूरी पर है। तुम समर्पण करते हो, और तुम बदलते हो। प्रेम में सदा एक शर्त होती है : तुम कुछ पाने के लिए कुछ देते हो। यह लेन—देन है। समर्पण में तुम सिर्फ देते हो, उसमें कोई शर्त नहीं होती।

समर्पण एक बिलकुल ही भिन्न घटना है। वास्तव में, पश्चिम इस घटना से पूर्णत: अपरिचित है। गुरु—शिष्य संबंध पूरी तरह से एक पूर्वीय घटना है। पश्चिम में शिक्षक और विद्यार्थी हैं, गुरु और शिष्य नहीं। इसीलिए कृष्णमूर्ति की शिक्षायें पश्चिम में इतनी प्रभावी हो सकीं, क्योंकि वे कहते हैं कि कोई गुरु नहीं है और कोई शिष्य नहीं है।

पूर्व एक भिन्न ही तरह का संबंध विकसित कर सका—यदि तुम उसे संबंध कहो तो—जिसमें एक होता है, और दूसरा उसमें घुलमिल जाता है; जिसमें समर्पण करने वाला तो बदलता है, लेकिन गुरु कोई समझौता नहीं करता। यह एकतरफा मार्ग है।

प्रेम दोतरफा है। दोनों कुछ करते हैं, दोनों कुछ लेते हैं, देते हैं। वह एक लेन—देन है। समर्पण एकतरफा है। शिष्य सिर्फ अपने को समर्पित करता है, और गुरु अछूता ही रहता है। केवल तभी वह काम कर सकता है। यदि वह भी तुम्हारे द्वारा बदला जाए, तो फिर वह तुम्हें नहीं बदल सकता। इसलिए बहुत बार गुरु बहुत कठोर मालूम पड़ते हैं। वे बहुत क्रूर प्रतीत होते हैं, वे निर्दयी दिखलाई पड़ते हैं, क्योंकि तुम रोते—चिल्लाते हो और वे अस्पर्शित ही रहते हैं। या यदि वे दिखलाते भी हैं कि वे भी स्पर्शित हुए हैं, तो तम देख सकते हो कि वे सिर्फ बहाना कर रहे हैं, नाटक कर रहे हैं।

समर्पण एकतरफा बात है, पूरी तरह एकतरफा। इसीलिए यह इतना कठिन है। क्योंकि यदि तुम्हें लगता हो कि दूसरा भी झुक रहा है तो यह ज्यादा सरल हो जाता है। तब यह एक सौदा है, तब यह एक विवाह है। विवाह एक सौदा है।

समर्पण कोई विवाह नहीं है, उसमें कोई अनुबंध नहीं है। तुम सिर्फ अपनी तरफ से अपने को खो देते हो, और गुरु तुम्हें धन्यवाद भी नहीं देगा। तुम अपने को पूरी तरह मिटा रहे हो, समर्पित कर रहे हो, और वह तुम्हें धन्यवाद भी नहीं देगा। वह शायद तुम्हारी तरफ देखे भी नहीं।

ऐसा कहा जाता है कि बायजीद, एक सूफी फकीर, अपने गुरु के पास आया और गुरु ने कहा, " क्या तुम समर्पण करने के लिए तैयार हो? अन्यथा संसार में जाओ और संसार का थोड़ा और अनुभव कर लो, अहंकार की असफलता का स्वाद थोड़ा और चख लो, ताकि तुम प्रतिरोध न करो। "

लेकिन बायजीद ने कहा, "मैं तैयार हूं। "

गुरु ने बायजीद से कहा, "तो अब तुम चुप हो जाओ, जब तक कि मैं तुम्हें कुछ न कह तुम्हें कुछ भी कहने की जरूरत नहीं है।"

कहते हैं कि बारह वर्ष तक बायजीद बिलकुल मौन ही रहा। वह रोज उगता, गुरु के पास बैठ जाता ‘ ओाए र प्रतीक्षा करता। और कहते हैं कि सिर्फ प्रतीक्षा करते—करते ही उसने पा लिया।

एक दिन, बारह वर्ष बाद, गुरु ने पहली बार उसकी तरफ देखा, और वही क्षण था, बायजीद याद करता है, जब वह पूरी तरह से प्रतीक्षा में था। एक भी विचार भीतर नहीं था। तब गुरु ने उसकी ओर देखा। यह एक स्वीकृति थी कि "अब तुम स्वीकार कर लिए गये। "

उसके बाद तीन वर्ष और बीत गये और एक दिन गुरु ने बायजीद का हाथ अपने हाथ में लिया। बायजीद स्मरण करता है कि उस दिन प्रतीक्षा भी समाप्त हो गई थी। वह भी एक सूक्ष्म विचार था.
"प्रतीक्षा, प्रतीक्षा, प्रतीक्षा... एक दिन कुछ होने वाला है। " वह भी खो गया था। गुरु ने उसका हाथ अपने हाथ में लिया।

फिर तीन वर्ष और बीत गये, और एक दिन गुरु ने उसे अपने पास बुलाया, अपने हृदय के निकट लिया, उसे छाती से लगा लिया और कहा, " अब तुम जा सकते हो। " ये बोले गये पहले शब्द थे : "अब तुम जा सकते हो। "

यह समर्पण है। और बायजीद स्मरण करता है "वही क्षण था जबकि वह अस्तित्व के साथ इतना एक हो गया था, वर्तमान क्षण में खो गया था, कि गुरु भी विलीन हो गया था। मैं उनके करीब बैठा था, लेकिन गुरु विलीन हो गया था, वहां कोई नहीं था—केवल अस्तित्व ही वहा था। वही क्षण था जब गुरु ने मुझे पास बुलाया, छाती से लगाया, और कहा : अब तुम जा सकते हो। "

यह समर्पण है—एकतरफा। लेकिन जब शिष्य g]रु के निकट आते हैं तो वे शुरू में प्रेम में पड़ते हैं, समर्पण में नहीं। और वे उस प्रेम को ही समर्पण कहते हैं। इससे ही समस्याएं खड़ी होती हैं, क्योंकि प्रेम समर्पण नहीं है। समर्पण एक ऊंची अवस्था है—पूर्णतः गुणात्मक रूप से भिन्न, बिना मांग के, बिना मालकियत के, बिना आकाक्षा के, बेशर्त। लेकिन यह स्वाभाविक ढंग है, क्योंकि समर्पण का तुम्हें कुछ पता नहीं होता, जबकि प्रेम एक प्राकृतिक घटना है। पहले तुम्हें प्रेम घटता है और यदि दूसरा व्यक्ति भी प्रेम का आकांक्षी नहीं है तो ही वह तुम्हारे प्रेम को समर्पण की ओर ले जा सकता है।

यह इस पर निर्भर करेगा कि तुम कितना प्रतिरोध करते हो। तुम सारी जिंदगी प्रतिरोध कर सकते हो : तब वह नहीं होगा। और कोई गुरु तब तक कुछ भी नहीं कर सकता जब तक कि तुम सहयोग न करो, जब तक तुम अवसर न दो। क्योंकि कोई भी गुरु आक्रामक नहीं हो सकता। यदि तुम खुले हो, वह प्रवेश कर सकता है; यदि तुम कोई प्रतिरोध खड़ा नहीं करते तो वह तुम्हें बदल सकता है और रूपांतरित कर सकता है।

समर्पण सबसे सरल रास्ता है रूपांतरण का। बाकी सारे रास्ते बड़े कठिन हैं, और बहुत लंबा समय लेते हैं। यदि तुम अपने को अलग रख सको, तो ग्गुरु तुम्हारे भीतर प्रवेश कर सकता है, और तुम्हारा पूरा अस्तित्व ही रूपांतरित कर सकता है। लेकिन कोई गुरु आक्रामक नहीं हो सकता। बिना तुम्हारी मर्जी के कुछ भी नहीं हो सकता। समर्पण का अर्थ है कि तुम पूर्णरूप से सहयोगी हो। जो भी किया जाये, तुम सहयोग करोगे।

पश्चिम में ऐसा कभी भी नहीं हुआ। जीसस के बारह अनुयायी भी वास्तव में समर्पित नहीं थे, क्योंकि जब आखिरी रात को पीटर ने पूछा. जब जीसस शत्रुओं द्वारा पकड़े जाने वाले थे, और अफवाह थी कि जीसस को वे सूली पर चढ़ा देने वाले हैं, मार डालने वाले हैं, तब पीटर ने कहा, "जहा भी आप जायेंगे, मैं आपके पीछे—पीछे चलूंगा। "

जीसस हैसे और बोले, "सुबह सूरज ऊगने के पहले तुम मुझे तीन बार मना कर चुके होओगे।"

और ऐसा ही हुआ। जीसस पकड़ लिये गये। अभी अंधेरा था, और वे लोग, शत्रु, जीसस को पकड़ कर कहीं ले जा रहे थे। पीटर भी उनके पीछे—पीछे चल रहा था। किसी ने उसका चेहरा देखा। उन्होंने मशालें जला रखी थीं और किसी ने उसका चेहरा देखा। पीटर अजनबी सा मालूम हुआ, क्योंकि जो उस समूह में थे वे सब एक—दूसरे को जानते थे, तो किसी ने पूछा, "तुम कौन हो? क्या तुम जीसस के अनुयायी हो? "

उसने कहा, "नहीं, मैं जानता भी नहीं हूं जीसस को। "

और जीसस ने पीछे मुड़कर देखा और उन्होंने कहा, "तुमने अभी ही मुझे मना कर दिया है!"

उस आखिरी रात, जब वे विदा हो रहे थे, शिष्यों ने जीसस से पूछा, "हम जानते हैं कि जल्दी ही हम परमात्मा के राज्य में प्रवेश करेंगे। आप तो परमात्मा के दाहिने बैठेंगे, क्योंकि आप उसके एकमात्र बेटे हैं, लेकिन अच्छा होगा कि आप हमें बता दें कि हम बारह कहां बैठे होंगे। हमारी क्या जगह होगी?"

यह कोई समर्पण नहीं है। यह जरा भी समर्पण नहीं है। वे सब महत्वाकांक्षी हैं, उनके अपने अहंकार हैं, और वे लोभ तथा सौदेबाजी की भाषा में सोच रहे हैं।

जीसस को समर्पित शिष्य नहीं मिले। इसीलिए ईसाइयत जीसस के विपरीत चली गई। वे क्राइस्ट का नाम लेते हैं, लेकिन उनका क्राइस्ट से कुछ लेना—देना नहीं है। ईसाइयत जीसस के बिलकुल ही विपरीत है, क्योंकि केवल समर्पित शिष्य ही सच्चा संदेश ले जा सकते हैं, प्रामाणिक संदेश ले जा सकते हैं। जो समर्पित नहीं हैं, वे उसे तोड़—मरोड़ देंगे। इसलिए यह कहा जा सकता है कि दुनिया में पोप सबसे ज्यादा क्राइस्ट—विरोधी व्यक्ति है।

समर्पण की धारणा पूर्वीय है। किसी ने बुद्ध से एक दिन पूछा, " आपके साथ दस हजार भिक्षु हैं, उनमें से कितने बुद्ध हो चुके हैं, शान को उपलब्ध हो चुके हैं? "

बुद्ध ने कहा, "बहुत से। "

तो उस व्यक्ति ने पूछा, "यदि इन दस हजार भिक्षुओं में बहुत—से बुद्ध हो चुके हैं तो वे आपकी तरह चमकते क्यों नहीं हैं? वे आपकी तरह जाने क्यों नहीं जाते? क्यों उन्हें आपकी तरह पूजा और चाहा नहीं जाता है? वे अब तक भगवान क्यों नहीं हुए हैं?"

तो बुद्ध ने कहा, "वे मेरी अनुमति की प्रतीक्षा कर रहे हैं—सिर्फ प्रतीक्षा कर रहे हैं। यदि मैं कह दूं तो वे जाहिर कर देंगे। वे समर्पित शिष्य हैं। यदि मैं कह दूं तो वे स्वयं को प्रगट कर देंगे—वे केवल मेरी अनुमति के लिए रुके हुए हैं। यदि मैं कुछ न कहूं तो वे इस विराट में खो जायेंगे बिना एक भी शब्द बोले। " यह बात ही बिलकुल अलग है, जो और कहीं भी घटित नहीं हुई है।

पूर्व ही अकेला है जिसने प्रेम के तत्वों से, समर्पण की घटना पैदा की है। लेकिन यह एक नया संश्लेषण, एक नई घटना है। यह प्राकृतिक नहीं है। प्रेम प्राकृतिक है, समर्पण प्रकृति के पार की घटना है, परा—प्राकृतिक है। यह कुछ ऐसा नया है जो कि विकास के दौरान अपने आप घटित नहीं होता। इसे अति—चेतन लोगों ने सृजित किया है। यह एक बिलकुल ही नवीन घटना है; एक नया सृजन है।

अंतिम प्रश्न :

मुझे बहुत गहरे में ऐसा अनुभव होता है कि जैसे कोई अज्ञात शक्तियां मेरे विचारों तथा कृत्यों को नियंत्रित करती हैं मुझे लगता है कि मैं अज्ञात धागों द्वारा चालित एक कठपुतली हूं जैसे कि क्षण—क्षण मेरी परीक्षा ली जा रही है फिर भी मैं इसके प्रति सजग नहीं हूं और यह भी नहीं जानता हूं कि कहीं यह सब मेरे मन का खेल तो नहीं है! यह प्रश्न भी किसी अन्य शक्ति द्वारा ही बनाया गया लगता है जो कि मेरी शक्ति और नियंत्रण के बाहर है कृपया बतायें कि यह सब क्या है?

यह इतना साफ है! इसमें कुछ भी बताने की आवश्यकता नहीं है। यह कोई प्रश्न नहीं है, केवल तथ्य का कथन है। और यह शुभ है। यदि वस्तुत: ही तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम एक कठपुतली हो, तो फिर तुम्हें कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। यदि तुम्हें सच में ऐसी प्रतीति हो रही है कि तुम अज्ञात शक्तियों के हाथ में हो, तो तुम नहीं हो। यही तो चाहिए—कि तुम नहीं हो जाओ।

लेकिन मैं सोचता हूं कि जब तुम कहते हो कि तुम्हें लगता है तुम एक कठपुतली की भांति हो, तो उसमें कुछ निंदा का भाव है। तुम्हें यह अच्छा नहीं लगता—कठपुतली की भांति! लेकिन फिर भी तुम तो हो ही। कौन है जो कठपुतली की भांति महसूस कर रहा है? यदि वास्तव में ही तुम कठपुतली हो तो फिर कठपुतली की भांति महसूस कौन कर रहा है? कौन महसूस कर सकता है? कौन है वहां जो महसूस करे? तुम कठपुतली हो और बात खतम हो गई।

इसलिए एक काम करो : यह खयाल छोड़ दो कि तुम एक कठपुतली हो। सिर्फ अपने चारों ओर उपस्थित विराट की शक्तियों के प्रति सजग होओ। तुम कुछ भी नहीं हो, कठपुतली भी नहीं। तुम सिर्फ बहुत—सी शक्तियों का एक मिलन—बिंदु हो, सिर्फ एक चौराहा हो जहां से बहुत—सी शक्तियां गुजरती हैं। और क्योंकि बहुत—सी शक्तियां गुजरती हैं तो एक बिंदु बन जाता है। यदि तुम बहुत—सी रेखाएं खींचो जो कि एक—दूसरे को काटती हों तो एक बिंदु पैदा हो जायेगा। वह बिंदु ही तुम्हारा अहंकार बन जाता है, और तुम्हें प्रतीति होती है कि तुम हो।

तुम नहीं हो, केवल विराट है। तुम एक कठपुतली की भांति भी नहीं हो, वह भी अहंकार को एक नये रूप में बनाये रखना है। और चूंइक अहंकार अभी बना है, इसलिए इस परिस्थिति के प्रति एक निंदा का भाव महसूस होता है।

आनंदित होओ कि तुम नहीं हो, क्योंकि तुम्हारे खोते ही, सारे दुख भी खो जाते हैं। अहंकार के विलीन होते ही फिर कोई नर्क नहीं है। तुम मुक्त हो गये—अपने आप से मुक्त हो गये। फिर केवल विराट की शक्तियां ही शेष बची जो हमेशा से क्रियाशील हैं। तुम तो कहीं भी नहीं हो, कठपुतली की भांति भी नहीं।

यदि यह बात तुम्हारे भीतर चली जाये तो तुम पहुंच गये। तुम उस सत्य तक पहुंच गये जहां कि सारे धर्म तुम्हें लाना चाहते हैं। तुमने अंतिम केंद्र को छू लिया, अंतिम आधार पर पहुंच गये।

लेकिन यह कठिन है। शायद तुम कल्पना कर रहे हो या सच में तुम्हीं इसे गढ़ रहे हो। यह बहुत ही कठिन है। तुम सोच सकते हो, लेकिन सोचने से कुछ भी न होगा—जब तक कि तुम इसे महसूस न करो, जब तक कि यह तुम्हारी प्रतीति न हो जाये। यह सिर्फ गहरे ध्यान से ही हो सकता है, अन्यथा यह नहीं हो सकता। केवल ध्यान में ही तुम उस बिंदु पर आ सकते हो जहां तुम्हें प्रतीति होती है कि "सब कुछ हो रहा है और मैं कर्ता नहीं हूं। "और केवल इतना ही नहीं कि "मैं करने वाला नहीं हूं", बल्कि तुम वहा हो ही नहीं और चीजें अवकाश में घटित हो रही हैं। तुम एक खाली स्थान हो गये हो, और वहां चीजें घट रही हैं, और तुम वहा नहीं हो।

यह तभी हो सकता है जब तुम्हारे सारे विचार बंद हो जायें, और तुम्हारा अस्तित्व बादलों से रिक्त हो जाये—विचार के बादलों से रिक्त। तुम उस शुद्ध अस्तित्व में होते हो, तुम इसे महसूस कर सकते हो। लेकिन यदि तुम महसूस करते हो कि ऐसा हो रहा है तो यह एक अच्छा संकेत है। आगे बढ़ो... और इस कठपुतली को भी छोड़ो, इसे लादे मत रहो। जब तुम ही नहीं हो तो फिर इस कठपुतली को क्यों ढोना? उसे भी गिरा दो। अहंकार से पूरी तरह मुक्त हो जाओ।

यही तो मैं यहां कर रहा हूं—तुम्हें पूर्णतया अहंकार से मुक्त करने के लिए। इसीलिए मैं कहता हूं कि कूदो, नाचो, गाओ, आनंद मनाओ, पागल की भांति। यदि तुम यह कर सको तो फिर अहंकार नहीं बच

सकता, क्योंकि अहंकार सदा नियंता की तरह जीता है। यदि तुम कुछ भी नियंत्रित न करो तो यह विलीन हो जाता है। यह नियंत्रण की रचना है। जब तुम नाचने लगते हो तो अहंकार कहता है, "यह तुम क्या कर रहे हो? तुम मूर्ख दिखलाई पड़ोगे। तुम्हारे जैसा बुद्धिमान आदमी और जंगलियों की तरह नाच रहा है। " अहंकार कहेगा, "ऐसा मत करो। अपने पर नियंत्रण रखो। " यदि तुम नियंत्रण रख लेते हो तो अहंकार बना रहता है। बिना नियंत्रण के रहो, इस नियंत्रण—शक्ति की एक मत सुनो। अपने को पहली बार बिना नियंत्रण के केवल जीवंत छोड़ दो, और तुम्हें तत्कण पता चलेगा कि अहंकार नहीं बचा। अस्तित्व है, शक्तियां हैं, लेकिन अहंकार नहीं है। मेरे लिए, बिना किसी नियंत्रण के जीना ही अनुशासन है। यदि तुम बिना नियंत्रण के जी सको तो तुमने बड़े से बड़ा अनुशासन उपलब्ध कर लिया है। यदि तुम अपने को नियंत्रित नहीं करते हो और फिर भी एक अनुशासन है, तो फिर यह अनुशासन तुम्हारा अपना नहीं है। यह अनुशासन उच्चतर स्रोत्रों से आता है। यदि तुम अपने को अनुशासित करते हो तो फिर तुम्हारे जीवन के तुम स्वयं ही स्रोत हो गये। तब तुम विराट के स्रोत से टूट गये। स्वयं को पूरी तरह गिरा दो।

मैं तुम्हें एक घटना सुनाता हूं और फिर हम इसे गिराने का प्रयास करेंगे।

एक दिन एक सम्राट बुद्ध के पास आया; उसके एक हाथ में एक बहुत ही बहुमूल्य हीरा था, और दूसरे हाथ में एक कमल का फूल। उसने सोचा कि शायद बुद्ध को हीरा पसंद नहीं आये क्योंकि उन्होंने सब धन आदि त्याग दिया है, इसलिए वह दूसरे हाथ में कमल का फूल ले आया था, ताकि अवसर हाथ से न जाये। वह तो हीरा ही भेंट करना चाहता था। वह बहुत दुर्लभ हीरा था, केवल उसी के पास ऐसा हीरा था। और यही असली बात भी थी, बुद्ध असली सवाल नहीं थे। वह बुद्ध को ऐसा हीरा भेंट करना चाहता था जो कोई और नहीं कर सकता। और तब सारे संसार में यह खबर फैल जायेगी कि इस सम्राट ने बुद्ध को इतना बहुमूल्य हीरा भेंट किया।

यही असली बात थी; बुद्ध तो एक बुहाना थे। लेकिन शायद बुद्ध हीरा पसंद न करें, वे शायद स्वीकार न करें, इसलिए वह एक कमल का फूल भी लाया था। वह फूल भी दुर्लभ था, क्योंकि इस समय उसका मौसम न था, वह बेमौसम का फूल था।

वह अपने दायें हाथ में हीरा लेकर बुद्ध के पास आया। बुद्ध ने उसे देखते ही कहा, "गिरा दो। "उस व्यक्ति ने समझा कि बुद्ध को पसंद नहीं आया, इसलिए उसने हीरा जमीन पर डाल दिया।

फिर वह कमल का फूल अपने बायें हाथ में आगे लाया तो बुद्ध ने कहा, "इसे भी गिरा दो। " अत: उसने उसे भी जमीन पर गिरा दिया। उसके बाद वह अपने दोनों खाली हाथों को जोड़ कर आया। बुद्ध ने तीसरी बार भी कहा, "इसको भी गिरा दो। "

अब तो उसके हाथ में कुछ गिराने को भी न था, अत: उसकी कुछ समझ में नहीं आया। बुद्ध ने कहा, "सोचो मत, इसे भी गिरा दो!"

तब अचानक उसकी समझ में आया कि बुद्ध हीरा या फूल गिराने के लिए नहीं कह रहे थे बल्कि इस अहंकार को गिराने के लिए कह रहे थे जो यह हीरा और फूल लाया था।

वह बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा, और बुद्ध ने सभा से कहा, "यह आदमी समझ वाला व्यक्ति है। "जब वह व्यक्ति खड़ा हुआ तो वह दूसरा ही व्यक्ति था, बिलकुल ही भिन्न। पुराना विलीन हो गया था। जो व्यक्ति बुद्ध के चरणों में गिरा था, वह वहां नहीं था, एक नया ही आदमी सामने था। क्या बदल गया था? अहंकार...।

सोलहवां प्रवचन

तथाता का महान नृत्य

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स एतदेवं

वेदाभि हैनं सर्वाणि भूतानि संवाच्छन्ति।। ६।।

उपनिषदं भो ज़ूहीत्युक्ता त उपनिषद्

ब्राह्मी वाव त उपनिषदमलूमेति।। ७।।

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः

सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम्।। ८।।

यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाणानमनन्ते स्वर्गे

लोकेज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति।। ९।।।।

केनोपनिषद समाप्त।।?

केनोपनिषद

चतुर्थ अध्याय

6

ब्रह्म तद्वनम—वह—के नाम से विख्यात है

इसलिए उसका ध्यान तद्वनम की भांति ही करना चाहिए।

जो ब्रह्म को ऐसा जानता है सारे प्राणी उसे प्रेम करते हैं।

7

"श्रीमन् मुझे उपनिंषद की शिक्षा दें। "

उपनिषद तुम्हें दे दिया गया है। हमने वस्तुतः तुम्हें ब्रह्म से संबंधित उपनिषद दे दिया है।

8

तप, दमन और कर्म उपनिषद के आधार हैं वेर्द उसके अंग हैं और सत्य उसका आवास है

9

जो इसे जान लेता है— ब्रह्म का ज्ञान पा लेता? है—वह इस प्रकार पाप को नष्ट कर देता है और ब्रह्म में भलीभांति स्थित हो जाता है— जो कि असीम है आनंदपूर्ण है और सर्वोच्च है।

'ईश्वर' शब्द' ईश्वर नहीं है। क्योंकि उस परम का कोई भी नाम नहीं हो सकता। वह अनाम है, क्योंकि नाम दूसरो के द्वारा दिये गये है। एक बच्चा पैदा होता है। वह बिना किसी नाम के पैदा होता है फिर उसे एक नाम दे दिया जाता है—वह नाम बच्चे की आंतरिक चेतना से नहीं आता। वह बाहर से आता है। वह एक लेबल है—उपयोगी है। कामचलाऊ है। लेकिन झूठा है। बच्चा उसका शिकार होगा, वह अपने को एक नाम के साथ जोड़ लेगा जो दिया गया है, जो कि श्रास्तव में उसका नहीं है।

लेकिन ब्रह्म को कौन नाम देगा? वहां कोई माता—पिता नहीं हैं; कोई समाज नहीं है, कोई दूसरा नहीं है। और फिर उसका उपयोग" क्या हैं जब ब्रह्म ही अकेला है? नाम की जरूरत पड़ती है क्योंकि तूम अकेले नहीं हो। तुम्हें एक श्रेणी में डालना, तुम्हें नाम देना जरूरी है, जिससे तुम्हें बुलाया जा सके, याद किया जा सके। यदि तुम अकेले 'ही हो 'इस पृथ्वी पर 'तो फिर तुम्हें किसी नाम की कोई आवश्यकता नहीं होगी। और ब्रह्म अकेला है—तो कौन उसे नाम देगा? दूसरा कोई है ही नहीं। और उसकी कोई उपयोगिता भी नहीं है।

पहली और बहुत और बहुत आधारभूत बात उपनिषदों के बारे में समझ लेना हे। क्योंकि सभी धर्मों ने कुछ न कुछ नाम दिये है। हिंदुओं ने हजारों नाम दिये हे। उनके पास एक किताब है—विष्णु सहस्त्रनाम, जिसमें ईश्वर के एक हजार नाम दिये गये है। पूरी किताब बस नामों से भरी पड़ी है। ईसाइयों ने, मुसलमानों ने, हिंदुओं ने, सभी ने उसे कुछ न कुछ नाम दिये है। ताकि प्रार्थना की जा सके। सब नाम झूठे है। लेकिन तब तुम उस दिव्य को कैसे पुकारोगे? तुम उसे किस भांति बुलाओगे? तुम उससे किस तरह संबंधित होओंगे? तुम किसी नाम की जरूरत है। लेकिन उपनिषद कोई नाम देने के लिए राज़ी नहीं है।

उपनिषद शुद्धतम संभव देशना है। वे कोई समझौता नहीं करते। वे तुम्हारे लिए कोई समझौता नहीं करते। वे बड़े यथार्थ हैं, कठोर हैं और शुंद्र्धूं ही बने रहने की उनकी चेष्टा है। तो उपनिषद ब्रह्म को किस नाम से पुकारते हैं? वे उसे केवल 'तत्'—'वह:. 'कहते हैं। वे उसे कोई नाम नहीं देते। 'वह 'कोई नाम नहीं है। 'वह' एक संकेत है। और उसमें बड़ा भेद है। जब तुम्हारे पास" कोई नाम नहीं होता, तो तुम इशारे से कहते हो 'वह'। यह अज्ञात की ओर उठी उंगली' हैं, किस दिशा में इशारा करती उंगली है। इसलिए उपनिषद उसे 'तत्' कह कर पुकारते हैं।

तुमने उपनिषदों का एक बहुत प्रसिद्ध वचन सुना होगा—'तत्वमसि'—तू भी वही है। तुम भी ब्रह्म हो, लेकिन उपनिषद उसे 'वह' कह कर ही पुकारते हैं। यह कहना भी कि उसे पुकारते हैं ठीक नहीं है, क्योंकि जैसे ही 'वह', 'उसे' शब्दों का उपयोग किया जाता है, वह परम एक व्यक्ति हो जाता है। उपनिषद नहीं कहते कि वह कोई व्यक्ति है। वह केवल एक शक्ति है, ऊर्जा है, जीवन है, लेकिन कोई व्यक्ति नहीं है। इसीलिए वे उसे 'तत्' कह कर पुकारते हैं। यही एकमात्र नाम है जो उपनिषद उस परम के लिए उपयोग में लाते हैं।

इसमें सचमुच बहुत—सी बातें अंतर्निहित हैं। एक, यदि कोई उसका नाम नहीं है, या यदि उसका नाम केवल 'वह' है तो प्रार्थना असंभव हो जाती है। तुम उस पर ध्यान कर सकते हो, लेकिन तुम प्रार्थना नहीं कर सकते। उपनिषद वास्तव में प्रार्थना में भरोसा नहीं करते, उनका भरोसा ध्यान में है। प्रार्थना किसी व्यक्ति से संबोधित होती है। ध्यान तो अपने में डूबना, भीतर उतरना है। व्यक्ति तो तुमसे कहीं बाहर है, लेकिन 'वह', ब्रह्म, वह परम शक्ति, तुम्हारे भीतर है। तुम्हें उससे किसी अन्य की भांति संबंधित नहीं होना है, तुम्हें तो सिर्फ भीतर गहरे डूब जाना है, तुम्हें सिर्फ अपने ही भीतर उतरना है और तुम उसे पा लोगे क्योंकि 'तू भी वही है'।

ब्रह्म को अन्य की भांति लेना उपनिषदों के लिए असत्य है। नहीं कि दूसरा ब्रह्म नहीं है, सभी कुछ ब्रह्म है, दूसरा भी ब्रह्म ही है। लेकिन उपनिषद कहते हैं कि यदि तुम उसे अपने भीतर अनुभव नहीं कर सकते तो उसे बाहर अनुभव करना असंभव है—क्योंकि निकटतम स्रोत भीतर है, बाहर तो बहुत दूर है। और यदि निकटतम नहीं जाना गया तो तुम दूर को कैसे जान सकते हो ई यदि तुम उसे अपने भीतर ही महसूस नहीं कर सकते तो तुम उसे दूसरों के भीतर कैसे महसूस कर सकते हो? यह असंभव है।

पहला कदम भीतर उठाना है। वह, ब्रह्म, वहा से निकटतम है। तुम ही वह हो। निकटतम कहना भी गलत है, इतनी भी दूरी नहीं है वहा—क्योंकि जब कोई निकट भी है, तो भी दूरी है। निकटता भी दूरी बतलाती

है, निकटता भी एक प्रकार की दूरी है। वह तुम्हारे निकट भी नहीं है—क्योंकि तुम ही वह हो। इसलिए बाहर क्यों भटकना? वह घर में ही है। तुम मेहमान की तलाश कर रहे हो और वह मेजबान है। तुम मेहमान के आने की प्रतीक्षा कर रहे हो और वह मेजबान पहले से ही बैठा है। वह तुम्हीं हो।

इसलिए पहली बात : उपनिषदों के लिए कोई प्रार्थना नहीं है, केवल ध्यान है। प्रार्थना दो के बीच संबंध है, जैसे कि प्रेम। ध्यान संबंध नहीं है दो के बीच। यह समर्पण की भांति है। ध्यान भीतर जाना है, स्वयं का स्वयं के प्रति समर्पण है—परिधि को नहीं पकड़ना है, बल्कि भीतर गहरे में केंद्र पर उतरना है। और जब तुम अपने केंद्र पर हो तो तुम उसी में हो—तत् ब्रह्म।

दूसरी बात : जब उपनिषद उसे 'वह' कह कर पुकारते हैं तो इसका अर्थ है कि वह स्रष्टा नहीं है, बल्कि वह सृजन है, क्योंकि जैसे ही हम कहते हैं कि ईश्वर स्रष्टा है, हमने उसे व्यक्ति बना दिया। और न केवल हमने उसे व्यक्ति बना दिया, हमने अस्तित्व को दो में बांट दिया—स्रष्टा और सृजन। द्वैत आ गया। उपनिषद कहते हैं कि वह सृजन है। अथवा अधिक ठीक होगा कहना कि वह सृजनात्मकता है, सृजन की शक्ति है।

मैं सदा इस बात को नृत्य के उदाहरण से स्पष्ट करना पसंद करता हूं। एक चित्रकार चित्र बनाता है, लेकिन जैसे ही उसने चित्र बना लिया, चित्रकार चित्र से पृथक हो गया। अब चित्रकार मर भी जाये तो भी उसका चित्र रहेगा। या तुम चित्र को नष्ट कर दो तो उससे चित्रकार नष्ट नहीं हो जायेगा। वे दोनों पृथक हैं। अब चित्र सदियों तक बिना चित्रकार के रह सकता है। चित्रकार की कोई आवश्यकता नहीं है। एक बार चित्र बन गया, बात पूरी हो गयी, संबंध टूट गया।

नर्तक को देखो। वह नाचता है, लेकिन उसका नृत्य उससे पृथक नहीं है, उसे पृथक नहीं किया जा सकता। यदि नर्तक मर जाये तो उसका नृत्य भी मर जायेगा। नृत्य नर्तक से अलग नहीं है, नृत्य नर्तक के बिना जी नहीं सकता। और नर्तक भी बिना नृत्य के नहीं हो सकता; क्योंकि जिस क्षण नृत्य नहीं है तो व्यक्ति भले ही हो सकता है, लेकिन वह नर्तक नहीं है।

उपनिषदों की दृष्टि में ईश्वर का संसार से संबंध नृत्य और नर्तक का है। इसीलिए हमने शिव को नटराज की भांति चित्रित किया है। इसका बहुत गहन अर्थ है—कि यह संसार कोई गौण चीज नहीं है जिसे ईश्वर ने एक बार बना दिया, और फिर भूल गया और अलग हो गया। यह संसार कोई द्वितीय श्रेणी की चीज नहीं है। यह इतना ही प्रथम कोटि का है जितना कि परमात्मा, क्योंकि यह संसार उसका नृत्य है, लीला है, खेल है। उसे पृथक नहीं किया जा सकता।

ब्रह्म को 'वह' कह कर पुकारने का अर्थ है. जो भी है, वह ब्रह्म ही है—प्रकट और अप्रकट, सृजन और स्रष्टा, वह दोनों है।

'तत्' शब्द का और भी एक सूक्ष्म अर्थ है। बुद्ध ने उस अर्थ का बहुत उपयोग किया है, और बौद्धों की अलग परंपरा भी है जो इस 'तत्' शब्द पर आधारित है। बुद्ध ने उसे 'तथाता' कहा है। इसीलिए बुद्ध का नाम 'तथागत' पड़ गया—वह व्यक्ति जिसने तथाता को उपलब्ध कर लिया, जिसने 'तत्' को पा लिया। यह शब्द 'तथाता' बड़ा अनूठा है। क्या अर्थ है इसका? यदि तुम पैदा हुए हो तो बुद्ध कहेंगे, " बात ऐसी है कि तुम पैदा हुए हो—'सच इज द केस'। " बस इससे आगे कोई कथन नहीं। यदि तुम मरते हो तो बुद्ध कहेंगे, "बात ऐसी है कि तुम मरते हो! " कोई और बात ही नहीं, कोई प्रतिक्रिया नहीं। चीजें ऐसी हैं। तब सब कुछ स्वीकार हो जाता है। यदि तुम कहते हो, "चीजें ऐसी हैं कि अब मैं बूढ़ा हो गया हूं बीमार हो गया हूं बात ऐसी है कि मैं हार गया हूं बात ऐसी है कि मैं जीत गया हूं—बात ऐसी है. "तब तुम कुछ भी दावा नहीं करते, और तुम निराश नहीं

होते क्योंकि तुम कुछ अपेक्षा ही नहीं करते। चीजों की प्रकृति ही ऐसी है। तब जो भी पैदा होगा वह मरेगा, जो स्वस्थ है वह रुग्ण होगा, जो युवा है वह बूढ़ा होगा, जो सुंदर है वह कुरूप होगा। ऐसा चीजों का स्वभाव है।

तुम व्यर्थ ही चिंतित हो जाते हो—तुम्हारी चिंता से इस तथाता में कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। तुम व्यर्थ ही उसमें उलझ जाते हो। तुम्हारी उलझन से कोई बदलाहट नहीं हो सकती। सब कुछ अपने ही हिसाब से होता रहेगा। तथाता, तथाता की यह सरिता, तुम्हारे बावजूद बहती रहेगी। तुम क्या करते हो इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, तुम क्या सोचते हो इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। वस्तुओं के स्वभाव में तुम कोई फर्क नहीं ला सकते।

एक बार यह बात तुम्हारे दिल में बैठ जाए तो जीवन से तुम्हें कोई विषाद नहीं हो सकता। फिर जीवन तुम्हें कुंठित नहीं कर सकता, निराश नहीं कर सकता। और तथाता की इस प्रतीति के साथ तुम्हारे प्राणों में एक सूक्ष्म आनंद उमगता है। फिर तुम हर बात का आनंद ले सकते हों—वस्तुत: 'तुम' तो होते ही नहीं। 'ऐसा स्वभाव है, ऐसा अस्तित्व है, ऐसा चीजों का ढंग है', इस एहसास के साथ ही तुम्हारा अहंकार खो जाता है।

तुम्हारा अहंकार बच कैसे सकता है? वह तो तभी होता है जब तुम सोचते हो कि वस्तुओं के स्वभाव में तुम कुछ परिवर्तन ला सकते हो। वह तभी होता है जब तुम सोचते हो कि तुम स्रष्टा हो—तुम स्वाभाविक कम बदल सकते हो, तुम प्रकृति को संचालित कर सकते हो। उसी क्षण, जब तुम सोचते हो कि तुम प्रकृति को संचालित कर सकते हो, अहंकार आ जाता है, तुम अहंकारी बन जाते हो। तुम ऐसे सोचने और व्यवहार करने लगते हो जैसे कि तुम पृथक हो।

किसी ने रिंझाई से पूछा, "तुम्हारी साधना क्या है? तुम्हारा ध्यान क्या है? "

तो उसने कहा, "कोई ध्यान नहीं। जब मुझे भूख लगती है तो मैं भूख अनुभव करता हूं और भिक्षा मताने जाता हूं। जब नींद आती है तो सो जाता हूं। जब नींद खत्म होती है और आख खुलती है तो मैं जाग जाता हूं। मेरी और कोई साधना नहीं है, और कोई ध्यान नहीं है और न कोई तपस्या है। प्रकृति जैसी है, मैं वैसा ही बहता हूं। जब गर्मी होती है तो मैं पेड़ की छाह में चला जाता हूं। मेरा स्वभाव ही छांह की ओर बढ़ता है। जब पेड़ की छाह में सर्दी लगने लगती है तो धूप में चला जाता हूं। लेकिन मैं कुछ नहीं कर रहा हूं। वस्तुओं का स्वभाव ऐसा है। "

जरा इसका सौंदर्य देखो. वह कहता है, "ऐसा चीजों का स्वभाव है। जब भूख लगती है, मैं भीख मांगने जाता हूं—नहीं कि मैं भीख मांगने जाता हूं... ऐसा चीजों का स्वभाव है। भूख भीख मांगने जाती है। नहीं कि मैं धूप की गर्मी से पेडू की छाह में चला जाता हूं—ऐसा चीजों का स्वभाव है। शरीर जाता है और मैं इस सबको होने देता हूं और मैं आनंदित हूं क्योंकि मैं सब कुछ होने देता हूं। कुछ भी मुझे दुखी नहीं कर सकता। "

दुख तभी आता है जब तुम बीच में आने लगते हो, तब तुम बाधा देने लगते हो। तुम तथाता को बहने नहीं देते, तुम उसमें प्रतिरोध खड़े करने लगते हो। तुम चीजों का ढंग बदलना चाहते हो, फिर दुख आता है। कोई तुम्हारी प्रशंसा करता है, तुम्हारा सम्मान करता है—तुम फूल जाते हो। तुम सोचते हो कि तुम्हारे अंदर महान प्रतिभा है और अब लोग पहचान रहे हैं। वह थी तो हमेशा से—तुम्हें तो पता ही था—लेकिन लोग अब पहचाने हैं, अब लोग अधिक समझदार हो गये हैं इसलिए वे तुम्हारी महानता को पहचान सकते हैं।

लेकिन फिर पीछे अपमान आता है और चीजों का स्वभाव ही ऐसा है कि सम्मान के पीछे अपमान आता है, वह उसकी छाया है। वह दूसरा हिस्सा है, उसी सिक्के का दूसरा पहलू है। और जब वह आता है, तुम उदास हो जाते हो, तुम निराशा से भर जाते हो, तुमको लगता है कि आत्महत्या कर लें। चारों तरफ पूरी दुनिया तुम्हें गलत लगती है, पूरी दुनिया तुम्हारी दुश्मन मालूम पड़ती है।

जो व्यक्ति चीजों के स्वभाव को समझता है, वह दोनों का मजा लेगा। वह कहेगा, "ऐसा चीजों का स्वभाव है, कि लोग मुझे सम्मान दे रहे हैं। और ऐसा चीजों का स्वभाव है कि सम्मान के पीछे अपमान आता है, जीत के पीछे हार आती है, सुख के पीछे दुख आता है, स्वास्थ्य के पीछे बीमारी आती है—ऐसा चीजों का स्वभाव है! जवानी के पीछे बुढ़ापा आता है, और जन्म के पीछे मृत्यु आती है—ऐसा चीजों का स्वभाव है। "

तो कोई भी परिस्थिति हो, अगर तुम यह महसूस कर सको कि ऐसा है और इससे अन्यथा होना संभव नहीं है, कि जो संभव है वही घटता है.. वह सदा ही घट रहा है—जो संभव है। और जो असंभव है वह कभी नहीं घटता। और अगर तुम असंभव की मांग कर रहे तो तुम चीजों के स्वभाव के विपरीत होने की कोशिश कर रहे हो। तथाता का जो दर्शन है वह सिर्फ इतना ही है : "असंभव को पाने की कोशिश मत करो; जो संभव है उसके साथ बहो और तुम कभी दुखी नहीं होओगे। " आनंद उन्हें. ही मिलता है जो तथाता के भाव के साथ बहते हैं।

बुद्ध के हुए। और उनके शिष्यों को लगा कि बुद्ध को तो का नहीं होना चाहिए। बुद्ध और के हों? शिष्य इस बात की कल्पना ही न कर सके क्योंकि शिष्यों की अपनी कल्पनाएं होती हैं। वे सोचते हैं कि बुद्ध प्राकृतिक नियमों के अधीन नहीं हैं। वे सोचते हैं कि उन्हें नहीं मरना चाहिए, कि उन्हें सदा युवा रहना चाहिए। तो आनंद ने बुद्ध से कहा, "हमें बड़ा दुख होता है कि अब आप पर वृद्धावस्था उतर रही है। यह हमारी कल्पना के बाहर है कि आप जो कि प्रबुद्ध हो गये हैं, जिसने परम को जान लिया है, वृद्ध हो जायें। "

बुद्ध ने कहा, "चीजों का स्वभाव ऐसा है। हर किसी के लिए—फिर वह बुद्ध हो या अबुद्ध, ज्ञानी हो या अज्ञानी—चीजों का स्वभाव एक जैसा है, समान है। मैं का होऊंगा और मैं मरूंगा, क्योंकि जो भी पैदा हुआ है वह मरेगा। ऐसा चीजों का स्वभाव है। " आनंद दुखी है, बुद्ध नहीं। क्योंकि आनंद असंभव की अपेक्षा कर रहा है—चीजों के स्वभाव के विपरीत।

जब श्री अरविंद की मृत्यु हुई तो पूरा अरविंद— आश्रम यह मानने को तैयार नहीं था कि अरविंद मर सकते हैं। उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ। सारी दुनिया में फैले उनके शिष्यों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि श्री अरविंद मर सकते हैं! कुछ महीनों तक तो यह अफवाह थी कि वे पुनरुज्जीवित हो जायेंगे। और कुछ दिनों तक उन्होंने उनके शव को भी सुरक्षित रखने की कोशिश की। उनके शिष्यों के बीच यह अफवाह थी कि वे मरे नहीं हैं, बल्कि गहरी समाधि में हैं, गहन ध्यान में चले गये हैं। लेकिन तीन दिन बाद शरीर सड़ने लगा और उसमें से बदबू आने लगी। वे सचमुच मर गये थे। ऐसा चीजों का स्वभाव है।

प्रकृति बहुत बड़ी साम्यवादी है। वह कोई भेद नहीं करती। और अच्छा है कि वह भेद नहीं करती। वह पक्षपातपूर्ण नहीं है। यदि तुम बुद्ध हो तो इतना ही फर्क होगा कि तुम इस तथाता को स्वीकार करोगे। यदि तुम अज्ञानी हो तो इतना ही फर्क होगा कि तुम तथाता से लड़ते रहोगे, उसका प्रतिरोध करते रहोगे। फर्क केवल इतना है—केवल इतना, मैं कहता हूं। लेकिन यह केवल इतना सा फर्क भी बहुत बड़ा है, बल्कि सबसे बड़ा है, क्योंकि जैसे ही तुम्हें बोध होता है कि चीजें अपने ढंग से चलती हैं, कि प्रकृति की अपनी व्यवस्था है, अपने नियम हैं, तल्ला तुम उससे मुक्त हो जाते हो। नहीं कि वह अपने नियम तुम्हारे लिए बदल लेगी, लेकिन तुम बदल गये हो, तुम्हारी दृष्टिकोण बदल गया है। तुम कहोगे, "चीजों का ऐसा स्वभाव है। "

ब्रह्म चीजों का आत्यंतिक स्वभाव है, तथाता है। इसी के साथ समग्र स्वीकार आता है। समग्रै स्वीकार में दुख विलीन हो जाता है। दुख तुम्हारा प्रतिरोध है, दुख तुम्हारा अस्वीकार है। तुम्हीं अपना दुख पैदा करते हो। आनंद सदा उपलब्ध है, लेकिन तुम्हारे दृष्टिकोण के कारण तुम उसे उपलब्ध नहीं हो।

अब हम सूत्र में प्रवेश करें

ब्रह्म तद्वनम— वह— के नाम से विख्यात है इसलिए उसका ध्यान तद्वनम की भांति ही करना चाहिए जो ब्रह्म को ऐसा जानता है सारे प्राणी उसे प्रेम करते हैं।

ब्रह्म 'तत्'— वह— के नाम से विख्यात है इसलिए उसका ध्यान 'तत्' की भांति ही करना चाहिए। उसका ध्यान किसी व्यक्ति की भांति नहीं करना है। तब तुम्हारी कल्पना प्रवेश कर जायेगी। वहां कोई व्यक्ति नहीं है। उसका ध्यान सगुण की भांति नहीं करना है। उपनिषदों की ऐसी देशना नहीं है। उसकी कल्पना किसी भी आकृति के रूप में मत करो। बस उसे 'तत्'—वह—की भांति स्मरण करो।

लेकिन यह बड़ा कठिन है। कैसे तुम उसे 'वह' की तरह याद कर सकते हो? तुम उसका कृष्ण की तरह, राम की तरह, क्राइस्ट की तरह, बुद्ध की तरह स्मरण कर सकते हो, लेकिन तुम उसका 'वह' की तरह कैसे स्मरण करोगे? 'वह' की धारणा ही तुम्हारे मन को तोड़ देगी। तुम्हारा मन रुक जायेगा। यदि तुम उसका स्मरण 'वह' की तरह करो, वस्तुओं के तथाता— भाव की भांति करो, इस विराट विश्व की भांति करो—और उसमें सभी कुछ शामिल है—तो तुम्हारा मन एक झटके से ठहर जायेगा। तुम उसके बारे में सोच नहीं सकते; या सोच सकते हो? तुम कृष्ण के बारे में सोच सकते हो, क्योंकि तुम चित्र खींच सकते हो कि कृष्ण बांसुरी लिए खड़े हैं या नाच रहे हैं, और उनके चारों ओर गोपिया नाच रही हैं। अथवा वे राधा के साथ प्रेम लीला कर रहे हैं।

तुम कृष्ण का चित्र खींच सकते हो, लेकिन तुम 'उसका' चित्रण कैसे करोगे? कोई बांसुरी नहीं है, कोई गोपियां नहीं हैं, कोई नृत्य नहीं चल रहा है। कुछ भी तो नहीं है चित्र बनाने को। तुम 'उसकी' कल्पना कैसे कर सकते हो? कल्पना रुक जाती है। यदि तुम सचमुच ही 'उस' की कल्पना करने लगो तो उस प्रयत्न से ही तुम्हारा मन ठहर जायेगा और तुम ध्यान में प्रवेश कर जाओगे। यह 'तत्' झेन कोआन जैसा है। यह कुछ ऐसा है जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। यदि तुम उसकी कल्पना करने का प्रयत्न करो तो तुम्हारा मन ठहर जायेगा, और मन का ठहर जाना ही ध्यान है।

उस पर ध्यान करने का प्रयत्न ही बेतुका है। तुम उस पर ध्यान नहीं कर सकते। कुछ ध्यान करने के लिए नहीं है, कोई वस्तु नहीं है। 'वह' कोई वस्तु नहीं है। लेकिन यदि तुम कठिन प्रयास करो तो उस प्रयास में ही., क्योंकि तुम उस पर ध्यान नहीं कर सकते। नहीं कि तुम तत् पर ध्यान करने में सफल हो जाओगे—लेकिन उस प्रयत्न में ही, इस असफलता में ही कि तुम उसके बारे में सोच नहीं सकते, विचार रुक जाते हैं—क्योंकि विचार के लिए कोई लक्ष्य नहीं है, वह उसके साथ नहीं चल सकता। और जब विचार की प्रक्रिया रुक जाती है तो तुम ध्यान में होते हो।

नहीं कि 'तत्', ब्रह्म तुम्हारे समक्ष प्रकट होगा, नहीं कि तुम सत्य को अपने समक्ष खड़ा पाओगे—नहीं! जिस क्षण तुम्हारी विचार की प्रक्रिया रुक गई, तुम स्वयं ही 'तत्' हो गये, तुम उसी में डूब गये। लहर सागर में खो गयी। और यह खोना सदैव भीतर होता है, क्योंकि वहीं से तुम डूबते हो। लहर सागर में खो जाती है। तुम ही वह हो। उस पर ध्यान से तुम भी 'वह' ही हो जाओगे।

उपनिषद कहे चले जाते हैं कि जो भी ब्रह्म को जानता है वह ब्रह्म ही हो जाता है, जो भी 'उस' पर ध्यान करता है वह 'वही' हो जाता है, वह तत् ही हो जाता है।

ब्रह्म 'वह' के नाम से विख्यात है इसलिए उसका ध्यान 'वह' की भांति ही करना चाहिए। जो ब्रह्म को ऐसा जानता है सारे प्राणी उसे प्रेम करते हैं

और जो भी व्यक्ति ब्रह्म को इस भांति जानता है, अस्तित्व के तथाता— भाव की भांति जानता है, स्वाभाविक है कि सभी प्राणी उसे प्रेम करते हैं।

ऐसा क्यों होता है? तुम्हें अचानक लगता है कि तुम्हारे भीतर से प्रेम उमड़ रहा है और उस व्यक्ति की ओर बह रहा है जिसने ऐसी 'तथाता' को पा लिया है। ऐसा क्यों होता है? ऐसा भी नहीं है कि यह अनिवार्य ही हो; तुम ऐसे व्यक्ति को घृणा भी कर सकते हो, क्योंकि घृणा भी प्रेम का ही दूसरा रूप है। लेकिन तुम ऐसे व्यक्ति के प्रति उदासीन नहीं रह सकते, यही असली बात है। यदि ऐसा व्यक्ति मौजूद है तो या तो तुम उससे प्रेम कर सकते हो, या फिर तुम उससे घृणा कर सकते हो, लेकिन तटस्थ नहीं रह सकते। घृणा संभव है, क्योंकि घृणा प्रेम का ही उलटा रूप है। यह ऐसे ही है जैसे प्रेम शीर्षासन कर रहा हो। लेकिन तुम उदासीन नहीं रह सकते।

क्यों प्रेम घटता है? क्यों घृणा पैदा होती है? और क्यों तटस्थता संभव नहीं है? क्योंकि ऐसे व्यक्ति का अस्तित्व तुम्हारे हृदय को गहरे में छूता है, यह तुम्हारे हृदय के तारों को छेड़ता रहता है। और तुम्हारा हृदय एक वीणा हो जाता है। ऐसे व्यक्ति की उपस्थिति ही तुम्हारे हृदय की वीणा के तारों को झंकृत कर देती है। ऐसे व्यक्ति की उपस्थिति ही तुम्हारे भीतर के 'तत्' को जगा देती है। वह एक चुंबकीय शक्ति हो जाता है और तुम्हारे सोये ब्रह्म की नींद टूटने लगती है। तुम्हारा सोया ब्रह्म अपनी आखें खोलता है और इस जागे हुए ब्रह्म को देखता है, और फिर प्रेम अथवा घृणा पैदा होती है।

यदि तुम ग्रहणशील, समर्पणपूर्ण, श्रद्धावान हो, तो तुम्हारे भीतर प्रेम घटित होगा। यदि तुम शंकालु, संशयी, समर्पणरहित, अहंकारी हो तो तुम्हारे भीतर घृणा पैदा होगी। लेकिन तटस्थता असंभव है। तुम कल्पना भी नहीं कर सकते कि बुद्ध गांव से गुजरें और कोई उनके प्रति तटस्थ रह सके। या तो प्रेम या तो घृणा होगी ही। लेकिन दोनों ही संबंध हैं : तुम संबंधित होने लगोगे।

प्रेम कहता है, "मैं तुम्हारे साथ चलने को राजी हूं। " घृणा कहती है, "मुझे मत खींचो। मैं समर्पण करने को राजी नहीं हूं मैं प्रतिरोध करूंगी। " प्रेम कहता है, "मैं तुम्हारे पीछे चलने को और तुम्हारे साथ गिरने को राजी हूं। " घृणा कहती है, "मैं अपना अहंकार समर्पित नहीं कर सकती। और चूंकि मैं अपना अहंकार समर्पित नहीं कर सकती, मैं तुम्हें घृणा करूंगी, क्योंकि जैसे ही प्रेम होगा, समर्पण हो जाएगा। " और कभी—कभी ऐसा होता है कि जब तुम किसी व्यक्ति के प्रेम में होओ तो शायद तुम इतने गहरे संबंधित नहीं भी होओ, जितने कि तुम उसके प्रति घृणा से भरने पर होते हो।

एक कहानी मैंने सुनी है

एक ऋषि किसी व्यक्ति पर बहुत क्रोधित हो गया। वह इतना क्रोधित हो गया कि उसने उसे श्राप दे दिया। श्राप बड़ा भयंकर था, और उस आदमी को उसकी यातना सहने के लिए बार—बार जन्मना पड़ेगा। वह आदमी उस ऋषि के चरणों में गिर पड़ा और क्षमा—याचना करने लगा। लेकिन श्राप तो बदला नहीं जा सकता, इसलिए ऋषि ने कहा, " अब कुछ भी नहीं किया जा सकता श्राप को बदलने के लिए। तुम्हें उसे भोगना ही पड़ेगा। केवल एक बात की जा सकती है, यदि तुम परमात्मा के नाम का स्मरण करते रहो तो श्राप का इतना भयंकर प्रभाव नहीं पड़ेगा। तुम अलग ही छूट जाओगे; तुम इतने दुखी नहीं होओगे। लेकिन तुम्हें उसे भोगना तो पड़ेगा ही। "

तो उस व्यक्ति ने पूछा, "कृपया मुझे उसका नाम स्मरण रखने की तरकीब बता दें ताकि मैं उसका नाम नहीं भूलूं। "तो ऋषि ने कहा, "तब तुम परमात्मा से घृणा करो। उसे प्रेम मत करना, क्योंकि प्रेम में तो उसे भूल भी सकते हो, लेकिन घृणा में नहीं भूलोगे। परमात्मा को घृणा करो, और उसे गालियां दो, गालियों पर गालियां देते रहो। उसे गाली दें—देकर तुम उसे याद करते रहोगे।"

प्रेम भूल भी सकता है, लेकिन घृणा नहीं भूल सकती। प्रेम भूल सकता है क्योंकि धीरे— धीरे वह प्रेमी के साथ एक हो जाता है। परंतु घृणा एक सतत सतर्कता है, तुमको अपने को बचाना है। आकर्षण है वहा—एक बुद्ध

तुम्हें खींच रहे हैं—तुम्हें संघर्ष करना है। यदि तुम जरा भी चूके, यदि तुम एक क्षण को भी भूले, तो तुम धारा में बह जाओगे। इसलिए तुम्हें लगातार सतर्क रहना पड़ता है। घृणा भी एक उल्टे ढंग का प्रेम—संबंध है।

एक व्यक्ति जो कि बुद्ध हो गया है, जिसने कि 'तत्' को जान लिया है, वह तुम्हें आकर्षित करेगा—या तो तुम उसे प्रेम करो या घृणा करो। लेकिन एक बात पक्की है, कि तुम उसके प्रति उदासीन नहीं हो सकते, क्योंकि वह इतने गहरे चला गया है कि उसकी गहराई तुम्हारे भीतर गूंजेगी, प्रतिध्वनि पैदा करेगी, प्रतिछवि बनाएगी। उसकी गहराई तुम्हारी गहराई को पुकारेगी। वह तुम्हारे लिए एक आह्वान हो जाएगा। नहीं कि वह व्यक्ति अपनी ओर से कुछ करेगा, केवल उसका होना ही, सिर्फ उसका अस्तित्व ही कुछ करेगा। उसकी अपनी तरफ से कोई भी प्रयास नहीं होता है।

एक फूल को देख कर तुम कह उठते हों—सुंदर! तुम्हारे भीतर कुछ हुआ। नहीं कि फूल ने कुछ किया है। फूल को तो पता भी नहीं है कि तुम वहां से गुजर रहे हो। लेकिन तुम कहते हों—सुंदर! जब तुम्हारा हृदय कहता है कि सुंदर, तो कुछ तुम्हारे हृदय के भीतर हुआ है, फूल ने तुम्हें कहीं गहरे में छुआ है। तुम रात्रि को पूरा चांद देखते हो, और अचानक तुम मौन हो जाते हो। उस गहराई, उस सौंदर्य, उस मनोहरता ने तुम्हें भी स्पर्श किया।

ऐसा ही है : जब कोई व्यक्ति जिसने ब्रह्म को जान लिया है, जो बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया है, तुम्हें छूता है तो उसका वह स्पर्श किसी भी फूल के स्पर्श से, किसी भी पूरे चांद के स्पर्श से गहरा होता है, वह इस जगत की किसी भी चीज के स्पर्‌श से गहरा होता है, क्योंकि ब्रह्म की अनुभूति गहनतम है, आत्यंतिक है, मूलभूत है। ऐसे व्यक्ति के सिर्फ निकट होने से ही तुम रूपांतरित हो जाते हो।

इसीलिए भारत में गुरु के निकट रहने पर इतना जोर है—केवल गुरु के निकट, उसके सान्निध्य में रहना। उसका सान्निध्य ही तुम्हें रूपांतरित करता है, क्योंकि उसकी गहराई तुम्हारी गहराई को पुकारती है, उसकी भीतरी शाति तुम्हारी शाति को पुकारती है, उसका आनंद तुम्हारे आनंद के लिए भी आह्वान हो जाता है। गुरु की उपस्थिति ही सम्मोहक होती है। वह तुम्हें रूपांतरित करता जाता है, बदलता जाता है। "श्रीमन् मुझे उपनिषद की शिक्षा दें। "

अब शिष्य बोलता है। अब तक गुरु बोल रहा था, और अब शिष्य पहला और आखिरी प्रश्न पूछता है—एकमात्र प्रश्न। बहुत ही सुंदर है! क्योंकि वह केवल प्रतीक्षा कर रहा था। तुम्हें पता भी नहीं होगा कि शिष्य भी वहा उपस्थित था। केवल गुरु ही बोल रहा था, जैसे कि शिष्य वहा था ही नहीं। वह केवल आख और कान ही हो गया होगा, उसने बीच में कोई दखल नहीं दिया। अब अंतिम क्षण वह एक प्रश्न पूछता है :

"श्रीमन् मुझे उपनिषद की शिक्षा दें। "

उपनिषद शब्द का अर्थ होता है—रहस्यमय शिक्षा, गुप्त शिक्षा, गुह्य देशना। 'उपनिषद' का अर्थ होता है गुप्त मार्ग, गुप्त कुंजी—रहस्यपूर्ण, गढ़, अज्ञात। उपनिषद का अर्थ होता है—रहस्य।

शिष्य पूछता है : "श्रीमन् मुझे उपनिषद की शिक्षा दें "

और गुरु कहता है : उपनिषद तुम्हें दे दिया गया है। हमने वस्तुत: तुम्हें ब्रह्म से संबंधित उपनिषद दे दिया है

यहां पर एक बहुत ही सूक्ष्म और नाजुक बात समझने की है। गुरु समझा रहा था, बोल रहा था और शिष्य बहुत ही सतर्क होकर, एकचित्त होकर, बौद्धिक रूप से सजग होकर सुन रहा था, ताकि जो भी कहा जा रहा था उसे समझ सके। और जो भी कहा जा सकता है, कह दिया गया। ब्रह्म के बारे में जो भी ज्ञान दिया जा सकता है, वह दे दिया गया है। जो भी शब्दों में कहा जा सकता है, बोला जा सकता है बोल दिया गया है। और

शिष्य पूछता है, " अब मुझे उपनिषद की शिक्षा दें, उस गुप्त से भी गुप्त रहस्य को बताएं। इसका क्या अर्थ है? " और गुरु कहता है, "उपनिषद तुम्हें पहले ही दे दिया गया है। "

गुरु बोल रहा है—यह एक तल पर है—और जब शिष्य सुनने में लगा है, तब एक दूसरे तल पर वह रहस्य उसे दिया जा रहा है।

इसीलिए शिष्य को पता नहीं है; वह बौद्धिक रूप से व्यस्त है। उसका ध्यान शब्दों पर है, पर भीतर गहरे में कुछ हस्तांतरित किया जा रहा है। और वह हस्तांतरण ही रहस्य है, वही वास्तविक उपनिषद है। लेकिन उसे कहा नहीं जा सकता। वह निःशब्द हस्तातरण है, मौन संप्रेषण है।

भारत ने जितने महान गुरु पैदा किए हैं उनमें से एक, बोधिधर्म, चीन गया। उसके बारे में कहा जाता है कि वह एक ऐसे शास्त्र के साथ चीन आया जो था ही नहीं—जिसका कहीं कोई अस्तित्व ही नहीं था। उसने उस शास्त्र को बिना हस्तांतरित किए ही हस्तांतरित कर दिया। वह जरूर एक कुशल गुरु रहा होगा जिसने बिना शब्दों के ही सब कुछ संप्रेषित कर दिया।

वह दीवार की ओर मुंह करके बैठता था, वह कभी भी श्रोताओं की ओर मुंह करके नहीं बैठता था। उसकी पीठ ही तुम्हारी तरफ होगी। वह कभी तुम्हारी ओर नहीं देखेगा; वह सिर्फ दीवार की ओर ही देखेगा। और बहुत—से लोग बोधिधर्म से पूछते, "यह कौन—सा ढंग है? यह कौन—सा तरीका है? आप किस तरह के आदमी हैं? हमने किसी को भी दीवार की ओर मुंह करके बैठते हुए नहीं देखा है, और हम आपको सुनने आए हैं। "

बोधिधर्म कहा करता था, "जब ठीक आदमी आ जायेगा तो मैं अपना मुंह पलट लूंगा। और ठीक आदमी वही होगा जो मुझे मौन में भी समझ सकता है। मुझे तुम लोगों में कोई भी रस नहीं है। "

और तब एक दिन वह ठीक आदमी आया और उस ठीक आदमी ने बोधिधर्म से कहा, "मेरी ओर घूमो, वरना मैं अपना सिर काट दूंगा। "

तो बोधिधर्म तुरंत घूमा और बोला, "तो तुम आ गये? अब मौन बैठ जाओ और मैं तुम्हें वह दूंगा। " संप्रेषण में एक शब्द भी नहीं बोला गया, और दूसरा व्यक्ति भी गुरु हो गया। और बोधिधर्म विलीन हो गया। उसने कहा, "मैं इस व्यक्ति की नौ वर्षों से प्रतीक्षा कर रहा था। " और वह दूसरा आदमी गुरु हो गया। एक शब्द भी नहीं बोला गया।

तुम्हारे भीतर परतें हैं। सबसे ऊपर की जो परत है, सबसे सतही, वह भाषा को समझती है, और जो गहरी से गहरी परत है वह मौन को समझती है। और गुरुओं को उपाय खोजने पड़ते हैं। ये उपदेश, ये मौखिक प्रवचन—सब उपाय हैं, तरकीबें हैं।

मैं तुमसे बोलता रहता हूं। एक युवक अभी दो दिन पहले ही आया और उसने कहा, " आप बड़े विरोधाभासी हैं। आप कहते हैं कि कुछ भी नहीं कहा जा सकता है और आप रोज सुबह—शाम तीन—तीन घंटे बोलते रहते हैं। आप बड़े विरोधाभासी हैं। आप कहते हैं कि उस के बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, और आप कहे चले जाते हैं।"

वह सही है, मैं विरोधाभासी हूं। उसके बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, पर फिर भी मैं कुछ न कुछ कहता रहता हूं। वह कुछ कहना सिर्फ तुम्हारे ध्यान को एक तल पर लगाये रखने के लिए है, ताकि दूसरे तल पर मौन में कुछ प्रवेश कर सके।

गुरु कहता है, "उपनिषद तुम्हें पहले ही दे दिया गया है, और तुम कहते हो कि मुझे उपनिषद की शिक्षा दो। और मैं सारे समय कर क्या रहा था?"

लेकिन शिष्य बौद्धिक रूप से संलग्न था। उसे अभी पता नहीं है कि उसे क्या घटित हुआ है। खबर अभी उसकी बुद्धि तक नहीं पहुंची है। इसमें समय लगेगा। तो ऐसा होता है। जब तुम यहां हो तो शायद तुमने मुझे नहीं समझा हो, लेकिन उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। यदि मौन में संबंध जुड़ गया है तो थोड़ा समय लगेगा तुम्हें महसूस करने में कि भीतर कुछ हो गया है। खबर पहुंचने में थोड़ा समय लगेगा क्योंकि बुद्धि तुम्हारे अंतर्तम केंद्र से बहुत दूर है। यदि वहां कुछ घटता है तो तुम्हें उसका पता नहीं चलेगा। बल्कि मुझे पहले उसका पता चल जायेगा। इसीलिए जब तुम ध्यान कर रहे होते हो तो मैं तुम्हें देखता रहता हूं ताकि मुझे पता चल सके कि क्या घटित हो रहा है—क्योंकि अभी तुम सक्षम नहीं हो कि तुम्हें उसका पता चल सके। उसमें समय लगेगा। एक दिन संदेश आयेगा, वह यात्रा करेगा, वह तुम्हारी सभी पर्तों व केंद्रों से गुजरेगा। और तब वह तुम्हारे मस्तिष्क तक पहुंचेगा और तब तुम उसे पहचान पाओगे। लेकिन इस सबमें वर्षों लग सकते हैं।

मेरे अति निकट लोगों में एक अभी कुछ दिन पहले कह रहा था, ”आपने मेरे लिए कुछ भी नहीं किया और मैं आपके साथ दो वर्षों से रह रहा हूं। ” अभी खबर नहीं पहुंची है, उसे वक्त लगेगा।

गुरु कहता है

उपनिषद तुम्हें दे दिया गया है हमने वस्तुत: तुम्हें ब्रह्म से संबंधित उपनिषद दे दिया है।

तप दमन और कर्म उपनिषद के आधार हैं। वेद उसके अंग हैं और सत्य उसका आवास है

संक्षेप में गुरु उपनिषद की परिभाषा करता है : तप?..। तप का अर्थ है प्रयास, अथक प्रयास। जब तुम किसी भी प्रयास में अपनी पूरी ऊर्जा लगा देते हो तो वह तप हो जाता है—कोई भी प्रयास। यदि तुम्हारी पूरी ऊर्जा उसमें लग जाती है तो वह तप हो जाता है। ध्यान करते समय यदि तुम अपने को रोक लेते हो तो वह तप नहीं है। तुम प्रयत्न तो कर रहे हो लेकिन वह कुनकुना है, सतही है। तुम उसमें गहरे नहीं जा रहे हो, उसमें समग्रता से नहीं उतर रहे हो। जब तुम उसमें पूरी समग्रता से उतरते हो तो ताप पैदा होता है, इसलिए तप कहा है। तप का अर्थ होता है ताप, गर्मी। जब तुम किसी भी प्रयास में पूरे प्राण से उतरते हो तो उससे तुन्हारे भीतर एक गर्मी पैदा होती है। उससे वस्तुत: गर्मी पैदा होती है, और वह गर्मी बहुत सी चीजों को रासायनिक ढंग से बदल देती है। तुम दूसरे ही आदमी हो जाते हो, तुम तप के द्वारा एक भिन्न ही व्यक्ति हो जाते हो, क्योंकि वह गर्मी तुम्हारे भीतर रासायनिक परिवर्तन कर देती है। वह क्ज ० अलग प्रकार का व्यक्तित्व निर्मित कर देती है।

इस युग में गुरजिएफ ने ‘तप’ की बहुत—सी विधियों का उपयोग किया। वह तुम्हें कोई भी विधि दे

देगा और तुमसे कहेगा, ” अपना पूरा प्रयास इसमें लगा दो; एक अंश भी पीछे देखने के लिए नहीं बचे।

अपने को पूरा ही लगा दो; प्रयास ही हो जाओ। ”

और तुम्हें आश्चर्य होगा कि कोई भी प्रयास—’कोई भी...

गुरजिएफ किसी से कहेगा, ”बगीचे में जाओ और गड्डा खोदो, और अपना सारा श्रम खोदने में रन—गइ दो, खोदने वाले को बिलकुल ही भूल जाओ, खोदना ही हो जाओ। ” वह आदमी जायेगा और खादेगा और खोदेगा। फिर गुरजिएफ आयेगा और सारी मिट्टी वापस गड्डे मैं दबवा देगा और कहा, ”यह सब बेकार है। कल सबेरे फिर से शुरू करना। ”

और वह आदमी दूसरे दिन सबेरे फिर से खोदना शुरू करेगा और यह सिलसिला कई दिनों तक चलेगा। और गुरजिएफ रोज शाम को आयेगा और मिट्टी वापस गड्डे में डलवा देगा और कहेगा, ”फिर से शुरू करो। ”

जब तक खोदने वाला खोदना ही नहीं हो जाता? जब पीछे कोई भी नहीं बचता, जब पूरे प्राण उस प्रयास में लग जाते हैं, तो वह ‘तप’ होता है, तो वह एक सूक्ष्म ऊष्मा हो जाता है।

गुरु कहता है कि तप और दमन..। दमन का अर्थ होता है अपने पर नियंत्रण, न कि स्वय कौ दबाना। दमन शब्द का बहुत ही गलत उपयोग किया गया है। वह स्वयं को दबाना नहीं है। वह स्वयं पर नियंत्रण रखना है। और इन दोनों में बहुत ही सूक्ष्म अंतर है। ध्यान करते समय या मौन में खड़े हुए तुम्हें ऐसा लग सकता है कि जैसे छींक .आ रही है। तुम उस' दबा सकते हो। तुम उससे लड़ने लग सकते हो, तो यह दबाना हुआ, सप्रेशन हुआ। लेकिन यदि तु;। उसके प्रति उदासीन रहे, यदि तुम उसके लिए कुछ भी नही करते, न तो तुम उसे दबाते और न तुम उसे व्यक्त करते, तुम उसके लिए कुछ भी नहीं करते, तुम सिर्फ तटस्थ खड़े रहते हो 'तो. यह स्व —— नियंत्रण है। तुम स्वयं में खड़े रहे, तुम छींक की ओर नहीं चले गये कि कुछ करो।

यदि तुम उसे अभिव्यक्त करने गये तो तुम अपने से बाहर आ गये। यदि तुम उसे दबाने चले तो फिर तुम अपने से बाहर आ गये। तुम सिर्फ अपने भीतर खड़े रहे जेसे कि छींक किसी और को' आ रही हे, और तुम्हारा कुछ लेना देना नहीं है; तुमने उसे दबाया भी नहीं, तुम उससे लड़े भा नहीं, तुम सिर्फ उदार्सान भाव से तटस्थ भाव से खड़े देखते रहे, साक्षी रहे, तो फिर यह स्व—नियंत्रण है।

दबाना बहुत सरल है क्योंकि तुम्हें कुछ करने को है। स्व —निएयंत्रण. बहुत कठिन है क्योंकि उसमें तुम्हे कुछ भी नहीं करना है। तुम्हें सिर्फ निष्क्रिय रहना है, अकर्ता, सिर्फ साक्षी बने रहना है।

तप दमन और कर्म—आधार हैं।

ये तीनों बातें गढ़—देशना, उपनिषद का आधार हैं। कर्म—सारे कृत्य कर्म नही, हैँ। जब कम समर्पित हो, जब कर्म अहंकाररहित हो, जब कर्म एक पूजा हो, ध्यान हो., जब कर्म बाहर—बाहर से तो कर्म हो, पर भीतर से कुछ और ही परमात्मा की तरफ उठ रहा हो, तभी वह कर्म है; तभी वह समर्पित कर्म है।

उदाहरण के लिए तुम किसी के आदमी की सेवा कर रहे हो या रुग्ण की सेवा कर रहे हो। यदि तुम उसे ध्यान बना सको, पूजा बना सको, यदि तुम उस बूढ़े अथवा रुग्ण की तरफ परमात्मा की भांति देख सको 'उसे' देख सको; यदि तुम उसकी सेवा 'कुछ पाने के लिए नहीं बल्कि गहरे ध्यान के लिए, इस क्षण में होने के लिए कर सको—तो तुम्हारी सेवा ध्यान हो जाती है, तब वह 'कर्म' हो जाती है। यदि तुम उसमें से कुछ भी पाना चाहते हो तो उससे कारण और कार्य की शृंखला बनेगी।

यदि तुम सोचते हो कि यह का आदमी—चाहे वह तूम्हारे पिता ही क्यों न हों—इसके पास 'काफी जायदाद है, बैंक—बैलेंस है, यदि तुम्हारी आंखें उस बैंक—बैलेंस पर लगी हैं, तो फिर यह कर्म नहीं है। लेकिन यह बैंक—बैलेंस कई रूपों में हो सकता है। तुम इस के आदमी की सेवा स्वर्ग पाने के लिए भी कर सकते हो; वह भी बैंक—बैलेंस ही है। तुम शायद इस वृद्ध की सेवा इसलिए कर रहे हो क्योंकि तुम्हें सिखाया गया है कि सेवा से परमात्मा मिलता है, तो वह भी एक तरह का बैंक—बैलेंस ही है। तुम यहां नहीं हो, तुम्हारा मन कहीं और है।

जब कर्म यहां और अभी समग्र भाव से होता है, जब तुम्हारा मन भविष्य में किसी भोई भांति नहीं जा रहा होता है, तब फिर उससे कोई शृंखला नहीं बनती। तब वह इस क्षण में ही ध्यान बन जाता है।

ये तीन—तप, दमन और कर्म—उसके आधार हैं।

वेद उसके अंग हैं..

'वेद' बड़ा सुंदर शब्द है। इसका अर्थ होता है शान। जो भी ब्रह्म के बारे में जाना गया है, जहां भी जाना गया है, वह सब वेद है। इसलिए मैं बाइबिल को भी वेद कहता हूं कुरान को भी वेद कहता हूं। मेरे लिए हजारों—हजारों वेद हैं। और जब भी कोई व्यक्ति जान को उपलब्ध होता है तो वह जो भी कहता है वह वेद है।

इसलिए वेद सिर्फ चार नहीं हैं। 'वेद' शब्द विद् से निकला है। विद् का अर्थ होता है जानना। और जहा कहीं भी यह ज्ञान संगृहीत है, जहा कहीं भी इस जानने को प्रतीकों में बताया गया है, वह वेद हो जाता है।

वेद उसके अंग हैं और सत्य उसका आवास है

ये तीन बातें स्मरण रखने योग्य हैं—पूरी तरह से, तीव्रता से प्रयास करो ताकि एक आतरिक ताप पैदा हो और तुम्हें रासायनिक रूप से बदल दे। स्व—नियंत्रण रखो ताकि तुम 'स्वयं' में केंद्रित रहो—
अचल, अकंप, स्थिर, अडिग। और अपने कृत्यों को कर्म बना लो—एक समर्पित प्रार्थना, ध्यान। जो भी पहले जाना गया है उसे जानने का प्रयास करो। नहीं कि तुम उसके द्वारा सत्य तक पहुंच जाओगे, लेकिन उससे तुम्हें सहायता मिलेगी। वह अवरोध भी बन सकता है, यदि तुम उससे बहुत ज्यादा जकड़ जाओ। अन्यथा, वह सहायक होगा।

और अंत में सत्य उसका आवास है। और सत्य का अर्थ होता है वह—तत्। और वह तुम्हारे पास तभी आता है जब तुम तथाता का जीवन जीते हो।

जो इसे जान लेता है; वह इस प्रकार पाप को नष्ट कर देता है और ब्रह्म में भलीभांति स्थित हो जाता है—जो कि असीम है आनंदपूर्ण है और सर्वोच्च है।

सत्रहवां प्रवचन

हरेक क्षण को उत्सव बनाओ

पहला प्रश्न :

सुबह आपने कहा कि जो ब्रह्म को जान लेता है वह पाप को नष्ट कर देता है। और ब्रह्म में भलीभांति स्थित हो जाता है। इस संदर्भ में कृपया स्पष्ट करें कि उपनिषदों की पाप की धारणा में और बाइबिल की पाप की धारण में क्या अंतर है? और कृपया यह भी समझायें कि मनुष्य के जीवन पर उसका क्या प्रभाव है?

अंतर बहुत आधारभूत है। बाइबिलसे संबंधित धर्म—यहूदी, ईसाई, और यहां तक कि इस्लाम भी—इन सब में पाप की धारण हिंदूओं, बौद्धों आदि से पूर्णतया भिन्न है। ईसाइयत में, बाइबिल में, पाप की धारणा तुम्हारे कृत्यों से संबंधित है, उससेसंबंधित है जो तुम करते हो। जो भी तुम करते हो वह पाप हो सकता है। वह पुण्य हो सकता है। लेकिन उसका संबंध तुम्हारे करने से है। उपनिषदों के हिसाब से उसका संबंध तुम्हारे करने से जरा भी नहीं है। तुम क्या करते हो यह बात ही असंगत है। तुम क्या हो, यही असली बात हे। तुम्हारा करना महत्वपूर्ण नहीं है। बल्कि तुम्हारा होना, तुम्हारी बीइंग सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

तो किसी व्यक्ति को पापी कहने का क्या अर्थ होगा? इसका अर्थ है कि वह आदमी अज्ञानी है। उसे अपना कुछ पता नहीं है। इस अज्ञान के कारण ही उसके कृत्य पाप हो जाते है। कृत्य पाप तभी होते है जब करने वाला अज्ञानी हो। असतग हो, मूर्च्छित हो, सोया—सोया हो। अज्ञान पाप है, और जागरूकता ही पुण्य है। तुम्हारे कृत्य असंगत हैं क्योंकि वे असली बात नहीं हैं। असली बात तूम्हारी चेतना है। यदि चेतना के साथ कुछ गड़बड़ है, तो तुम्हारे कृत्य भी गलत होंगे। यदि चेतना को ठीक कर दिया जाये, तो फिर उससे सही कृत्य निकलेंगे।

इसलिए सिर्फ कर्मों को बदलने से कुछ नहीं होगा। तुम पाप कर सकते हो, तुम उस पाप का प्रायश्चित कर सकते हो, तुम किसी पाप के बदले में पुण्य कर सकते हों—लेकिन यह उपनिषदों की दृष्टि में कुछ अर्थ नहीं रखता यदि तुम वही बने रहते हो। जब तक तुम नहीं बदलते, जब तक तुम्हारी चेतना नहीं बदलती, जब तक तुम बीइंग के नये तल पर, नई ऊंचाई पर नहीं पहुंचते, तब तक सिर्फ कृत्यों को बदलना निरर्थक है।

अत: उपनिषद कृत्यों की भाषा में नहीं सोचते; वे तुम्हारे होने की भाषा में सोचते हैं। सजग जागरूक, होशपूर्ण, तुम पुण्यात्मा हो। क्यों? क्योंकि जितने तुम सजग हो, सचेतन हो, जागे हुए हो, उतनी ही पाप करने की संभावना कम है। पाप करने के लिए बुनियादी आवश्यकता है मूर्च्छित होना।

उदाहरण के लिए तुम क्रोधित तभी हो सकते हो यदि तुम अपने को भूल जाओ। यदि तुम आत्मस्मरण से भरे हो, जागे हुए हो, तो क्रोध असंभव है। होश के साथ वह हो ही नहीं सकता। उनका सह—अस्तित्व संभव नहीं है। जब तुम सजग होते हो तो ऐसा नहीं होता कि तुम अपना क्रोध दबा लेते हो, उसको रोक लेते हो, दमन कर लेते हो—नही! वह हो ही नहीं सकता। एक पूरे जागे हुए व्यक्ति में क्रोध हो ही नहीं सकता, वैसे ही जैसे एक पूर्ण प्रकाशित कमरे में अंधेरा नहीं हो सकता। वे एक साथ नहीं हो सकते।

जैसे ही तुम अंधेरे कमरे में एक दीया लाते हो तो वहां अंधेरा नहीं रहता। प्रकाश के साथ अंधेरा नहीं हो सकता। और उपनिषद कहते हैं कि अंधेरे से लड़ना मूढ़ता है और व्यर्थ है, क्योंकि तुम अंधेरे से लड़ नहीं सकते।

यदि तुम लड़े तो तुम हारोगे। तुम चाहे कितने भी बलशाली क्यों न हो, तुम अंधेरे से नहीं लड़ सकते, क्योंकि अंधेरा सिर्फ प्रकाश का अभाव है। प्रकाश को लाओ और अंधेरा विलीन हो जाता है।

उपनिषद कहते हैं कि पाप अंधकार है। चैतन्य का प्रकाश लाओ और पाप तिरोहित हो जाता है। पाप से लड़ो नहीं। सीधे पाप से कुछ संबंध ही मत रखो; पाप की भाषा में सोचो ही मत। वरना तुम स्वयं को दोषी समझोगे, और फिर कोई आध्यात्मिक विकास नहीं होगा। उल्टे नीचे गिरना ही होगा।

ईसाइयत ने लोगों को बहुत पापी बना दिया है, क्योंकि तुम कुछ भी करो वह पाप है। और तुम्हें उससे लड़ना होगा। और उससे कुछ होता नहीं है। जितना ज्यादा तुम किसी पाप से लड़ते हो, उतनी ही गहरी उसकी जड़ें चली जाती हैं। जितना अधिक तुम लड़ते हो उतनी ही अधिक वे बलशाली हो जाती हैं। जितना अधिक तुम लड़ते हो उतने ही अधिक उसके शिकार होते जाते हो। क्यों 2: क्योंकि लड़ाई अंधेरे से है। तुम जीत नहीं सकते; जीत की कोई संभावना ही नहीं है। और जब तुम बार—बार हारते हो तो तुम और भी ज्यादा पापी, हीन अनुभव करने लगते हो। पापों से, गलत कर्मों से लड़ने का यह पूरा प्रयास तुम्हें अपराध— भाव तथा हीनता के भाव से भर देता है। तुम महसूस करने लगते हो कि तुम सर्वथा अयोग्य हो; कि तुम कुछ भी नहीं कर सकते। तुम्हारी आत्मा इस लड़ाई से संगठित नहीं होती, वरन वह रुग्ण हो जाती है और अपराध— भाव तथा हीनता की ग्रंथि से ग्रसित हो जाती है।

उपनिषद कहते हैं कि पाप महत्वपूर्ण नहीं हैं। तुम क्या करते हो यह अर्थहीन है। तुम क्या हो यही महत्वपूर्ण बात है। यदि तुम पाप कर रहे हो तो वह यही बतलाता है कि तुम गहरी नींद में सोये हो, बेहोश हो। अत: पापों से मत लड़ो, वरन अपने भीतर जाओ और ज्यादा से ज्यादा सजग होओ। जैसे—जैसे सजगता भीतर बढ़ती है, बाहर पाप तिरोहित हो जाते हैं। एक क्षण आता है कि तुम भीतर एक जलती हुई लपट हो जाते हो, जो भी तुम करते हो उसके प्रति सजग, जो भी मन में आता है उसके प्रति सजग, जो भी तुम्हारे साथ घटता है उसके प्रति सजग। तब कोई पाप नहीं होता।

और यह संभव है। यह विजय तुम्हारे हाथों में है। तब तुम्हें अपराध तथा हीनता का भाव कभी नहीं होगा; तुम कभी यह नहीं कहोगे कि तुम अयोग्य हो। जितना ज्यादा तुम सचेतन होने का प्रयास करते हो उतना ही अधिक तुम्हें लगेगा कि तुम स्वीकृत हो, पात्र हो, स्वागत है तुम्हारा; उतनी ही तुम्हें प्रतीति होगी कि तुम्हारे द्वारा परमात्मा कुछ नियति पूरी करने को है।

मैं इस दृष्टिकोण को अधिक वैज्ञानिक, अधिक धार्मिक कहता हूं क्योंकि यह आदमी को एक गरिमा देता है। यदि तुम पाप को एक कृत्य की तरह लेते हो तो उससे तुम्हारे भीतर अपराध— भाव पैदा होता है, और अपराध—भाव तुम्हें धार्मिक नहीं बना सकता। और अपराध— भाव से तुम परमात्मा को अनुभव नहीं कर सकते, क्योंकि तुम्हारा अपना ही अपराध— भाव एक अवरोध बन जाता है। यदि तुम गहरे में अपराध का भाव लिये हुए हो तो तुम परमात्मा के प्रति कभी भी कृतज्ञ अनुभव नहीं कर सकते। कृतशता का भाव वहा पैदा नहीं हो सकता।

जब तुम स्वीकृत हो, जब तुम अपने को योग्य समझते हो, जब तुम अपने को प्रभु का निवास समझते हो, जब तुम्हें अनुभव होता है कि तुम्हारे भीतर एक ऐसा केंद्र है जो कि सब कृत्यों के पार है, जब तुम इस आतरिक लौ के निकट और अधिक निकट आते जाते हो, तो तुम अधिकाधिक कृतज्ञता से भरते जाते हो। कृतशता धार्मिक चित्त की सुवास है। अपराध— भाव एक दुर्गंध है, बदबू है। यदि तम अपराध— भाव से भरे हुए हो तो तुम्हारे चारों ओर एक दुर्गंध होगी, बदबू होगी।

मेरे देखे, उपनिषद ज्यादा गहरे जाते हैं क्योंकि वे सीधे अंतस में ही पहुंचते हैं, समस्या की जड़ तक चले जाते हैं। ईसाई अथवा यहूदी धारणाएं ऊपरी—ऊपरी हैं क्योंकि वे सिर्फ परिधि को ही छूती हैं। वे कृत्यों को स्पर्श करती हैं, न कि चेतना को। और वे सोचते हैं कि कृत्यों को बदलने से आत्मा बदल जाएगी। यह संभव नहीं है। तुम कृत्य बदलते रह सकते हो, किंतु आत्मा नहीं बदलेगी, क्योंकि परिधि केंद्र को नहीं बदल सकती, बाह्य अंतस को नहीं बदल सकता; सतह बुनियाद को नहीं बदल सकती। लेकिन यदि तुम केंद्र को बदल दो तो परिधि अपने आप बदल जाती है; यदि तुम अंतस को बदल दो तो बाह्य तुरंत बदल जाता है।

यदि मैं तुम्हें बदलता हूं तो तुम्हारी छाया बदल जायेगी। लेकिन यदि मैं तुम्हारी छाया को रंगकर उसे बदलने की कोशिश करूं तो उससे तुम नहीं बदल जाओगे। और मेरी सारी कोशिश बेकार जायेगी। क्योंकि छाया को रंगकर बदला नहीं जा सकता, यदि तुम चल पड़े तो तुम्हारी छाया भी चल पडेगी और मेरा रंग जमीन पर ही पड़ा रह जायेगा, और तुम्हारी छाया अस्पर्शित ही रह जायेगी। कर्मों के साथ कुछ करना छाया के साथ कुछ करने जैसा ही है। जो भी तुम करते हो वह बहुत ऊपरी है। तुम क्या हो, तुम्हारा होना क्या है, वही असली बात है।

उपनिषद तुम्हारे अस्तित्व को छूते हैं, इसीलिए वे कहते हैं. अज्ञान, मूर्च्छा ही एकमात्र पाप है। इसलिए यह सूत्र कहता है : जो इसे जान लेता है वह इस प्रकार पाप को नष्ट कर देता है। सिर्फ ब्रह्म को जानने से, उसकी प्रत्यभिज्ञा से पाप नष्ट हो जाते हैं—जन्मों—जन्मों के सारे पाप। तुमने कितने ही गलत कर्म किये हों जन्मों—जन्मों में; वे वहां संगृहीत हैं। और वे सब तुम्हारे अंतस के अंतर्तम केंद्र पर पहुंचने और उसे स्पर्श करने से ही नष्ट हो जाते हैं।

वे कैसे नष्ट हो जाते हैं? क्योंकि हमारा हिसाबी—किताबी मन सोचेगा, "मुझे हर पाप को चुकता करना पड़ेगा। हर पाप के लिए मुझे कुछ पुण्य करना पड़ेगा ताकि वह कट जाये। "

लेकिन उपनिषद कहते हैं कि सिर्फ 'उसको' जानने से ही, सिर्फ उस तथाता को जानने मात्र से ही सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

वे कैसे नष्ट हो जाते हैं? क्योंकि तुम उनको नष्ट करने के लिए कुछ भी नहीं करते। यह बहुत ही सूक्ष्म बात है। यह ऐसा ही है जैसे कि तुम रात सपना देखते हो कि तुम व्यभिचार कर रहे हो, कि तुम कत्ल कर रहे हो, कि तुमने सारे शहर को जला दिया है—तुमने बहुत—से पाप कर डाले हैं। और सुबह तुम जाग जाते हो। सपना थोड़ी देर मन पर छाया रहता है, तुम्हें याद होता है, लेकिन तुम उसके लिए अपने को दोषी नहीं ठहराते—या कि तुम अपने को दोषी ठहराते हो? यदि तुम अभी भी अपने को उसके लिए दोषी ठहराते हो तो उसका इतना ही अर्थ हुआ कि तुम अभी भी जागे नहीं हो। तुम अभी भी नींद में हो, तुम पर अभी भी सपने का असर बाकी है। वह अभी भी तुम्हारे साथ है। जब तुम वस्तुत: सजग और सचेतन हो जाते हो तो तुम उस सारी बात पर हंस सकते हो क्योंकि वह एक सपना ही था। वास्तव में तो तुमने कुछ किया ही नहीं।

उपनिषद कहते हैं कि यही होता है : जब कोई व्यक्ति ब्रह्म में जागता है, तो जो भी जीवन उसने जीये हैं और जो भी उसने किया है, वह सब एक लंबे सपने की भांति विलीन हो जाता है। इस नये जागरण के साथ जो भी अतीत है वह सब का सब माया की तरह लगता है, जैसे कि वह कभी नहीं घटा, अथवा जैसे कि किसी कहानी में घटा हों—सपने के नाटक में हुआ हो।

इसीलिए उपनिषद इस संसार को माया कहते हैं। ऐसा नहीं कि यह नहीं है, ऐसा भी नहीं कि यह अवास्तविक है, लेकिन इस घटना के कारण कि जब एक व्यक्ति गहरे ध्यान में जागता है, तो यह सारा जगत जिसमें वह अब तक जी रहा था, सपने की भांति प्रतीत होता है; अब उसमें कोई सार नहीं होता।

इसलिए, यह सूत्र—यह सूत्र कहता है कि जो उस तत् को, अस्तित्व के तथाताभाव को, उस ब्रह्म को जान लेता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। उनके लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता है। वे बस भीतर से विदा हो जाते हैं। तुम उनसे गुजर गये, तुम उनके पार चले गये। वे सिर्फ अतीत की स्मृति मात्र रह गये जिनका कोई ठोस अस्तित्व नहीं है। तुम उनके बारे में ऐसे ही कह सकते हो जैसे कि वे सपने थे।

उपनिषद कहते हैं कि मनुष्य की चेतना की चार स्थितियां होती हैं। पहली, जब तुम जागे हो, जाग्रत चेतना; दूसरी, जब तुम सपने देख रहे हो—स्वम्मदर्शी चेतना; तीसरी, जब तुम पूरी तरह सोये हो कि कोई सपना भी नहीं चल रहा है—सुषुप्ति। और इन तीनों के पार है चौथी। उपनिषदों ने उसे कोई भी नाम नहीं दिया है। वे सिर्फ उसे कहते हैं चौथी—तुरीय। तुरीय का अर्थ होता है चौथी। वह चौथी वह स्थिति है जिसमें तुम ब्रह्म को जानते हो।

यदि तुम चौथी में प्रवेश कर जाओ तो पहली तीनों स्थितियां मायावी हो जाती हैं। इसे इस भांति सोचो क्योंकि वह चौथी अभी तुम्हारा अनुभव नहीं है, लेकिन तुमने इन तीनों का अनुभव किया है। और इन तीन के बारे में समझने से चौथी के बारे में कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

जब तुम जागे हुए होते हो, जब तुम दिन में जाग्रत चेतना की स्थिति में होते हो तब क्या होता है? स्वप्न—चेतना विलीन हो जाती है; वह तब नहीं होती। सुषुप्ति भी विलीन हो जाती है; वह भी नहीं होती। फिर रात होगी और तुम पुन: सोओगे, सपने शुरू हो जायेंगे। जब सपने शुरू होते हैं तो तुम चेतना बदल लेते हो। चेतना का गेयर बदल जाता है; अब जो भी तुम्हारी जाग्रत चेतना में था वह सब विलीन हो जाता है। तुम माउंट आबू में जागे हुए थे, लेकिन तुम सपना देख सकते हो कि तुम लंदन में हो, अथवा न्यूयार्क में हो, अथवा कलकत्ता में हो। माउंट आबू तिरोहित हो जाता है; वह सपने देखने वाली चेतना के लिए मिट जाता है। सपने देखने वाली चेतना के लिए लंदन ज्यादा वास्तविक है, और तुम्हें यह याद भी नहीं रहता कि जागते में तुम माउंट आबू में थे। वह इस तरह भूल जाता है कि उसका कहीं नामो—निशान भी नहीं बचता। और तुम कोई विरोधाभास भी महसूस नहीं कर सकते, तुम कोई सवाल भी नहीं खड़ा कर सकते, "यह सब कैसे हुआ—मैं माउंट आबू में था, मैं लंदन कैसे आ गया? " नहीं, कोई संदेह भी पेद। नहीं होता, क्योंकि माउंट आबू इस तरह से तिरोहित हो गया है कि तुम उसे तुलना करने के लिए भी नहीं ला सकते।

जागते में तुम अपनी पत्नी के साथ अपने घर में थे। सपने में पत्नी तिरोहित हो गई, घर भी तिरोहित हो गया। तुम किसी और स्त्री के साथ रह रहे हो, तुमने दोबारा विवाह कर लिया है। और तुम्हारे मन में जरा भी अपराध का भाव नहीं होता है कि तुमने पहली पत्नी को तलाक भी नहीं दिया है, क्योंकि तुम तुलना ही नहीं कर सकते। पहली पत्नी इस भांति विलीन हो गई है कि इसमें कोई विरोधाभास अथवा असंगति नहीं है।

और फिर तुम तीसरी अवस्था में प्रवेश करते हो, गहरी निद्रा, सुषुप्ति, जहां सपने भी खो जाते हैं। अब जाग्रत अवस्था, पत्नी, घर, वे सब तो पहले ही तिरोहित हो गये हैं। अब वह स्वम्नावस्था, वह पलो जिससे तुमने अभी विवाह किया है, नया घर, वे भी विलीन हो गये। अब दोनों अवस्थाएं तिरोहित हो गयीं। तुम इतनी गहरी नींद में डूबे हो कि तुम्हें कुछ याद नहीं है।

और फिर सुबह तुम पुन: जाग्रत अवस्था में प्रवेश कर रहे हो। अब सपना भी खो गया, नींद भी रखो गई। फिर वही पत्नी, फिर वही घर, फिर वही संसार शुरू हुआ। अब तुम फिर माउंट आबू में हो।

उपनिषद कहते हैं इन तीन अवस्थाओं से स्पष्ट होता है कि जब तुम एक अवस्था में होते हो तो बाके दो अवस्थाएं तिरोहित हो जाती हैं।

एक चौथी अवस्था भी है। हम सारे प्रयास उस चौथी अवस्था के लिए कर रहे हैं—इन तीनों के पार जाने के लिए। उस चौथी अवस्था को कहते हैं तुरीय—परिपूर्ण सजगता। उस समग्र सजगता में ये तीनों अवस्थाएं विलीन हो जाती हैं और इन तीनों से संबंधित सब कुछ तिरोहित हो जाता है। उस चौथी के पार नहीं जाया जा सकता। चेतना की कोई पांचवीं अवस्था नहीं होती। चौथी आखिरी है। बुद्ध उसी अवसर। में जीते हैं, जीसस उसी में जीते हैं, कृष्ण उसी में जीते हैं। उसका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता। और क्योंकि उसका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता इसीलिए उसे किसी चीज से काटा भी नहीं जा सकता। इसी कारण उपनिषद कहते हैं कि यही परम सत्य है। बाकी सब सापेक्ष रूप से सत्य था। जिसको किसी भी भांति काटा नहीं जा सके वही अंतिम है, परम है, निरपेक्ष है, वास्तविक है।

जितने भी पाप तुमने किए हैं वे तिरोहित हो जाते हैं, क्योंकि तुम्हें पता चलता है कि तुम उनके कर्त्ता नहीं हो। तुम्हारी आत्मा ने कुछ भी नहीं किया, वह सिर्फ साक्षी है। और जो भी किया गया वह सब प्रकृ।ित के द्वारा किया गया—प्राकृतिक नियमों ने किया।

समाज के लिए यह बात समझना बहुत कठिन है। इसीलिए संसार में कोई भी समाज नहीं है जिसका आधार उपनिषदों की शिक्षा हो। कोई भी समाज उसके साथ नहीं जी सकता—वह शिक्षा इतनी खतरनाक है। हिंदू भी उपनिषद पढ़ते हैं, लेकिन वे भी कभी ऐसा समाज निर्मित करने का प्रयास नहीं करते जो इस शिक्षा की बुनियाद पर खड़ा हो। क्योंकि यह चीजों को देखने का इतना विराट दृष्टिकोण है। यह कहता है कि यदि एक आदमी हत्या कर रहा है, तो बस ऐसा है—इस भांति प्रकृति उससे काम कर रही है, इस भां।ित प्रकृति उसके द्वारा हत्या हो गई है। एक दिन जब यह आदमी परम चेतना को उपलब्ध होगा तो वह हंसेगा। वह कहेगा, "मैंने कभी हत्या नहीं की। सिर्फ परिस्थिति, प्रकृति की शक्तियों ने ही सारा काम किया। "

लेकिन यदि यह अभी सिखाया जाए तो यह मन में भय और भ्रांति पैदा करेगा कि "यदि इस बात की शिक्षा दी जाए तो हर आदमी हत्या करने लगेगा और कहेगा कि मैं क्या करूं, प्रकृति इसी भांति मेरे भीतर काम कर रही है। "

यह भय भी व्यर्थ है, क्योंकि जो लोग हत्या करने वाले हैं वे करते ही हैं, चाहे आप कुछ भी करो। जितनी ज्यादा सजा हो सकती है हम देते हैं—कैद की सजा, जन्मकैद, यहां तक कि मौत की सजा भी—लेकिन उससे कुछ भी नहीं बदला। हत्याएं जारी हैं, बल्कि उनमें वृद्धि होती जाती है।

हमने दूसरे विकल्प को कभी नहीं आजमाया। जहां तक मुझे लगता है, जहां तक मैं जानता हूं यदि हम उपनिषदों की देशना के आधार पर समाज को खड़ा करें तो एक भी अतिरिक्त हत्या नहीं होगी। चीजें जैसी हैं वैसी ही रहेंगी, लेकिन आदमी के रूपांतरण की ज्यादा संभावना होगी।

यह कठिन है, क्योंकि सारी मनुष्यता ही इस भांति संस्कारित है कि वह व्यक्ति पापी है और उसे रोका जाना चाहिए, वरना वह पाप करता ही रहेगा। उसे कैद की सजा दी जानी चाहिए, उसे दंडित किया जाना चाहिए। उसे यातना दो ताकि वह पाप करने से रुके। लेकिन हम किसी को भी रोक नहीं पाये—एक भी आदमी को हम पाप करने से रोक नहीं पाये।

मैंने सुना है कि इंगलैंड में पुराने दिनों में, अभी दो सौ वर्ष पहले, जब भी कोई चोर पकड़ा जाता था तो चौराहे पर नंगा करके सारे शहर के सामने उसके कोड़े लगाये जाते थे। उसे वहां लटकाकर कोड़े मारे जाते थे—सिर्फ पूरे शहर को सीख देने के लिए कि चोरी करने पर क्या होता है। लेकिन फिर यह रोक देना पड़ा क्योंकि सारा शहर उसकी पिटाई देखने के लिए इकट्ठा होता, और उस भीड़ में ही जेब काटने वाले जेब काट लेते। लोग उसकी यंत्रणा देखने में इतने तन्मय हो जाते कि अपनी जेब के बारे में बिलकुल भूल ही जाते। इसलिए यह बात

स्पष्ट हो गई कि यह बेकार है। कोई भी उससे नहीं सीख रहा था। ठीक उसी जगह पर लोग चोरी कर रहे थे। वे बिलकुल वही काम वहां कर रहे थे।

मुझे यह घटना बड़ी प्रतीकात्मक लगती है। हमारी सारी सजायें, कैद, मृत्यु—दंड, यंत्रणाएं, सब की सब बेकार हैं; उन्होंने एक भी आदमी को नहीं बदला। वे बदल भी नहीं सकतीं, क्योंकि आदमी बहुत सी प्राकृतिक शक्तियों का एक जोड़ है। सजा देने से तुम उस जोड़ को नहीं बदल सकते। आदमी एक इतनी गहरी घटना है कि सिर्फ उसको मारने—पीटने से तुम उसकी चेतना को नहीं बदल सकते।

और वास्तव में, यह एक काफी लंबा और व्यर्थ खेल चलता आ रहा है, क्योंकि जो आदमी पीट रहा है वह भी उसी ढंग का है। पुलिस वाले और चोर, वे दोनों उसी श्रेणी के हैं। हत्या करने वाले तथा न्यायाधीश उसी वर्ग के हैं। वे दोनों विपरीत ध्रुवों पर खड़े हैं, लेकिन उनकी चेतना की गुणवत्ता एक जैसी ही है। एक समाज के खिलाफ पाप कर रहा है, दूसरा समाज के लिए पाप कर रहा है।

यदि तुम किसी की हत्या करते हो तो समाज तुम्हारी हत्या कर देगा। और समाज के द्वारा की गई हत्या पाप नहीं है! कैसे तुम हत्या को हत्या से बदल सकते हो? कैसे तुम हिंसा को हिंसा से बदल सकते हो? तुम उसे बढ़ाते हो। तुम उसे दुगुनी कर देते हो। तुम बदला ले सकते हो, लेकिन तुम कुछ भी बदल नहीं सकते। उपनिषद कहते हैं कि जब तुम अपने अंतर्तम केंद्र पर पहुंच जाते हो और जाग जाते हो, पूर्णत: सजग हो जाते हो कि क्या हुआ तो तुम जानते हो कि वह प्रकृति थी जो कि सब कुछ कर रही थी। तुम तो सदा से केवल साक्षीमात्र थे—पुरुष थे।

भारत में सर्वाधिक गहन दर्शन, सांख्य दर्शन है, और सांख्य कहता है कि सभी कृत्य प्रकृति के हैं; तुम्हारी तो केवल चेतना है। सारे कृत्य, अच्छे या बुरे, सारे कर्म प्रकृति के हैं। तुम्हारी तो सिर्फ चेतना है। उस चेतना को पा लो, उस परम के साथ एक हो जाओ, और सारे पाप नष्ट हो जायेंगे, और तुम ब्रह्म में स्थित हो जाओगे।

दूसरा प्रश्न

बहुत—सी परंपराओं में समग्र हस्तांतरण किसी गुरु से केवल एक ही शिष्य को दिया गया जैसे कि बुद्ध से महाकाश्यप को बोधिधर्म से हुईके को और उसके बाद हुई—नेंग को जिसका कि उल्लेख आपने आज सुबह किया। क्या आपके पास भी आपके बहुत से शिष्यों मै ऐसा कोई शिष्य है जिसको कि आप अपना समग्र ज्ञान हस्तांतरित करने की योजना रखते हैं? क्या इसकी संभावना है कि आप ऐसा एक शिष्य के बजाय बहुत— से शिष्यों को करेंगे? ऐसा क्यों है कि बहुत—सी परंपराओं में आत्यंतिक रहस्य सामान्यतया एक शिष्य को ही हस्तांतरित किया जाता है?

यह केवल एक ही को हस्तांतरित नहीं किया जाता। यह बहुतों को हस्तांतरित किया जाता है, लेकिन एक ही को यह अधिकार होता है कि वह आगे हस्तांतरित करे। बुद्ध ने अपना ज्ञान हजारों को बांटा, लेकिन उन्होंने अपना अधिकार सिर्फ महाकाश्यप को ही दिया, क्योंकि वही गुरु होने के सबसे ज्यादा योग्य था। बुद्धत्व पाना कठिन नहीं है, लेकिन गुरु होना बड़ा कठिन है। बहुत—से लोग बुद्धत्व को उपलब्ध हुए हैं, लेकिन सारे उपलब्ध व्यक्ति गुरु नहीं हैं।

जब तुम बुद्धत्व को उपलब्ध होते हो, तो यह तुम्हारी अपनी बात है, लेकिन गुरु होने के लिए तुम्हें इसे दूसरों को संप्रेषित करने की कला आनी चाहिए। और यह कला सर्वाधिक कठिन है क्योंकि कुछ ऐसा संप्रेषित करना है, जिसे संप्रेषित नहीं किया जा सकता, कुछ ऐसा हस्तांतरित करना है जो हस्तांतरित नहीं किया जा सकता, कुछ ऐसा कहना है जिसे भाषा में नहीं कहा जा सकता। इसलिए अत्यंत परिष्कृत कलाकार ही हस्तांतरित करने के लिए नियुक्त किया जा सकता है।

ऐसा हुआ :

बुद्ध एक दिन एक फूल हाथ में लेकर आये, और वृक्ष के नीचे बैठ गये। वे शिष्यों के सामने प्रवचन करने वाले थे, लेकिन वे चुप ही रहे, और शिष्य बड़े बेचैन हो गये। पहले ऐसा कभी नहीं हुआ था। वे आते थे और बोलना शुरू कर देते थे तो आज वे चुप क्यों थे? और वे उस फूल की ओर ही देखते रहे जैसे कि वे यह बिलकुल भूल ही गये थे कि दस हजार संन्यासी वहां इकट्ठे थे उन्हें सुनने को। कुछ मिनट बीत गए, और वे उनकी ओर काफी देर तक देखते रहे, लेकिन किसी में इतना साहस नहीं था कि उनसे कहता, "आप यह क्या कर रहे हैं? क्या आप हमें भूल गये हैं? क्या आप भूल ही गये हैं कि आपने हमें क्यों बुलाया है और आप क्या कहने वाले थे? "

उन्होंने उन लोगों को विशेष रूप से बुलाया था, और वे लोग बड़ी आशाएं लेकर आये थे। बुद्ध बहुत के हो गये थे, इसलिए उन्होंने सोचा था, "शरीर छोड़ने के पहले वे कुछ बहुत गुप्त, कुछ बहुत रहस्य की बात, कुछ खास बात कहने वाले हैं जो कि उन्होंने पहले नहीं कही है। "और वे चुप ही रहे और सतत फूल की ओर देखते रहे। मौन भारी हो गया, बोझिल हो गया। प्रत्येक आदमी बेचैन हो गया। और तब महाकाश्यप, एक शिष्य जोर से हंसने लगा। और महाकाश्यप अनूठा है, क्योंकि इसके पहले उसके नाम का उल्लेख कभी नहीं हुआ। वह बिलकुल अनजान शिष्य था जहां तक संसार का संबंध है, लेकिन बुद्ध के लिए अनजान नहीं था। बुद्ध जरूर उसको पहले से जानते रहे होंगे।

बहुत—से प्रसिद्ध शिष्य वहां मौजूद थे। सारिपुत्त वहां था जो कि स्वयं एक महान शिक्षक था। मोदगलायन वहां था जो कि स्वयं एक महान शिक्षक था, उसके अपने हजारों शिष्य थे। आनंद वहा था, जो कि सबसे ज्यादा निकट था, जो बुद्ध के साथ छाया की तरह रहता था। और १गई बहुत लोग वहां पर थे—जों किसी न किसी ढंग से बहुत प्रसिद्ध और जाने—माने। और इस महाकाश्यप का बौद्ध—ग्रंथों में इस घटना के पहले कभी उल्लेख नहीं आया।

वह हंसा। बुद्ध ने उसकी ओर देखा। बुद्ध मुस्कुराये और महाकाश्यप को पास आने को कहा। महाकाश्यप निकट आया। बुद्ध ने बिना एक शब्द भी बोले वह फूल उसे दे दिया। और फिर उन्होंने सभा से कहा, "जो भी भाषा से कहा जा सकता था वह मैंने तुम्हें कह दिया है, और जो भाषा से नहीं कहा जा सकता है, वह मैंने महाकाश्यप को दे दिया है। "

इसे महान हस्तातरण कहते हैं। महाकाश्यप मौन की भाषा समझ सका। और जो मौन की भाषा समझ सकता है वही मौन के द्वारा चीजों को सिखा सकता है, बता सकता है। महाकाश्यप ही अकेला नहीं है जिसे बुद्ध ने वह गुप्त कुंजी दी थी; वह गुप्त कुंजी बहुतों को दी गई थी, लेकिन सर्वाधिक गुप्त कुंजी केवल मौन में ही दी जा सकती है, और महाकाश्यप उस भाषा को समझ सका। फिर उसे नियुक्त किया गया कि वह इस मौन—देशना को संप्रेषित करे।

बोधिधर्म उस परंपरा में छठा था। महाकाश्यप प्रथम था जिसने कि बुद्ध से देशना ग्रहण की थी, बोधिधर्म छठा था। और बोधिधर्म भारत भर में घूमा कि ऐसा आदमी मिल जाए जो मौन की भाषा समझ सके। उसे यहा भारत में कोई नहीं मिला; इसीलिए उसे चीन जाना पड़ा। वहां उसे हुईके मिला, दीवार के सामने मुंह कर के नौ वर्ष बैठने के बाद।

बुद्ध ने अपना बुद्धत्व, उसका स्वाद, बहुतों को दिया था, लेकिन वे सब गुरु नहीं थे। उन्होंने उसे स्वयं के लिए उपलब्ध किया और फिर वे इस असीम में खो गये।

गुरु होना बहुत ही कठिन तथा नाजुक बात है। तुमने उस असीम को पा लिया है, और फिर भी तुम किसी भांति इसी किनारे बने रहते हो—दूसरों को सिखाने के लिए। यह बहुत ही कठिन है। एक अर्थ में यह इतना दुर्लभ है कि यह अपवाद लगता है, क्योंकि जिसने असीम को जान लिया है वह उसमें खो जाना चाहेगा। तुम्हें समझाने की चिंता क्यों लेना? क्यों चिंता करना उन्हें कहने की जो कि समझ नहीं सकते, अथवा उन्हें जो कि गलत ही समझ सकते हैं? क्यों उन्हें समझाना? क्यों परेशानी उठाना? कोई चाहेगा कि मौन में, आनंद में, असीम में, उतर जाये और भूल जाये इस संसार को।

गुरु का अर्थ है वह व्यक्ति जिसे आनंद की पुकार कम महत्वपूर्ण है, करुणा की पुकार ज्यादा महत्वपूर्ण है। वह कहता है, "रुको। असीम रुक सकता है, उसके लिए इतनी जल्दी नहीं है। आनंद थोड़ी देर ठहर सकता है, अंतिम विलय थोड़ी देर के लिए प्रतीक्षा कर सकता है, उसके लिए कोई जल्दी नहीं है। "

गुरु का अर्थ होता है वह व्यक्ति जो कि इस किनारे थोड़ी देर और रुका रहता है। यह बहुत कठिन है, क्योंकि उसे ऐसे उपाय करने पड़ेंगे जिससे कि वह थोडी देर और यहीं रुका रह सके। और यह बात बहुत कठिन होनेवाली है, क्योंकि अब शरीर विश्राम करना चाहता है, प्रकृति में लौट जाना चाहता है। एक बार तुम बुद्ध हो जाओ, तो शरीर विश्राम करना चाहता है। अब उसे घसीटने की जरूरत नहीं है। शरीर प्रकृति में विलीन हो जाना चाहेगा, क्योंकि नियति पूरी हो गई। अब घर की जरूरत नहीं है; अब आत्मा का पक्षी असीम में पंख पसार कर उड़ सकता है। यह घर अब बेकार है। क्यों इसे घसीटना? लेकिन गुरु को घसीटना पड़ता है। उसे ऐसी तरकीबें ईजाद करनी पड़ती हैं जिससे वह इस शरीर को घसीटता रहे ताकि दूसरों की सहायता हो सके।

और शरीर ही एकमात्र समस्या नहीं है। यह कोशिश ही इतनी व्यर्थ मालूम पड़ती है, क्योंकि तुम दस हजार लोगों से बोलो और शायद एक ही समझेगा। और बाकी बचे हुए नौ हजार नौ सौ निन्यानबे तुम्हारे लिए ऐसी परेशानियां खड़ी करेंगे! वे तुम्हारे लिए हर प्रकार से समस्याएं और मुश्किलें पैदा करेंगे।

यह स्वाभाविक है क्योंकि वे तुम्हें नहीं समझ सकते, और तुम जो भी करते हो और कहते हो वह उनके लिए खतरनाक है। क्योंकि उनकी जमी—जमाई मान्यताओं को चुनौती मिलती है, उनका सुव्यवस्थित जीवन, उनकी जीवन—शैली, सभी कुछ को चुनौती खड़ी हो जाती है। तुम उन्हें झटके देते रहते हो, अत: वे बदला लेंगे। वे तुम्हें रोकने के लिए जो भी कर सकते हैं वह सब करेंगे—तुम्हें उनकी सहायता करने से रोकने के लिए।

इसलिए किसी भी बुद्धपुरुष के लिए यह सरल है कि वह विलीन हो जाए। इसीलिए बुद्ध कहते हैं कि दो प्रकार के जाग्रत पुरुष होते हैं। एक को वे कहते हैं—अर्हत। अर्हत से उनका अर्थ है ऐसा व्यक्ति जिसने अपनी आत्मा को उपलब्ध कर लिया है और वह दूसरों की चिंता नहीं लेता। वह सागर में बूंद की तरह विलीन हो जाता है। दूसरे को वे बोधिसत्व कहते हैं। बोधिसत्व से उनका अर्थ है ऐसा व्यक्ति जो अर्हत हो गया है, लेकिन वह अंतिम आकाक्षा को रोकता है—विलीन हो जाने की अंतिम आकाक्षा। इस आकाक्षा का प्रतिरोध करता है और इसी किनारे, इसी तट पर रुकता है दूसरों की सहायता के लिए। और बुद्ध कहते हैं कि बोधिसत्व बड़ा त्याग करते हैं।

अर्हत कभी गुरु नहीं हो सकते; केवल बोधिसत्व ही गुरु हो सकते हैं। और सभी बोधिसत्व भी गुरु नहीं हो सकते, क्योंकि गुरु होने के लिए एक विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है—संप्रेषित करने और मदद करने का एक विशेष प्रशिक्षण, सलाह देने तथा सिखाने का एक विशेष प्रशिक्षण, एक विशेष प्रशिक्षण नई—नई विधियां खोजने का—क्योकि प्रत्येक व्यक्ति के लिए कुछ भिन्न विधि की आवश्यकता होती है, और हर युग की कुछ अलग ही जरूरत होती है।

इसीलिए सारी पुरानी विधियां व्यर्थ हो जाती हैं। उन्हें किन्हीं विशेष मनोदशा के लोगों के लिए खोजा गया था, और वे लोग अब इस जगत में नहीं हैं। और हम उन्हीं विधियों का अभ्यास करते चले जाते हैं। वे बहुत लोगों को सहायता नहीं पहुंचा सकतीं। वे बहुत थोड़े—से लोगों की सहायता कर सकती हैं। नई विधियों की जरूरत है। तुम गुरु तभी हो सकते हो जब तुम नये उपाय, नई विधियां खोज सकी, और आविष्कारक तथा सृजनात्मक हो सको।

ऐसा नहीं है कि बुद्धत्व तथा शान की वह गुप्त कुंजी एक ही को दी जाती है। वे तो बहुतों को दी जाती हैं, लेकिन गुरु की भांति एक को ही दी जाती है, जो कि इस योग्य होगा कि वह आगे उसे सौंपता जायेगा।

अब, चूंकि यह अंतिम सभा है, इसके पूर्व की तुम यहां से जाओ मैं तुम्हें कुछ बातें कहना चाहता हूं।

पहली, यह मेरे देखने में आया है कि तुम में से निन्यानबे प्रतिशत, और यह अच्छा खासा प्रतिशत है, बड़ी त्वरा से ध्यान करते रहे हैं। यह बहुत आशाजनक है, लेकिन यह स्वरा समूह पर निर्भर थी। शायद घर पर तुम्हारे लिए यही त्वरा रखना कठिन हो।

तो एक काम करना : जब तुम घर पर ध्यान करो, पहले अपनी आंखों को बंद कर लेना और मेरी उपस्थिति अपने सामने अनुभव करना, जैसे यहां मैं हूं। कल्पना करना मेरी, कल्पना करना समूह की तुम्हारे चारों ओर, और उसके बाद ध्यान प्रारंभ करना जैसे तुम समूह में करते रहे हो। वैसा करना बड़ा सहायक होगा। यदि तुम्हारे पास टेप—रिकॉर्डर है तो उसे चालू कर लेना ताकि सारा वातावरण निर्मित हो जाये और तुम अकेले न रहो। क्योंकि इतनी त्वरा से अकेले करना बहुत कठिन है। यह समूह की आत्मा है जो तुम्हें पकड लेती है घर वापस लौट कर तुम्हें लगेगा, आश्चर्य होगा, कि किस तरह दिन में तीन—तीन बार तुम इतनी मेहनत कर रहे थे। शायद तुम कल्पना भी नहीं कर सको कि यह सब तुम कैसे कर रहे थे! समूह की चेतना तुम्हें पकड़ लेती है—तब तुम धारा में गिर जाते हो, तब तुम बाढ़ में बह रहे होते हो, तब तुम्हें पूरा समूह आगे धकेलता चला जाता है।

बहुत—से लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं, "शिविर में तो बड़ा अदभुत लगता है, लेकिन जब हम घर वापस लौटते हैं तो सब खो जाता है। " घर पर भी समूह की याद रखना, समूह की कल्पना करना, समूह को अनुभव करना, और समूह वहां पर होगा। कम से कम मैं वहा होऊंगा।

और यदि तुम संन्यासी हो तो लॉकेट को अपने हाथ में लेना और तीन बार श्वास को बाहर छोड़ना। भीतर मत लेना। तीन बार श्वास को जोर से बाहर छोड़ना और शरीर को श्वास लेने देना, तुम मत लेना। सिर्फ तीन बार श्वास को बाहर छोड़ना, मुझे स्मरण करना, और प्रारंभ करना; और मैं वहां होऊंगग।

समय और स्थान कुछ ज्यादा अहमियत नहीं रखते। यदि तुम्हारी त्वरा इतनी गहरी है कि तुम मुझे महसूस कर सको तो मैं वहां होऊंगा। दूरी मिट जाती है, समय खो जाता है, और तुममें से निन्यानबे प्रतिशत लोग कर सकेंगे जैसे यहा पर कर रहे हैं। और अकेले करना अच्छा है। समूह से प्रारंभ करना अच्छा है लेकिन यह अच्छा नहीं है कि हमेशा के लिए समूह पर निर्भर हो जाया जाये।

लेकिन अंतराल मत छोड़ना। जिस दिन भी तुम घर पहुंचो, एकदम शुरू कर देना। ऐसा मत कहना, "एक सप्ताह आराम कर लूं और फिर शुरू करूंगा। " तब तुम कभी भी शुरू नहीं कर सकोगे। यह मन की तरकीब है। जैसे ही तुम घर पहुंचो, प्रारंभ कर देना। यह तुम्हें वहां पर भी घटेगा। और एक बार तुम्हें अकेले में ध्यान हो जाये तो तुम स्वनिर्भर हो गये। ध्यान समूह में शुरू किया जा सकता है, लेकिन वह स्वनिर्भरता में समाप्त होना चाहिए। तुम्हें समूह से मुक्त होना ही चाहिए।

दूसरी बात : तुम में से बहुत—से अपने पड़ोसियों से डरेंगे, अपने परिवार से डरेंगे। वे लोग तुम्हें पागल समझेंगे। यहां कोई समस्या नहीं है, क्योंकि सभी लोग तुमसे ज्यादा पागल हैं, इसलिए तुम डरे हुए नहीं हो। यहां कोई कहने वाला नहीं है कि तुम पागल हो। सारा वातावरण, सारी बात ही भिन्न है। यहां पर यह सब सहयोगी है। लेकिन घर जाने पर सारी बात उल्टी हो जायेगी। वही बाधा बन जाती है। तो अच्छा होगा कि अपने परिवार के लोगों से कह दो, "मैं इस विधि पर प्रयोग कर रहा हूं और यह कुछ पागल विधि है। " अपने पड़ोसियों को भी जाकर कह दो, "सुबह एक घंटे के लिए यह ध्यान की विधि करूंगा—और यह बिलकुल ही पागल विधि है, लेकिन आप लोग परेशान मत होना।"

उन लोगों को यह बात छिपाने की बजाय साफ कह देना; क्योंकि यदि तुमने छिपाने की कोशिश की तो तुम ठीक से नहीं कर सकते; तुम हमेशा कुछ न कुछ दबा लोगे। स्वयं ही जाकर सबसे यह बात कह देना। और केवल थोड़े दिन, दो-तीन दिन लोग तुम्हारे में रस लेंगे। फिर वे भूल जायेंगे, क्योंकि किसी के पास तुम्हारे बारे में सोचने की फुरसत नहीं है, कि तुम पागल हो गये हो। तीन-चार दिन के बाद उनको आदत हो जाती है, और वे जान जाते हैं कि तुम कुछ कर रहे हो।

और यदि तुम तीन महीने तक सतत करते रहे, तो वे तुमसे पूछना शुरू कर देंगे कि तुम क्या कर रहे हो, क्योंकि अब स्पष्ट दिखाई पड़ेगा कि कुछ तुमको घटा है। वह तुम्हारे चेहरे पर झलकेगा, तुम्हारी आंखों से दिखाई पड़ेगा, तुम्हारी गतिविधियों से पता चलेगा। तुम्हारे व्यवहार का ढंग, सब कुछ बदल जाएगा। तुम्हारे ऊपर एक नई आभा आ जायेगी। एक नया मौन तुम्हारे पीछे-पीछे चलेगा, और एक नया सूक्ष्म आनंद उमगेगा जो कि कहीं से भी नहीं आ रहा है। बस, तुम जीवित हो इससे ही एक सूक्ष्म आनंद तुम्हारे साथ होगा। और प्रत्येक को यह फर्क मालूम पड़ेगा। फिर वे लोग तुमसे पूछेंगे। फिर वे तुम्हें कभी पागल नहीं समझेंगे।

अत: यदि तुम इस पागलपन को करते ही गये, तो कोई भी तुम्हें पागल नहीं समझेगा। लेकिन सातत्य चाहिए, और प्रारंभ में थोड़ा साहस। यदि तुम डरपोक हो तो तुम नहीं कर सकोगे। तुम इसके साथ तर्क-सरणी मत बिठाना। नहीं कहना कि दूसरों को परेशानी होगी। कोई परेशान नहीं होता। तुम अपने सारे परिवार को देखने के लिए निमंत्रण भी दे सकते हो। उन्हें आनंद आयेगा। किसी को भी परेशानी नहीं होगी, यह तो उनके लिए मुफ्त का मनोरंजन होगा।

पड़ोसियों को भी निमंत्रण दे देना। उनसे कह देना कि तुम एक ध्यान-शिविर से लौटे हो जहा पर तुमने एक ध्यान की विधि सीखी है और उसे तुम उन्हें भी दिखाना चाहते हो। प्रारंभ में वे लोग हंसेंगे, लेकिन वे लोग ज्यादा दिनों तक नहीं हंस सकते। वे उसके बारे में गंभीर हो जायेंगे। लेकिन तुम्हारी बदलाहट से ही उसका प्रभाव साबित होगा, किसी और बात से यह साबित नहीं हो सकता। तुम उसके बारे में तर्क नहीं कर सकते।

तीसरी बात : किसी को भी इस बाबत समझाने की कोशिश मत करना, बहस आदि मत करना। वह सब व्यर्थ है, सिर्फ तुम अपनी ऊर्जा व्यय करते हो। केवल एक ही तर्क है जो कि कुछ साबित कर सकता है, और वह तुम हो। यदि तुम बदलते हो, तो तुम स्वयं ही एक जीवंत तर्क बन जाते हो। यदि तुम नहीं बदलते, तो बहस करना व्यर्थ है, तुम किसी को भी समझा नहीं सकते। खाली तर्क से किसी को समझाया नहीं जा सकता; लेकिन तुम्हारा होना समझा सकता है। अत: इसके बारे में बहस आदि मत करना।

ऐसी मेरी प्रतीति रही है : कि जब भी तुम कुछ नया सीखते हो तो तुम तार्किक हो जाते हो। तुम उसके बारे में बात करते रहते हो। और ऐसा नहीं है कि उससे तुम किसी को नुकसान पहुंचाते हो-शायद तुम उनकी मदद की ही सोचते हो। जब तुम्हारे पास कुछ बात इतनी ताजा हो और तुमने कोई नया अनुभव किया हो तो

तुम उसको बांटना चाहते हो; यह स्वाभाविक है। यह स्वाभाविक हो सकता है लेकिन यह बुद्धिमानी नहीं है, क्योंकि दूसरा बिलकुल ही अपरिचित है कि तुम क्या बात कर रहे हो।

और विशेषत: मेरी विधियां ऐसी पागलपन की हैं कि तुम किसी को भी समझा नहीं सकते। इसलिए तुम कोशिश ही मत करना, क्योंकि यदि तुम किसी को भी समझा नहीं सके तो इसका तुम पर बुरा असर पड़ सकता है। तुम्हारी असफलता तुम्हारा अपना विश्वास कम कर सकती है। तब तुम अपने भीतर ही झिझकने लगते हो। तुम किसी को भी समझा नहीं सकते, और दूसरे तुम्हें समझा सकते हैं कि जुम पागल हो गये हो, कि तुम गलत हो। वे लोग तुम्हें आश्वस्त कर सकते हैं, क्योंकि तुम्हारे पास इतना सूक्ष्म अनुभव है कि तुम उसे उरभिव्यक्त नहीं कर सकते। तुम संप्रेषित कैसे करोगे? जब तक कि कोई —बहुत ही ग्राहक और स्वागत करने वाला नहीं हो, तुम संप्रेषित नहीं कर सकते। किसी भी बात के लिए ना कहना बड़ा सरल है; इंकार करना आसान है। विधायक होना, ही कहना, बहुत ही कठिन है।

चेखव ने एक कहानी लिखी है.

एक गांव में एक आदमी इतना मूर्ख था, इतना मूढ़ था कि सारा गांव जानता था कि वह आदमी बहुत ही मूर्ख है। और वह स्वयं भी इस बात से इतना आश्वस्त हो गया था कि वह मूर्ख है, कि वह बोलने से, एक शब्द भी मुंह से निकालने से घबराता था, क्योंकि जैसे ही वह कुछ भी बोला कि लोग कहेंगे, ”यह श्री तुमने क्या मूर्खता की बात कही! ”

वह आदमी इतना उदास हो गया कि वह एक फकीर के पास गया और उससे पूछा, ”मैं क्या करूं? मैं ऐसा प्रसिद्ध मूर्ख हूं कि मैं एक शब्द भी नहीं बोल सकता। जरा—सा बोलते ही लोग कहने लग जाते हैं कि चुप रहो। बीच में मत बोलो। ”

उस फकीर ने कहा, ”तुम एक काम करो। आज से किसी भी बात के लिए ही मत कहना। जो भी तुम देखो, उसकी निंदा करना। ”

उस मूर्ख ने कहा, ”लेकिन वे लोग मेरी सुनेंगे ही नहीं। ”

फकीर ने कहा, ”तुम इस बात की चिंता ही मत करो। यदि वे कहें कि यह चित्र बड़ा सुंदर है, तो तुम कहना. यह चित्र और सुंदर? इससे ज्यादा असुंदर चित्र पहले कभी नहीं देखा। यदि वे कहें कि यह उपन्यास बड़ा मौलिक है तो तुम कहना, यह सिर्फ पुनरुक्ति है। हजारों बार यही कहानी लिखी जा चुकी है। इसे सिद्ध करने की कोशिश मत करना। सिर्फ हर चीज को इंकार करना, यही आधारभूत दर्शन बना लो। यदि कोई कहे कि रात बडी सुंदर है, चांद बड़ा सुंदर है तो तुम कहना, इसको तुम सुंदरता कहते हो? और वे इसके विपरीत साबित नहीं कर सकते। याद रखना, वे साबित नहीं कर सकते। ”

वह आदमी लौट कर वापस गांव गया। उसने हर बात के लिए ना कहना शुरू कर दिया। एक सप्ताह में गांव में खबर फैल गई. ”हम लोग तो बड़े गलत थे। वह आदमी तो मूर्ख नहीं है। वह तो बडा भारी आलोचक है; वह तो प्रतिभाशाली व्यक्ति है। ”

ना कहने के लिए किसी बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है। यदि तुम महान प्रतिभाशाली व्यक्ति बनना चाहते हो तो इंकार करो, आलोचक हो जाओ। किसी भी बात के लिए हा कहने की चिंता ही मत करो। जो भी कुछ दूसरा कहे, उसे पूरी तरह से इंकार कर दो। और कोई भी इस बात को साबित नहीं कर सकता, क्योंकि किसी भी बात को साबित करना बड़ा कठिन है। इंकार करना सबसे आसान तरकीब है।

जब तुम उच्चतर अनुभवों के बारे में बात कर रहे हो तो कोई भी तुम्हें इंकार कर सकता है—कोई भी मूढ़ इंकार कर सकता है—और तुम अन्यथा साबित नहीं कर सकते। अत: बड़े सजग रहना। उसके बारे में कभी बात

नहीं करना, जब तक कि कोई बहुत ही सहानुभूति से भरा हृदय सुनने को, ग्रहण करने को राजी न हो। और बहस मत करना। यदि तुम्हें कुछ घटित हुआ है तो तुम्हारा होना ही एक प्रमाण बन

जायेगा। किसी को समझाने में अपनी ऊर्जा बरबाद मत करना। तुम्हारे भीतर जितनी ऊर्जा है उसको स्वयं के रूपांतरण में लगाओ। तुम्हारा रूपांतरण बहुतों की सहायता करेगा; तुम्हारा तर्क किसी के भी काम 'नहीं पड़ेगा।

एक बार तुम रूपांतरित हो जाओ, तो लोग अपने से ही तुम्हारे प्रेम में पड़ने लगेंगे। वे ग्राहक हो जायेंगे, निमंत्रित करने लगेंगे। वे तुम्हारे आतिथेय हो जायेंगे। और जो कुछ भी तुम कहोगे वे उसे बीज की तरह ग्रहण कर लेंगे, वे उसे अपने हृदय में ले जायेंगे। लेकिन किसी को मनवा लेने की कोशिश मत करना, न ही तर्क करना; उसके बारे में तार्किक अथवा बौद्धिक मत होना। पूरी बात ही इतनी बेबूझ ते, इतनी विरोधाभासी है!

यह विरोधाभासी है क्योंकि होशपूर्वक पागल होने से तुम सारे पागलपन के पार चले जाते हो। कोई व्यक्ति जो इस विधि का प्रयोग कर रहा है, कभी पागल नहीं हो सकता। यह असंभव है, क्योंकि तूम अपनी सारी विक्षिप्तता बाहर फेंके दे रहे हो, इकट्ठी नहीं कर रहे हो। और जब तक तुम इकट्ठी न करो, तूम विक्षिप्त नहीं हो सकते।

तुम रोज अपने को स्वच्छ कर रहे हो; तुम रोज एक निर्जरा से गुजर रहे हो। तुम बदल रहे हो, अपनी विक्षिप्तता को ध्यान में रूपातरित कर रहे हो। इस विधि को करते हुए, जो कि ऊपर से इतनी विक्षिप्ततापूर्ण है, तुम एक संभावना निर्मित कर रहे हो जहा कि वास्तविक स्वास्थ्य पैदा हो सकता है। यह बात बड़ी विरोधाभासी है; इसीलिए मैं इसे बेबूझ कहता हूं।

हंसो, गाओ, नाचो, लेकिन तर्क मत करो। तुम्हारा नृत्य 'संक्रामक हो सकता है, तुम्हारा गीत किसी को छू सकता है। तुम्हारे हृदय की गहराई से निकला हास्य किसी के हृदय को स्पर्श कर सकता है। अधिक आनदपूर्ण, नाचते हुए, उत्सव मनाते हुए रहो, जैसे कि हर क्षण एक आशीर्वाद हो, जैसे कि हर क्षण एक अहोभाव हो। और प्रत्येक पल को महोत्सव बना लो।

इस शिविर के लिए मेरे ये अंतिम शब्द हैं : प्रत्येक क्षण को महोत्सव बना लो... तब फिर तुमःएं परमात्मा को नहीं खोजना पड़ेगा। तुम जहां भी होओगे, परमात्मा खुद तुम्हें खोजता हुआ आ जायेगा।